श्री श्री विजयकृष्णवचनामृत

श्री श्री विजयकृष्णवचनामृत

(गुरु-शिष्य संवाद सहित)

विषय-सूची

सद्‌गुरू श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी

श्री माता योगमाया ठाकुरानीजी

श्री श्याम सुन्दर जी
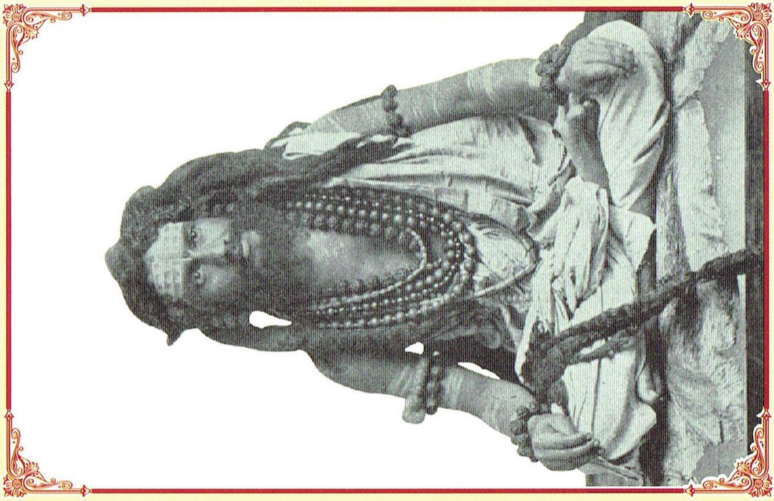
श्री कुलदानन्द जी
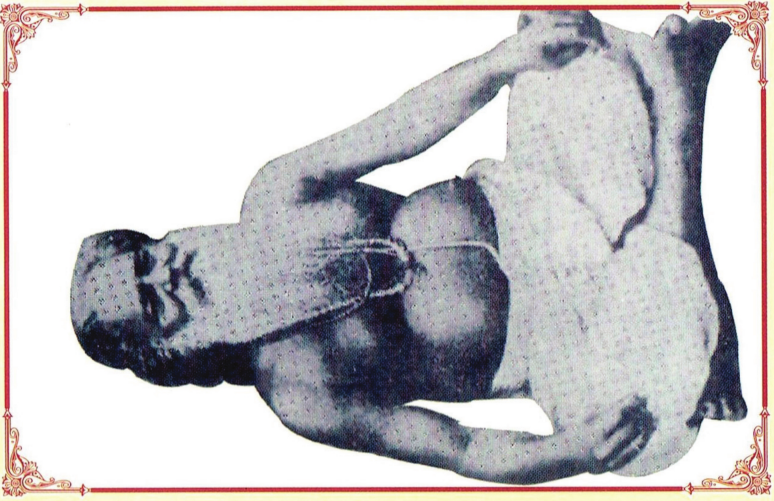
श्री जगद्बन्धु मैत्र

प्रस्तावना

महाजनो: येन गत: स पंथा। महात्मागण जिस पथ पर चलकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुके हैं, साधक अपने संस्कार के अनुकूल उनमें से एक पथ को स्थिर कर, उसी पथ का अनुसरण करे यही निरापद है। यही पथ श्रीगीता में कथित ''स्वधर्म'' है। गीता के सारे उपदेशों के अंत में भगवान कहते हैं - सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच: ॥ (18/66)॥ सद्गुरु गोस्वामी प्रभु के साधन में इस महावाक्य का जो व्यावहारिक रूप प्राप्त होता है, वह है ''आत्म-समर्पण''।

सद्गुरु श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभु का जीवन चरित्र, व्यवहार, चिन्ता, वाक्य तथा उपदेश नितान्त ही शास्त्रोक्त हैं। भक्ति साधक नीतिधर्म, कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रेम के सोपानों में से एक के बाद एक में कैसे आरोहण करता है? इसका व्यावहारिक रूप गोस्वामी प्रभु ने अपने जीवन में उतारकर दर्शाया है।

भक्त श्री रामावतार शर्मा जी ने इस पुस्तक में अत्यंत निष्ठाके साथ गोस्वामीजी का जीवनचरित, उपदेशामृत (विश्लेषित और विभाजित) तथा अंत में ''गुरु शिष्य संवाद'' का संकलन करके हिन्दी भाषी धर्म पिपासु मुमुक्षु भक्तों का परम उपकार किया है। इसे एक लैण्ड मार्क रिफरेन्स वर्क कहा जा सकता है।

श्री शर्मा जी की इस प्रचेष्टा को मैं सर्वान्तकरण से बधाई देता हूँ। विभिन्न भाषाओं मे इस पुस्तक का अनुवाद होना जगत के लिये कल्याणकारी होगा।

बसंत पंचमी - 2008
42, लेक ईस्ट 6 रोड़,
कोलकाता-700075

-ब्रजेश्वरानंद-

ग्रन्थ परिचय

प्रस्तुत ग्रंथ की विषय-वस्तु कोई नवीन सृजन नहीं है अपितु श्री गोस्वामीजी के श्रीमुख से समय-समय पर उद्घोषित अमूल्य उपदेश जो विभिन्न पुस्तकों में प्रकाशित हो चुके हैं; उनका संकलन है। ग्रंथ के तीन भाग हैं, प्रथम भाग में श्री गोस्वामीजी की जीवनी है, द्वितीय भाग में उनके उपदेशों का संग्रह है एवं तृतीय भाग में उनके जामाता एवं शिष्य श्री जगद्‌बंधु मैत्र द्वारा रचित ''गुरु-शिष्य संवाद'' है जो वस्तुत: श्री गोस्वामीजी द्वारा ही अपने शिष्य के श्रीमुख से कहे गये शब्द हैं। माँ-मणि (जीवन दर्शन एवं दिव्य लीला अनुभूतियाँ) नामक ग्रन्थ में श्री गोस्वामीजी द्वारा बार-बार ''गुरु-शिष्य संवाद'' ग्रंन्थ का विवरण दिया गया है।

श्री गोस्वामीजी के सम्बन्ध में प्रकाशित सभी ग्रंथ प्राय: बंगला भाषा में ही उपलब्ध हैं। विगत वर्षों में श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ की प्रेरणा से हिन्दी भाषा में श्री गोस्वामीजी के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है विशेष रूप से श्री श्रीविजयकृष्ण कथामृत, साधना पथ, श्री श्रीविजयकृष्ण परिजन, माँ-मणि (जीवन दर्शन एवं दिव्य लीला अनुभूतियाँ), एवं महापातकी के जीवन में सद्‌गुरु लीला नामक ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं एवं हिन्दीभाषी साधकों का उनसे विशेष उपकार हुआ है। इसी क्रम में प्रस्तुत ग्रन्थ साधकों के सामने प्रस्तुत है। श्री गोस्वामीजी के अमूल्य उपदेश वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साधकों के लिये अमृत-तुल्य हैं। आशा है, सभी साधक भले ही वे किसी भी आध्यात्मिक धारा से सम्बन्धित हों, श्री गोस्वामीजी के उपदेशों से अपने साधना-पथ को प्रकाशित करके अग्रसर होंगे।

विभिन्न साधकों द्वारा ग्रन्थ प्रकाशन में विभिन्न प्रकार से सहयोग दिया गया है जो उन पर गोस्वामीजी की महती कृपा दर्शाता है। वस्तुत: किसी भी साधक की किसी भी प्रकार की कोई सामर्थ्य नहीं है, श्री गोस्वामीजी द्वारा ही अपना कार्य अपनी प्रेरणा से अपने प्रियजनों पर कृपा करके कराया गया है।

प्रकाशक

जीवनी

श्री चैतन्य महाप्रभु के भगवत्प्रेम के प्रचारकार्य में श्री अद्वैताचार्य एवं श्री नित्यानंद महाप्रभु का स्थान प्रमुख है। इन्हीं श्री अद्वैताचार्य जी के पवित्र वंश की नवम् पीढ़ी में श्री आनन्द किशोर गोस्वामीजी प्रकट हुए। इनकी पत्नी का नाम स्वर्णमयी देवी था। गृह में प्रतिष्ठित श्री श्यामसुंदर विग्रह की आरती, सेवा और श्रीमद्भागवत का पाठ इनका नित्य कर्म था। उल्लेखनीय है कि इन्हीं श्री श्यामसुंदर विग्रह की स्थापना श्री अद्वैताचार्य ने की थी। आज भी इस विग्रह की सेवा-पूजा शांतिपुर में हो रही है। इन्हें शांतिपुर में 'आताबुनिया' गोस्वामी के श्री श्यामसुंदर नाम से जाना जाता है। श्री अद्वैताचार्य जी की पवित्र भजनस्थली 'श्री अद्वैत पाट', बाबला नामक स्थान पर शांतिपुर में अवस्थित है।

श्री आनंदकिशोर जी निष्ठापूर्वक श्री श्यामसुंदर की सेवा-पूजा किया करते थे। विग्रह के भोग की रसोई के लिये लकड़ी को, गंगाजल से धोकर, फिर वे काम में लाते थे। श्रीमद्भागवत का पाठ करते हुए वे भगवत् प्रेम में विभोर हो जाया करते थे। कई बार भावमग्न आनंदकिशोर जी के रोम-रोम से रक्त की बूंदें उभर आती थी। उनके भागवत् पाठ के समय जो भी व्यक्ति उपस्थित रहता था, वह भी भक्ति-भाव में मग्न हो जाता था। अपने इष्ट श्यामसुंदर और श्रीमद्भागवत को वे अभिन्न मानते थे। एक बार उनके किसी शिष्य ने होली के दिन श्री श्यामसुंदर को चढ़ाने के लिये उन्हें गुलाल लाकर दिया। उस समय आनंदकिशोर श्रीमद्भागवत् का पाठ कर रहे थे। उन्होंने सारी गुलाल श्रीमद्भागवत् पर उड़ेल दी। यह देख कर शिष्य ने दु:खी होकर सोचा कि मेरी गुलाल श्री श्यामसुंदर की सेवा में नहीं लगी, यह मेरा दुर्भाग्य है। पाठ की समाप्ति के बाद आनंदकिशोर जी ने शिष्य के मनोभाव को ताड़ कर प्रेमपूर्वक उसे श्री श्यामसुंदर का दर्शन कर आने को कहा। शिष्य ने मंदिर के द्वार के पास जाकर देखा कि उसी गुलाल से श्री श्यामसुंदर का विग्रह गुलालमय हो गया है। शिष्य ने लज्जित होकर आनंदकिशोर जी के निकट आकर क्षमा मांगी। उस दिन से उसे दृढ़-विश्वास हो गया कि भक्त, भागवत् और भगवान्, तीनों का रूप अलग है पर स्वरूप अभिन्न है।

श्री आनंदकिशोर जी के प्रथम पुत्र का नाम ब्रजगोपाल था। इनके जन्म के कुछ दिनों के बाद भगवत्प्रेरणावश आनंदकिशोर जी अपने नित्यपूजित शालिग्राम शिला को साथ ले दंडवत् प्रणाम करते हुए शांतिपुर से जगन्नाथपुरी के लिये निकल पड़े। उस समय उनके साथ नौकर और परिवार की एक वृद्ध महिला भी थी। शांतिपुर से पुरी लगभग 400 मील है। इस प्रकार, दण्डवत् प्रणाम करते-करते डेढ़ वर्ष में उनकी छाती एवं घुटने में छाले एवं घाव हो गये पर वे अपने संकल्प से विचलित नहीं हुए। घावों पर पट्टी बांध कर नियमपूर्वक वे यथासमय पुरी पहुँचे। वहां पर श्री जगन्नाथजी का दर्शन कर आप भावमग्न हो गए। इसी समय, श्री जगन्नाथजी ने आनंदकिशोर जी को दर्शन देकर कहा, ''**तुम घर लौट जाओ। तुम्हारे पुत्ररूप में मैं स्वयं प्रकट होकर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करूंगा।**'' पुरी में कुछ दिन रहने के बाद आनंदकिशोर जी शांतिपुर लौटे और पत्नी स्वर्णमयी देवी को उन्होंने श्री जगन्नाथजी से प्राप्त निर्देश के बारे में बतलाया।

इस प्रकार श्री अद्वैताचार्य जी के पवित्र वंश में श्री आनन्द किशोर जी के पुत्र के रूप में सद्‌गुरु विजयकृष्ण जी का 2 अगस्त 1841 ई. 'झूलन पूर्णिमा' (रक्षा-बंधन) के दिन जन्म हुआ। बंगला सन् 1248, श्रावण 19 में श्रावणी पूर्णिमा (सोमवार) को नदिया जिले के शिकारपुर (दहकुल) नामक स्थान में अपने ननिहाल में विजयकृष्ण का आविर्भाव हुआ। लगभग छः महीने पश्चात् विजयकृष्ण को लेकर स्वर्णमयी शिकारपुर से शांतिपुर आई। यहाँ आठ माह की आयु में बड़ी धूम-धाम से विजयकृष्ण का अन्नप्राशन और नामकरण संस्कार किया गया।

विजयकृष्ण के भीतर शैशवकाल से ही, अन्य बच्चों से कुछ अलग विशेषताएं दिखलाई पड़ती थीं। बच्चे को रोने पर इसे श्री श्यामसुंदर के मंदिर में ले जाने पर वह शांत हो जाता था। तुलसी के वृक्ष के नीचे लोटपोट होने में बालक को विशेष आनंद मिलता था।

श्री श्यामसुन्दर के भोग के लिये रसोई विशेष पवित्रता से बनती थी। कभी-कभी बालक विजयकृष्ण 'श्यामसुंदर' को भोग खिलाने की जिद पकड़ लेता था। एक दिन दोपहर को सबके शयनोपरांत बालक चुपचाप मंदिर में घुस गया। श्यामसुंदर को अपनी गोदी में सुला कर

उसके मुँह में चम्मच से वह दूध देने लगा। अचानक पुजारी कहीं से आ गया। बालक से किसी प्रकार विग्रह लेकर, विग्रह की अभिषेक द्वारा शुद्धि के बाद, मंदिर में प्रतिष्ठा की गई। यज्ञोपवीत नहीं होने के कारण बालक को विग्रह का स्पर्श करने नहीं दिया जाता था। इस घटना को लेकर परिवार के लोग बालक के अमंगल के प्रति सशंकित हो गये और भविष्य में इसकी पुनरावृति न हो, इस दृष्टि से सतर्क रहने लगे।

कार्तिक मास के एक दिन प्रात:काल मंगल आरती के दर्शन के कुछ समय बाद माता स्वर्णमयी ने घर जाकर देखा कि बालक विजयकृष्ण अपने बिस्तर पर नहीं है। ढूंढती हुई वे श्रीमंदिर गईं। उस समय मंदिर के पट बंद थे। उन्होंने देखा, बालक दरवाजा खोलने के लिए धक्का दे रहा है एवं कभी विनती, तो कभी झगड़ा करते हुए श्यामसुंदर से कह रहा है, ''मेरी गोली चुरा कर, तुम भाग कर यहां छिप गए हो। यदि अपना भला चाहते हो तो गोली वापस कर दो अन्यथा कल फिर खेलने आओगे तो इसका मजा चखाऊंगा। जब तक इसका बदला नहीं ले लूँगा, तब तक भोजन भी नहीं करूँगा। तुम्हें आज देख लूँगा।'' आदि-आदि......। माँ ने विजयकृष्ण को बहला कर खिलाने की खूब चेष्टा की पर उस दिन वे उसे बहला न सकीं। अंतत: हार कर माँ थाली में भोजन परोसकर बालक विजयकृष्ण के शयनकक्ष में रखकर सो गई। आधी रात को माँ देखती है कि, बालक शय्या छोड़ कर थाली के पास बैठ कर भोजन करता हुआ कह रहा है, ''खैर, तुमने हार मान ली न! नहीं तो, आज तुम्हें मजा चखा देता!'' फिर बालक ने कहा, ''अच्छा! मैंने तो क्रोधवश भोजन नहीं किया, पर तुमने भोजन क्यों नहीं किया? अच्छा, जो भी हो, अब आओ, दोनों एक साथ भोजन कर लें!'' इस प्रकार भोजन करने के बाद बालक सो गया। यह अलौकिक प्रसंग देखकर स्वर्णमयी विस्मित हो गई। इधर पुजारी ने सुबह कहा ''कल श्याम सुन्दर ने भोग ग्रहण नहीं किया। स्वप्न में कल उन्होंने मुझसे कहा है। मालुम नहीं, क्या अपराध हो गया?'' सुबह पुन: विग्रह की पूजा, भोग आदि की विशेष व्यवस्था की गई। इस प्रकार की घटनाएँ विजयकृष्ण के बाल्यकाल में घटती रहती थीं। माता स्वर्णमयी, बालक के भविष्य के संबंध में अपने पति आनंदकिशोर की बातों का स्मरण कर अपने मन को शांत रखने की चेष्टा करती थीं।

विजय का विद्यारम्भ हुआ प्रसिद्ध गुरु भगवान पंडित महाशय की पाठशाला से। गुरु महाशय का विद्यार्थियों पर कड़ा शासन था। उनके शासन से यदि कोई बच पाया था, तो वह था विजय। विजय अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और गुरु के प्रति सेवाभाव के कारण उनका प्रिय पात्र बन गया था। वह इतना मेधावी था कि वह जो एकबार सुन या पढ़ लेता, वह उसे कंठस्थ हो जाता। इसलिए वह प्रत्येक परीक्षा में, प्रत्येक श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण होता।

कठोर शासक होते हुए भी गुरु महाशय आध्यात्मिकता के किस स्तर तक उठे हुए थे, इसका पता चलता है स्वयं विजयकृष्ण गोस्वामी के एक लेख से। उन्होंने लिखा है - ''गुरु महाशय विद्यार्थियों को मारते बहुत थे। बहुत रूष्ट होने पर वे विद्यार्थियों के प्रति 'गाडामाडा' शब्द का प्रयोग करते थे। एक दिन बोले शिष्यों से 'ओ रे ! कल प्रातःकाल आना। एक साथ गंगा स्नान को जायेंगे। मैं वहाँ देह त्याग करूँगा। रात्रि में यह संवाद शांतिपुर में चारों ओर फैल गया। दूसरे दिन प्रातः पाठशाला में स्त्री-पुरुष, बालक, वृद्ध की भीड़ लग गयी। गुरु महाशय ने सबको प्रणाम किया और पुत्र को साथ ले गंगा की ओर चल दिये। गङ्गा में स्नान कर आन्हिक की। फिर सबको प्रणाम कर गंगा में बैठ गये। जप करने लगे। चारों ओर संकीर्तन होने लगा। क्रमशः गंगा का घाट जनता से परिपूर्ण हो गया। जप पूरा होने पर बोले - ''देखो बच्चो, मैं हूँ कायस्थ। तुममें से बहुत से ब्राह्मण हो। मैंने तुम्हारे ऊपर शासन किया है। अब तुम मेरे मस्तक पर चरण अर्पण करो। अब देर नहीं। यह देखो, रथ आ गया।' इतना कह वे खड़े हो गये। प्राण शरीर को छोड़कर बैकुण्ठ धाम को चले गये। पर आश्चर्य ! मृत देह गिरा नहीं, खड़ा रह गया। ब्राह्मण छात्रों ने उनकी अन्त्येष्टि क्रिया उसी प्रकार की, जिस प्रकार माता पिता की करते है।''

शान्तिपुर में पढ़ाई शेष करने के बाद विजय कलकत्ते में संस्कृत कॉलेज में भरती हुए। इस समय उनकी उम्र अठारह वर्ष की थी। विधवा माँ उनके विवाह के लिए योग्य कन्या की खोज करने लगी। सुलक्षणा पात्री योगमाया ब्याहकर घर ले आई।

विवाह से विजय के क्रियाकलाप में कोई अन्तर न पड़ा। वे बहुत दिन तक विद्याध्ययन और समाज सेवा के कार्य में उत्साहपूर्वक लगे रहे। पर ये हैं सतोगुणी वृत्ति के कार्य। इनसे जगत का यत्किंचित कल्याण होता है, अपने को होती है स्वर्ग की प्राप्ति। बस इतना ही। परमार्थ-सिद्धि इससे नहीं होती। आवागमन का चक्कर बना रहता है। यह भी प्रपंच है, माया का बिछाया एक जाल, जिसमें जीव उलझ कर रह जाता है। सच्चे हृदय से सत्यानुसन्धान में लगे व्यक्ति को इसमें उलझते देख दैविक शक्तियाँ परमार्थ का इंगित करती हैं। विजय को भी ऐसा ही एक इंगित मिला। एक दिन रास्ता चलते-चलते उन्होंने सुनी एक देव-वाणी। किसी ने गंभीर कण्ठ से बार-बार कहा - ''वत्स, परलोक की चिंता करो।''

देव वाणी ने विजय के अन्तर में एक अपूर्व आंदोलन की सृष्टि की। पर क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में वे कुछ निश्चय न कर सके।

उन दिनों बंगाली समाज अंग्रेजी शिक्षा और सभ्यता के आक्रमण का शिकार हो रहा था। लोग नास्तिक होते जा रहे थे या ईसाई धर्म को अपनाते जा रहे थे। हिन्दू धर्म में भी कुछ कुरीतियाँ और कुसंस्कार घुस पड़े थे। आवश्यकता थी इसकी आत्मशुद्धि की और अंग्रेजी सभ्यता के आक्रमण से इसकी रक्षा करने की। इस कार्य के लिए आगे आये राजा राममोहनराय, महर्षि देवेन्द्रनाथ और केशवसेन। उन्होंने 'वेदान्त प्रतिपाद्य सत्य धर्म के आधार पर 'ब्राह्मधर्म' की सृष्टि की और आरम्भ किया हिन्दू समाज की आत्मशुद्धि और आत्मप्रतिष्ठा हेतु अभूतपूर्व आन्दोलन। विजय भी इसमें कूद पड़े।

ब्राह्म धर्म के नेतागण विजय जैसे तेजस्वी, मेघावी, सदाचारी और उत्साही व्यक्ति को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने निःसंकोच उनके कंधे पर डाल दिया ब्राह्मधर्म के प्रचार का गुरुत्वपूर्ण दायित्व। विजय भी तन मन से उसमें जुट गये।

इसी समय की एक घटना ने इनके जीवन की दिशा ही बदल दी। आचार्य वंश के होने के कारण विजयकृष्ण को कभी-कभी शिष्यों के घर जाना पड़ता था। शिष्यगण भी अपने कुलगुरु के दर्शन एवं सेवा के लिए

कभी कभी आया करते थे। आमलागाछी नामक स्थान के मालगुजार अद्वैत वंश के आचार्यों को गुरु मानते थे। इसी परिवार की श्रीमती जयतारा देवी एक बार 'युगल पूजा' के निमित्त शांतिपुर आई। उन्होंने भक्ति भावपूर्वक विजयकृष्ण से इसकी अनुमति माँगी। पहले तो वे सहमत नहीं हुए, पर अंततः उन्होंने इसकी सहमति दे दी। यथा विधि चरण पूजनोपरांत वह भक्तिमति महिला व्याकुल भाव से रोते हुए प्रार्थना करने लगी, ''प्रभु! मैं भवसागर में डूब रही हूँ। कृपापूर्वक इससे मेरा उद्धार कीजिये।'' सरल भाव और विश्वास पूर्वक की गई करूण प्रार्थना सुन विजयकृष्ण का हृदय कम्पित हो उठा। उन्होंने सोचा - 'मैं कैसे इसका उद्धार करूँ? मेरी क्षमता ही क्या है? मेरा उद्धारक कौन है, यह पता नहीं! मैं दूसरों का कैसे उद्धार कर सकता हूँ? हाय! मेरे जैसा निर्बोध और कोई नहीं होगा। अब शिष्य बनाकर, इस प्रकार का कपट आचरण, कभी नहीं करूँगा।' उसी दिन से उन्होंने, अपने पूर्वजों का, शिष्य बनाने का व्यवसाय त्याग देने का संकल्प लिया।

उसी दिन से उन्होंने अद्वैताचार्य वंश में परम्परा से चली आ रही गुरुवृत्ति का त्याग कर दिया। परिवार की आमदनी का जो एकमात्र स्रोत था, वह बन्द हो गया। परिवार का संचालन कैसे हो, यह समस्या आ पड़ी। सोचा कि मेडिकल कॉलेज में पढ़ेंगे। वहाँ से पास कर चिकित्सा कार्य करेंगे। इस प्रकार संसार पालन के साथ-साथ जनकल्याण का कार्य भी करेंगे। संस्कृत कॉलेज छोड़ वे मेडिकल कॉलेज में भर्ती हो गये। मेडिकल कॉलेज में पढ़ाई के साथ साथ ब्राह्म धर्म के प्रचार का कार्य चलता रहा।

अल्पकाल में ही विजयकृष्ण ब्राह्म समाज के एक वरिष्ठ नेता के रूप में सामने आ गये। उनके तेजस्वी स्वरूप, त्याग वैराग्य, अद्भुत भावावेश, अपूर्व असाम्प्रदायिक धर्मानुशीलन और प्रभावशाली भाषणों की सर्वत्र चर्चा होने लगी। जो लोग पहले 'ब्राह्म' शब्द सुनकर कानों में उँगली दे लेते, वे रविवार के दिन गोस्वामीजी की सामूहिक उपासना में योग देने और उनके प्रवचन सुनने दूर-दूर से आने लगे। उपासना में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी जातियों के लोग सम्मिलित होते। उपासना स्थल पर इतनी भीड़ होती कि बैठने की जगह मुश्किल से मिलती।

इसी बीच विजयकृष्ण के धर्म विश्वास में घोरतर परिवर्तन आ गया। जो विजयकृष्ण पहले पूजा अर्चना किये बगैर जल भी ग्रहण न करते, वे अब अद्वैतवादी हो गये और पूजा-अर्चना की आवश्यकता को अस्वीकार करने लगे। इस सम्बन्ध में विजयकृष्ण गोस्वामी ने स्वयं लिखा है - ''हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन कर मैं घोर वेदान्ती हो गया। उस समय मैं यही मानता था कि सबकुछ ब्रह्म है, मैं भी ब्रह्म हूँ। उपासना की आवश्यकता अस्वीकार करता।

विजयकृष्ण ने अब श्यामसुन्दर का एक प्रकार से परित्याग कर दिया था। पूर्व में जो श्यामसुन्दर के साथ प्रियतापूर्ण लीला हुआ करती थी वह बालपन का भ्रम या माया का खेल जैसा लगती थी। गोस्वामीजी ने ब्राह्म समाज के आवर्त्त में पड़कर श्यामसुन्दर को छोड़ दिया था। पर श्यामसुन्दर ने उन्हें नहीं छोड़ा था। वे समय समय पर उनसे अपने अभियोग, आशा-आकांक्षा की बात कर उन्हें अपनी याद दिलाते रहते। उत्तरकाल में गोस्वामीजी अपने शिष्यों को श्यामसुन्दर के साथ घटी विचित्र लीलायें इस प्रकार सुनाया करते :-

''एक बार शांतिपुर में प्रवास के दौरान श्यामसुन्दर आकर बोले- ''ओ रे, मैं सोने का मुकुट धारण करूँगा। मुकुट बनवा दे न''।

''मैनें कहा - मैं तो तुममें विश्वास करता नहीं। जो करता है उससे जाकर कहो। मैं कहाँ पाऊँगा तुम्हारे सोने के मुकुट के लिए पैसे?

''श्यामसुन्दर ने कहा - देख, तेरी चाची की 'झाँपि' में पैसे हैं। उन्हें ले ले न।

''मैंने जब चाची से कहा तो वे बोली- कल श्यामसुन्दर ने मुझसे भी स्वप्न में कहा - मुझे मुकुट बनवा दे न। मैंने कहा - पैसे कहाँ से लाऊँ ? मेरे पास तो कुछ है नहीं। श्यामसुन्दर ने कहा- हुँ, चालीस-पचास रूपये क्या तू दे नहीं सकती ? नहीं दे सकती, तो विजय से कह, वह देगा।

''चाची इतना कह रोने लगी और बोली - हाय, सड़सठ रूपये मैंने कितना छिपाकर रखे थे, कोई नहीं जानता था।

''चाची ने मुझे वे रूपये दिये। मैं ढाका से मुकुट बनवा लाया। वही मुकुट एक दिन श्यामसुन्दर ने धारण किया।

''संध्या समय जब मैं छत पर गया, श्यामसुन्दर ने झाँककर मेरी ओर देखा और बोले - ओ रे, एक बार आकर देख न, मुकुट पहनकर मैं कैसा लगता हूँ?

मैंने कहा - मैं यह सब देखकर क्या करूँगा ? मैं तो तुम्हें मानता नहीं।

श्यामसुन्दर बोले - ''नहीं मानता तो न सही, एकबार देखने में भी कुछ दोष है'' ?

मैंने निकट जाकर दर्शन किये। उनकी स्नेहमयी स्निग्ध चितवन और रूप की उज्जवल छटा देखकर मुग्ध हो गया।

प्रचारक रहते मैं बीच-बीच में माँ ठाकुरानी को देखने घर जाया करता। एक बार मध्याह्न में इसी कमरे में बैठा था। श्यामसुन्दर आकर बोले - देख, आज मुझे खाने को दिया, पर जल दिया नहीं।

मैंने उसी समय चाची को बुलाया। उनसे कहा - चाची, तुम्हारे श्यामसुन्दर कहते हैं आज तुमने जल नहीं दिया उन्हें।

चाची बोलीं - हाँ, श्यामसुन्दर को और कोई मिला नहीं। तू ब्रह्मज्ञानी है न, इसलिए तुझसे आकर कहा - जल दिया नहीं।

मैंने कहा - अच्छा जाकर देखो न।

चाची ने जाकर देखा, सचमुच जल नहीं दिया था।

इसी प्रकार श्यामसुन्दर बहुत बार बहुत-सी बातें कहते। पुजारी से जब भी कोई भूल होती, श्यामसुन्दर आकर कह जाते। शिशुकाल से ही श्यामसुन्दर की इस प्रकार की कृपा का अनुभव करता आ रहा हूँ। मेरे न मानने पर भी उन्होंने मुझे छोड़ा नहीं।''

इस बार जब विजयकृष्ण घर गये तो उनका हृदय दुःखी था। न जाने क्यों रह रहकर श्यामसुन्दर की याद आ रही थी। अवसर देख श्यामसुन्दर ने आकर हँसते हुए कहा - '' ओ रे, तू तो मुझमें विश्वास नहीं करता न ? ''

इस बार श्यामसुन्दर की आक्षेप भरी उक्ति सुन विजयकृष्ण रो पड़े। भरे हुए कण्ठ से उन्होंने कहा - ''प्रभु ! यदि मेरे ऊपर तुम्हारी इतनी कृपा है और तुम मुझे अपनाकर रखना चाहते हो, तो अभी तक इतना चक्कर क्यों लगवाया ? क्यों सब तोड़-फोड़ कर एकदम काला पहाड़ बना दिया ?''

श्यामसुन्दर ने उत्तर दिया - ''इससे तुझे क्या ? तोड़-फोड़ की मैंने, बिगाड़ा मैंने, तो बना भी लूंगा मैं ही। तोड़कर बनाने में वस्तु और भी कितनी सुन्दर हो जाती है, पता नहीं तुझे ?'' सोना तपाया जाता है, इसलिए कि उसका मैल और विजातीय द्रव्य निकालकर उसे शुद्ध कर लिया जाय। श्यामसुन्दर ने विजयकृष्ण को चक्कर लगवाया, सब कुछ त्याग करवाकर कंगाल बनाया और ब्राह्म समाज का प्रचारक बनाया, इसलिए कि उनके ज्ञान कर्मादि के संस्कार निकल जायँ, उन्हें इस बात का अनुभव हो जाय कि भगवत् प्राप्ति न त्याग से होती है, न कर्म से, न ज्ञान से। विजयकृष्ण गोस्वामी के ज्ञान और कर्म के संस्कार अब दूर हो गये।

श्री गोस्वामीजी उस अवस्था में विभिन्न संतों के दर्शनार्थ भी जाते थे, एक बार वे सिद्ध चैतन्यदास बाबा के दर्शन करने गये थे उन्होंने स्वयं उसका विवरण इस प्रकार दिया है ''ब्राह्मसमाज में सम्मलित होने के कुछ समय पश्चात् मैं सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी के दर्शन करने नवद्वीप गया था। उस समय इस देश के सभी लोग बाबाजी को बड़ा भारी सिद्ध पुरुष मानकर उनकी श्रद्धाभक्ति किया करते थे। बाबाजी का निष्किञ्चन भाव, स्वाभाविक विनय ओर भक्ति भाव देखकर बहुत ही प्रसन्नता हुई। वे कुत्ते बिल्ली तक को भूमिष्ठ हो कर नमस्कार किया करते थे। फटी-पुरानी कथरी, नारियल की कटोरी और एक मिट्टी के करवे के सिवा बाबाजी के पास कुछ भी न था। मैंने उनके पास थोड़ी देर तक बैठे रहकर पूछा, 'बाबाजी, भक्ति कैसे होती है?' मेरा प्रश्न सुनकर बाबाजी ने कुछ उत्तर नहीं दिया; वे टकटकी लगाकर मेरी ओर देखते हुए थर-थर काँपने लगे। उनको देह भर में बार बार रोमाञ्च होने लगा। उनकी चोटी तक खड़ी हो गई। बाबाजी ने अस्फुट स्वर में एक गम्भीर हुंकार करके कहा, 'क्या पूछा

गोसाईं? तुम पूछते हो कि क्या करने से भक्ति होती है ! तुम पूछते हो कि क्या करने से भक्ति होती है !! आँय ! तुम पूछते हो कि क्या करने से भक्ति होती है !!!' इतना कहकर वे समाधिस्थ हो गये। तीन घण्टे तक बाबाजी को बाहरी चेत न था। उस समय बाबाजी के शरीर में अश्रु, कम्प और पुलक आदि अनेक प्रकार के अद्भुत भावों को देखकर मैं बिल्कुल हक्काबक्का हो गया। समाधि टूटने पर बाबाजी ने साष्टाङ्ग होकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा 'प्रभो, आशीर्वाद दीजिए जिससे निष्किञ्चन कङ्गाल हो सकूँ। जब तक ऐसा नहीं होता, भक्ति की नाम मात्र गन्ध भी नहीं होती। इस समय आप किसी भी भाव में चलें; मैं आपके मस्तक में तिलक, कण्ठ में माला साफ-साफ देख रहा हूँ। भक्ति तो आपके ही भण्डार की वस्तु है। हमारे अद्वैत के भण्डार में क्या भक्ति की कमी है?' बाबाजी की बात सुनकर मैं चला आया। तब मैंने एक बार कल्पना तक नहीं की थी कि कभी मुझे फिर तिलक और माला लेनी होगी। एक और भले आदमी ने बाबाजी से यही प्रश्न किया तो उन्होंने उत्तर दिया था 'दो पैसे में भक्ति मिलती है।' सुनकर उस भले आदमी ने कहा 'यह क्या बाबाजी, दो पैसे में भक्ति मिलती है ! यह कैसी भक्ति है, क्या आपने मेरा उपहास किया है?' बाबाजी ने कहा- 'हरे कृष्ण ! उपहास नहीं किया, ठीक ही कहा है। दो पैसे खर्च करके बटतला की छपी एक नरोत्तम दास की प्रार्थना' लाकर कुछ दिनों तक पढ़िए न। उसको पढ़ने से सब समझ में आ जायेगा।

उन्हीं दिनों शांतिपुर के वैष्णव श्री हरिमोहनजी के साथ विजयकृष्ण एक दिन 'कालना' के सिद्ध वैष्णव श्री भगवानदासजी बाबाजी के पास पहुंचे। उस समय इनकी वेशभूषा एक ब्राह्म प्रचारक युवक जैसी थी। विजयकृष्ण का परिचय मिलते ही उन्हें आसन प्रदान करते हुए बाबाजी ने साष्टांग प्रणाम किया। विजयकृष्ण ने बाबाजी से पीने के लिए पानी मांगा। बाबाजी ने अपने निजी व्यवहार के कमण्डलु में पानी पीने को दिया। विजयकृष्ण ने कहा, ''बाबाजी! **मैं सभी जातियों** के लोगों का अन्न ग्रहण करता हूँ। मैं ब्राह्म हूँ **और जात-पांत नहीं मानता**। आप किसी दूसरे लोटे

में मुझे पानी दीजिये।'' श्री भगवानदास बाबाजी ने कहा, ''प्रभु! जाति-पांति और कुल का अभिमान रहते हुए क्या कभी भक्ति प्राप्त हो सकती है? ब्रह्म ज्ञान ही सब धर्मों का मूल है। आप निःसंकोच होकर पानी पीजिये।'' पानी पीने के बाद कमण्डलु रखते ही बाबाजी ने कमण्डलु को उठा कर मस्तक पर लगाया और अवशेष जल पी लिया। वहां पर बैठे हुए एक व्यक्ति ने बाबाजी को पानी पीने से मना करते हुए कहा, ''क्या आपको मालुम है कि इन्होंने यज्ञोपवीत भी त्याग दिया है?'' बाबाजी ने कहा - ''उससे क्या होगा? मेरे अद्वैत प्रभु ने भी उपवीत धारण नहीं किया था। देखो! मेरे प्रभु संतान ब्राह्मसमाज में जाकर, वहां भी आचार्य का कार्य ही कर रहे हैं।'' उस व्यक्ति ने बाबाजी की बात सुनकर व्यंग्यपूर्वक कहा, ''हाँ, देखिए भला! ये कैसे जूता, कमीज आदि पहने हुए आचार्य हैं!'' यह सुनते ही बाबाजी रोते हुए कहने लगे, 'प्रभु को सुन्दर वेश में सजाना, यह तो हमारा कार्य है। हम लोगों का दुर्भाग्य है कि हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया। प्रभु ने स्वयं आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर उसे धारण किया है। इसे देखकर आनंद मनाने का सौभाग्य भी हमें अप्राप्त है।'' बाबाजी की बातें सुनकर वह व्यक्ति लज्जित हो गया। बाबाजी के आश्रम में 'नाम ब्रह्म' के पट की पूजा होती थी। बाबाजी की असाधारण भक्ति से आश्रम के एक कुण्ड से गंगाजी प्रगट हुई थी। इसीलिए उन्हें सिद्ध वैष्णव बाबाजी मानकर लोग उन पर असीम श्रद्धा रखते थे। इस प्रकार, 'चैतन्य चरितामृत' के पाठ से और इन वैष्णव महात्माओं की दीनता, अभिमानशून्यता एवं भक्तिभाव को देख कर विजयकृष्ण बहुत प्रभावित हुए।

ब्राह्मसमाज में आपसी मतभेद उभरने से विजयकृष्ण की आत्म जिज्ञासा प्रबल हो गयी। ''सत्य क्या है? उसका स्वरूप क्या है? उसे कैसे प्राप्त किया जाये?'' -इत्यादि नाना विचार उनके मन में आने लगे। कुछ दिनों के लिए एकांत के उद्देश्य से विजयकृष्ण बागआंचड़ा ग्राम गये। यहां के निर्जन वातावरण में वे प्रार्थना करने लगे, **''प्रभु! अब मेरा क्या कर्तव्य है? मुझे बतलाओ!''** अकस्मात् उन्होंने दिव्य-वाणी सुनी, **''बंधन के भीतर रहने से जीवन में 'सत्य' की प्राप्ति नहीं होगी।''** कुछ दिनों के पश्चात् उन्होंने पुनः सुना - **''यदि धर्म लाभ करना चाहते हो तो बंधन में और प्रवेश मत करो।''**

विजयकृष्ण को प्रतीत हुआ कि इस दिव्य वाणी का निहितार्थ है कि हिन्दू समाज संकीर्णता से बंधा है। कुछ समय पश्चात् उन्हें लगा कि ब्राह्मसमाज भी दलबंदी, शुष्कता, अंधविश्वास, व्यक्ति विशेष की पूजा, स्वार्थपरता आदि संकीर्ण बंधनों से जकड़ा हुआ है। यहां भी स्वाधीन रूप से धर्म की साधना और सत्य का अनुसरण सहज संभव नहीं है। इस कारण, 'सत्य' की प्राप्ति के लिए उन्होंने दल या समाज के बंधन को त्याग देना उचित समझा। अपने मन के विचारों को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया, ''**अपने जीवन की परीक्षा करके मैंने समझा है कि हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सभी सम्प्रदायों का लक्ष्य उस एक परब्रह्म की पूजा करना है। प्रेम, भक्ति, पवित्रता जहां भी हैं वहीं धर्म भी है। ''धर्म' ही जीवन का उद्देश्य है, दलबंदी नहीं। आत्मविचार पूर्वक देखना होगा कि अपने हृदय में धर्म लाभ कितना हुआ है ?''**

एक दिन कलकत्ता में 'मछुआ बाजार स्ट्रीट' से जाते हुए एक महात्मा को देखते ही विजयकृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया। महात्माजी उन्हें आशीर्वाद देकर एक निर्जन स्थान में ले गये एवं विभिन्न प्रकार के उपदेश देने लगे। विजयकृष्ण ने उनसे ब्राह्मसमाज में उपासना के समय एक बार आने के लिए अनुरोध किया। महात्माजी एक दिन उपासना के समय ब्राह्मसमाज में पहुँचे। उस समय विजयकृष्ण वेदी पर बैठे उपासना का संचालन कर रहे थे। उपासना की पूर्णता के बाद उन्होंने अभिवादनपूर्वक महात्माजी से पूछा, ''यहां की उपासना कैसी लगी ?'' महात्माजी ने कहा, ''यहां तो सभी शास्त्रों और उपनिषद आदि की कथा ही तुमने कही है। मुझे सुनकर बहुत अच्छा लगा।'' विजयकृष्ण ने पूछा, ''ब्रह्मज्ञान तथा शास्त्रों की आलोचना तो मैं करता हूँ, पर मेरे मन की अशांति तथा अभाव क्यों दूर नहीं हो रहे हैं ? किस उपाय से मेरे मन को स्थायी शांति प्राप्त होगी ?'' महात्माजी ने कहा, ''अपने गुरु से सब कहो।'' विजयकृष्ण बोले, ''मेरा कोई गुरु नहीं है। ब्राह्मसमाज गुरु की अवधारणा नहीं मानता। गुरु से दीक्षा लेना आवश्यक है, यह भी मैं स्वीकार नहीं करता।''

महात्माजी ने विस्मयपूर्वक कहा, ''**इसीलिए सब गड़बड़ हो गया है। तुम्हारे नहीं मानने से क्या होगा ? गुरुकरण आवश्यक है। तुम**

शास्त्रज्ञ होते हुए भी कैसी बातें बोलते हो? राम, कृष्ण आदि अवतारों ने भी गुरु चुना था। तुम लोगों ने मकान तो अच्छा बनाया है, पर उसकी नींव नहीं होने से सब गड़बड़ हो गया है।'' गुरु की आवश्यकता पर महात्माजी का उपदेश सुन विजयकृष्ण ने व्याकुल होकर दीक्षा देने की प्रार्थना की। इस पर उन्होंने कहा, ''तुम्हारी दीक्षा मेरे पास नहीं होगी। जो तुम्हारे सद्गुरु हैं; वे ही तुम्हें दीक्षा देंगे। वे भी समय आने पर तुम्हें दीक्षा देंगे।'' महात्माजी के उपदेश सुनकर विजयकृष्ण के अधीर अशांत मन को बहुत सांत्वना मिली। इसी समय, उनके ब्रह्मचारी मित्र ने उन्हें बतलाया कि गयाजी के 'बराबर' की पहाड़ी गुफाओं में कुछ सिद्ध महात्मा रहते हैं। अपने मित्र के साथ, एक दिन वे उन महात्माओं का दर्शन करने के लिये निकले पड़े। उस समय विजयकृष्ण के मन में प्रश्न था, 'क्या, विभिन्न सम्प्रदायों की साधनाओं द्वारा एक ही स्थान पर पहुंचा जा सकता है?' 'बराबर' पहाड़ में पहले बौद्ध साधुजन रहा करते थे। बाद में वहां हिन्दू साधू-सन्त तपस्या के लिये रहने लगे थे। जब विजयकृष्ण पहाड़ के नीचे पहुंचे, उन्होंने वहां एक अघोरपंथी भैरव को घूमते हुए देखा। भैरव का शरीर विकराल था। उसके शरीर पर काला रंग एवं मुंह में लाल सिन्दूर लगा होने के कारण वह अति भयावह लग रहा था। विजयकृष्ण और ब्रह्मचारी को देखते ही वह भैरव गालियां देते हुए, उन्हें भगाने के लिए उन पर पत्थर फेंकने लगा। एक पत्थर विजयकृष्ण के चरणों पर भी लगा तथापि विजयकृष्ण हाथ जोड़ते हुए आगे बढ़ कर भैरव के निकट पहुंचे एवं भैरव को प्रणाम कर सिद्ध महापुरुषों के दर्शन की अपनी इच्छा व्यक्त की। विजयकृष्ण की बातों को सुनकर भैरव ने कहा, ''लोग, महात्माओं के भजन में विघ्न उत्त्पन्न करने सर्वदा आते रहते हैं, इस कारण उन्हें रोकने के लिये मैं वीभत्स वेश में रहता हूँ और पत्थर मारकर उन्हें डराता हूँ। तुम्हें देखकर अच्छा लगा। चलो पहले थोड़ा 'महाप्रसाद' ग्रहण कर लो फिर महापुरुषों के निकट चलेंगे।'' भैरव महाप्रसाद ले आया, अघोरी भैरव का महाप्रसाद नरमाँस था। इसे देखकर विजयकृष्ण ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा, ''हम लोग शाकाहारी भोजन लेते हैं। आप हमें क्षमा करिये।'' भैरव किंचित् असंतोष व्यक्त कर, महापुरुषों के दर्शन कराने, इन्हें लेकर

गुफाओं में गया। वहां जाकर विजयकृष्ण ने देखा कि चार महात्मा समधिस्थ होकर बैठे हुए हैं। कुछ देर बाद समाधि टूटने पर भैरव ने इनका परिचय देते हुए कहा, ''ये लोग, आपके दर्शन करने आए हैं।'' एक महात्माजी ने भैरव से पूछा, ''इन लोगों की सेवा हुई है?'' भैरव ने कहा, ''इन्हें महाप्रसाद नरमांस दिया था पर इन लोगों ने नहीं लिया। इन लोगों ने केवल थोड़ा सा फल-मूल ग्रहण किया है।'' भैरव की बातों को सुनकर महात्माजी बोले, ''तुमने अन्याय किया है। तुम्हारे धर्म में नरमांस भोजन निषिद्ध नहीं है। इस कारण क्या सभी को इसी प्रकार खाना पड़ेगा? ऐसा करना अतिथि का अपमान करना है।'' विजयकृष्ण ने पूछा, ''क्या ऐसा भोजन करना धर्म का अंग है?'' महात्माजी बोले, **''ऐसा नहीं। धर्म एक है, लक्ष्य एक है। पर लोगों की रूचि के अनुसार नाना मत और नाना पंथ हैं जो जिस पथ पर चलता है, उसे उसके अनुसार आहार-विहार करना पड़ेगा। किसी पथ में अन्नाहार और सुस्वादु भोजन मिलता है तो किसी पंथ में केवल मांसादि आहार। लक्ष्यस्थल पर पहुंचने पर भेद ज्ञान नहीं रहता। देखो हम चारों महात्मा पहले सम्पूर्ण भिन्न पंथों से चलते थे। ये रामायत, नानकपंथी, कापालिक, और मैं अघोरी हूँ। पहले हम लोगों में मेल नहीं था, विरोध था, पर तपस्या करते हुए हम चारों अब एक ही स्थान पर पहुंच गये हैं। आपसी मतभेद सब दूर हो गया है। हम चारों ईश्वर के एक ही रूप और रस का आस्वादन कर रहे हैं। लक्ष्य स्थल पर जब तक न पहुंचा जाये, तब तक मतभेद, दलबंदी और संप्रदाय रहता है। इस कारण मतभेदों के साथ आहार विहार आदि सभी बातों में भिन्नताएं भी रहती हैं।''**

विजयकृष्ण के मन में जो प्रश्न था, उसका उत्तर पाकर उन्हें असीम आनंद मिला। महापुरुषों से विदा लेकर विजयकृष्ण आकाशगंगा लौट आए। इन महात्माओं में गोरखपुर के महंत योगीराज बाबा गंभीरनाथजी भी थे।

श्री गोस्वामीजी ने स्वयं उस समय की अपनी अवस्था इस प्रकार वर्णित की है ''महात्माओं से मैंने बार-बार यह सुना था कि 'तुम्हारे तो गुरु निर्दिष्ट हैं, समय आने पर उनकी प्राप्ति होगी'; इससे

उनको ढूँढ़ने के लिए अस्थिर होकर मैं पागल की तरह दौड़ धूप करने लगा। उसी समय मैं हिमालय पर पहुँचा और बहुत ही दुर्गम स्थान में लामा गुरुओं के मठों में चक्कर लगाने लगा। कई बौद्ध योगियों के मुँह से सुना कि झरना के ऊपर घने जङ्गल के भीतर एक गुफा के समीप, इस पहाड़ की ऊँची चोटी पर, एक बङ्गाली महापुरुष बहुत समय से रहते हैं। वे प्राय: दिन रात समाधि लगाये रहते हैं। समय समय पर आवश्यकतानुसार शिष्य लोग समीप की गुफा से निकलकर जाते और उन्हें सचेत करा देते हैं। महापुरुष की खबर पाकर मैं उनके दर्शन करने के लिए बहुत ही बेचैन हो गया। हिमालय पर घने जङ्गल के भीतर से, बिना पहचाने मार्ग पर, मैं महापुरुष को ढूँढने चल पड़ा। दो दिन और दो रातों तक न तो मैंने कुछ खाया और न मैं सोया ही। तीसरे दिन भूख प्यास के मारे शरीर इतना बेकाबू हो गया कि एक पेड़ के नीचे मैं बिल्कुल बेहोश होकर गिर पड़ा। भगवान् तो बड़े ही दयालु हैं। एक नङ्ग-धड़ङ्ग ऊँचे-पूरे पर्वतवासी वृद्ध सन्यासी ने आकर मुझे स्वस्थ किया। फिर मेरे हाथ में कई छोटे-छोटे बीज देकर कहा 'बच्चा, इन दानों को पा लो, भूख प्यास दूर हो जायगी; जब तक पर्वत पर रहो, दो एक दाना पा लिया करो। कभी भूख प्यास नहीं लगेगी।' उन्होंने मुझे सरसों बराबर कई छोटे-छोटे बीज दिये। दो-एक दाने खाते ही मेरी भूख-प्यास और राह चलने की थकावट सब दूर हो गई। उन बीजों को बहुत दिनों तक मैं अपने साथ लिये रहा। मैं जब तक पहाड़ पर रहा, आवश्यकता पड़ने पर दो-एक दाने खा लिया करता था। पर्वतवासी सन्यासी से मैंने उन महापुरुष की चर्चा की तो उन्होंने कहा 'हाँ, एक बङ्गाली बड़े भारी महात्मा पर्वत के ऊपर रहते हैं। कभी कभी नीचे आकर झरने में स्नान करके बिजली की तरह फुर्ती से तुरन्त चले जाते हैं। लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं, उनमें से पानी टपकता जाता है। ऐसे चले जाओ, मिल जायँगे। अब वे जङ्गल के भीतर चले गये। मैं उसी रास्ते से चलता-चलता महापुरुष के समीप पहुँच गया। उनकी सेवा में मुझे दो शिष्य तत्पर मिले। वे हर दम महापुरुष के साथ रहते थे। महापुरुष खुली जगह में पत्थर के ऊपर एक भाव से एक ही आसन में समाधि लगाये बैठे रहते थे। रात को बर्फ में महापुरुष का सारा शरीर ढक जाता था। सबेरे बर्फ के ढेर के सिवा

और कुछ दिखाई न देता था। फिर दिन चढ़ने पर बर्फ गलने लगती और धीरे-धीरे महापुरुष की देह दिखाई देने लगती। उस समय शिष्य लोग महापुरुष के सामने आग जलाकर गर्मी पहुँचाया करते और अवसर देखकर समय समय पर उनके मुँह में गरमागरम चाय डाल दिया करते । कोई ग्यारह बजे महापुरुष को बाह्यज्ञान होता था।

शिष्य - ''तो क्या हिमालय पर साधु लोग चाय पीते हैं? उन्हें चाय मिलती कहाँ से है?''

श्री गोस्वामीजी :- हिमालय पर जो बौद्ध योगी महात्मा हैं उनकी धूनी पर सदा चाय के लिए पानी गरम होता रहता है। दस-दस, पन्द्रह पन्द्रह मिनिट के अन्तर पर वे थोड़ी-थोड़ी चाय पीते हैं। वह चाय हम लोगों की चाय से भिन्न होती है। उस चाय के बड़े-बड़े पौधे होते हैं। साधु लोग उनके पत्तों को लाकर सुखाकर रख लेते हैं। पत्ते भी खासे बड़े-बड़े होते हैं।

शिष्य - ''तो वे चाय में दूध नहीं मिलाते?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, बहुत बढ़िया दूध मिलाते हैं। ऐन में दूध का भार बढ़ने पर पहाड़ी गौएँ एक एक निर्दिष्ट स्थान पर जाकर दूध गिरा आती हैं। वह दूध बरफ मय पत्थर पर गिरते ही जम जाता है; साधु लोग उस दूध को चिमटे से खोद कर उठा लाते हैं। गरम पानी में डालते ही वह बढ़िया दूध बन जाता है। वे चाय में मीठा नहीं डालते। आवश्यकता होने पर उन्हें वह भी सहज में मिल जाता है। गन्ने की तरह मीठे रसवाली लताएँ और पत्ते पहाड़ पर बहुत होते हैं। साधुओं को उनका पता रहता है।

शिष्य :- ''तो क्या उन महापुरुष ने आपसे कुछ बातचीत नहीं की?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, खूब बातचीत की। अपना पूरा परिचय दिया। थोड़ी अवस्था में, जनेऊ होने के बाद ही, एक संन्यासी का साथ पाकर वे घर छोड़कर चल दिये। उन्होंने बहुत उपदेश देकर अन्त में यह कहा, **'वीर्यधारण और सत्य की रक्षा ये दो कार्य ठीक-ठीक होते ही क्रम से योगिजनदुर्लभ 'ब्रह्मपद' प्राप्त होता है।**

वीर्यधारण और सत्य की रक्षा हुए बिना कुछ नहीं हो सकता। वीर्यधारण जिस प्रकार एक ओर शरीर की रक्षा का सर्वप्रधान कारण है उसी प्रकार आत्मरक्षा के लिए सत्य है। असत्य चिन्तन और असत्य व्यवहार योगसाधन के लिए विषम अनिष्टकर है। मिथ्या बोलना जिस प्रकार महापाप है उसी प्रकार मिथ्या कल्पना करना भी है। जिन्हें योगमार्ग पर चलना है उनको सभी कार्यों में सत्य का संयोग रखना चाहिए। नाटक और उपन्यास आदि तो बिल्कुल असत्य और मिथ्या हैं, उनको पढ़ने और सुनने का योगशास्त्र में निषेध है। असत्य चिन्तन को महापाप समझना। वह मस्तिष्क को नष्ट कर देता है। भगवान् ही सत्य हैं; भगवत्चिन्तन करने से मस्तिष्क की शक्ति सभी ओर इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इन महापुरुषों ने भी गोस्वामीजी को सान्त्वना देकर सद्गुरु की प्रतीक्षा धैर्यपूर्वक करने का उपदेश दिया।

ब्राह्मबन्धु गोविन्द बाबू ने एक दिन गोस्वामीजी को आकशगंगा पहाड़ के प्रसिद्ध संत रघुवरदास के संबंध में बताया। बाबाजी रामायत सम्प्रदाय के थे। उन्होंने अपनी कठोर तपस्या के द्वारा 'महावीरजी' की कृपा प्राप्त की थी। आकाशगंगा पहाड़ में पानी की कमी थी। रघुवरदासजी की प्रार्थना से महावीरजी ने उन्हें एक स्थान पर डंडे से ठोकने पर पानी के झरने की प्राप्ति का निर्देश दिया। 'महावीरजी' के निर्देश के अनुसार पत्थर पर जरा सा ठोकने पर झरने का पानी अपने आप निकल पड़ा। जंगल के शेर, भालू, सर्प आदि रघुवरदासजी के आसपास विचरण करते थे, किन्तु हिंसाशून्य बाबाजी की तपस्या के प्रभाव से किसी का कोई भी अनिष्ट नहीं होता था, हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसा वृत्ति भूल जाते थे। विजयकृष्ण अपने मित्र शशिभूषण को साथ लेकर एक दिन आकाशगंगा पहाड़ में बाबाजी के दर्शन हेतु पहुंचे। बाबाजी को देखते ही विजयकृष्ण रोते हुए उनके चरणों में गिर पड़े और कहने लगे, ''मैं अज्ञानी हूँ। आप मुझे शिक्षा दीजिये। भक्ति प्राप्त करने का रास्ता बतलाइये।'' बाबाजी विजयकृष्ण की इस प्रकार तीव्र व्याकुलता को देखकर अत्यन्त हर्षित हो कहने लगे, ''शांत हो जाओ। स्थिर हो जाओ!! धर्म के लिये इस प्रकार व्याकुलता मैंने किसी में नहीं देखी। तुम्हें यदि धर्म की प्राप्ति न हो तो

फिर किसे होगी ? तुम अवश्य धर्म लाभ करोगे।'' इस प्रकार की सांत्वना प्रदान कर, बाबाजी ने उन्हें पहाड़ में रहकर तपस्या करने को कहा। बाबाजी बहुत प्रेमी व्यक्ति थे। साधु, अतिथि आदि सभी की वे बड़ी श्रद्धा एवं प्रेम से सेवा करते थे। विजयकृष्ण भी बाबाजी के निर्देश से उस पहाड़ में रहने लगे। रघुवरदासजी ने अपनी कुटिया विजयकृष्ण को रहने के लिये प्रदान की। उस समय विजयकृष्ण ने मन की तीव्र वैराग्य भावना के कारण गेरुआ वस्त्र भी धारण कर लिया। इसी पहाड़ पर रहते एक ब्रह्मचारीजी से विजयकृष्ण की मित्रता हो गई।

एक दिन ब्रह्मचारीजी के साथ विजयकृष्ण बैठे हुए थे। उसी समय, कुछ चरवाहों ने आकर उन्हें कहा कि पहाड़ की चोटी पर एक तेजस्वी महात्माजी कहीं से आये हुए हैं। महात्माजी के आगमन का समाचार प्राप्त होने पर कुछ फल इत्यादि साथ लेकर विजयकृष्ण उन ब्रह्मचारीजी के साथ पहाड़ की चोटी पर पहुंचे। वहां 'दिव्य कान्ति' युक्त एक प्राचीन महात्माजी को बैठे देखकर, विजयकृष्ण बहुत आकर्षित हुए। उन्हें प्रणाम करने के कुछ देर पश्चात् महात्माजी के निर्देश से, उनको नीचे चले आना पड़ा।

रात भर विजयकृष्ण को निद्रा नहीं आई। वे उन महात्माजी की सौम्यमूर्ति का चिन्तन करते रहे। सुबह होते ही, वे अकेले व्याकुल भाव से उन महात्माजी के पास पहुंचे। महात्माजी ने विजयकृष्ण को देखते ही ''आओ बेटा''! कहकर पुकारा। महात्माजी को देखते ही, विजयकृष्ण रोते हुए उनके चरणों में गिर पड़े। महात्माजी ने आदरपूर्वक अपनी गोद में विजयकृष्ण को उठा लिया और उन्हें 'दीक्षा' प्रदान की। दीक्षा मंत्र प्राप्त होते ही विजयकृष्ण को ऐसा लगा, मानों कोई विशेष शक्ति शरीर में प्रवेश कर रही है। महात्माजी ने उन्हें दीक्षामंत्र प्रदान करने के पश्चात् साधना की पद्धति समझा दी। 'दीक्षा' मिल जाने के बाद जब विजयकृष्ण महात्माजी के चरणों में प्रणाम करने हेतु झुके, उसी समय, अचेत होकर, वे वहीं गिर पड़े।

प्रातः विजयकृष्ण को वहां न पाकर, ब्रह्मचारीजी, रघुवरदासजी के साथ उन्हें ढूंढ़ते हुए पहाड़ के ऊपर आये और देखा कि विजयकृष्ण समाधिस्थ होकर एक पत्थर पर पड़े हुए हैं। उनके शरीर से उस समय

एक विशेष प्रकार की ज्योति को निकलते देख रघुवरदासजी विस्मित हो गये। विजयकृष्ण को ब्रह्मचारीजी की सहायता से किसी प्रकार उठाकर रघुवरदासजी उन्हें आश्रम में ले आए। यहां बहुत चेष्टा करने पर भी, उनमें चेतना का संचार नहीं हो पाया। रघुवरदासजी ने उस समय विजयकृष्ण के शरीर की रक्षा हेतु एक गुफा में उनके शरीर को रखा। इसी अवधि में एक दिन एक सर्प विजयकृष्ण के शरीर पर चढ़ गया। किन्तु उसने (सर्प) कुछ नहीं किया। रघुवरदासजी अत्यन्त स्नेही महात्मा थे। इस समय, सर्वदा उन्होंने सावधानीपूर्वक विजयकृष्ण के देह की देखभाल की। ग्यारह दिनों के पश्चात् विजयकृष्ण को बाह्यज्ञान हुआ। चैतन्य होते ही उन्होंने पूछा, ''गुरुदेव कहां हैं? मुझे बताओ!'' रघुवरदासजी ने पिता की भांति, इस समय विजयकृष्ण को स्नान, आहार आदि करवा कर शांत रखने की चेष्टा की। पर विजयकृष्ण का मन गुरुजी के दर्शन के लिये व्याकुल हो उठा। वहां विभिन्न पर्वतों में, वे अपने गुरुजी की खोज में दो चार दिनों तक भटकते रहे किन्तु गुरुजी का दर्शन कहीं भी नहीं हुआ। गुरु के विछोह में विजयकृष्ण ने एक दिन ब्रह्मयोनि पर्वत की चोटी से कूद कर शरीर त्याग देने का संकल्प कर लिया। पर्वत की चोटी से जब वे कूदने ही वाले थे, उसी समय अचानक गुरुजी प्रकट हो गये और उनका हाथ पकड़ लिया। गुरुजी ने सांत्वना प्रदान करते हुए कहा, ''घबराओ मत, समय में सब मिल जायेगा। अभी भजन करते रहो।'' विजयकृष्ण ने अपने गुरुजी के चरणों में रोते हुए निवेदन किया, '' मुझे भी आप अपने साथ ले चलिये। आपको छोड़कर मैं नहीं रह सकता। संसार में मैं अब नहीं जाऊंगा। आपकी सेवा करते हुए आपके साथ ही रहूंगा।''

गुरुजी ने विजयकृष्ण की बातों को सुनकर हंसते हुए कहा कि वे 'मानस सरोवर' में रहते हैं। यह सरोवर कैलाश पर्वत के शिखरों पर स्थित है। साधारणत: लोग जहां जाते हैं वह स्थान, तिब्बत में स्थित 'मानसरोवर' है। दोनों स्थानों में बहुत अन्तर है। 'मानस सरोवर' अत्यन्त ही दुर्गम स्थान है। यहां, शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वों को सहन कर पाने में सक्षम योगीजन ही केवल जा सकते हैं। विजयकृष्ण ने उनका परिचय पूछा। गुरुजी ने स्वयं का परिचय देते हुए बताया कि उनका नाम

स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंस है। पंजाब के ब्राह्मण वंश में उन्होंने जन्म लिया है। सिपाही विद्रोह के समय सन्यास लेकर उन्होंने नानक पन्थ में रहकर साधना की। बाद में वैदिक साधना पद्धति से उन्होंने साधना की है। विजयकृष्ण ने उनसे पूछा, ''आप मानस सरोवर से किस प्रकार यहां आ गये ?'' गुरुजी ने कहा, **''मैं तुम्हारी व्याकुलता को देखकर तुम्हें दीक्षा देने के लिये मानस सरोवर से आया था। योगी लोग शरीर के पंचभूत को पंचभूत में लय करके केवल चैतन्य शक्ति के सहारे जहां चाहे वहां भ्रमण कर सकते हैं। अपनी इच्छाशक्ति के सहारे इन पंचभूतों का आकर्षण कर वे फिर से स्थूल शरीर धारण कर सकते हैं। मेरी स्थूल देह इसी प्रकार की है।'' अन्त में उन्होंने विजयकृष्ण से कहा, '' मेरे साथ तुम्हारा रहना अभी नहीं होगा। मैंने तुममें जो शक्ति संचार किया है उसे त्रितापग्रस्त नर नारियों में वितरण करना पड़ेगा। तुम अद्वैतवंश की आचार्य सन्तान हो, यह कार्य तुम्हें ही करना पड़ेगा। धर्म की दुर्दशा को दूर करने के लिए केवल प्रवचन देने से कुछ नहीं होगा। शक्ति संचार करके उन्हें दीक्षा प्रदान करनी पड़ेगी, तुम साधन भजन करते रहो। जब चाहोगे मुझे देख सकोगे, समय होने पर तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।''** इस प्रकार सांत्वना प्रदान कर उनके गुरुजी ''परमहंसजी'' चले गये।

इस प्रकार, सन् 1883 ई. के अगस्त महीने में, विजयकृष्ण, दीक्षा प्राप्तकर धन्य हुए। उल्लेखनीय है कि इसी गया तीर्थ में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी श्री ईश्वरपुरीजी महाराज से दीक्षा प्राप्त की थी। इसके पश्चात्, विजयकृष्ण आकाशगंगा पहाड़ में रहकर कठिन तपस्या करते रहे। कुछ दिनों के पश्चात् गुरुजी ने इन्हें दर्शन देकर संन्यास लेने का निर्देश दिया, उन्होंने कहा, ''तुम्हें सन्यास लेना पड़ेगा। वाराणासी में स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती नाम के एक संन्यासी हैं। तुम उनके निकट जाओ, वे तुम्हें सन्यास देंगे। उनके निकट, हिन्दूधर्म का त्यागकर तुम्हारा ब्राह्मसमाज में जाना तथा उपवीत त्यागना आदि सब कहना। वे जैसा निर्देश करेंगे वैसा ही करना, उससे तुम्हारा कल्याण होगा।'' अपने गुरुजी के निर्देश से उन्होंने वाराणासी जाकर संन्यास लेने का निश्चय किया।

गया से दीक्षा प्राप्ति के लगभग 1-1॥ महीने बाद विजयकृष्ण वाराणासी आए। वाराणसी में स्वामी हरिहरानंद सरस्वतीजी के निकट

विजयकृष्ण ने अपने गुरुजी के निर्देश तथा ब्राह्म धर्म में प्रवेश करने, उपवीत त्यागने आदि सभी बातों का विवरण दिया। स्वामीजी ने कहा, ''तुम्हें सन्यास देने हेतु ही मैं वाराणसी आया हूँ। यद्यपि तुम्हारा अंत:करण पवित्र है तथा तुम्हारे लिए कुछ भी प्रायश्चित या अनुष्ठान करना आवश्यक नहीं है, फिर भी शास्त्र विधि का उल्लंघन करना उचित नहीं हैं । तुम शास्त्र विधि के अनुसार फिर से प्रायश्चित कर उपवीत धारण करो। तीन दिन ब्रह्मचर्य के नियमों का तुम्हारे द्वारा पालन किये जाने के पश्चात् मैं तुम्हें संन्यास प्रदान करूंगा।''

स्वामीजी के निर्देशानुसार विजयकृष्ण ने प्रायश्चित कर पुन: उपवीत धारण किया। स्वामीजी ने शास्त्र विधि के अनुसार 'विरजा होम' कराकर विजयकृष्ण को सन् 1883 ई. में संन्यास प्रदान किया। **सन्यास प्रदान करने के पश्चात् उन्होंने विजयकृष्ण का नाम स्वामी अच्युतानंद सरस्वती रखा।** पर वे अपने पूर्वाश्रम के नाम **'विजयकृष्ण गोस्वामी'** इसी नाम से अधिक प्रसद्धि हुए। लोग उन्हें 'गोस्वामीजी' (गोसांईंजी) अथवा 'गोस्वामी प्रभु' कहकर अपनी श्रद्धा प्रकट करते थे।

सन्यास के पश्चात् गोस्वामीजी का विचार था कि पूर्वाश्रम से सभी प्रकार के संबंध विच्छेद कर, परिव्राजक की भांति भ्रमण करेंगे, पर गुरुजी ने उन्हें अपने परिवार के लोगों को साथ रखने तथा ब्राह्मसमाज में और कुछ दिनों तक रहने का निर्देश दिया। उन्होंने कहा, **''समय आने पर सर्प-निर्मोक (केंचुली) की तरह अपने आप सब अलग हो जायेगा। तुम्हारा कुछ कार्य है। अपनी जिद्द के वश में कर्म का त्याग करने से उपकार की बजाय हानि अधिक होगी।''**

संन्यास के बाद उन्होंने फिर से गयाजी आकर कठोर तपस्या शुरू की। उस समय उनके गुरु 'परमहंसजी' आवश्यकतानुसार प्रकट होकर आवश्यक निर्देश भी दिया करते थे। एक दिन उन्होंने 'परमहंसजी' से पूछा, ''शास्त्रों में जो अष्टसिद्धियों का उल्लेख है, क्या वह सत्य है? किसी मनुष्य में क्या इस प्रकार की शक्ति आ सकती है?'' परमहंसजी ने कहा, ''शास्त्रों में जो कुछ भी है, सब सत्य है। तपस्या द्वारा इस प्रकार की शक्ति साधकों को प्राप्त होती है। यदि तुम इन्हें प्रत्यक्ष देखना चाहो, तो मेरे साथ आओ।'' ऐसा कहकर परमहंसजी ने गोस्वामीजी को

एक निर्जन स्थान पर ले जाकर अष्टसिद्धियां दिखाई। अंत में एक मृत देह में परमहंसजी ने प्रवेश कर हंसते हुए पूछा, ''अब विश्वास हुआ या नहीं?'' अब तक गोस्वामीजी विस्मित होकर अष्टसिद्धियों का अवलोकन कर रहे थे, अब परमहंसजी की बातों को सुनकर उन्होंने सविनय कहा, ''आपने जिस प्रकार दिखलाया, उसके बाद क्या अविश्वास रह सकता है?'' उन्होंने गोस्वामीजी से कहा, ''तपस्या करो, ये सब सिद्धियां अपने आप आ जायेंगी।''

कलकत्ता में, गोस्वामजी का यह परिवर्तन देखकर ब्राह्मसमाज के लोगों ने आलोचनाएं शुरु कर दीं। एक दिन गोस्वामीजी महर्षि देवेन्द्रनाथ से भेंट करने गये। उन्हें देखकर महर्षि ने कहा, ''गोसांई! तुम्हें मैं एक नए रूप में देख रहा हूँ। यह देव-दुर्लभ वस्तु तुमने कहां से प्राप्त की?'' गोस्वामीजी ने परमहंसजी से दीक्षा प्राप्ति की सब बातें उन्हें बताई। महर्षि ने प्रसन्न होकर कहा, ''जो अमूल्य वस्तु तुमने प्राप्त की है, उससे तुम धन्य हो जाओगे। इसे कभी मत छोड़ना। ब्राह्मसमाज में अब तुम्हारा रहना कठिन होगा। आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मसमाज को त्याग देना, पर इस अनमोल वस्तु की मर्यादा रखना। इसे कभी मत त्यागना।

श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के व्यक्तित्व का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह रहा कि उनमें संकीर्णता का पूर्णतया अभाव रहा एवं वे आरंभ से ही विभिन्न मत एवं पंथ के आचार्यो एवं सन्तों के दर्शन जब भी संभव होता था, करते थे। भगवत् कृपा से अनेक सिद्ध पुरुषों के सम्पर्क में श्री गोस्वामीजी आये।

श्री गोस्वामीजी की ब्राह्मधर्म के प्रचारक की अवस्था में, बहुत समय पहले, एक बार हार्ट डिजीज (हृदय रोग) बहुत बढ़ गई थी। दर्द होते ही वे बेहोश हो जाते थे। एक मिनिट पहले तक समझ न पाते थे कि कब, कहाँ, किस दिशा में गिर पड़ेंगे? इस आशङ्का से उनकी देह की रक्षा के लिए एक दरबान रक्खा गया था। कहीं जाने न पाते थे, इससे उनको बहुत बुरा लगता था। ऐसा लगता कि जब कुछ काम काज ही नहीं कर पाता तब जीते रहने से लाभ ही क्या? वे उन दिनों कार्नवालिस स्ट्रीट के एक घर में रहते थे। रात के पिछले पहर उन्होंने स्वप्न देखा, जगन्नाथ घाट पर कई साधु आकर टिके हुए हैं।

उनमें से एक जटाधारी साधु भस्म रमाये, कम्बल ओढे, धूनी जलाये हुए बैठै हैं। उन्होंने हाथ के इशारे से गोस्वामीजी को बुलाया और कहा, 'बच्चा, यहाँ आओ दवा ले लो, बीमारी छूट जायगी।' स्वप्न देखकर वे जाग पड़े, बहुत बेचैनी हुई; सोचा 'एक बार गङ्गा किनारे जाकर देख क्यों न लूँ' और वे बाहर आ गये और चल पड़े। गङ्गा-किनारे जगन्नाथ घाट पर जाकर देखा कि गङ्गासागर के यात्री बहुत से साधु वहाँ पर बैठै हुए हैं।

स्वप्न में उन्होने जिस स्थान पर साधु को देखा था वहीं जाने पर देखा कि उक्त साधु धूनी जलाये बैठे हुए हैं। गोस्वामीजी को देखकर उन्होंने बड़े स्नेह से कहा 'बैठो बच्चा, दवाई लोगे?' फिर एक डिबिया में से थोड़ी-सी भस्म निकालकर उनके हाथ पर रखी और कहा, 'इसको पा लो, अब तुमको कभी मूर्छा न आवेगी। हमारे पास और दवाई नहीं है। होती तो तुम्हारी बीमारी बिलकुल छूट जाती।' फिर उन्होंने धूनी में से भस्म उन्हें देकर कहा 'कुछ दिनों तक इस भस्म को शरीर में अच्छी तरह रगड़ते रहना।' उन्होंने भस्म ले ली। कई दिन तक उस भस्म को प्रतिदिन शरीर में मला। उस समय उनके कई ब्राह्मसमाजी मित्र उन्हें बड़ा भारी कुसंस्कारी समझने लगे। किन्तु उस समय से गोस्वामीजी को न तो हृदय रोग हुआ ओर न बेहोशी ही। उक्त घटना के बाद से साधुओं पर उन्हें खासी श्रद्धा हो गई। रास्ते में या घाट पर कहीं साधुवेश को देखते ही वे भक्ति से नमस्कार किया करते थे। सोचते थे, 'यह तो मैं जानता नहीं हूँ कि किसके भीतर क्या है? फिर नमस्कार कर लेने में दोष ही क्या? यदि दैवयोग से यह नमस्कार किसी महापुरुष को हो जाय तो बहुत कल्याण भी हो सकता है।

एक अन्य दिन वे मिर्जापुर स्ट्रीट होकर जा रहे थे कि एक लम्बे से साधु को जल्दी-जल्दी आते देखा। वे गरीब वेश में थे और दण्ड-कमण्डलु लिये हुए थे। दूर से देखकर उनको नमस्कार करने के लिए गोस्वामीजी 'फुटपाथ' के दूसरी ओर जाकर खड़े हो गये। जब वे समीप आये तो गोस्वामीजी ने हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया। चलते हुए ही उन्होंने उनके माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। तब

ऐसा लगा मानों किसी ने उनके सिर पर आधा मन बर्फ रख दी है। गोस्वामीजी का सारा शरीर ठण्डा हो गया। साथ जाने का विचार करते ही साधु ने उनकी पीठ थपथपाकर कहा 'चलो बच्चा, चलो।' अब वे तेजी से चलने लगे। गोस्वामीजी भी उनके पीछे पीछे लपके। किस तरह, किस ओर अचानक वे साधु कहाँ चले गये, कुछ भी पता न लगा। मानो किसी ने सम्मोहित कर दिया हो। थोड़ी देर में देखा कि गोस्वामीजी ईडेन गार्डेन में पहुँच गये है। साधु ने उन्हें एक पेड़ के नीचे बिठाकर बहुत उपदेश दिया। उन्होंने उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की तो कहने लगे, 'नहीं, यह नहीं हो सकता ; तुम्हारे लिए तो गुरु निर्दिष्ट हैं। वे स्वयं तुम्हें समय पर ढूंढ लेंगे, फिर वे उनका अनुसरण करते हुए उनके पीछे चले परन्तु न जाने हाबड़ा पुल पर चलते हुए वे कहाँ अदृश्य हो गये। इस घटना से साधुओं पर उनकी श्रद्धा और बढ़ गई थी।

श्री गोस्वामीजी ने इसी प्रकार एक अन्य सिद्ध पुरुष के दर्शन का विवरण देते हुए कहा था - ''एक दिन मछुवा बाजार स्ट्रीट होकर जा रहा था कि मेरा जूता टूट गया। रास्ते में एक मोची को देखकर उसे मरम्मत करने को जूता दे दिया किन्तु उसने कुछ मोल भाव नहीं किया। मरम्मत हो जाने पर मैंने उसे पैसे दे दिये। उसने उन पैसों में से मुझे दो पैसे वापस कर दिये। अब वह झटपट अपने राँपी-सुतारी आदि औजार समेट कर वहाँ से रवाना हो गया। मुझे कुछ अचम्भा हुआ। मैं भी उसके पीछे पीछे चलने लगा। उसने गङ्गा किनारे बाबू घाट पर जाकर मरम्मत करने का सामान रास्ते के नीचे एक टूटी डाट के भीतर छिपाकर रख दिया फिर उसने गंगास्नान पर तिलक लगाया, सन्ध्या तर्पण आदि किया। अब वह खिदिरपुर की ओर चला। मैं भी पीछे पीछे जाने लगा। वह एक घर के भीतर गया। मकान के दरवाजे पर पहुँचते ही एक मनुष्य आया और मुझे अतिथि समझकर घर के भीतर लिवा ले गया। वहाँ जाकर मैंने देखा वह तो एक महन्त है। उसके बहुत से शिष्य व सेवक हैं, अखाड़े में ठाकुर जी प्रतिष्ठित हैं। **यह सब** देखकर मैं दंग रह गया। मैंने महन्त से पूछा ''आपके इतने **सेवक** शिष्य हैं, आप स्वयं महन्त हैं, ब्राह्मण हैं, किसी चीज की कमी

नहीं है, फिर भी आप जूतों की मरम्मत क्यों करते हैं। ''मेरा प्रश्न सुनकर महन्त जी रो पड़े, हाथ जोड़कर गुरु जी का स्मरण करके बार-बार नमस्कार करके कहने लगे, मेरे गुरु जी बड़े दयालु थे। एक दिन अतिथि को भोजन कराने से पहले ही मैंने भोजन कर लिया था, इससे मुझे उन्होंने धमकाकर कहा, ''अरे तू साधू क्यों हुआ, तू तो चमार है।'' अपने गुरुदेव के उस वाक्य को अन्यथा न होने देने के लिये ही मैं उसी दिन से मोची का काम करके अपना जीवन निर्वाह करता हूँ। दिन भर मोची का काम करके अपने भोजन के लिये चार आने मिलते ही मैं चला आता हूँ। अन्तकाल में गुरुदेव दया करके अपनी गद्दी पर मुझी को बैठा कर गये हैं। फिर यथा शक्ति से चमार के पेशे से उन्हीं की सेवा करके दिन बिता रहा हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिये जिससे अन्त काल तक मैं गुरुदेव के उसी वाक्य की रक्षा करता हुआ इस लोक से जा सकूँ।

इनको देखने के बाद मैंने समझा कि यों वेश बदलकर महात्मा लोग जहाँ-तहाँ रह सकते हैं। बाहरी शक्ल-सूरत, वेशभूषा और आकार व्यवहार देखकर जब उनको पहचान लेना कठिन है, तो यह कैसे समझूँगा कि कौन किस कोटि का है? तभी से मैं रास्ते चलते स्त्री पुरुष, वृद्ध, मेहतर, चमार, डोम, कुली, मजदूर जिसे भी देखता हूँ, उसी को मन ही मन नमन करता जाता हूँ। ऐसा करने से उन महापुरुषों और महात्मा को भी नमन हो जाता है जो अपने को छुपाए हुए घूमते-फिरते रहते हैं।''

बनारस के सुप्रसिद्ध सिद्धपुरुष श्री तैलंग स्वामी से भी श्री गोस्वामीजी का अन्तरंग सम्बन्ध था, जिसका विवरण उन्होंने निम्न प्रकार किया है:-

''यह बहुत पहले की बात है। मैं एक बार काशी जाकर वहाँ महीने भर तक रहा था। केदारघाट के पास होमियोपैथ डाक्टर लोकनाथ बाबू के यहाँ मै उतरा था। उन्होंने बड़ा आग्रह करके मुझसे अपने यहाँ ठहरने के लिए कहा। मैंने कहा, 'आप लोगों को बड़ी असुविधा होगी। मैं दिन-रात घूमता-फिरता रहूँगा; जरूरत भर के लिए डेरे पर आउँगा। क्या दिन को और क्या रात को, मैं एक निर्दिष्ट

समय पर भोजन न कर सकूँगा और मुझे एक अलग कमरे की जरूरत होगी; उसमें दूसरा आदमी न रहने पावेगा !' लोकनाथ बाबू ने मेरी कुल शर्तें मान लीं, वे अपने यहाँ ठहरने की जिद करते ही रहे। मुझे एक अलग कमरा दे दिया। मैं दिन-रात अपनी मर्जी के माफिक घूमता रहता था; जरुरत के समय डेरे पर जाता था। मेरा अधिकांश समय तैलङ्ग स्वामी के यहाँ बीतता था। पहले-पहले कई दिन तक उन्होंने मेरी बहुत परीक्षा ली थी। बदन में कुत्ते का मैला, गन्दगी और कीचड़ वगैरह लपेटे रहते थे, पास जाने पर वही फेंकते थे। फिर जब देख लिया कि यह किसी तरह टलता ही नहीं है तब खूब आदर करने लगे, जाते ही पास बैठने को कहते। बहुत दिन चढ़ जाने पर इशारे से पूछते थे कि भूख तो नहीं लगी है; जो लोग वहाँ पर होते उनसे कुछ खाने को मँगा देते। एक आदमी से खाने को लाने का इशारा करते तो पाँच छः आदमी दौड़ पड़ते। अधिक परिमाण में खाद्य सामग्री आ जाती; मैं अपने खाने भर को बचाकर बाकी स्वामीजी से खाने को कहता। वे भी मुझको इशारा करते कि मुँह में कौर देते जाओ। मैं उनके मुँह में कौर दे देता। वे खूब खा सकते थे। शरीर खासा सबल, नीरोग पहलवान की तरह था। कभी कभी वे केदारघाट पर जाकर गङ्गा में गोता लगाते और सीधे मणिकर्णिका में जाकर गंगा के ऊपर आते थे, मैं उस समय गंगा के किनारे-किनारे दौड़ता जाता था।

एक दिन की बात है- मैंने देखा कि वे एक काली मन्दिर में जाकर काली के सामने खड़े-खड़े पेशाब कर रहे हैं और उसी पेशाब को चुल्लू में भर -भरकर, 'गङ्गोदकं, गङ्गोदकं' कहकर काली के ऊपर छिड़क रहे हैं। मैंने पूछा, 'आप यह क्या कर रहे हैं ?' उत्तर दिया, 'पूजा'। मैंने फिर पूछा, 'इस पूजा की दक्षिणा क्या है ?' उत्तर दिया, 'यम का घर'। रात को अधिकतर मैं तैलङ्ग स्वामी के ही यहाँ रह जाता था। वे मुझे अनेक प्रकार का अद्भुत योगैश्वर्य दिखलाते थे। मैंने एक दिन कहा,'आप मुझे इतना सब तो दिखलाते हैं, किन्तु मेरा विश्वास किसी तरह नहीं होता। दया करके आशीर्वाद दीजिये जिससे मैं विश्वास करने लगूँ।' उन्होंने मुझसे स्नान **कर आने के लिए कहा**। रात को एक बजा होगा, बेहद ठण्ड पड़ रही **थी, मैं टालमटोल करने** लगा। उन्होंने तुरन्त

गर्दन पकड़कर मुझे अधर में उठा लिया और गङ्गा में गप से डुबाकर निकाल लिया। फिर मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देकर कहा, 'विश्वास बन जाय'। उस दिन से सत्य विषय में फिर मुझे संशय नहीं हुआ। बड़ा आश्चर्य है ! मुझे उन्होंने मंत्र देना चाहा। मैंने कहा, 'मैं आप से मंत्र लूँ किस तरह? आप साकार के उपासक हैं, आपको 100 बिल्वपत्र और गङ्गाजल शिवजी के माथे पर चढ़ाते देखता हूँ, आप शिव की पूजा करते हैं, और मैं हूँ निराकार ब्रह्म का उपासक। मैं आपको गुरु न बनाऊँगा।' उन्होंने सावलम्ब और निरावलम्ब उपासना के सम्बन्ध में बहुत उपदेश दिया। फिर कहा, जिस प्रकार नल राजा को साँप ने डस लिया था उसी प्रकार मैं भी तुमको तनिक छुए देता हूँ। इसका गुप्त तात्पर्य है। मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ; तुम्हारे गुरु तो निर्दिष्ट हैं। समय आने पर वही तुमको दीक्षा देंगे। बस, उन्होंने मेरे कान में तीन मंत्र सुना दिये। एक राधा कृष्ण की युगल उपासना का मंत्र है। पहले माताजी ने भी मुझे यही मंत्र दिया था। दूसरा सदा जपते रहने के लिए भगवान् का नाम था। और एक का जप तब करने के लिए कहा जब कोई संकट पड़े। परमहंसजी से दीक्षा मिल चुकने पर जब तैलङ्ग स्वामी से मेरी भेंट हुई तब, कोई बीस वर्ष पहले की घटना के सम्बन्ध में उन्होंने हथेली पर लिखकर पूछा, 'याद है'?

शिष्य - तो क्या तैलङ्गस्वामी मौनी थे?

श्री गोस्वामीजी - हाँ, बातचीत नहीं करते थे, इशारे से सब बतला देते थे, कभी-कभी लिख भी देते थे। रात को वे प्रायः मुझसे बातें करते थे। उस समय उन्होंने अजगर-व्रत नहीं लिया था। अन्त में अजगर व्रत लेकर सब कुछ छोड़ दिया था, किसी प्रकार का इङ्गित तक न करते थे। एक ही जगह बैठे रहते थे। शरीर बहुत स्थूल हो गया; वात ने घेर लिया। इसके ऊपर आफत यह हुई कि उनको सजीव महादेव समझकर लोग उनके सिर पर दूध और गङ्गाजल डालने लगे। रात के चार बजे से लेकर दोपहर के बारह बजे तक पूस माघ की ठण्ड में भी यह जल डालना बन्द नहीं होता था। देह का धर्म तो चुप बैठने वाला नहीं- अन्त में घाव हो जाने से देह सड़ गल गई। एक ही तरह निर्विकार अवस्था में रहकर उन्होंने शरीर छोड़ दिया। उन्हें गङ्गा में जल-समाधि दी गई।''

अपने गया प्रवास के दौरान श्री गोस्वामीजी को एक बार कायाकल्पी फकीर के भी दर्शन हुये-श्री गोस्वामीजी ने उनसे सम्पर्क का विवरण निम्नानुसार दिया है :-

'' गयाजी में रहते समय हम प्राय: एक फकीर के पास जाया-आया करते थे। वे सुनसान जङ्गल के भीतर एक टूटी हुई मस्जिद में रहते थे। एक दिन जाकर देखा कि फकीर साहब मस्जिद के बरामदे में, बेहोशी की हालत में, औंधे पड़े हुए हैं। उस दिन वहाँ पर थोड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहकर हम लौट आये। इसी प्रकार पाँच-सात दिन बीत गये, हम प्रतिदिन एक बार फकीर को देख आया करते थे। एक दिन जाकर क्या देखा कि फकीर का शरीर बेतरह फूल गया है और उस पर मैले के कीड़ों की तरह दुमदार बड़े-बड़े कीड़े सारे शरीर पर बैठे रक्त पी रहे हैं। सरसों बराबर जगह भी खाली नहीं है, कीड़ों के काटने की तक़लीफ के मारे फ़कीर साहब बीच बीच में हाय-हाय कर रहे हैं। देखने से बड़ा दु:ख हुआ; वहाँ पर ऐसा एक पक्षी तक न था जो आकर कीड़ों को खा जाय। ऐसी भगवान् की लीला है !

तब एक दिन एक मुसलमान ताल्लुकदार ने आकर हमसे पूछा कि फकीर साहब कहाँ हैं? हम उनको फ़क़ीर साहब के पास ले गये। हमने उनसे विशेष रूप से कह दिया कि वे फ़क़ीर साहब का किसी प्रकार का इलाज करने जाकर उनको तङ्ग न करें। किन्तु ताल्लुकदार साहब ने हमारी बात नहीं मानी; धीरे-धीरे फ़कीर साहब के पास जा बैठे और आहिस्ते आहिस्ते दुम पकड़कर दो तीन कीड़ों को निकाल लिया। बस, उस स्थान से लगातार रक्त बहने लगा। फ़क़ीर साहब चिल्लाने लगे। तब ताल्लुकदार चौंक पड़े। चिल्ला-चिल्लाकर फकीर साहब बार बार कहने लगे कि जहाँ से कीड़ों को उठाया है वहीं पर उन्हें फिर से बिठा दो। मुसलमान के वैसा करने पर फ़कीर साहब चुप हो गये। ताल्लुकदार बहुत ही खेद प्रकट करके चले गये। हम भी डेरे पर लौट आये। इसके कई दिनों बाद एक दिन जाकर देखा कि फ़क़ीर साहब मस्जिद के बरामदे में टहल रहे हैं, चेहरा खुश है। शरीर में मानों एक ज्योति फैल रही है। तब समझ में आया कि फ़क़ीर साहब का संकल्प सिद्ध हो गया है, कुछ दिनों के बाद फिर वे न जाने कहाँ चले गये।

गोस्वामीजी कहते थे कि देहकल्प में तीन सौ वर्ष या हजार वर्ष की परमायु प्राप्त करने का संकल्प करके भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन, आचार, नियम और औषधि ग्रहण करना पड़ता है। पक्ष के आरम्भ से लेकर पक्ष के अन्त तक कोई पन्द्रह दिन, कोई एक महीना और डेढ़ महीने तक, नियम निष्ठा से रहकर, देहकल्प में सिद्ध हो जाता है।

जैसा कि पूर्व में वर्णन किया जा चुका है, श्री गोस्वामीजी रास्ते में चलते हुये भी मजदूर, कुली, विरक्तपुरुषों आदि को मन ही मन प्रणाम करते थे, क्योंकि विभिन्न सिद्ध पुरुष अपने आपको छिपाये रखने के लिये कंगाल, पिशाचवत् आचरण करके रहते हैं। इस प्रकार के सिद्ध सन्तों के बारे में श्री गोस्वामीजी ने विशेष रूप से श्री वृन्दावन के एक परम वैष्णव, हरिद्वार के एक पहुचे हुये फकीर, अयोध्या के श्री हरिदास बाबाजी एवं बनारस के श्री पूर्णानन्द स्वामी के साथ हुये अपने साक्षात्कार का विवरण निम्नानुसार दिया है :-

''प्रतिष्ठा और प्रशंसा से धर्मार्थियों का जितना अनिष्ट होता है उतना और किसी से नहीं होता। इसलिए कितने ही अच्छे अच्छे साधु महात्मा, कई प्रकार के उपायों का अवलम्बन करके, मनुष्यों की दृष्टि से अपने को बचाये रखने के लिए, अपने आपको छिपाये रहते हैं। एक बार श्रीवृन्दावन के एक भले आदमी ने एक दिन साधु वैष्णवों का भण्डारा किया; दर्शन करने को मैं भी गया था। जाकर देखा कि टिकट दिखलाकर वैष्णव बाबा लोग कुञ्ज के भीतर जा रहे हैं। एक कङ्गाल ने भीतर जाना चाहा, किन्तु पास टिकट न रहने से द्वार रक्षक ने उसे गालियाँ देकर हटा दिया। उस व्यक्ति के, भीतर जाने की, दुबारा चेष्टा करते ही द्वार रक्षक ने उस पर कसकर कई हाथ जमा दिये। ठुक पिट जाने पर किसी प्रकार क्लेश को प्रकट किये बिना ही प्रसन्नता से वह व्यक्ति उस स्थान से चला गया। यह देखने से मुझे बड़ा अचरज हुआ। उसके लिए कुछ खाने को माँगकर मैं उनके पीछे-पीछे रवाना हुआ। वे यमुना के किनारे-किनारे दूर तक चलकर जङ्गल के भीतर एक एकान्त स्थान में पहुँचे। वहाँ पर एक गुफा के भीतर चले गये। मैंने उनके पास जाकर उनको नमस्कार किया और खाने को दिया। फिर पूछा - 'बस्ती से इतनी दूर रहने के कारण भिक्षा आदि का आपके लिए क्या सुभीता

है ? आप बस्ती में भी तो किसी जगह रह सकते हैं।' बाबाजी ने कहा, 'छिपे रहने में ही आपत्तियों से बचाव है। उठकर बड़े तड़के सिर्फ एक बार यमुना में नहा आता हूँ और रात को एक बार मधुकरी माँगकर रोटी के टुकड़े ले आता हूँ। उन्हीं टुकड़ों को यमुनाजल में भिगोकर खा लेता हूँ; इससे मैं उत्पातों से बचा रहता हूँ। मजे में हूँ। बाबाजी परम वैष्णव थे । इस प्रकार मुद्दत से जन मानव विहीन गुफा में रहकर दिन बिता रहे थे । किसे पता है कि श्रीवृन्दावन में इस प्रकार के और कितने महात्मा छिपे पड़े हैं ?

श्री गोस्वामीजी ने हरिद्वार में एक बार एक साधु को देखा था। उनके पहुँचे हुए साधु होने की खबर सर्वत्र फैल जाने से उनके पास सदा बड़ी भीड़-भाड़ रहने लगी। लोगों के गोलमाल से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने साधु का वेश छोड़ दिया। इतने पर भी लोगों ने पीछा न छोड़ा। तब साधुजी कोट पतलून पहनकर हाथ में छड़ी लेकर, बाबू के वेश में, सड़कों में घूमने लगे। इससे भी मनुष्य धोखे में न आये। सदा उनके साथ साथ लोगों की भीड़-भाड़ बनी ही रही। अब तो साधु बाबा उकता गये। इस भीड़-भाड़ से पीछा छुडाने के लिए उन्होंने बदनाम होना आवश्यक समझा; उन्होंने रात को एक बनिये की दुकान में घुसकर चावलों की चोरी की। पुलिस ने उनको गिरफ्तार किया और चोरी के मामले में चालान कर दिया। अदालत में उन पर तीन रुपये जुर्माना हुआ। अब दुकानदार ने उन्हें पहचाना तो अपने पास से जुर्माने के तीन रुपये जमा करके वह उन्हें छुड़ा लाया। हाथ जोड़कर उनके पैरों पर गिरकर क्षमा माँगी। प्रतिष्ठा और प्रशंसा से बचने के लिए महात्मा लोग अनेक अवसरों पर ऐसे-ऐसे काम कर डालते हैं कि जिससे चारों ओर उनकी बुरी तरह बदनामी फैल जाती है।

गोस्वामीजी अयोध्या के सिद्ध महात्मा हरिदास बाबाजी के बारे में भी अपने शिष्यों को प्रसंग वश सुनाते थे कि वे बस्ती से बहुत दूर एक टूटी-सी कुटिया में रहते थे और आनन्द से मन मुताबिक भजन किया करते थे। वहाँ जाकर भी बहुत लोग उनके दर्शन करते थे और अपने घर गृहस्थी के सङ्कटों का हाल सुनाकर उनसे प्रार्थना करते थे कि हमारा इनसे उद्धार कीजिए। बाबाजी तरह-तरह से उनको समझाकर

कहते थे कि इन बातों को भला वनवासी क्या जानें। इसके बाद बाबाजी ने उन लोगों को बुरी-बुरी गालियाँ दे देकर भगाना आरम्भ कर दिया। समय-समय पर वे पत्थर फेंककर भी मारते थे ताकि कोई उनके पास न जावे। स्वामी पूर्णानन्दजी, जो काशी के प्रसिद्ध सिद्ध पुरुष थे, के दर्शन के बारे में गोस्वामीजी ने एक बार निम्न वर्णन किया था -

''श्री वृन्दावन जाते समय हम कई दिन तक काशी में ठहरे थे। इस समय पूर्णानन्द स्वामी से भेंट करने की बड़ी इच्छा हुई। उनके दर्शन करने को जाने का तीन दिन उद्योग किया। तीनों दिन लोगों ने रोककर कहा - महाशय, आप वहाँ जाइयेगा, उस पियक्कड़ के पास ! नहीं, वहाँ न जाइए। काशी के सभी लोग उन्हें पियक्कड़ और छँटा हुआ बदमाश समझते हैं। किन्तु ये बातें सुनने पर भी हमारे मन पर इसका असर न हुआ। उनके यहाँ जाने के लिए बड़ी बेचैनी हुई। किसी की बात न मानकर हम स्वामीजी के आश्रम पर पहुँचे। उनको नमस्कार करते ही उन्होंने हँसकर कहा - 'क्या पियक्कड़ के पास आया है, बैठ।' अब वे एक स्त्री को न सुनने योग्य भाषा में, गालियाँ दे देकर कहने लगे, 'अरी तुझे चेली बनाने से क्या होगा, तेरी तो उम्र ज्यादह हो गई है। मैं तो सुन्दरी युवती को चेली बनाता हूँ। तुझे दीक्षा न दूंगा; तू चली जा। किसी और के यहाँ जाकर दीक्षा ले ले।' स्त्री बहुत अधिक आग्रह करने लगी। तब स्वामीजी ने कहा, अच्छा तो जैसा मैं कहूँगा वैसा कर सकेगी? सौगन्ध खा तो चेली कर लूँगा। स्त्री ने कहा 'आपकी दया होगी तो क्यों न कर सकूँगी बाबा? तब स्वामीजी ने कहा - अच्छा तो तनिक ठहर जा, मैं कारण (मदिरा) का सेवन कर लूँ। फिर उस बड़ी सड़क पर ले जाकर तुझे बेइज्ज़त करूँगा। उसके बाद तुझे दीक्षा दी जायगी।' अब स्वामीजी ने जोर से अपनी भैरवी से कहा - अरी एक बोतल कारण तो ले आ। और बाहर का दरवाज़ा बन्द कर दे जिससे यह हरामजादी कहीं भाग न जाय।

डर के मारे वह स्त्री प्राण लेकर भाग गई। स्वामीजी ने मंत्र से पवित्र करके कारण को पी लिया। फिर मुझ से कहा - ''ओरे देख ! इस पियक्कड़ के पास किसलिए आया है? अरे मैं तो शराबी हूँ, मेरा घर भी शान्तिपुर में था; बचपन में, जात्रा (लीला) की मण्डली में मेहतरानी

बनता था, सुनेगा कि मैं उस समय किस तरह नाच नाचकर गाता था?'' अब वे नाच नाचकर गाने लगे-'निशिते देखेछि स्वप्न, कालो एक पुरुष रतन। यह गीत गाते-गाते स्वामीजी को बाहरी ज्ञान न रहा। देखते-देखते महादेव का रूप हो गया। स्वामीजी का रङ्ग काला था, किन्तु वे बिल्कुल शुभ्र हो गये। माथे में अद्भुत ज्योतिर्मय अर्धचन्द्र प्रकाशित हो गया। वहाँ पर जो लोग थे वे सभी देखकर विस्मित हो गये। स्वामीजी ने होश में आकर कहा- 'देखो, शराब पीकर, शराब की बोतल बगल में लिये हुए रास्ते में पड़ा रहता हूँ, बहुत मतवालापन करता हूँ, जो लोग पास आते हैं उनको बुरी-बुरी गालियाँ देता हूँ, कभी-कभी खाँडा लेकर उनको काटने जाता हूँ, इतने पर भी यहाँ आदमी आते हैं, मुझे छेड़ते हैं, सिद्ध पुरुष समझकर मुझसे न जाने कितनी बातें पूछने आते हैं। मैं थोड़ी देर शान्ति से नहीं रहने पाता। इन लोगों के उत्पात से बचने के लिए बतलाओ मैं और क्या करूँ?''

गाजीपुर के पवहारी बाबा के प्रसंग में सन् 1882 ई. में विजयकृष्ण ने कहा था, ''बाबा जी ने लगभग 12-13 वर्ष एक गुफा में रहते हुए योग साधना की थी। कभी कभी 2-3 महीनों तक उनका दरवाजा बन्द रहता था। प्रायः एकादशी के दिन बाबाजी दरवाजा खोलकर बाहर आते थे। एकादशी के दिन इसी आशा में हमलोगों ने जाकर देखा, बहुत से नर नारी उनके दर्शन के लिये बैठे हैं। अचानक शब्द हुआ और द्वार खुल गया। बाबाजी का शरीर निरोगी और सुन्दर था। उनकी एक आंख नहीं थी, फिर भी सुन्दरता में कोई कमी नहीं थी। बाबाजी स्वयं को 'दास' कहा करते थे। किसी के द्वारा कुछ प्रश्न किये जाने पर दीनता प्रकाश करते हुए वे कहते थे, 'दास क्या जानता है?' विजयकृष्ण ने उनसे पूछा, ''धर्म साधना में सबसे बड़ा प्रतिबंधक (बाधा) क्या है?'' बाबाजी ने बड़े विनम्र स्वर में कहा, ''अपनी बड़ाई' अर्थात् अहंकार प्रधान प्रतिबंधक है।'' किसी समय उन्हें सर्प ने काट लिया था। बाबाजी तीन दिनों तक बेहोश रहे! चेतना आने के बाद उन्होंने कहा, ''नाग बाबा ने कृपा की''। विजयकृष्ण ने पूछा, ''अनन्त स्वरूप निराकार ब्रह्म को किस प्रकार प्राप्त किया जावे?'' बाबाजी ने उत्तर दिया, ''शनैः शनैः उनकी प्राप्ति होती है, एक दिन में नहीं होती। पहले (ईश्वर के) नाम में

रूचि होगी फिर उसमें अनुराग, उसके बाद आनन्द; नाम में आनन्द आने के पश्चात प्रेम का संचार होता है। प्रभु की कृपा से ही उनकी प्राप्ति होती है।''

श्री गोस्वामीजी का परमहंस रामकृष्णदेव से अन्तरंग सम्बन्ध था। जिसका विवरण ''रामकृष्ण वचनामृत'' में भी वर्णित है। सद्गुरु की प्राप्ति के बाद जब विजयकृष्ण जी गया से लौटकर श्री रामकृष्णदेव के दर्शनार्थ गए उस समय उनकी अंतर्मुख अवस्था को देखते ही श्री रामकृष्णदेव ने कहा, ''विजय! तुमने घर ढूँढ़ लिया।''

''देखो, दो साधु विचरण करते हुए एक शहर में पहुंचे। आश्चर्यचकित होकर उनमें से एक शहर, बाजार, दुकानें, और इमारतें देख रहा था। इसी समय दूसरे साधु से उनकी भेंट हो गई। तब दूसरे साधु ने पूछा, ''तुम शहर देख रहे हो! तुम्हारा डेरा डंडा कहां है?' पहले साधु ने कहा, ''मैं पहले घर की खोज करके, सामान आदि रख, ताला लगाकर निश्चिंत होकर निकला हूँ। अब शहर का रंग ढंग देख रहा हूँ।' इसीलिए मैं तुमसे (विजयकृष्ण से) पूछ रहा हूँ, क्या तुमने घर ढूँढ़ लिया? (मास्टर आदि भक्तों से) देखो, इतने दिनों तक विजयकृष्ण का फव्वारा दबा हुआ था, अब खुल गया है।''(वचनामृत)

''देखो, विजय की कैसी अवस्था हो गई है! लक्षण सब बदल गए हैं, मानो उबाला (सिद्ध) हुआ है। मैं परमहंस की गर्दन और कपाल देखकर कह सकता हूँ कि वह परमहंस है या नहीं?'' (वचनामृत/ विजयकृष्ण की दीक्षा के बाद उनके संबंध में श्री रामकृष्णदेव और नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) से हुई चर्चा का एक प्रसंग)

ढाका में ध्यान के समय विजयकृष्ण ने श्री रामकृष्णदेव का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया। उन्होंने अपने संशय की निवृत्ति के लिए उनके शरीर के हाथ पैर को स्पर्श करके भी देखा था। इसके बाद वे 24 अक्टूबर 1885 ई. को श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन करने आए।

विजयकृष्ण (हाथ जोड़कर) - ''आप कौन हैं, यह समझ गया! अब कहना न होगा।''

श्रीरामकृष्णदेव (भावस्थ होकर) - ''अगर ऐसा है, तो यही सही।'' विजयकृष्ण - ''मैं समझ गया।''

यह कहकर वे श्रीरामकृष्णदेव के चरणों में गिर पड़े और उनके चरणों को अपनी छोती से लगा लिया। श्री रामकृष्ण भी ईश्वरावेश में बाह्य ज्ञान शून्य हो चित्रवत् बैठे थे। इस प्रेमावेग को, इस अद्भुत दृश्य को देखकर, भक्तों में किसी की आंखों से आंसू बह रहे हैं, और कोई स्तुति पाठ कर रहे हैं। (वचनामृत)

श्रीरामकृष्णदेव की शारीरिक अस्वस्थता का समाचार पाकर विजयकृष्ण उनका अंतिम दर्शन करने गए। सेवकों ने उन्हें श्री रामकृष्णदेव के पास जाने से रोका। इसी समय श्री रामकृष्णदेव ने विजयकृष्ण को अपने पास बुलाया। उस समय, कमरे में दरवाजा बंदकर श्री रामकृष्णदेव व विजयकृष्ण, बहुत देर तक थे। उन दोनों के बीच क्या चर्चा हुई, यह आज भी अज्ञात है। (श्रीसद्गुरु संग से)

दक्षिणेश्वर में भक्तों को विजयकृष्ण के संबंध में कहते हुए श्री रामकृष्णदेव कहा करते - ''पिता का इस प्रकार भक्त न होने पर, पुत्र इस तरह का कभी भी नहीं होता है। देखो, आजकल विजय की अवस्था! विजय के पिता भागवत पाठ करते करते भावस्थ हो जाते थे! विजय भी 'हरि! हरि!!'' कहते हुए खड़ा हो जाता है। आजकल विजय जो कुछ दर्शन (ईश्वरीय रूप आदि का) कर रहा है, सब ठीक-ठीक कर रहा है। ...... विजय बहुत सरल है। बहुत उदार है और सरल नहीं होने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है। विजय कल अधर के घर गया था। अपने घर के समान, 'सभी अपने हैं', इस प्रकार उसका भाव है। विषय बुद्धि न जाने से उदार और सरल नहीं हो सकता।'' (वचनामृत')

अपनी पत्नी योगमाया देवी को गोस्वामी जी ने दीक्षा प्रदान की थी। उनको लेकर वे एक बार श्री रामकृष्णदेव के दर्शन करने दक्षिणेश्वर गए। श्री रामकृष्णदेव ने उनसे कहा - ''अच्छा! तुमने स्त्री पुत्रादि सहित वास करते हुए भी धर्म की ऐसी उच्च अवस्था प्राप्त कर ली है! तुम जनक ऋषि के समान धर्म पालन कर रहे हो। मेरी धारणा थी कि तुम संसार से उदासीन होकर अलग रहते हो। जो भी हो, तुम धन्य हो!

तुमने जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वर्तमान युग में वह दुर्लभ है।'' कुछ देर पश्चात् योगमायादेवी को देखकर वे कहने लगे, 'विजय! तुमने इन्हें कितने दिनों पूर्व दीक्षा दी है? इनके भीतर आश्चर्यजनक शक्ति देख रहा हूँ। साक्षात् महाशक्ति को निकट देखकर मेरे मन में जिस भाव का उदय होता है, वैसा ही भाव आ रहा है।'' ऐसा कहकर उन्होंने योगमायादेवी को ''माँ'' कहकर प्रणाम किया। (श्रीविजयकृष्ण परिजन' से)

गोस्वामीजी की सास मुक्तकेशी देवी भी कई बार श्री रामकृष्णदेव के पास गई थीं। उनके संबंध में एक बार विजयकृष्ण से चर्चा करते हुए श्री रामकृष्ण कहने लगे, ''देखो, तुम्हारी सास बड़ी भक्तिमती है। उसने कहा, 'संसार की बात अब न कहिए। एक तरंग जाती है और दूसरी तंरग आती है।' मैंने कहा, 'इससे तुम्हारा क्या बिगड़ सकता है? तुम्हें ज्ञान तो है!' तुम्हारी सास ने कहा, 'मुझे कहां ज्ञान है? अब भी विद्या माया और अविद्या माया के पार नहीं जा सकी। सिर्फ अविद्या माया के पार जाने से तो कुछ होता नहीं, विद्यामाया के भी पार जाना है, ज्ञान तो तभी होगा।'' श्री रामकृष्णदेव ने मुक्तकेशी देवी से जब यह भी कहा था, ''तुम्हारी ब्रह्मज्ञान की अवस्था है।'' उस समय श्री रामकृष्णदेव शुचि और अशुचि के संबंध में उपदेश देते हुए बोले, ''शुचि, अशुचि यह भक्त के लिए आवश्यक है, ज्ञानी के लिए नहीं।''

यह सुनकर मुक्तकेशी देवी ने कहा, ''कहां, मुझे क्या ज्ञान हुआ है? अभी भी मैं सबके हाथों का बना भोजन भी नहीं खा सकती हूँ।'' श्री रामकृष्णदेव ने कहा, ''सभी प्रकार का अन्न खाने से क्या ज्ञान हो जाता है? कुत्ता तो कुछ भी खाता है, क्या उसे ब्रह्मज्ञान हो गया है?''

इस तरह श्रीरामकृष्णदेव और विजयकृष्ण का अंतरंग संबंध था। श्री रामकृष्ण प्राय: जब भी कलकत्ता आते थे, विजयकृष्ण को वहां आने के लिए पहले संदेश भेजते थे। विजयकृष्ण प्राय: दक्षिणेश्वर जाकर श्री रामकृष्णदेव से उपदेश आदि ग्रहण करते थे। श्री रामकृष्णदेव कभी कभी विजयकृष्ण को नाव का किराया भेज कर दक्षिणेश्वर आने के लिए कहते थे। इस तरह, सद्गुरु की आवश्यकता तथा अपने लक्ष्य के प्रति अग्रसर होने में विजयकृष्ण को श्री रामकृष्णदेव ने बहुत सहायता प्रदान की थी।

कलकत्ता में कुछ दिन रहने के पश्चात् गोस्वामीजी ढाका चले गए। यहां पर साधना करते हुए उनकी एक विशेष प्रकार की अवस्था आरंभ हुई। प्रतिक्षण 'नाम-अग्नि' की जलन तीव्र हो गई और मन की सरसता, शुष्कता में परिवर्तित हो गई। इस समय की अवस्था के संबंध में गोस्वामीजी कहते थे, ''इस यंत्रणा में दो बार मैं आत्महत्या करने गया, पर परमहंसजी ने आकर मेरी रक्षा की। सब समय अग्निज्वाला-सा दाह सहना पड़ता था। कितने जन्म जन्मांतर के संचित पापों को दग्ध करने के लिए इस अग्नि की आवश्यकता होती है। इस यंत्रणा को सहने के बाद मुक्त अवस्था प्राप्त होती है। जिसमें यह ज्वाला होती है वह फिर कभी धर्म की आड़ में कपट आचरण नहीं कर सकता। जिससे ज्वाला की निवृति हो, उसे प्राप्त किये बिना वह तृप्त अथवा शांत भी नहीं हो सकता है।''

''मेरे मन प्राण दिन रात जलते रहते थे। किसी भी तरह शांति नहीं मिलती थी। शरीर में जलन के साथ भयानक ज्वर भी होता था। कभी कभी यातना असह्य हो जाने पर आत्म हत्या की इच्छा होती थी। इस प्रकार यंत्रणाएं सहन करते हुए भी मैं कुछ दिनों तक साधना करता रहा। अंत में और धैर्य नहीं रहा, तब मैंने साधना करनी छोड़ दी। उस समय गुरुजी प्रकट होकर और अधिक साधना करने के लिए मुझे कहने लगे। उनकी बातें भी उस समय अच्छी नहीं लगती थीं। कभी कभी उनसे तर्क, अपने विश्वास और साधना के प्रति वितृष्णा को प्रकट भी करता था। पर, गुरुजी सदैव हंसते हुए सान्त्वना प्रदान कर कहते थे, ''अधीर मत होओ! स्थिर भाव से, धैर्य सहित कुछ दिन और साधना करो। यह अवस्था फिर नहीं रहेगी।'' उनकी बातों पर मुझे विश्वास नहीं होता था। अंत में, उन्होंने मुझे एक दिन, ज्वालामुखी जाने के लिए कहा। पहले मैं उनकी बातों से सहमत नहीं हुआ। बाद में जब वे बोले कि ज्वालामुखी में जाकर साधना करने से बहुत ही शीघ्र तुम्हारी ज्वाला शांत हो जाएगी, तब मैं वहां जाने के लिए तैयार हो गया। वहां जाकर कुछ दिन साधना करने के पश्चात देखा, मेरी सब ज्वाला शांत हो गई है और प्राणों में नाम जप से सरसता आने लगी है। इसके बाद मैं, फिर ढाका आ गया।'' गोस्वामीजी ने कहा था - **''शास्त्रों में इसे 'पंचतपा'**

कहते हैं। कई साधक बाहर अग्नि व सूर्य का ताप सहते हुए 'पंचतपा' करते हैं इसे 'बाह्य पंचतपा' कहते है। पर, इससे साधक की कामना वासना दग्ध नहीं होती। वासना की निवृति के लिए नाम जप द्वारा अग्नि प्रज्वलित करनी पड़ती है। इस प्रकार की अग्नि एक बार प्रज्वलित होने पर संसार की सब वस्तुओं के प्रति अनासक्ति आ जाती है। अंत में इसी ' नामाग्नि' से 'वासना से निवृति' होने के बाद 'तन्मय भाव अवस्था' प्राप्त होती है।''

''इस 'तन्मय भाव' अवस्था की प्राप्ति से केवल ईश्वर के प्रति साधक की दृष्टि रहती है। अन्य किसी भी वस्तु के प्रति उसकी दृष्टि नहीं रहती। यहां तक कि, उसे अन्य चिन्ताएँ भी नहीं हो सकतीं। हृदय में केवल एकमात्र काम्य वस्तु 'ईश्वर के अस्तिव की उपलब्धि' होती है। मन में अन्य चिंता न होने से वह संसार में रहते हुए भी सांसारिक नहीं रहता। किसी भी कार्य को करने के लिए पहले उसमें तन्मय होना पड़ता है, तभी वह कार्य पूर्ण सफल हो सकता है। इस प्रकार 'तन्मय भाव अवस्था' की प्राप्ति के लिए गुरु पर विश्वास की सबसे अधिक आवश्यकता है।'' इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए ही शायद तुलसीदासजी ने भी कहा है -

''बिनु विस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा बिनु सपनेहुं, जीव न लह विश्राम॥''

ढाका में कुछ दिन रहने के पश्चात् गोस्वामीजी बिहार के कई स्थानों पर भ्रमण करते हुए दरभंगा पहुंचे। इस समय, उन्हें कई प्रकार की आध्यात्मिक अवस्थाओं को पार करना पड़ा। उनके मन में कई बार संशय भी होता था। एक दिन गुरुजी प्रकट हुए। गोस्वामीजी ने अपने संशय निवारण के लिए गुरुजी से इन अवस्थाओं के बारे में चर्चा की। गुरुजी ने उनकी बातें सुनकर एक दुकान का पता बताकर कहा - ''इस दुकान से 'विचार सागर' और 'हठयोग प्रदीपिका', ये दो पुस्तकें लाकर पढ़ो। इन्हें पढ़ने पर तुम्हें सब समझ में आ जायेगा।'' गोस्वामीजी ने वे पुस्तकें लाकर पढ़ीं। उन्होंने देखा, पुस्तकों में योग की जिन अवस्थाओं का उल्लेख है, केवल नाम जप द्वारा उन्होंने इन सब अवस्थाओं को प्राप्त कर लिया है। इन शास्त्रों को पढ़कर वे संशयमुक्त हो गए। इसके बाद

जब उन्हें गुरुजी का दर्शन हुआ तो गोस्वामीजी ने उनसे पूछा, ''**आपने इन पुस्तकों को पहले पढ़ने के लिए मुझे क्यों नहीं कहा? इसे पहले पढ़ लेने से मुझे फिर संदेह नहीं होता।**'' परमहंसजी ने हंसकर उत्तर दिया, ''**तुम इस प्रकार के स्वभाव वाले हो कि यदि मैं तुम्हें पहले इन पुस्तकों को पढ़ने को कहता तो तुम सोचते कि शायद इन पुस्तकों को पढ़ने के कारण उसके संस्कारवश मेरे भीतर इस प्रकार का अनुभव हो रहा है।' यह योग की अवस्था है, साधना द्वारा साधकों के निकट यह प्रत्यक्ष होता है, इस पर तुम्हें विश्वास नहीं होता। अस्तु, अब तुमने अच्छी तरह समझ लिया कि यह चित्त विकार या रोग नहीं है। मैं भी कह रहा हूँ कि यह सब योग की अवस्थाएं है।**'' इस प्रकार, गोस्वामीजी को संशय मुक्त कर परमहंसजी अदृश्य हो गए।

ढाका में सिद्ध अवस्था की प्राप्ति के बाद गोस्वामीजी तीर्थ पर्यटन करते हुए गया पहुंचे। यहां एक दिन परमहंसजी ने उनसे कहा, ''यहां अभी तंत्र साधना में सिद्ध, एक महात्मा आए हैं। वे 'भैरवी चक्र' का अनुष्ठान करते हैं। मेरी इच्छा है, तुम भी एक बार इस चक्र में उपस्थित रहकर इनकी क्रियाओं को देखो। इससे तुम्हारा विशेष उपकार होगा। तंत्र के संबंध में साधारणतया यह धारणा फैली हुई है कि इसमें धर्म के नाम पर सुरापान, व्यभिचार आदि होता है, जबकि वस्तुत: ऐसा नहीं है। इसमें उच्च, पवित्र विचार हैं तथा यह मुक्ति का एक सोपान है। चक्र देखने पर तुम इसे अच्छी तरह समझ जाओगे। मैंने तांत्रिक महात्माजी से तुम्हारे संबंध में कहा है। उन्होंने तुम्हें चक्र में ग्रहण करने की सम्मति भी प्रदान की है। तुम यथा समय वहां अवश्य उपस्थित रहना।''

गुरुजी के निर्देश से गोस्वामीजी यथासमय तांत्रिक महात्माजी के पास पहुंचे। महात्माजी ने उन्हें साथ ले यथा समय 'भैरवी चक्र' की क्रिया प्रारंभ की। चक्र में एक भैरवी शक्ति (स्त्री) उपस्थित थी। यथा विधि उनकी अर्चना करने के पश्चात् क्रिया प्रारंभ होते ही, उपस्थित सभी लोगों के मन में 'भैरवी' के प्रति 'मातृ-भाव' उत्पन्न हो गया। गोस्वामीजी भी अपने मन में अचानक इस प्रकार भाव के परिवर्तन से आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने विस्मित होकर देखा कि 'चक्रेश्वर' सिद्ध महात्माजी ने पूजा के लिए देवताओं का आह्वान किया। मंत्रोच्चारण के

साथ सभी देवता प्रत्यक्ष होकर पूजा ग्रहण करने लगे। इस समय गोस्वामीजी में शिशु भाव का उदय होने से; वे घुटने के बल आगे बढ़ते हुए उन, भैरवी माताजी का स्तन पान करने लगे। उस समय सभी के मन में एक दिव्य और निर्मल आनंद की धारा प्रवाहित होने लगी। यहां चक्र में 'छिन्नमस्ता' देवी का आविर्भाव, सभी ने 'भैरवी माता' में प्रत्यक्ष किया।

गोस्वामीजी कभी-कभी इस 'चक्र' का उल्लेख करते हुए कहते थे, ''तांत्रिक अनुष्ठान यथाशास्त्र अनुष्ठित होने से मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। परम दयालु महादेव ने निम्न अधिकारियों के कल्याण के लिए 'तंत्र विधि' का प्रचार किया। इसे ठीक से न समझ कर तथा इसके दुरुपयोग को देखकर लोग तंत्र की निंदा करते हैं, यह अनुचित है।''

गया से गोस्वामीजी गाजीपुर आए। यहां पर कुछ तपस्वी साधु जन कोई ऊर्ध्वबाहु होकर, कोई खड़ा रहकर, कोई सिर नीचे करके कठोर तपस्या कर रहे थे। नवकुमार के प्रश्नों का उत्तर देते हुए गोस्वामीजी ने कहा, '' ये लोग ऐश्वर्य-कामना से इस प्रकार की कठोर तपस्या कर रहे हैं। इनमें कोई 5 वर्ष, तो कोई 12 वर्ष का व्रत लेकर तपस्या कर रहे हैं''

प्रयाग में किला के पास एक प्राचीन संत का उन्होंने दर्शन किया। महात्माजी नेत्रहीन थे, इसलिए लोग उन्हें सूरदास जी महाराज कहते थे। सिपाही विद्रोह के समय उन्हें बारम्बार स्थान छोड़ने के लिए कहा गया, पर वे अपना आसन छोड़कर अन्यत्र नहीं गए। उन्होंने कहा, ''जो बचाने वाला और मारने वाला है, उनकी मर्जी होगी, वही होगा। मैं अपना आसन नहीं छोड़ूंगा।'' युद्ध के समय वहां खूब गोले बारूद चले पर उन्हें जरा भी नुकसान नहीं पहुंचा! प्रयाग के सभी दर्शनीय मन्दिरों का दर्शन करने के बाद गोस्वामीजी वाराणसी पहुंचे। उस समय वाराणसी में तैलंग स्वामीजी 'अजगर वृत्ति' के साथ मौन व्रत धारण किये हुए थे। अपनी ओर से किसी के द्वारा कुछ खिला देने पर ही वे भोजन करते थे। गोस्वामीजी को देख उन्होंने आनंद व्यक्त करते हुए हाथ पर लिखा, ''याद है!'' विदित रहे कि स्वामीजी ने बहुत पहले गोस्वामीजी को

'मंत्र' देकर कहा था कि 'समय पर तुम्हें सद्गुरु की प्राप्ति होगी।'' इन दिनों तैलंग स्वामीजी की मान्यता इतनी अधिक हो गई थी कि लोग सुबह से उनके सिर पर जल अर्पित करके शिवजी की तरह उनकी पूजा किया करते थे। गोस्वामीजी से भेंट होने के कुछ दिनों बाद लगभग 280 वर्ष की आयु में तैलंग स्वामीजी ने स्वेच्छा से योगस्थ होकर नश्वर देह त्याग दी। देह त्याग की यह तिथि भी उन्होंनें पहले से बतला दी थी एवं शिष्यों के सब प्रश्नों का उत्तर भी एक दिन पहले देकर मौन हो गए थे।

परवर्तीकाल में गोस्वामीजी ने स्वयं अष्टसिद्धियाँ तो लाभ की ही, योग की चरम अवस्था असम्प्रज्ञात समाधि भी लाभ की। उससे सभी चितवृत्तियों का निरोध हो गया, यहाँ तक कि योग की वृत्ति का भी निरोध हो गया, परन्तु योग की चरम उपलब्धि से भी उनके भक्त-हृदय की पूर्ण तृप्ति न हुई। उनका मन श्यामसुन्दर को सम्यक रूप से प्राप्त करने के लिए मचल पड़ा। उनकी प्राप्ति हो सकती थी ज्ञान-कर्म-योगादि से अनावृत शुद्धा भक्ति के मार्ग से ही। इसलिए वे शुद्धा-भक्ति के पथ का संधान पाने के लिए प्रयत्न करने लगे।

इसी समय परमहंसजी ने आविर्भूत हो उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा- ''बेटा, तुम अब ब्रजभूमि चले जाओ। बड़ी जाग्रत भूमि है वह। वहाँ कुछ दिन भजन करने से तुम्हें श्रीकृष्ण और उनकी दिव्य लीला का साक्षात्कार होगा।''

विजयकृष्ण ब्रजभूमि चले गये। वहाँ रहकर भजन करने लगे। कुछ दिन वृन्दावन में भजन करने के पश्चात् उन्हें अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हुई। यौगिक सिद्धियों और सायुज्य, सारूप्यादि मुक्तियों को तुच्छ करने वाले प्रेम-भक्तिरस का पान कर वे कृतकृत्य हुए। उन्हें नित्य नयी-नयी लीलाओं की अनुभूति होने लगी।

वृन्दावन में गोस्वामीजी गोपीनाथ बाग स्थित दाऊजी के कुंज में ठहरे। यहां के मंदिर के पुजारी दामोदर ब्रजवासी अत्यंत आग्रहपूर्वक गोस्वामीजी व उनके शिष्यों को अपने कुंज ले गए। और भी ब्रजवासी उनसे अन्यत्र चलने का आग्रह कर रहे थे पर गोस्वामीजी ने दामोदर **पुजारी** को गरीब देख वहीं ठहरने का विचार किया। दामोदर पुजारी ने **पहले पहल** तो ठीक से सेवा की, पर बाद में जब उसे मालूम चला कि

कलकत्ता व अन्य स्थानों पर गोस्वामीजी के अनेक प्रतिष्ठित शिष्य हैं, तो रुपये वसूल करने के लिए वह सभी को बहुत साधारण भोजन देते हुए तंग करने लगा। शिष्यों को, गुरु सेवा के लिए रुपये भेजने हेतु, देश में पत्र लिखने के लिए वह बार-बार दबाव डालने लगा। गोस्वामीजी के पास जो कुछ भी अर्थादि आता था, वे पुजारी को सब दे देते थे। इतना पाने पर भी उसके व्यवहार में परिवर्तन नहीं आया। गोस्वामीजी उसे कुछ भी नहीं कहते थे। एक दिन सुबह सभी ने दामोदर पुजारी को गोस्वामीजी से क्षमा याचना करते देखा। पुजारी कह रहा था, ''कल रात को दाऊजी ने मुझे बहुत मारा।' गोस्वामीजी ने पूछा, 'क्यों मारा?'' दामोदर पुजारी ने अपने शरीर के मार के निशान बताते हुए कहा, ''बाबा! रात में सो रहा था। स्वप्न में दाऊजी प्रकट होकर मुझे थप्पड़ मारने लगे और कहने लगे, 'बदमाश! तेरी यह मजाल......? तू अच्छी तरह भोग नहीं देता है। गोसांई कुछ भी नहीं खा सकते हैं। उन्हें भोजन का क्लेश दे रहा है। आज तुझे पीट-पीटकर मार डालूंगा।' दाऊजी के प्रहारों से चिल्लाते हुए मैंने जागकर देखा कि मेरे अंग प्रत्यंग में मार के निशान हैं। देखिए, मेरे गाल सूज गये हैं। मेरे अंगों में अत्यंत पीड़ा हो रही है।'' गास्वामीजी ने कहा, ''दाऊजी महाराज ने स्वयं तुम्हें अनुशासित किया है, तुम भाग्यवान हो। भक्ति भाव से दाऊजी महाराज की सेवा करो, वे तुम्हें कोई अभाव नहीं रखेंगे।'' शिष्यगण दामोदर पुजारी की यह अवस्था देखकर विस्मित हुए। स्वप्न में पड़ी मार के निशान प्रत्यक्ष देख सब दंग रह गये। शिष्यों को इस बात की खुशी भी हुई कि अब यह थोड़ा अच्छा प्रसाद दिया करेगा।

वृन्दावन में गोस्वामीजी को नित्य तरह-तरह की लीलाओं के दर्शन होते। प्राय: पूजा के आसन पर बैठकर ध्यान करते ही दर्शन होने लगते। यदि कभी ऐसा होता कि दर्शन न होते, तो वे आसन पर ही बैठे रहते। दर्शन होने के बाद ही उठते। वैसे किसी समय भी उठते-बैठते, खाते-पीते लीला के दर्शन होने लगते और वे समाधिस्थ हो लीला के दर्शन करते रहते। रात्रि भी प्राय: इसी प्रकार बीतती। सारी रात जागकर वे शेष रात्रि में केवल एक घण्टा सोया करते। इस प्रकार सदा ध्यानमग्न रहने के कारण उन्हें मन्दिरों में जाकर दर्शन करने का समय कम मिलता।

वृन्दावन में सिद्ध वैष्णव महात्मा शिरोमणिजी का उस समय बहुत नाम था। उनसे गोस्वामीजी का पूर्व परिचय था। गोस्वामीजी प्राय: उनके पास जाते थे और सत्संग किया करते थे। उनके प्रति शिरोमणिजी भी असीम श्रद्धा रखते थे। वृन्दावन में साधारण वैष्णवों में काफी संकीर्णता पाई जाती है। 'वैष्णव मत' में साधना का मूल सिद्धांत है -

''तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुता।
अमानिना मानदेन कीर्तनीया सदाहरि:॥''

(**भावार्थ :-** साधक स्वयं को तृण से भी तुच्छ समझे, वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु होवे, स्वयं सम्मान-प्राप्ति की आशा न रखकर सर्वदा दूसरों के प्रति सम्मान रखते हुए, हरि नाम कीर्तन करे। ईश्वर सर्वभूत में हैं, इसलिए इस भावना से अपना भजन करना चाहिए।)

पर, इस सिद्धांत के विपरीत वे वैष्णवजन अन्य मतावलंबियों को तुच्छ मानकर उनको अपमानित करने की चेष्टा करते थे। गोस्वामीजी का वेश सन्यासियों का था। कट्टर वैष्णव सन्यासियों को घृणा से देखते हैं। उनके गले में रुद्राक्ष, पद्मबीज, तुलसी आदि की सप्तलहरी माला थी। वे जटा, दण्ड और कमंडलु धारण करते थे। कट्टर वैष्णवों ने इसे अनुचित माना और वैष्णव शास्त्रों में ऐसे वेश का उल्लेख नहीं होने की बात कहकर उन्हें अपमानित करने की चेष्टा की। गोस्वामीजी ने उनका संशय निवारण करते हुए कहा कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं सन्यासी वेश धारण किया था। वैष्णव ग्रंथ हरिभक्ति-विलास में कहा गया है-:

ये कण्ठलग्नतुलसी - नलिनाक्षमाला
ये वा ललाट - फलके लसदूर्द्धपुण्ड्रा:।
ये बाहुमूले परिचिह्नित शंखचक्रास्ते
वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति॥

भावार्थ :- जिनके कंठ में तुलसी, कमल और रुद्राक्ष की माला रहती है, जो ललाट में तिलक धारण करते हैं, बाहु-मूल में जो शंख व चक्र चिह्न धारण करते हैं, वे वैष्णव भुवन को पवित्र करते हैं। अतएव, वैष्णवों को तुलसी के **साथ-साथ कमल व रुद्राक्ष** की माला धारण करनी चाहिए।

वृन्दावन आये गोस्वामीजी को कई दिन हो गये थे। फिर भी गोविन्दजी के दर्शन करने न जा सके थे। एकदिन उन्होंने भक्तों से कहा - ''कल गोविन्दजी के दर्शन करने जायेंगे।'' इसकी खबर वृन्दावन के गोस्वामीगण को पड़ गयी। वे पहले ही उन्हें सनातन धर्म विरोधी, ब्राह्मधर्म प्रचारक, जातिनाशक अद्वैतवंश के एक कुलांगार रूप में जानते थे। इस समय गेरुआ वस्त्रधारी सन्यासी रूप में वृन्दावन आया देख उनसे और भी कुपित थे। उस समय सर्वप्रधान वैष्णव नेता एक प्रभु सन्तान ने वैष्णवों की एक सभा बुलाकर मन्दिर में प्रवेश करने से पूर्व उनका अपमान करने की एक योजना बनायी, जिससे वे मन्दिर में प्रवेश न कर सकें।

रात्रि में उस प्रभु सन्तान ने स्वप्न में देखा कि एक जंगली वराह गर्जन करता हुआ आया और उनके ऊपर आक्रमण करने लगा। उनकी निद्रा भङ्ग हुई। हाथ-मुँह धोकर वे लेट गये। निद्रा आने पर उन्होंने उसी वराह को फिर आक्रमण करते देखा। उन्होंने फिर उठकर हाथ-मुँह धोया और लेट गये। इस बार थोड़ी तन्द्रा ही आयी थी कि उन्होंने देखा कि बलदाऊजी वराह का रूप धारणकर प्रबल वेग से उनके ऊपर दौड़े और मुख से उनका वक्ष:स्थल मर्दन करते हुए बोले - ''तू गोसांई को दर्शन करने नहीं जाने देगा। तेरी इतनी स्पर्धा ! आज तेरे प्राण लेकर रहूँगा।'' कठोर मर्दन के कारण प्रभु सन्तान की श्वास रूद्ध हो गयी। वे चीखकर उठ बैठे। सोचने लगे कि क्या करें ? उस समय गौर शिरोमणी महाराज की सिद्ध महात्मा के रूप में वृन्दावन में ख्याति थी। उन्होंने उनके पास जाने का निश्चय किया। रात्रि में ही उनके पास जाकर उन्हें शरीर पर वराह भगवान के मुख रगड़ने के निशान दिखाते हुए स्वप्न का विवरण सुनाया और कहा - ''मुझे क्या करना चाहिए, बताने की कृपा करें।'' शिरोमणी महाशयने कहा - ''प्रभु ! आपने बड़ा अपराध किया है। दिन निकलने के पूर्व ही आप गोस्वामीजी से क्षमा प्रार्थना करें और सम्मान पूर्वक उन्हें स्वयं गोविन्दजी के दर्शन कराने की व्यवस्था करें।'' उन्होंने ऐसा ही किया। गोविन्दजी के दर्शन करते ही गोस्वामीजी भावावेश में संज्ञाहीन हो गये। उनकी यह अवस्था देख विद्रोहीगण अत्यन्त लज्जित और अनुतप्त हुए।

एक दिन जब गोस्वामीजी राधाबाग में बैठे थे, उन्हें श्रीचैतन्य महाप्रभु के दर्शन हुए। उनकी ज्योतिर्मय मूर्ति के दर्शन कर वे मूर्च्छित हो गये।

एक दिन गोपीनाथजी के मंदिर में महोत्सव था। उस दिन सुबह नगर संकीर्तन में गोस्वामीजी भावस्थ होकर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री गोपीनाथजी के आविर्भाव का अनुभव कर नृत्य करते हुए समाधिस्थ हो गए। अपराह्न लगभग तीन बजे वे स्वभाविक अवस्था में आए। उनकी इस अवस्था का दर्शन करने के बाद वृन्दावन में सब ओर उनका नाम फैल गया।

वृन्दावन के अप्राकृत स्वरूप के उन्हें दर्शन लगातार होते रहते थे। वहाँ के तरू लताओं तक के अप्राकृत स्वरूप का उन्हें ज्ञान हुआ। वे अपने शिष्य वर्ग से कहा करते - **''वृन्दावन के वृक्ष सब महापुरुष है, जो राधा-कृष्ण की अप्राकृत लीला के दर्शन हेतु वृक्ष रूप धारणकर वहां रह रहे हैं। मैंने बहुत बार उन महापुरुषों के दर्शन किये हैं।''**

इसी समय योगमाया देवी भी कुछ समय के लिए वृन्दावन आ गयी। सन्यासी वेश धारी गोस्वामीजी को वृन्दावन में पत्नी के साथ वास करते देख सिद्ध सन्त श्रीरामदास काठिया बाबा ने कुछ साधुओं को उन पर कटाक्ष करते सुना। उन्होंने उन्हें डाटकर कहा - ''चुप करो। ये महात्मा महाशक्तिशाली हैं। तेजस्वी साधु अग्नि के समान होते हैं। उनके तेज से सब कुछ दग्ध हो जाता है। घर में रहने से उनका कुछ नहीं बिगड़ता।''

गोस्वामीजी की इच्छा नहीं थी कि योगमाया देवी वृन्दावन में उनके साथ रहें। उन्होंने पहले ही पत्र लिखकर वृन्दावन आने के लिए उन्हें मना किया था। पर इधर कुछ दिनों से गोस्वामीजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। यह सुनकर वे चली आयी थीं। गोस्वीमीजी ने उनसे कहा - ''यदि तुम्हें वृन्दावन में रहना ही है तो अलग मकान लेकर रहो।'' उन्होंने कहा - ''मैं वृन्दावन तीर्थ करने नहीं आयी। आयी हूँ आपको अस्वस्थ जान आपकी सेवा करने। मैं अन्यत्र नहीं जाऊँगी।'' इस बात को लेकर दोनों में कलह हुआ। अन्त में गोस्वामीजी ने कहा - ''तुम नहीं जाओगी तो मैं अन्यत्र चला जाऊँगा। तुम्हारे साथ नहीं रहूँगा।''

दूसरे दिन प्रात: योगमाया कुलदा ब्रह्मचारी के साथ यमुना स्नान के लिए जाने को प्रस्तुत हुईं। जाते समय कुलदा ब्रह्मचारी ने गोस्वामीजी को प्रणाम किया। प्रणामकर जैसे ही सिर ऊँचा किया तो देखा कि माँ नहीं है। कुंज में चारों ओर घूम-फिरकर देखा। पर माँ कहीं नहीं। आश्चर्य! कुंज का दरवाजा भी भीतर से बन्द और माँ का पता नहीं। ब्रह्मचारी, योगजीवन, सतीश आदि सब माँ को बाहर भीतर सब जगह ढूंढते फिरे। उनका कहीं पता न चला। तब उन्होंने गोस्वामीजी से जाकर कहा।

गोस्वामीजी हँसकर बोले - ''अरे, उसे तो परमहंसजी ले गये। कल जब उसके साथ इतना कलह हुआ, मैंने परमहंसजी का स्मरण किया। उन्होंने कहा - 'चिंता न करो। मैं कल ही उसे ले जाऊँगा।''

ब्रह्मचारी - परमहंसजी कैसे ले गये? मैंने तो देखा नहीं।

गोस्वामीजी - तुम देखते कैसे? वे सूक्ष्म शरीर में जो आये थे।

ब्रह्मचारी - पर माँ तो स्थूल शरीर में थी। उन्हें भी जाते नहीं देखा। दो चार सैकेंड ही तो लगे थे मुझे प्रणाम करने में। इतने में कैसे परमहंसजी उन्हें ले गये?

गोस्वामीजी - योगी सब कर सकते हैं, स्थूल को सूक्ष्म और सूक्ष्म को स्थूल कर सकते हैं। उन्होंने उसके शरीर के पंचभूत को पंचभूत में मिला दिया। इस प्रकार एक ही क्षण में उसके शरीर को सूक्ष्म से सूक्ष्म कर उसे ले गये।

ब्रह्मचारी - वे उन्हें कहाँ ले गये?

गोस्वामीजी - अपने निवास स्थल मानसरोवर में।

ब्रह्मचारी - मानसरोवर, जो तिब्बत में है?

गोस्वामीजी - नहीं, नहीं। वह तो भौगोलिक मानसरोवर है, जिसे 'मानतलाव' कहते हैं। उस मानसरोवर तक तो सभी जा सकते हैं। पर मैं जिस मानसरोवर की बात कह रहा हूँ, वह कैलाश जाने के रास्ते में है। वहाँ सिद्ध योगी ही जा सकते हैं। वहाँ कितने ऋषि, मुनि, देव, देवी रहते हैं।

एक दिन सन्ध्या समय एक वृद्धा कुञ्ज में आकर बोलीं - ''आपकी माँ गोसाईं हमारे घर बैठी हैं। अभी-अभी उन्हें बैठे देखा। वे कब आयीं, कहाँ से आयीं, कुछ पता नहीं।''

सुनते ही गोस्वामीजी ने योगजीवन से कहा - ''जा, जाकर माँ को ले आ।''

योगजीवन जाकर माँ को ले आये। माँ जैसी थीं, वैसी ही लौटकर आ गयीं। परिवर्तन केवल इतना था कि वे गेरूआ वस्त्र धारण किये थीं। योगजीवन ने माँ के आकस्मिक अन्तर्धान का कारण पूछा तो बोलीं - ''परमहंसजी पाँच महापुरुषों को साथ लेकर आये थे। वे सब छह-सात हाथ लम्बे थे। सबके सिर पर पगड़ी थी। वे लोग मुझे यमुना पर ले गये। बोले -- 'यहाँ स्नान करो।'' मैंने स्नान किया। उसके पश्चात् वे मुझे कहाँ, किस प्रकार ले गये, मैं नहीं जानती। थोड़ी देर में देखा कि मैं एक पहाड़ पर आ गयी हूँ। बड़ा ही मनोरम स्थान था वह। वहाँ किसी भी प्रकार के उद्वेग और अशान्ति का नाम भी नहीं था। आनन्द ही आनन्द था। परमहंसजी ने उन पाँच महापुरुषों को मेरे रक्षक रूप में मेरे पास रख छोड़ा था। मैं उनके साथ स्वेच्छा-पूर्वक जहाँ चाहती वहाँ जाती। वे ही मुझे यहाँ पहुँचा गये हैं। मेरा वहाँ से आने का मन तो नहीं करता था। वहाँ से क्या कोई आना चाहता है? पर कुतु (पुत्री) में मेरे प्राण पड़े हुए थे, इसलिए आ गयी।''

योगमाया देवी की इच्छा थी कि उनका शरीर अप्राकृत वृन्दावन-धाम में ही छूटे। राधारानी जी ने उनकी मनोकामना पूर्ण की। कुछ ही दिन बाद उन्हें वृन्दावन-रज **प्राप्त हुई।**

माता योगमाया ने **एक दिन** कुलदानंद को कहा था **''तुझे एक बात कहती हूँ। यदि धर्मजगत में धनी होने की इच्छा हो तो कृपण होना (अर्थात् मितभाषी होना)। अपनी किसी अवस्था प्राप्ति के विषय में किसी को कुछ भी मत बतलाना। यदि बतलओगे तो फिर वह अवस्था नहीं रह जायेगी।''**

वृन्दावन में गोस्वामीजी नित्य प्रातः श्री चैतन्य चरितामृत का पाठ सुनते। उसके पश्चात् 6 से 10 बजे तक स्वयं श्रीमद्भागवत का पाठ करते। श्रोताओं में वृन्दावन के बन्दरों का दलपति एक मोटा ताजा बन्दर

भी हुआ करता। वह ठीक पाठ के समय आकर गोस्वामीजी के बगल में बैठ जाता और पाठ शेष होने तक बैठा रहता। इस बीच यदि उसे कोई खाने को देता तो उसे रख छोड़ता। पाठ पूरा होने के पश्चात् खाता। यदि कोई बन्दर पाठ के समय कुछ उपद्रव करता, तो उसे ऐसी आँख दिखाता कि वह भाग जाता। एक बार कोई बन्दर कुंज से एक लोटा ले गया। गोस्वामीजी ने पाठ सुनने वाले बन्दर से कहा - ''देखो, कोई बन्दर हमारा लोटा ले गया है। उसे ला दोगे?'' उसी समय वह एक ऊँचे स्थान पर जा चारों ओर देखने लगा। थोड़ी देर में लोटा लाकर कुंज में दे गया।

गोस्वामीजी उस बन्दर से बहुत स्नेह करते। उसके बारे में कहते - 'यह कोई वैष्णव महात्मा हैं, जो बन्दर के रूप में ब्रजवास कर रहे हैं।'

वृन्दावन में रहते समय विजयकृष्ण सदा कृष्ण-प्रेम में छके रहते। थोड़ा सा भी उद्दीपन होने पर देहकी सुध खो बैठते। एक बार जब वे शौच में बैठे थे, उनके निवास स्थान के पास से जाते सङ्कीर्तन की धुन सुनायी पड़ी। वे ज्ञानशून्य हो बिना शौच क्रिया समाप्त किये कीर्तन में जा सम्मिलित हुए। हरि लूट के पश्चात् घर लौटे तब ध्यान आया कि शौच-कार्य तो हुआ नहीं।

श्री गोस्वामीजी कहते थे, श्रीवृन्दावन की मिट्टी नहीं, रज कहना चाहिए। व्रज की रज परम पवित्र है। पृथ्वी के अन्य किसी स्थान की मिट्टी के साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती। इस रज के लगा लेने से जूठन आदि सब कुछ शुद्ध हो जाता है; श्रीवृन्दावन में जल की अपेक्षा रज से ही अधिक पवित्रता होती है। जब मैं यहां पहले-पहल आया तब भोजन कर चुकने पर जल से ही हाथ मुँह धोता था। व्रजवासियों ने मुझसे कहा, ''बाबा, ब्रज की रज लगा लेने से और भी अधिक शुद्धि हो जाती है।'' मुझसे दो दिन तक इस प्रकार कहने पर मैंने सोचा कि 'अच्छा, यही कर देखें।' तीसरे दिन से मैं पानी का उपयोग न करके हाथों में और मुँह में रज ही लगाने लगा। ऐसा करते ही मेरे मन से दुविधा दूर हो गई, जूठन का कुछ संस्कार ही न रह गया। गंगाजल से धोने पर जैसे पवित्रता मालूम होने लगती है वैसा ही मुझे जान पड़ने लगा। तब से मैं इस रज को ही काम में लाता हूँ। सफाई के लिए थोड़े

से पानी से हाथ मुँह धो लेना बहुत है। यहाँ तो ठाकुरजी के भोग के बर्तनों तक को रज से रगड़ लिया जाता है, इसी से वे पवित्र हो जाते हैं।''

शिष्य - तो क्या व्रज की रज में बहुत ही गुण हैं? उसको शरीर में लपेट लेने से क्या सत्त्वगुण की वृद्धि होती है? रज में विश्वास हुए बिना क्या सिर्फ देह में मल लेने से ही सत्त्वगुण बढ़ जायगा ?

श्री गोस्वामीजी - देह में रज को मलने से ही इसका मतलब समझोगे। विश्वास करो चाहे न करो, वस्तु का गुण कहाँ जायेगा? कुछ दिन हुए, एक बङ्गाली भले मानस श्रीवृन्दावन में आये थे। दो-तीन दिन तक मन्दिरों में दर्शन करके दाऊजी के यहाँ आये। मैं उस समय मन्दिर के समीप बैठा हुआ था। बातचीत में उन्होंने मुझसे कहा ''महाशय, देश में रहते समय वृन्दावन की आध्यात्मिक विशेषता की न जाने कितनी बातें सुनी थी, किन्तु है वह कहाँ? कहीं कुछ भी तो नहीं देखा। रज का बहुत गुण सुना था, वह भी तो कुछ समझ में नहीं आया। जैसे और स्थान हैं, वैसा ही मुझे वृन्दावन जान पड़ता है।'' मैंने उनसे कहा, रज में तो अवश्य ही विशेषता है। आप एक बार रज में गिरकर तो देखिए।' उन्होंने एक बार रज में माथा टेककर कहा ''कुछ तो नहीं है, जैसे का तैसा ही हूँ।'' मैंने कहा, कोट उतार डालिए, साष्टाङ्ग प्रणाम करके रज में एक बार लोट जाइए, फिर देखिए कि कुछ परिवर्तन होता है या नहीं? वे तुरन्त ही जाँच करने को कोट उतारकर रज में लोटने लगे। दो तीन बार लोटते ही वही जानते हैं कि उन्हें क्या हो गया, उन्होने ऊँ ऊँ करके रो दिया। कहने लगे, महाशय, हूँ तो मैं बड़ा अविश्वासी; किन्तु जिन्दगी में कभी रज के इस गुण को न भूलूँगा।''

श्री गोस्वामीजी कहते थे ''अरे बापू, कितने ही देवी देवता, ऋषि-मुनि इस वृन्दावन की रज को प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं। यहाँ की रज के प्रत्येक कण में महाविष्णु वर्तमान हैं। श्रीवृन्दावन अप्राकृत धाम है। यहाँ पर अप्राकृत लीला नित्य ही होती रहती है। बेखटके होकर उसी के दर्शन करने को वैष्णव महापुरुष लोग वृक्ष आदि के रूप में रहते हैं; ब्रजधाम में रहकर आनन्द से भजन करते हैं और लीला देखते हैं। इसीलिए व्रज के पेड़ पौधों की भी हिंसा का निषेध है। उपद्रव करने से उनकी बहुत हानि होती है। गोस्वामीजी ने इस सन्दर्भ में

एक रोचक घटना सुनाई :-

''यहाँ से पास ही एक कुंज में बहुत पुराना नीम का सुन्दर पेड़ था, कुंज के वैष्णव बाबाजी पेड़ की खासी हिफाज़त करते थे। एक दिन वहाँ की एक वैष्णव युवती ने, रजस्वला अवस्था में, उसे पकड़ लिया। रात को बाबाजी ने सपने में देखा- एक वैष्णव ब्रह्मचारी ने आकर उनसे कहा- ''तुम्हारी इस कुंज में इतने दिन से बड़े आराम से रहते थे, कल तुम लोगों की वैष्णवी अशुद्ध काम कलुषित दशा में रहकर वृक्ष से बारबार लिपटी है। इससे मेरा बहुत नुकसान हुआ है; इसी से मैंने इस स्थान को छोड़ दिया।'' बाबाजी ने सबेरे उठकर देखा कि पेड़ बिल्कुल सूख गया है। हम लोगों ने भी जाकर देखा, एक ही रात के बीच में वह भारी पेड़ बिल्कुल सूख गया था।

श्रीवृन्दावन में, किसी कुंज में, एक सुन्दर पेड़ था। उस पेड़ को काट डालने की आज्ञा उक्त कुंज के मालिक ने अपने मातहतों को दी। उन्होंने रात को सपना देखा कि एक वैष्णव वेशधारी ब्राह्मण आकर उनसे कह रहा है- मैं तुम्हारे कुंज में, उस वृक्ष के रूप में, मुद्दत से रहता हूँ। श्रीवृन्दावन की रज को प्राप्त करके धन्य होने की इच्छा से ही मैं वृक्ष बना हुआ हूँ। वृक्ष को काटकर कभी मुझे उस रज के स्पर्श से वञ्चित मत करना। अगर तुम काट डालोगे तो मुझे फिर जन्म लेना पड़ेगा, इससे तुम्हारा भी भला न होगा। स्वप्न को निराधार समझकर तुम मेरे इस अनुरोध को टाल मत देना। तुम्हारे विश्वास के लिए कल बड़े तड़के पेड़ के तले एक बार खड़ा होऊँगा; चाहो तो मुझे देख सकते हो।' अगले दिन बड़े तड़के पण्डितजी ने पेड़ के नीचे सचमुच एक ब्राह्मण को देखा, किन्तु इतने पर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कुछ परवा न की। पेड़ को उन्होंने कटवा ही डाला। सब हाल सुन लेने पर भी जिन्होने वृक्ष को काटा था वे हैजे से बीमार होकर चल बसे। कई दिन के भीतर ही पण्डितजी की स्त्री और लड़के (बच्चे) को भी हैजे ने साफ कर दिया। वृन्दावन में पण्डितजी दर्शनशास्त्र के नामी विद्वान माने जाते थे। किन्तु इस समय उनकी अक्ल गुम है, वे गूँगे बने बैठे हैं। पहले सभी लोग उनका बहुत बहुत सम्मान करते थे, किन्तु अब कोई उनको तनिक भी नहीं मानता।''

श्री गोस्वामीजी अपने अनुगतों से कहते थे - ''श्रीवृन्दावन अप्राकृत धाम है, वहाँ पर सभी कुछ अद्भुत है। श्रीवृन्दावन भूमि के वृक्ष, लता, पशु, पक्षी सभी दूसरे प्रकार के हैं। अन्य किसी स्थान के साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। वहाँ के सभी वृक्षों की शाखाएँ और पत्तियाँ नीचे की ओर झुकी हुई हैं। कई स्थानों में बड़े बड़े पेड़ तक, लता की तरह, रज को छू रहे हैं। देखने से साफ मालूम होता है कि साधु वैष्णव महात्मा लोग ही, ब्रज की रज पाने के लिए, वृक्ष का रूप धारण किए हुए हैं। वृक्षों में देवी देवताओं की साफ साफ मूर्तियाँ अपने आप बनी हुई हैं। राधाकृष्ण, हरे कृष्ण प्रभृति नामों के अक्षर अपने आप वृक्षों में बनते रहते हैं। कहीं पर सिर्फ 'रा और कहीं पर 'कृ' ही बना हुआ है। वृक्ष की नस नस में इन स्वाभाविक अक्षरों को देखने से मुझे बड़ा अचम्भा हुआ है।''

शिष्य - तो यह सब क्या सभी को दीख पड़ता है अथवा सिर्फ आपको ही देखने को मिला था?

श्री गोस्वामीजी ने कहा - ''यह सब तो सभी ने देखा है। कालीदह पर बहुत पुराना एक केलिकदम्ब का पेड़ है। उसकी शाखा-प्रशाखाओं में 'हरेकृष्ण, 'राधाकृष्ण' नाम साफ साफ लिखा हुआ है। जिसका जी चाहे, देख आ सकता है। वन की परिक्रमा करते समय, एक दिन, एक वन के पास बैठे हुए थे। सामने एक पेड़ का पत्ता देखकर उठा लिया। ध्यान से देखा तो उसकी प्रत्येक शिरा में, नागरी लिपि में, 'राधाकृष्ण' नाम लिखा पाया। तनिक ढूँढते ही पेड़ मिल गया। तब पण्डित जी और सतीश प्रभृति मेरे साथ जो जो भी थे सबको बुलाकर मैंने दिखलाया; एक ही प्रकार का नाम सभी को वृक्ष के पत्ते-पत्ते में मिला। खोज करने से वहाँ पर ऐसी बहुत सी विचित्रताएँ देखने को मिल सकती हैं।''

परिक्रमा करते समय एक दिन श्री गोस्वामीजी भक्तों के साथ एक वन के समीप पहुँचे। सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण ने उस वन के कदम्ब के पत्ते का दौना बनाया था। अब तक भगवान उसी लीला का उदाहरण समय-समय पर, भक्तों को दिखाते हैं। वे लोग वन के भीतर जाकर ढूँढते-ढूँढते हैरान हो गये। किसी पेड़ में दोना देखने को न मिला। फिर

साष्टांग नमस्कार करके, कातर भाव से, सब लोग बैठ गये। अब देखा तो सामने ही कदम के पेड़ का पत्ता दोने की शकल में दीख पड़ा। पास जाकर देखा तो पेड़ के सभी पत्तों को दोने के आकार का पाया। जो लोग साथ में थे, अब सब ने वृक्ष के पत्ते-पत्ते में दोना देखा।

चरणपहाड़ी पर जाकर उन्होंने देखा कि पहाड़ के पत्थर पर गाय, बछड़े और मनुष्य के पैरों के असंख्य चिह्न बने हुए हैं। भगवान श्रीकृष्ण की जिस वंशी की ध्वनि से सारा वृन्दावन मुग्ध हो जाता था; उसी मधुर वंशीध्वनि से एक बार यह पहाड़ भी नरम पड़ गया था। उसी समय गाय, बछड़े और चरवाहे, लड़के, जो कि उस समय श्रीकृष्ण के साथ उक्त पहाड़ पर थे, सभी के पैरों के चिह्न उस पत्थर पर अंकित हो गये। वे सब चिह्न आज भी पहाड़ पर साफ साफ मौजूद हैं। देखने से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि ये मनुष्य के खोदे हुए कभी नहीं हैं। मनुष्य वैसा कभी बना ही नहीं सकता।

एक बार गोस्वामीजी युमनातट पर बैठे थे। यकायक बोल पड़े- ''अरे, डुबोयेंगे नहीं, डुबोयेंगे नहीं। उनकी लड़की कुतू भी उस समय वहाँ थी। उसने पूछा - ''बाबा, यह क्या कह रहे थे ? किससे कह रहे थे ?'' उन्होंने कहा - ''अरे और किससे कहता ?'' कुतू ने कहा - ''बाबा स्पष्ट कहिये न।'' तब उन्होंने कहा - ''कृष्ण गोपियों के साथ नौका विहार कर रहे थे। विहार करते-करते वे नौका को डुबाने का उपक्रम करने लगे। गोपियाँ चीत्कार कर उठीं। तभी कहा था - 'डुबायेंगे नहीं। मैं जानता था कि वे गोपियों को डराने के लिए ऐसा कर रहे हैं, क्योंकि नौका डुबाते तो स्वयं भी तो डूबते।''

एक दिन गोस्वामीजी, गौर शिरोमणि तथा वृन्दावन के कुछ भक्तजनों के साथ नगर कीर्तन करते हुए जा रहे थे। उस समय हाड़ाबाड़ी नामक स्थान पर सभी ने देखा कि भावमग्न गोस्वामीजी संकीर्तन में जिस प्रकार ताल एवं लय पर नृत्य कर रहे हैं, उसी प्रकार सामने एक वृक्ष की शाखाएं भी ऊपर-नीचे झूल रही हैं। पहले तो लोगों ने सोचा कि शायद बंदरों की उछल कूद से ऐसा हो रहा है, पर बाद में खोज करने पर पता चला कि वास्तव में वृक्ष अपने आप नृत्य शैली में नृत्य कर रहा था। श्री चैतन्य महाप्रभु की जीवनी में भी ऐसा उल्लेख

मिलता है। इस सत्य के प्रत्यक्ष दर्शन कर उस दिन सभी ने वृक्ष को प्रणाम निवेदित कर अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

वृन्दावन में रहते हुए अर्धकुंभ मेले के समय एक दिन गोस्वामीजी अपने आसन से उठकर यथासमय साधुओं के दर्शनार्थ निकले। उस दिन साधुओं की छावनी की ओर न जाकर, वे यमुना की रेती से काफी दूर निकल गये। एक स्थान पर अचानक बालू में एक हड्डी को देखकर उन्होंने उसे निकाला। उनके साथ उस समय श्रीधर, सतीश आदि कुछ शिष्य थे। गोस्वामीजी ने उन्हें हड्डी दिखाते हुए कहा, ''देखो, यह किसी महापुरुष की अस्थि है। इस पर 'हरेकृष्ण' नाम लिखा हुआ है।'' उन्होंने वह हड्डी लाकर साधुओं को भी दिखाई। 'हरे कृष्ण' नाम देखकर साधुओं ने हड्डी को साष्टांग प्रणाम किया। 'यह अस्थि किसी सिद्ध वैष्णव महात्मा की है।' ऐसा निश्चय कर उसे बड़ी धूमधाम से, संकीर्तन करते हुए यमुना की रज में पुन: अच्छी तरह समाधिस्थ किया गया।

गोस्वामीजी ने प्राचीन कालियादह में स्थित कंदब के एक वृक्ष का उल्लेख कर बताया था कि उस वृक्ष की छालों में हरि, कृष्ण, राधा आदि असंख्य नाम स्वाभाविक रूप से प्रकट हो गये हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसी वृक्ष से कूदकर भगवान कृष्ण ने 'काली-नाग' का मर्दन किया था। गोस्वामीजी ने अपने शिष्यों को इस वृक्ष का दर्शन करवाया था। उस समय सभी ने वृक्ष पर 'नाम' प्रकटित हुआ देखा था।

वृन्दावन मे पंचकोसी की परिक्रमा करते समय, एक बार अप्राकृत मधुर कीर्तन ध्वनि सुनकर उस दिशा में गोस्वामीजी दौड़ने लगे। साथ में जो लोग थे, उन्होंने भी उनका अनुसरण किया। कुछ दूर जाकर सबने देखा कि दिव्य कांतियुक्त एक महात्माजी भाव विभोर होकर मधुर कीर्तन कर रहे हैं। सब लोग ज्योंही पास आए, वे महात्माजी अदृश्य हो गए। गोस्वामीजी तथा सब लोगों ने देखा, जिस स्थान पर महात्माजी बैठे हुए थे, वहां पर केवल सूखा हुआ एक छोटा वृक्ष है। गोस्वामीजी ने वृक्ष के चारों ओर जमीन पर एक डंडे द्वारा गोलाकार चिन्ह अंकित किया। थोड़ी देर वहां रहने के बाद सब वापस चले गए। अगले दिन गोस्वामीजी पुन: उसी स्थान पर गए। उस दिन सभी ने देखा कि गोलाकार चिन्ह तो है,

पर वृक्ष का नामोनिशान कुछ भी नहीं है। यह देखकर सभी चकित रह गए। बाद में गोस्वामीजी ने कहा था कि इस धाम में अनेक महात्मागण इसी प्रकार गुप्त रूप में रहकर भजन और लीला-गान करते रहते हैं।

एक दिन यमुना के किनारे गोस्वामीजी अकेले भ्रमण कर रहे थे। उस समय उन्होंने एक गौरवर्ण दिव्य शरीर के महापुरुष का दर्शन किया। उन्होंने देखा कि महात्माजी के पैर जमीन से आधा हाथ ऊंचाई पर हैं। गोस्वामीजी ने प्रणाम कर उनका परिचय पूछा। उन्होंने हंसते हुए अपना परिचय 'निमाई पंडित' कहकर दिया। यहां पर यह स्मरणीय है कि श्री चैतन्य महाप्रभु का नाम पहले 'निमाई पंडित' था। गोस्वामीजी भावावेश में उनके चरणों पर गिरकर रोने लगे। व्याकुल भाव से वे कहने लगे, ''ठाकुर! बहुत इधर-उधर घूमा हूँ।'' महात्माजी ने कहा, ''तेरे कुल की यही रीति है।'' गोस्वामीजी ने उनसे पुन: प्रकट होने की प्रार्थना की, उन्होंने उत्तर दिया। प्रकट होने का दिन चला गया है, अभी फिर से प्रकट होने पर कोई विश्वास नहीं करेगा।'' गोस्वामीजी ने पूछा, ''आपका धर्म क्या है ?'' उन्होंने कहा, ''हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।'' इसके बाद वे अदृश्य हो गये। 'श्री चैतन्य चरितामृत' में महाप्रभु के संबंध में कहा गया है - ''अद्यपिह सेई लीला करे गौरा राय। कोनो कोनो भाग्यवाने देखिबारे पाय॥'' (अर्थात् आज भी वही लीला, गौरांग महाप्रभु की चल रही है। किसी किसी भाग्यवान को यह लीला दिखाई पड़ती है।) गोस्वामीजी को इस प्रकार प्राप्त दर्शन, ग्रंथ में लिखित श्लोकों की पुष्टि करते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं हैं।

गोस्वामीजी एक दिन सुबह वृन्दावन परिक्रमा में निकले। कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि एक वैष्णव हाथ में माला लिये हुए उनके आगे-आगे चल रहा है। उसकी स्वाभाविक चाल से गोस्वामीजी को संदेह हुआ। वे कुछ तेज चलकर उससे आगे बढ़ गए और परिचय पूछने लगे। वैष्णव ने उत्तर दिया, ''मैं वृन्दावन के गोविन्द मंदिर में सेवक था। सेवा की वस्तुओं को चुराकर अपव्यवहार करने से मुझे प्रेत बनना पड़ा। मैं बहुत क्लेश में हूँ। सर्वदा वृश्चिक-दंशन जैसी यंत्रणा भोग रहा हूँ।'' गोस्वामीजी ने कहा, ''आप जो सर्वदा हरिनाम-जप कर रहे हैं,

इससे क्या कोई लाभ नहीं हो रहा है?'' उन्होंने कहा ''यह पूर्वाभ्यास वश हो रहा है, इससे कोई लाभ नहीं हो रहा है। उन्होंने अपना सम्पूर्ण परिचय देते हुए गोस्वामीजी से कहा, ''देश में मेरी बहुत संपत्ति है। आप यदि कृपा पूर्वक मेरे उत्तराधिकारियों द्वारा श्राद्ध कर्म करवा दें तो मेरी मुक्ति हो। गोस्वामीजी ने उनकी इच्छानुसार श्राद्ध कर्म कराया। श्राद्ध के पश्चात इस प्रेतात्मा का दिखना बन्द हो गया। मृत व्यक्ति के लिए हिन्दू शास्त्रों में श्राद्ध और पिंडदान की आवश्यकता बताई गई है। गोस्वामीजी द्वारा कही गई यह घटना श्राद्ध तथा पिण्डदान के महात्त्यम को सूचित करती है।

गोस्वामीजी जिस समय वृंदावन गये थे, उस समय ब्रज में हिंसा न होने से कौए भी नहीं थे। जहां हिंसा होती है, वहीं कौए रहते हैं। यहां के हिंसक प्राणी भी हिंसा नहीं करते हैं।

गोस्वामीजी की छोटी पुत्री प्रेमसखी ने वृन्दावन प्रवास के दौरान एक दिन पिता से कहा, ''पिताजी! एक सुंदर छोटा बालक मेरे साथ-साथ घूमता रहता है और मुझे देखकर हंसता है। यह कौन है? घर में तो और कोई बालक नहीं हैं।'' गोस्वामीजी ने कहा, ''दाऊजी तेरे साथ खेलते हैं। तू गोपाल की एक मूर्ति लाकर पूजा किया कर।'' प्रेमसखी ने पिता के आदेश से गोपाल की एक मूर्ति लाकर आजीवन उसकी सेवा-पूजा की।

वृंदावन में, वैष्णव सम्प्रदाय में कई तरह की संकीर्णता देखी जाती है। एक बार कुछ वैष्णवों ने गौर शिरोमणिजी से पूछा, ''यहां एक स्थान पर श्यामा पूजा (काली पूजा) होगी। हम लोग उसमें योगदान कर सकते हैं कि नहीं?'' शिरोमणिजी ने पूछा, ''आप लोग किसकी उपासना करते हैं?'' वैष्णवों ने कहा, ''श्रीकृष्ण की।'' शिरोमणिजी ने फिर पूछा, ''श्रीकृष्ण प्राप्ति का उपाय क्या है?'' वैष्णवों का उत्तर था, **''गोपियों के शरणागत होकर भजन करना होगा।'' तब शिरोमणिजी ने कहा - ''गोपियों ने श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए वन में जाकर कात्यायनी देवी की पूजा की थी, व्रत किया था। इसलिए, वैष्णवों को श्यामा पूजा में बाधा कैसे हो सकती है?''** शिरोमणिजी के इस कथन से वैष्णवों का संशय मिट गया। शिरोमणिजी ने बाद में इस प्रसंग से गोस्वामीजी को

अवगत कराया। गोस्वामीजी उनके सर्वधर्म तथा देवी देवताओं के प्रति समभाव से अत्यंत आनंदित हुए।

गोस्वामीजी सपरिकर परिक्रमा करते हुए एक बार कुसुमसरोवर होते हुए गोवर्धन पहुंचे। गोवर्धन की शोभा देखते हुए वे अकेले कुछ आगे बढ़ गये। इसी बीच अकस्मात् एक आवाज सुनकर उन्होंने गोवर्धन पर्वत की एक गुफा के पास कंकालकाया एक महात्माजी को हाथ हिलाते हुए देखा। गोस्वामीजी उनके निकट गये। उनके शरीर में हड्डियों के ऊपर त्वचा का आवरण मात्र था। शरीर में मानों रक्त मांस आदि कुछ भी नहीं था। गोस्वामीजी ज्योंहीं उन्हें प्रणाम करने झुके, महात्माजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। गोस्वामीजी ने उनसे पूछा, ''क्या यह शरीर 'आपका सूक्ष्म शरीर है ?'' महात्माजी ने उत्तर दिया, ''नहीं, उसे सूक्ष्म शरीर नहीं कहते। ईश्वर ने मुझे इसी प्रकार रखा है। वासना के क्षय होने के साथ साथ मेरे शरीर के एक एक अंग नष्ट हो गए हैं। अभी केवल आंखों और जिह्वा की वासना शेष है ? इसीलिए ये दो इंद्रियां अभी भी हैं।'' गोस्वामीजी ने पूछा, '' आपकी अभी और कौन सी वासना शेष है ?' उन्होंने कहा, ''भगवान की लीला के दर्शन और हरिनाम जप करने की वासना! केवल यही शेष हैं।'' अपनी आयु उन्होंने चार सौ वर्ष से अधिक बतलाई। श्री चैतन्य महाप्रभु और श्री नित्यानंद का उन्होंने दर्शन किया है। महाप्रभु के पार्षद अद्वैताचार्य और हरिदासजी के साथ इनका विशेष परिचय था।

वर्ष में किसी एक निर्दिष्ट तिथि पर वे एक बार उच्च स्वरों में 'हरि बोल' का जयघोष किया करते हैं। यह जयघोष सात आठ मील दूर से भी सुनाई पड़ता है। गोस्वामीजी ने बताया था कि उन्होंने एक बार इन महात्माजी की मधुर हरिध्वनि सात मील दूर से सुनी थी।

गोवर्धन परिक्रमा के पश्चात् जब सब लोग साक्षीगोपाल रूपसरोवर होकर आलोकगंगा पहुंचे तब योगमायादेवी महावीरजी को यात्रियों के साथ परिक्रमा करते देखकर विस्मित हुईं। गोस्वामीजी से पूछने पर उन्होंने कहा, **''वन यात्रियों के रक्षक के रूप में महावीर जी अदृश्य रहकर परिक्रमा करते हैं। जिन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है, वे उनका दर्शन पा सकते हैं।''**

गोस्वामीजी जब ब्रज परिक्रमा करते हुए 'काम्यवन' पहुंचे, तब मधुर संगीत व गीत ध्वनि सुनकर गायक का दर्शन करने के लिए व्याकुल होकर यहां वहां खोज करने लगे। लेकिन जब दर्शन नहीं हुआ तो वे व्याकुल भाव से प्रार्थना करने लगे, ''यहां कौन है ? जो, इस प्रकार मधुर संगीत और गीत गायन कर रहे हैं। कृपा कर दर्शन दीजिये।'' उन्होंने तब देखा कि एक वृक्ष से अकस्मात एक जटाधारी महात्माजी प्रगट हुए। गोस्वामीजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। महात्माजी ने कहा, ''यहां जितने वृक्ष हैं, सभी महापुरूष हैं। श्रीकृष्ण की अप्राकृत नित्य लीला का दर्शन करने हम इस रूप में वास कर रहे हैं।'' यह सुनकर गोस्वामीजी ने सभी वृक्षों को साष्टांग प्रणाम किया। जब प्रणाम करके उठे, तब महात्माजी अंतर्ध्यान हो गये।

पुन: वृंदावन लौटकर गोस्वामीजी पूर्ववत रहने लगे। इन्हीं दिनों एक बार वृद्ध गौर शिरोमणि जी ने उनसे कहा, ''प्रभु! मैंने राधारानी की कृपा से अप्राकृत वृंदावन लीला-दर्शन का अधिकार प्राप्त किया है, पर पता नहीं क्यों, यह स्थायी नहीं रहता। इसी क्लेश से सर्वदा मेरा हृदय कष्ट में रहता है। शास्त्रों के अनुसार, सद्गुरु की कृपा के बिना इस लीला रस में प्रवेश पाना असंभव है। मैंने जान लिया है कि इस समय आप सद्गुरु रूप में अवतीर्ण हुए हैं। मेरी और परीक्षा मत लीजिये। कृपापूर्वक इस दिव्य दर्शन को प्रदान कर मुझे धन्य करें।'' प्रार्थना सुनकर गोस्वामीजी मौन हो गये। इसके कुछ दिनों बाद शिरोमणिजी ने देह त्याग दी। इस अवसर पर श्री वृंदावन में समारोह पूर्वक महोत्सव, पंगत व संकीर्तन हुआ। इसमें गोस्वामीजी ने शिष्यों सहित योगदान किया था। गौर शिरोमणिजी से गोस्वामीजी का आंतरिक योग था। महोत्सव के बाद एक दिन शिरोमणिजी ने प्रकट होकर उनसे कहा, ''प्रभु! मेरी वासना पूर्ण हो गई है। आपकी कृपा से मैं अप्राकृत वृंदावन धाम प्राप्त कर सका।''

एक दिन गोस्वामीजी अचानक वृन्दावन में मेले के भीतर से होते हुए काफी फुर्ती से चले। अन्य दिनों में, जाते समय वे साधु महात्माओं को यथायोग्य प्रणामादि करते हुए जाते थे, पर उस दिन वे कहीं भी न रूककर निर्जन स्थान पर एक महात्माजी के पास पहुंचे। महात्माजी

प्रसन्न मन से कुछ भक्तों के साथ धर्म चर्चा कर रहे थे। गोस्वामीजी जाकर, अभिवादन कर वहीं बैठ गये। बीच में अवसर मिलते ही गोस्वामीजी ने उन्हें पूछा, ''महाराज! आज आपने प्रसाद प्राप्त किया या नहीं?'' उनसे पूछने पर पता चला कि सात दिन से वे निराहार हैं। लोगों से प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार उन्हें बात करते देखकर सब लोग दंग रह गये। गोस्वामीजी ने तुरंत उनके भोजन की व्यवस्था कर दी। महात्माजी ने 'आकाशवृत्ति व्रत' लिया था, इस कारण कभी किसी से कुछ भी नहीं मांगते थे।

एक दिन, वृंदावन में महोत्सव के समय हजारों वैष्णव संकीर्तन कर रहे थे। गीत का पद था-''सुखमय वृंदावन, यमुना पुलिन।'' संकीर्तन में महाभाव के आवेश में एक वैष्णव महात्मा अचेत हो गये। तीन दिन और तीन रात तक उनकी हालत एक सी बनी रही। बाबाजी की मग्न अवस्था के समय गोस्वामीजी ने उनकी छाती पर कान लगाकर साफ साफ सुना- ''सुखमय वृंदावन....।'' बाबाजी ने उसी दशा में देह त्याग दी।

श्री गोस्वामीजी कहते थे कि सिद्ध हो जाने से ही क्या कोई धर्मात्मा हो गया? सिद्ध से तुम लोग क्या समझते हो? भूतसिद्ध, प्रेतसिद्ध, ऐश्वर्यसिद्ध, सिद्ध तो बहुत से होते हैं। धर्म के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क न रखकर भी लोग कितने ही विषयों में सिद्ध हो जाते हैं। सिद्ध हो जाने से ही कोई धर्मात्मा नहीं हो जाता। आज कल सिद्ध लोगों की कमी नहीं है। गोस्वामीजी के श्रीवृन्दावान प्रवास के दौरान एक बार श्रीवृन्दावन में एक साधु आया था। वह चतुर्भुज विष्णुमूर्ति के दर्शन करा सकता था। एक दिन उस साधु से भेंट होने पर उसने गोस्वामीजी से कहा, कल सवेरे आप अकेले आइएगा, आपको विष्णुमूर्ति के दर्शन कराऊँगा'। वे दूसरे दिन तड़के साधु के स्थान पर गये। उसने उन्हें बैठाया और सामने के कमरे में दृष्टि जमाने को कहा। गोस्वामीजी उस कमरे की ओर दृष्टि जमाकर बैठ गये। साधु उनके पास बैठकर जप करने लगा। थोड़ी देर में ही सुन्दर स्पष्ट विष्णुमूर्ति दिखाई दी। किन्तु विष्णुमूर्ति दिखने पर भी जब तनिक भी भाव-भक्ति का उदय नहीं हुआ तब मन में सन्देह हुआ। गोस्वामीजी ने

विशेष रूप से लक्ष्य करके देखा कि श्रीवत्सचिह्न अथवा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि उसमें कुछ भी नहीं है। तब टकटकी लगाकर उसकी ओर देखते हुये वे नाम का जप करने लगे। तब वह मूर्ति थर-थर काँपने लगी और बाबाजी से बोली, 'तू मुझे किसके पास लाया है, मैं ठहर नहीं सकता;' यह कहकर थोड़ी ही देर में वह नीचे गिरकर चीं-चीं करता हुआ चिल्लाने लगा। तब साधु ने बहुत ही घबराकर कहा, 'छोड़ दीजिए महाराज, छोड़ दीजिए।' गोस्वामीजी ने कहा - मैंने तो उसे पकड़ नहीं रखा है।' साधु ने कहा-'आप जो नाम जपते हैं, उसी से वह बँध गया है।' उस समय देखा कि अब विष्णु की मूर्ति नहीं है। एक विकट आकार का प्रेत नीचे पड़ा हुआ छटपटा रहा है? उन्होंने उस साधु से खूब धमकाकर पूछा,''तुम्हारे कान में मल क्यों रखा है? क्या तुम प्रेत सिद्ध हो?'' साधु ने कहा, 'हाँ महाराज। मुझे मालूम नहीं था कि आप भगवद्भक्त हैं। हमारा प्रेत भगवद्भक्त के सामने नहीं ठहर सकता।' उन्होंने उससे कहा, ''विष्णुमूर्ति दिखलाने का ढोंग करके लोगों को धोखा देकर तुम रुपया पैसा क्यों लूटते हो?'' साधु ने कहा, 'पता लगाने से आपको मालूम हो जायगा कि मैं चाहे जिसको विष्णुमूर्ति नहीं दिखलाता। जिन लोगों का धन मदिरा, वेश्या और अन्य विविध विलासिताओं में बर्बाद होता है उन्हीं को यह मूर्ति दिखलाकर मैं उनसे खूब रुपया लेता हूँ; किन्तु उसमें से एक पैसा भी मैं अपने निजी खर्च के लिए नहीं लेता। अपनी आवश्यकता के लिए तो मै भिक्षा माँग लेता हूँ। जिन स्थानों में पानी का कष्ट होता है, वहाँ पर कुएँ और तालाब खुदवाने में इस रुपये को मै खर्च कर देता हूँ; दुर्गम स्थानों में सड़क बनवा देता हूँ और दीन-दु:खियों की यथाशक्ति सहायता करता हूँ। अब आप इसको कष्ट न दें, छोड़ दें।' तब वे वहाँ से चले आये। वहाँ से आते समय उनसे साधु ने कातर होकर कहा, 'आप जब तक श्रीवृन्दावन में रहें, तब तक किसी से इसकी चर्चा न करें।' साधु की बात मानकर उन्होंने श्रीवृन्दावन में रहते समय किसी को यह हाल नहीं बतलाया।

शिष्य - ''जब भूत-प्रेत भी विष्णुमूर्ति अथवा देवी देवताओं का रूप धारण करके दर्शन दे सकते हैं तब असली और नकली रूप की पहचान कैसे होगी ?''

श्री गोस्वामीजी - उस रूप की ओर दृष्टि को स्थिर करके खूब तेजी के साथ नाम का जप करते रहने से नकली रूप कभी न टिक सकेगा, अदृश्य हो जायगा। असली देवी-देवता के दर्शन होते ही उस देव-देवी के भाव का उदय हृदय में होगा। नाम का जप करते रहने से वह रूप और भी उज्ज्वल तथा स्पष्ट हो जायगा।

शिष्य - ''प्रेत के भी उज्ज्वल स्पष्ट रूप का ही दर्शन तो पहले पहल हुआ था, आपने बतलाया है। तो क्या असली और नकली रूप की आकृति में कोई विलक्षणता नहीं रहती ?''

श्री गोस्वामीजी ने कहा :- ''हाँ, वह भी रहती है। भूत प्रेत आदि देव-देवी का आकार धारण कर सकते हैं पर, फिर भी देवी देवताओं के चिह्नों को नहीं धारण कर सकते। जिस प्रकार शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि विष्णु के चिह्न हैं उसी प्रकार सभी देवी-देवताओं के विशिष्ट चिह्न हैं। जब जिस देवी देवता के दर्शन हों तब उसके लक्षणों को मिला लेना चाहिए। उस समय नाम का जप खूब करना चाहिए; नाम का जप करने से सब कुछ पकड़ में आ जाता है।''

शिष्य - ''शंख, चक्र, अथवा ऐसा ही कोई दूसरा चिह्न तो सद्गुरु का नहीं है; अतएव यदि भूत प्रेत सद्गुरु का रूप धारण करके आ जाय तो किस प्रकार पहचान कर पावेंगे ?''

श्री गोस्वामीजी :- ''सद्गुरु का रूप न तो भूत प्रेत और न देवी देवता या ऋषि-मुनि ही धारण कर सकते हैं। सद्गुरु के रूप का दर्शन होने पर उस विषय में किसी प्रकार का सन्देह न करना।''

शिष्य - ''जिन लोगों ने भूत प्रेत की सिद्धि की है, उनमें क्या धर्मात्मा लोग नहीं होते है ?''

श्री गोस्वामीजी- ''ऐसे लोगों को यथार्थ धर्म प्राप्ति नहीं होती।''

श्रीवृन्दावन धाम में श्री गोस्वामीजी प्रेमरस में डूबे हुए रहते थे। श्यामसुन्दर को साध जागी प्रेम की इस परिपक्वावस्था में अपने प्रिय विजय को देखने की। उनकी प्रेरणा से गुरु ने आज्ञा की - ''बेटा, तुम्हारी साधना पूर्ण हुई। अब तुम घर जाओ। दूसरों को दीक्षा देकर जो वस्तु तुमने प्राप्त की है, उसे प्राप्त करने के पथ पर उन्हें ले चलो।

विजयकृष्ण घर चले गये। इतने दिन बाद उन्हें पाकर श्यामसुन्दर समेत घर के सभी लोगों के आनन्द की सीमा न रही। पर विजयकृष्ण गोस्वामीजी को गुरुदेव की आज्ञा पालन करने में एक कठिनाई दीखने लगी। उनके ब्राह्मधर्म स्वीकार कर लेने के कारण कोई उनसे दीक्षा लेने को तैयार न हुआ।

इस बीच गोस्वामीजी एक समय कलकत्ते गये हुए थे। श्यामसुन्दर ने उनसे जाकर कहा - ''ओ रे, मैं बाँह के दर्द के मारे कितना कष्ट पा रहा हूँ, और तू यहाँ आ बैठा है।'' सुनते ही गोस्वामीजी शान्तिपुर के लिए चल दिये। वहाँ पहुँच पुजारी से कहा श्याम-सुन्दर के कपड़े खोलकर बाँह दिखाने को। पुजारी रो पड़ा। उसने स्वीकार किया कि श्यामसुन्दर को भोग गृह में ले जाते समय असावधानी के कारण आघात लगा और बाँह फट गयी। गोस्वामीजी रो पड़े। उसी समय उन्होंने अपने भतीजे को कलकत्ते भेजा नयी मूर्ति बनाने के लिए उपयुक्त पत्थर ले आने को। वे पत्थर ले आये। उससे नया श्री-विग्रह बनवाकर प्रतिष्ठा की व्यवस्था की जाने लगी। शास्त्र रीति अनुसार पुराने विग्रह को गंगागर्भ में शयन करा दिया गया और वहाँ बाँस गाड़कर एक चिह्न रखवा दिया गया, क्योंकि नव विग्रह की प्रतिष्ठा के दिन पुराने विग्रह को एक बार ले आना था।

प्रतिष्ठा की तैयारी हो रही थी और गोस्वामीजी की काकी पुराने श्रीविग्रह के चले जाने के कारण रो रोकर पागल हो रही थीं। वे सोचती थीं कि पुराने विग्रह ही तो उनके कुलदेवता थे। वे कितना उनके अपने थे, कितना घर के लोगों से स्नेह करते थे और कितना आपद्-विपद् में उनकी रक्षा करते थे।

प्रतिष्ठा के दिन कार्य आरम्भ होने के पूर्व गोस्वामीजी ने काकी से कहा - ''काकी माँ, महाभिषेक के समय मन्दिर में रहना।''

अभिषेक आरम्भ हुआ। शत-शत घट गंगाजल, घी, दूध, दही, मधु इत्यादि से श्रीविग्रह को स्नान कराया गया। उदात्त कण्ठ से 'ॐ सहस्त्रशीर्षा: पुरुष: सहस्त्राक्ष: सहस्त्रपात्' इत्यादि पुरुषसूक्त मन्त्र ध्वनि होने लगी।

अकस्मात काकी माँ भावविह्वल हो रो पड़ी। प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् उन्होंने गोस्वामीजी से कहा - ''हाँ रे, मैंने प्रत्यक्ष देखा अपने श्यामसुन्दर को ही नये विग्रह में प्रवेश करते। श्रीसीतानाथ गोस्वामी प्रभु ने लिखा है- ''इस अमानवीय घटना को देख सभी का चित्त गोस्वामी प्रभु के प्रति भक्ति से भरपूर हो गया। पूर्व में उनके प्रति यथेष्ट श्रद्धा होते हुए भी उनके ब्राह्मधर्म ग्रहण कर लेने के कारण उनसे दीक्षा लेने को कोई भी तैयार न होता। अब सभी उनसे दीक्षा लेने के लिए आतुर हो गये।''

गोस्वामीजी ने परमहंसजी के निर्देश से जिस साधना पद्धति का अवलंबन कर सिद्धि प्राप्त की थी, इसे शास्त्रों में '**अजपा साधन**' कहा गया है। परमहंसजी के निर्देश पर गोस्वामीजी ने दीक्षा देनी शुरु की। इस संबंध में गोस्वामीजी ने कहा था, ''**गुरुजी ने मुझे शक्तिसंचार पूर्वक सद्गुरु के रूप में दीक्षा प्रदान करने का आदेश दिया। मैंने गुरुजी से निवेदन किया कि 'मेरा शरीर अत्यंत कमजोर व जीर्ण है, अत: यह कार्य मुझसे सुचारू रूप से नहीं हो पायेगा।' लेकिन परमहंसजी ने कहा, ''इस कार्य को करने के लिए ही तुम संसार में आए हो। यह कार्य तुम्हें ही करना पड़ेगा। तुम्हारे सिवाय और किसी में न तो यह कार्य करने की क्षमता है, और न ही किसी को इसका अधिकार है।''**

दीक्षा देने के पूर्व गोस्वामीजी गुरुदेव का स्मरण करते। उनकी अनुमति होती तभी प्रार्थी को दीक्षा देते। एक बार उन्होंने किसी घर की परिचारिका को दीक्षा दी। उसी समय एक संभ्रान्त परिवार के सच्चरित्र युवक को दीक्षा देने को मना कर दिया। इस पर लोग परस्पर कानाफूसी करने लगे। गोस्वामीजी से प्रश्न किया, तो वे बोले - ''**देखो यह साधन सम्पूर्ण अहैतुकी है। जाति वंश या सच्चरित्रता आदि की बड़ाई करते हुए कोई इसके लिए दावा नहीं कर सकता। यह सम्पूर्ण भगवान की कृपा का दान है। वे दयापूर्वक जिसे देंगे उन्हें मिलेगा। इसके सिवाय मैं किस लिए आया हूँ। यह यदि तुम जानते तो इस प्रकार नहीं कहते। पापी लोगों के उद्धार के लिये ही मैं आया हूँ। इस कार्य को सम्पूर्ण करने के लिए श्री चैतन्य, श्री नित्यानन्द और श्री अद्वैताचार्य सर्वदा मेरे**

पास आते हैं। तुम लोगों के कार्यालय में जिस तरह कर्मचारियों के नाम की तालिका रहती है, उसी तरह जिन्हें दीक्षा मिलेगी उसकी तालिका निश्चित है इस तालिका में उल्लेखित व्यक्ति ही साधन का अधिकारी है अन्य नहीं। साधारण दीक्षा में राशि, नक्षत्र, आदि जानकर उसके बाद दीक्षा का मंत्र स्थिर किया जाता है पर इस साधना में इस सबकी आवश्यकता नहीं है। दीक्षा प्रार्थी की राशि, नक्षत्र सभी सद्गुरु जानते हैं।''

दीक्षा देते समय गोस्वामीजी के मन्त्रोच्चारण करने के साथ-साथ भक्तों को प्रायः अतीन्द्रिय दर्शन और अलौकिक भावावेश होता। ब्राह्म प्रचारक श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने उनसे दीक्षा लेते समय उनके पीछे खड़े एक सफेद दाढ़ी वाले दीर्घकाय ज्योतिर्मय पुरुष के दर्शन किये। उस सम्बन्ध में उन्होंने गोस्वामीजी से पूछा तो वे बोले - ''आपने गुरु देव परमहंसजी के दर्शन किये हैं। दीक्षा दान के समय वे ही मेरी देह का आश्रयकर दीक्षा कार्य करते हैं। वे यन्त्री हैं, मैं यन्त्र।''

उस समय के सिद्ध महात्मा श्री चैतन्यदास बाबाजी, श्रीभगवानदासबाबाजी, श्रीभोलानन्द गिरि महाराज, श्रीलोकनाथ ब्रह्मचारी आदि विजयकृष्ण गोस्वामीजी का आचार्यरूप से बहुत आदर करते। भोलानन्द गिरि विजयकृष्ण को स्नेह से 'आशुतोष' कहते। उनसे कोई दीक्षा माँगने जाता तो कहते-''अरे, मेरे पास क्यों आया? आशुतोष जो है, उनसे ले लो।'' उन्होंने विजयकृष्ण के रहते किसी को दीक्षा नहीं दी।

गोस्वामीजी की अब जो आध्यात्मिक स्थिति थी, उसमें साम्प्रदायिकता काई मायना नहीं रखती थी। वे धर्म, समाज और साम्प्रदायिकी परिधियों से ऊपर उठ चुके थे। गुरुदेव के कथनानुसार ब्राह्मसमाज से उनका सम्बन्ध साँप की केंचुली की तरह अपने आप छूट गया था। सभी धर्मों के लोग उनसे आकर दीक्षा लेने लगे। उनकी साधन-प्रणाली सरल थी। वे केवल प्राणायाम के साथ प्रति श्वास में गुरु-प्रदत्त नाम का जप करने और आहार विहार सदाचार का पालन करने को कहते। इससे साधक के अपने धर्म की किसी प्रकार की क्षति न होती।

एक बार वे दरभंगा गये हुए थे। वहाँ भयंकर शूल वेदना के कारण शय्याशायी हो गये। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। बन्धु बान्धव सब आ गये। सब निराश ओर विवाद ग्रस्त। उसी समय एक तेजस्वी दीर्घकाय सन्यासी घर के बाहर के बरामदे में आ बैठे पर किसी का उस ओर ध्यान नहीं गया।

अपरान्ह में देखा गया कि संकट की घड़ी टल गयी। गोस्वामीजी ठीक होने लगे। उसी दिन संध्या समय कीर्तन में उन्होंने उद्दण्ड नृत्य किया। यह देख डाक्टर और बन्धुगण सब अवाक् रह गये!

पीछे गोस्वामीजी ने भक्तों से कहा - ''उस दिन तुमने उन महात्मा को लक्ष्य नहीं किया, जो बरामदे में आ बैठे थे। वे गुरुदेव परमहंसजी थे। मेरा मृत्युयोग काटकर चले गये। मुझसे कह गये - ''लोक-कल्याण के लिए तुम्हारा कुछ दिन जीवित रहना आवश्यक है।''

ढाका में रहते समय एक दिन गोस्वामीजी को ध्यान के दौरान पता चला कि एक सिद्ध योगी 'बारदी' नामक ग्राम में गुप्त निवास करते हैं। इस ग्राम के एक भक्त कुंजलाल नाग, गोस्वामीजी के शिष्य थे। वे प्राय: बारदी में लोकनाथ ब्रह्मचारी के पास जाया करते थे। एक दिन ब्रह्मचारीजी ने उनसे कहा, '' क्या, मेरा जीवन कृष्ण यहां नहीं आएगा? यदि वह यहां नहीं आएगा तो मुझे ही वहां जाना पड़ेगा। उसके प्रति अपने मन में, मैं आंतरिक आकर्षण अनुभव कर रहा हूँ।'' कुंजलाल से जब यह बात गोस्वामीजी ने सुनी तो वे अपने परिवार तथा कुछ भक्त शिष्यों के साथ वहां गए। गोस्वामीजी को देखते ही लोकनाथ ब्रह्मचारी बोल उठे, ''मुझे पहचान सका? चंद्रनाथ पहाड़ के दावानल वाली बात याद है?'' विदित रहे, वर्षों पूर्व चट्टग्राम के निकट चंद्रनाथ पहाड़ में एक जंगल को पार करते समय गोस्वामीजी चारों ओर दावानल से घिर गए थे। उस समय एक महात्माजी ने उनकी प्राण रक्षा की थी, उन्हीं को यहाँ ब्रह्मचारी जी के रूप में देखकर गोस्वामीजी सजल नयन आनंद से अभिभूत हो गए। लोकनाथ ब्रह्मचारीजी भी अद्वैत वंश के थे। गोस्वामीजी को उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा था कि वे उनके पितामह के चाचाजी थे। उस समय उनकी आयु 156 वर्ष थी। पूर्वजों की स्मृति में ब्रह्मचारी ने स्नेहवश गोस्वामीजी को अपनी खड़ाऊं और कंबल प्रदान की

थी। माता योगमाया देवी के पास ब्रह्मचारीजी ने बच्चे के समान हठ करके कहा- 'आज तुम्हें अपने हाथों से मुझे खाना खिलाना पड़ेगा।' माता योगमाया देवी ने भी ब्रह्मचारीजी को बालकवत् अपने हाथ से भोजन कराया। गोस्वामीजी को वे 'जीवनकृष्ण' कहकर पुकारते थे। गोस्वामीजी से ब्रह्मचारीजी का परिचय प्राप्त कर, अनेक स्थानों से लोग, उनके दर्शन तथा आशीर्वाद लेने के लिए आने लगे। ब्रह्मचारीजी यद्यपि अपने कठोर वचनों से लोगों की परीक्षा लिया करते थे, पर उनका हृदय अत्यंत कोमल था। असंख्य व्यक्ति रोग, शोक इत्यादि में उनकी कृपा पाकर धन्य हुए थे। गोस्वामीजी कहते थे कि योग शिक्षा के लिए तिब्बत तथा हिमालय से योगीजन सूक्ष्म शरीर में ब्रह्मचारीजी के पास रात्रि के समय आते थे। इस कारण संध्या के बाद आश्रम में किसी को नहीं रहने दिया जाता था। योग की विभिन्न क्रियाओं के संबंध में, इस प्रकार उच्चतम विशेषज्ञता बहुत कम योगियों में पाई जाती है। ढाका रहते समय गोस्वामीजी प्राय: ब्रह्मचारीजी के पास जाया करते थे।

विजयकृष्ण गोस्वामी जब दरभङ्गा में बीमार पड़े और उनके जीवन की कोई आशा न रही, उनके शिष्यों ने ब्रह्मचारी जी के पास जाकर उन्हें बचा लेने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा - ''तुम दरभंगा चलो, मैं आता हूँ।'' उसी समय वे अपनी कुटिया के भीतर गये। भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। शिष्यों से कहा - 'जब तक मैं न कहूँ, दरवाजा खोलने की चेष्टा न करना, न ही मुझे आवाज देना।'

उसी दिन विजयकृष्ण गोस्वामी के पुत्र योगजीवन और उनके कुछ अंतरंग शिष्य दरभंगा जाने के लिए जब ढाका से जहाज पर कलकत्ता जा रहे थे, उन्होंने ब्रह्मचारीजी को आकाश मार्ग से दरभंगा जाते हुए और उनकी ओर इशारा करते हुए देखा।

इस प्रकार विजयकृष्ण गोस्वामी और लोकनाथ ब्रह्मचारी में योगायोग बराबर बना रहा। दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए बेचैन रहते। पर एक बात को लेकर दोनों में मतभेद हो गया। ब्रह्मचारी जी प्रारब्धवादी थे। वे कहते प्रारब्धानुसार कर्म कर प्रारब्ध से निवृत्ति पाने पर ही भजन साधन संभव है। इसलिए वे गोस्वामीजी के शिष्यों को संसार में लौट जाकर कर्म द्वारा प्रारब्ध शेष करने का उपदेश करते।

गोस्वामीजी कहते कि प्रारब्ध का शेष कर्म से नहीं, नाम जप से ही संभव है। उन्हें जब पता चला कि ब्रह्मचारी जी उनके शिष्यों को कर्म करने का उपदेश करते हैं, उन्होंने उन्हें उनके पास जाने को मना कर दिया। प्रारब्ध और पुरुषकार (कर्म) के सम्बन्ध में उन्होंने कहा - ''पुरुषकार द्वारा प्रारब्ध पर काबू पाना असम्भव है। पुरुषकार से थोड़े समय के लिए उपकार भले ही हो जाय, चिरकाल के लिए होना असम्भव है। ब्रह्मचारी जी पुरुषकार के द्वारा प्रारब्ध कर्म अतिक्रमण कर साधन की चतुर्थ अवस्था निर्विकल्प समाधि तक पहुँच गये। पर प्रारब्ध के कारण उन्हें वहाँ से लौटना पड़ा और खेतों में मेहनत मजूरी कर जीवन निर्वाह करना पड़ा। शास्त्रों में प्रारब्ध से छुटकारा पाने के लिए दो उपाय बताये गये हैं - विचार और अजपा साधन। जो कुछ करो विष्णु की प्रीति के लिए करो। यदि उठना, बैठना, स्नानदि सभी कार्य निष्काम भाव से विष्णु की प्रीति के लिए किये जायँ, तो प्रारब्ध कर्म शेष हो जाता है और यदि श्वास प्रश्वास के साथ नाम किया जाय तो और भी आसानी से प्रारब्ध से छुटकारा पाया जा सकता है।''

ब्रह्मचारीजी की आयु उस समय 156 वर्ष की थी। उन्होंने 100 वर्ष और जीवित रहने का संकल्प किया था। पर विजयकृष्ण गोस्वामीजी से उनका मतभेद इतना बढ़ गया कि उन्होंने 156 वर्ष की आयु में ही शरीर त्याग दिया। विजयकृष्ण उस समय वृन्दावन में थे। शरीर छोड़ने के एक दिन पहले ब्रह्मचारीजी रात्रि में सूक्ष्म देह से वृन्दावन गये। सारी रात विजयकृष्ण से झगड़ा हुआ। विजयकृष्ण ने कहा - ''आप किसी को अद्वैतवाद की शिक्षा देकर, किसी से अदृष्ट प्रारब्ध की बात कहकर लोगों का मन बिगाड़ रहे हैं। वे साधन-भजन छोड़कर न जाने कैसे हो गये हैं? अब उनका संशोधन करना कठिन है।'' ब्रह्मचारीजी ने कहा - ''संसार में रहने का मेरा अपना तो कोई प्रयोजन है नहीं। मैं तो लोगों के कल्याण के लिए ही रह रहा हूँ। पर जब मुझसे उनका कोई उपकार ही नहीं हो रहा, तो मैं शरीर छोड़ दूँ।'' दूसरे दिन ही ब्रह्मचारीजी ने शरीर छोड़ दिया।

गुरुदेव एक बार जिसे शरणागत कर लेते हैं, उसकी बाग-डोर पूर्णत: उनके हाथ में होती है। काल का उसके ऊपर अधिकार नहीं

रहता। गुरुदेव ही उसके जन्म मृत्यु का नियंत्रण करते हैं। समय समय पर आपद्-विपद् से उसकी रक्षा करते हैं और उसे आवश्यक आदेश-निर्देश देते रहते हैं।

गोस्वामीजी भी अपने शिष्यों का रक्षणावेक्षण उसी प्रकार किया करते। एक बार उनके शिष्य महेन्द्रनाथ मित्र किसी कार्य से कलकत्ते गये थे, जब वहाँ कालरा फैला हुआ था। उस समय उनके पास केवल चार पैसे थे। दुकान से दूध लेकर पीने जा रहे थे, उसी समय एक साधु ने भिक्षा मांगी तो वह उन्होंने उसे दे दिया।

जब वे ढाका लौटकर गये, गोस्वामीजी ने मुस्कुराकर कहा - ''उस दिन बड़े बाजार में साधु को पैसे देकर तुमने ठीक किया।''

गोस्वामीजी ने दूर ढाका में बैठे यह बात कैसे जान ली, यह सोचकर महेन्द्रबाबू अवाक्! गोस्वामीजी ने बताया कि उन्होंने ही किसी साधु को भिक्षा माँगने उनके पास भेजा था। यदि वे उस दुकान का दूध पी लेते तो उन्हें कालरा हो जाता।

एक बार गोस्वामीजी शिष्यों के साथ शान्तिपुर से कुछ दूर अद्वैताचार्य की भजनस्थली बाबला गये थे। वहाँ मन्दिर में बैठकर सब लोग स्थिर भाव से नाम कर रहे थे। उन्हें सुनाई पड़ी एक महासंकीर्तन की ध्वनि, जो शंखध्वनि के साथ धीरे-धीरे निकट आ रही थी। कुछ लोग मन्दिर से बाहर निकलकर संकीर्तन में सम्मिलित होने के लिए आगे जाने लगे। अद्भुत! जैसे-जैसे वे आगे बढ़ते गये, संकीर्तन की ध्वनि धीमी पड़ती गयी। थोड़ी देर में विलुप्त हो गयी! वे लोग जब लौटकर आये और गोस्वामीजी से इसके बारे में पूछा, तो वे बोले - ''तुम लोग बहुत भाग्यवान हो। तुमने साक्षात् महाप्रभु संकीर्तन सुना। यदि स्थिर भाव से बैठकर नाम करते रहते तो उसे और भी देर तक सुन सकते, उसमें योग दे सकते।''

गोस्वामीजी के पास दो कुत्ते रहते थे। एक हर समय आराम कुर्सी पर बैठा रहता। इसलिए उसका नाम उन्होंने 'चेयरमैन' रखा था। उसे भीतर के कमरे में भोजन समापन का ज्ञान अपने आप हो जाता और वह कान फटफटाता हुआ उठ पड़ता। दूसरे का नाम केले था। केले कोई

साधारण कुत्ता न था। उसने जीवन में कभी मांस नहीं खाया। वह नित्य श्यामसुन्दर के मन्दिर की परिक्रमा करता। करताल का शब्द सुनते ही भागा आता और एक स्थान पर बैठकर ध्यानपूर्वक कीर्तन सुनता। कभी-कभी कीर्तन सुन अश्रुविसर्जन करता। गोस्वामीजी उसे 'भक्तराज' कहकर पुकारा करते। उसके सम्बन्ध में कुलदा ब्रह्मचारी ने एक घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है —

''एक दिन गोस्वामीजी चौदह खोल करताल और बहुत से भक्तों को साथ ले संकीर्तन करते हुए बावला जाने लगे। केले भी उनके साथ चला। केले संकीर्तन का आनन्द लेते हुए गोस्वामीजी के पीछे-पीछे जा रहा था। गंगा पार करते समय कुछ लोगों ने उसे भगाने की चेष्टा की। वह निरुपाय हो गोस्वामीजी के चरणों में जाकर लोटने लगा। उन्होंने उसे भगा देने को मना कर दिया।

''संकीर्तन ने जब मन्दिर के आँगन में प्रवेश किया, बाहर कहीं दूर से महासंकीर्तन के खोल-करताल की ध्वनि सुनाई पड़ी। कोई-कोई उस संकीर्तन में योग देने के लिए दौड़ पड़े। पर जैसे-जैसे वे मन्दिर से दूर होते गये संकीर्तन की ध्वनि लुप्त होती गयी।

इसी समय भक्तराज केले संकीर्तन से पृथक् होकर पंचवटी के निकट एक स्थान पर जाकर तेजी से मिट्टी खोदने लगा और उसके तुरन्त बाद गोस्वामीजी के पास जा भों भों करते हुए उनका बहिर्वास मुँह से खींचने लगा।

''उसे ऐसा करते देख गोस्वामीजी उस स्थान पर गये और उसे खोदने का आदेश दिया। निकटवर्ती किसानों के घर से दो कुदाल लाकर भक्तों ने उसे खोदना आरम्भ किया। थोड़ा खोदने के बाद जब कुछ न निकला तो खोदने वालों ने खोदना छोड़ दिया। तब 'भक्तराज' गोस्वामीजी की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखते हुए चीत्कार करने लगा और नखों से मृतिका को और जल्दी-जल्दी खोदने लगा।

''यह देख गोस्वामीजी ने और खोदने का आदेश दिया। इस बार थोड़ा ही और खोदने पर निकल पड़ी पीतल की एक हाँडी, जिसमें थी अद्वैत प्रभु की नामांकित काष्ठपादुका, एक मिट्टी का करवा और बक्स, जिसमें थी एक छिन्न पोथी।

''गोस्वामीजी ने उस पादुका को मस्तक पर धारण कर नृत्य आरम्भ किया। भक्तों ने संकीर्तन आरम्भ किया। गोस्वामीजी भावावेश में अचेत हो गये। चेतना आने पर देखा कि 'भक्तराज' केले भी अचेत पड़ा है। वे उसके कान में नाम सुनाने लगे। धीरे-धीरे उसे होश आया। वह उठ बैठा। गोस्वामीजी ने उसे सीने से लगाया और आशीर्वाद करते हुए कहा - ''भक्तराज, जिस कार्य के लिए तुम आये थे, वह पूरा हो लिया। अब तुम गंगा लाभ करो।''

''प्रहराधिक रात्रि बीतने पर संकीर्तन करते-करते सब घर लौटे। दूसरे दिन प्रात: गंगास्नान को गये तो देखा कि घुटनों तक जल में केले का मृत देह तैर रहा है। गोस्वामीजी ने अपने हाथ से गंगा तट पर बालुका में गड्ढा खोदकर 'भक्तराज' केले की देह को समाधिस्थ किया।''

एक दिन गोस्वामीजी एक आम के वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गये। महाभारत श्रवण करने के पश्चात् 2 बजे के लगभग बोले - .देख रहे हो? इस आम के पेड़ से मधु झर रहा है।' कुलदा सिर नीचा किये बैठे थे, इसलिए उनकी दृष्टि उधर नहीं गयी थी। सिर उठाया तो देखा कि शिशिर-बिन्दु के समान कुछ गिर रहा है। पेड़ के नीचे सूखे पत्तों और तुलसी के पौधों पर तेल जैसा कुछ दीख रहा है। मन्दिर के पूरब और उत्तर की ओर का पक्का फर्श शिशिर बिन्दुओं के समान मधु से भीग गया है। उस पर चींटियाँ लग रही हैं। पेड़ के पत्तों पर मधुमक्षिकाएँ गुनगुन करती मँडरा रहीं हैं। एक प्रकार की सुगन्ध से चित्त प्रफुल्लित हो रहा है।

''गोस्वामीजी ने पूछा - ''मधु ही है, समझ में आ रहा है?' इसी समय श्रीधर और अश्विनी आ गये थे। उन्होंने तीन सूखे पत्ते चाटते-चाटते कहा - 'वाह'! यह तो बड़ा मीठा है। सचमुच मधु ही है।'

''कुलदा को विश्वास न हुआ। उन्होंने वृक्ष के नीचे की डाल के दो पत्ते तोड़े तो गोस्वामीजी सिहर उठे। बोले - 'क्या कर रहे हो? ऐसे पत्ते तोड़ने चाहियें?'

''पत्ते हाथ में लेकर देखे- ठीक जैसे मधु लिपटा हुआ है। चाटकर देखा तो तो ठीक मधु की तरह मीठा।''

''गोस्वामीजी से पूछा - आम के पेड़ से मधुवृष्टि होती है क्या?

गोस्वामीजी ने कहा - **आम के पेड़ से ही नहीं, जिस किसी वृक्ष के नीचे बहुत दिन निष्ठा सहित होम, याग, यज्ञ, साधन, भजन, तपस्या की जाती है, या जिस किसी वृक्ष के नीचे किसी महात्मा महापुरुष का आसन होता है, वही मधुमय हो जाता है।** मैंने बहुत से प्राचीन नीम और इमली के वृक्षों से झरने की तरह मधु झरते देखा है। कमण्डलु भर के पिया है। पीछे अनुसन्धान करने पर पता चला है कि उनके नीचे सिद्ध महापुरुषों का आसन रहा है।''

नाम के प्रभाव से विजयकृष्ण गोस्वामीजी का देह नाममय हो गया था। उनकी त्वचा पर भगवन्नाम और देवी-देवताओं की मूर्ति के चिन्ह उभर आते थे। उनकी जटाओं से मधु की बूँदें टपका करती थीं। ग्रन्थपाठ के समय प्रसंग के अनुकूल दृश्य उनके वस्त्रों में अंकित हो जाते थे। एक बार ढाका के पास चांचरवला नामक स्थान में काली के मन्दिर में उनके संकीर्तन में आकाश से ढेरों फूलों की वृष्टि हुई थी, जिसे देखकर लोग आश्चर्य में डूब गये थे।

गोस्वामी जी सम्पूर्ण रात्रि ध्यान की अवस्था में रहते थे। एक बार उनके शिष्य श्री हरिदास बसु को गोस्वामीजी के निकट रात्रि विश्राम का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने ही शब्दों में गोस्वामीजी की निद्रा की स्थिति का विवरण इस प्रकार किया है....

मैं रात्रि के समय एक बड़े हॉल (कक्ष) में उनके साथ शयन करता था । **एक दिन रात्रि को सो रहा था। अचानक रात्रि एक बजे मेरी निद्राभंग हो गई। मैंने देखा गोस्वामीजी आसन में बैठे भजन साधन कर रहे हैं** । मैंने कहा -

मैं - **काफी रात हो गई है, आप अभी तक बैठे है, सो जाइये ।**

गोस्वामीजी - रात्रि के कितने बजे हैं ?

मैं - **अभी रात का एक बज चुका है ।**

गोस्वामजी - अभी तो बहुत रात्रि बाकी है ।

इस बातचीत के बाद मैं फिर गहरी नींद में सो गया । फिर रात्रि तीन बजे मेरी निद्रा भंग हुई। मैंने देखा, गोस्वामीजी पूर्ववत् आसन पर बैठे हुए हैं ।

मैं - आप तो अभी भी आसन पर बैठे हुए हैं। शयन नहीं किया। शीघ्र सो जाइए। रात्रि के तीन बज गए हैं ।

गोसाँईजी - अभी तो बहुत रात्रि बाकी है ।

मुझे फिर निद्रा आ गई, **करीब चार बजे निद्राभंग हुई। मैंने उन्हें आसन पर यथावत् बैठे देखा ।**

मैं - अरे ! आप अभी नहीं सोये हैं। जल्दी सो जाइये। शरीर अस्वस्थ हो जायेगा ।

गोस्वामीजी - अभी कितना बजा है ?

मैं - रात्रि के चार बज चुके हैं ।

गोस्वामीजी - अभी तो रात्रि समाप्त होने में काफी देरी है ।

मुझे पुनः निद्रा आ गई - **मैं सो गया। जब सबेरा हो गया; पूर्वदिशा में सूर्योदय होने लगा । मैंने देखा गोस्वामीजी अचल, अटल होकर पूर्ववत् शान्तभाव से आसन पर विराजमान हैं ।**

मैं - **आश्चर्य है ! सबेरा हो गया, अभी तक आपने शयन नहीं किया ।**

गोस्वामीजी - **दुर्लभ समय है, इसे क्या सोकर नष्ट किया जा सकता है ?**

ध्यान में बैठे गोस्वामीजी को दूर देशों में हो रही घटनाओं का साक्षात्कार हो जाना मामूली बात थी। एक बार श्री गोस्वामीजी अकस्मात् चौंक पड़े और आतुरता के साथ शिष्य से कहा - ''देखो तो ! उन लोगों को खदेड़ दो, चिड़ियाँ डरकर बुला रही हैं।'' शिष्य - चिड़ियाँ कहाँ बुला रही हैं ? किन्हें भगा दूँ ? श्री गोस्वामीजी ने कहा - 'जाकर देख, कुञ्ज घोष के घर बड़े आम के पेड़ पर।' इतना कहकर ही श्री गोस्वामीजी ने फिर आँखें बंद कर लीं। शिष्य भी तुरन्त घोष महाशय के घर की ओर दौड़ा। बड़े आम के पेड़ के पास जाकर देखा कि कई दुष्ट बच्चे, गलगुलिया खोते को लक्ष्य करके पत्थर फेंक रहे हैं। तीन चार-गलगुलिया, पेड़ की एक डाल से दूसरी डाल पर घबराहट के मारे उड़-उड़कर जाती हैं और चें-चें करती हैं। शिष्य के धमकाते ही बच्चे भाग गये। चिड़ियाँ भी शान्त हो गई। शिष्य श्री गोस्वामीजी के पास आ बैठा

और पंखा लेकर उन्हें हवा करने लगा। श्री गोस्वामीजी ने तुरन्त सिर ऊपर को किया और आँखे खोलकर पूछा - 'क्या देखा?' दुष्ट लड़कों की गलगुलियों के बच्चों को गिराने की दुश्चेष्टा और गलगुलियों को भगाने के लिए पत्थर फेंकने का हाल शिष्य ने बताया और पूछा 'मैं तो यहीं बैठा था, चिड़ियाँ का चिल्लाना तो मैंने तनिक भी नहीं सुना और आपने, मग्न अवस्था में रहकर भी, इतनी दूर का चिड़ियाँ का बुलाना क्योंकर सुन लिया?' **श्री गोस्वामीजी ने कहा – दूर और समीप क्या करेगा? किसी अवस्था में कहीं क्यों न रहो, किसी आपत्ति में पड़कर यदि कोई बुलावे तो उसका बुलाना हृदय पर असर करता है।**

कुलदा ब्रह्मचारी उन दिनों प्राय: विजयकृष्ण गोस्वामीजी के कक्ष में शयन किया करते। एक दिन शेष रात्रि में जिस दृश्य को देखकर वे काँप उठे, उसका विवरण उन्होंने इस प्रकार दिया है —

''मैंने देखा - एक काले रंग का साँप गोस्वामीजी के बायें अङ्ग से चढ़कर मस्तक पर गया। कुछ देर फण फैलाकर वहाँ रुका रहा। फिर दाहिने अङ्ग से रेंगकर उतर गया। गोस्वामीजी ने कहा - यह आसन-जात साँप है। सुविधानुसार आता है, जटा के सहारे रेंगकर मस्तक पर जाता है, कपाल पर कुछ देर फण फैला कर बैठा रहता है, फिर चला जाता हैं। जब प्राणायाम स्वाभाविक रूप से सूक्ष्म गति से चलता होता है, तब एक मधुर शब्द होता है। साँप को उसका सुर बहुत अच्छा लगता है। वह दूर कहीं भी हो, उसे सुनकर चला आता है। सुर को पकड़ने के लिए सिर पर चढ़कर कपाल के ऊपर नाक के पास फण विस्तार कर स्थिर भाव से उसे सुनता है। कभी कभी अपना 'शी-शी' का सुर उसमें मिलाकर बड़ा आनन्दित होता है। महादेव के सिर पर जो साँप रहता है, वह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। साधन करने से तुम्हारे सिर पर भी साँप चढ़ सकता है। यह साँप अनिष्ट नहीं करता, सहायक होता है।''

श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का बाह्य स्वरुप भी उनके सर्व समन्व्यात्मक अध्यात्मवाद के अनुरूप ही असाधारण और विस्मयकारी था। उसे देखकर उनके सम्प्रदाय और आश्रम के बारे में कुछ निर्णय करना कठिन था। एक बार प्रयाग के कुम्भ में उनके स्वरूप को लेकर साधुओं में विवाद छिड़ गया। इस सम्बन्ध में साधु-समाज का निर्णय

प्राप्त करने के लिए एक सभा बुलायी गयी। सभा में कहा गया कि वे अपने को सन्यासी कहते हैं, पर स्त्री, पुत्र, कन्या और गृहस्थ बाबू लोगों के साथ रहते हैं। वैष्णव होते हुए गेरुआ वस्त्र और दण्ड-कमण्डल धारण करते हैं। तुलसी की माला और रुद्राक्ष एक साथ पहनते हैं। वे कौनसे शास्त्र के अनुसार साधु-समाज या वैष्णव मंडली में रहने के अधिकारी हैं?

सभा में उपस्थित थे श्रीरामदास काठिया बाबा, श्री भोलानन्द गिरि, श्रीअमरेश्वरानन्दपुरी, श्रीनरसिंहदास बाबाजी, श्री दयालदास बाबाजी, आदि कुछ उच्चकोटि के महापुरुष। ये विजयकृष्ण गोस्वामीजी के स्वरूप और शक्ति से पहले ही भली भाँति परिचित थे। इन्हें साधु-समाज को गोस्वामीजी के मर्म से अवगत कराने में देर न लगी। ब्रजविदेही श्रीरामदास काठिया बाबाजी ने श्री गोस्वामीजी के बारे में कहा - ''इन गौड़ीय बाबा की तरह समर्थवान महात्मा मुझे आज तक नहीं दिखा। ये एक यथार्थत: महात्मा हैं, पूर्ण सिद्ध हैं। पुत्र, कन्या आदि के साथ में रहने पर भी इनकी लेशमात्र भी हानि नहीं होगी। महादेवजी ने विषपान कर के उसे पचाया था। ये भी उन्हीं की तरह समर्थ महात्मा हैं। ये सब कुछ कर सकते हैं। इनके लिए कुछ भी विधि-निषेध नहीं है। उनके ललाट पर हमेशा धक-धक आग जलती रहती है। आग में जो भी गिरता है, सब भस्म हो जाता है। जैसा भी है, वैसा सामर्थ्यवान है। आप लोग क्या कह रहे हैं? इस तरह, एक आसन पर हमेशा बैठे रहो जरा! शरीर खान खान (शनै: शनै:) नष्ट हो जायेगा। वैष्णवों के बीच रहने से, इसमें वैष्णव जनों का मान बढ़ा है, यह उनका सौभाग्य है।''

सन्यासियों में प्रधान स्वामी भोलानंद गिरि महाराज ने श्री गोस्वामीजी के बारे में कहा - ''पुत्र, कन्या, तथा स्त्री आदि के साथ रहना, सन्यासियों के लिए वर्जित है। यह साधारण विधि है। पर जीवनमुक्त महात्मा विधि-निषेध से परे है। उनका सत्संग करके मैंने जान लिया है कि वे साक्षात् सदाशिव आशुतोष हैं।'' सभा से गोस्वामीजी का अपकार होने के बजाय उपकार ही हुआ। सारा साधु-समाज उनके प्रति आन्तरिक श्रद्धा से अभिभूत हो गया।

श्री गोस्वामीजी के कुंभ प्रवास का विवरण अत्यधिक रोचक है।

कुंभ प्रवास के दौरान गोस्वामीजी के सम्पर्क में विभिन्न सिद्ध पुरुष आये जिसका विवरण **'महापातकी के जीवन में सद्‌गुरु लीला'** नामक ग्रंथ में श्री हरिदास बसु द्वारा एवं **'श्री श्रीसद्‌गुरुसंग'** नामक ग्रंथ के पंचम् भाग में श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी द्वारा विस्तृत रूप से किया गया है। कुम्भयोग के बारे में श्री गोस्वामीजी ने वर्णन किया है :-

''कुम्भ योग में तीर्थस्नान करने का विशेष माहात्यम तो है ही, किन्तु कुम्भ मेले का उद्देश्य निरा स्नान करना ही नहीं है। हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जैन में कुम्भमेला लगता है। इस योग के उपलक्ष्य में अनेक स्थानों से, यहाँ तक कि पहाड़ों पर रहने वाले भी महापुरुष निर्दिष्ट स्थान पर एकत्र होते हैं। एक निर्दिष्ट स्थान पर साधु महात्माओं के सम्मिलित होने का समय ही कुम्भयोग है। यह बात सभी साधु सन्यासी जानते हैं। साधुओं के साधन-भजन करने में जो जो सङ्कट और सन्देह उपस्थित होते हैं उनका निर्णय इस समय पर वे महात्मा महापुरुषों को ब्यौरा सुनाकर कर लेते हैं।

साधन भजन के सम्बन्ध में जिस को जो बात सीखनी है उसको सीख लेना ही इस मेले का प्रधान उद्देश्य है। इस समय पर महापुरुष लोग एकत्र होकर पता लेते हैं कि साधु सन्यासियों और देश की साधारण जनता में धर्मभाव की क्या दशा है? जैसी व्यवस्था करने से जिस प्रदेशवालों का भला हो सकता है उसी को स्थिर करके वे एक एक प्रदेश का भार एक एक महात्मा को सौंपकर चले जाते हैं। इस बार महापुरुषों ने काठिया बाबा को 'ब्रजविदेही महन्त' की उपाधि दी है। इस प्रकार भारतवर्ष के सभी प्रदेशों के लिए ऐसे ही एक-एक महात्मा निर्दिष्ट हैं। देश में धर्म की संस्थापना के लिए उन लोगों को सारा भार लेना पड़ता है। सदा परिश्रम करना पड़ता है। अति प्राचीन तीन-चार महापुरुष इस बार कुंभ मेले में आ रहे हैं जो जन समुदाय में कभी नहीं आते। बद्रिकाश्रम से सैकड़ों कोस ऊपर हिमालय के अति दुर्गम स्थल में रहते हैं। उन्होंने मुझे कृपापूर्वक कुंभ मेला जाने का आदेश दिया है, सो उनके दर्शन करने जाऊँगा।''

शिष्य :- महापुरुष कुंभ क्यों आएंगे ? क्या वे भी कुंभ स्नान करने आएंगे?

श्री गोस्वामीजी :- ''वे स्नान करने नहीं आते। उनका उद्देश्य

स्वतंत्र है। देश में सर्वत्र धर्म की दशा मलिन हो रही है। एक एक महात्मा पर एक-एक देश का धर्म भार सौंपकर वे चले जाएंगे। काठिया बाबा पर चौरासी क्रोस ब्रजमण्डल का भार होगा, ऐसा तय किया गया है।''

शिष्य :- कुंभ योग में स्नान की यदि असामान्य विशेषता न होती तो यह विशाल मेला एक माह तक क्यों लगता ? क्या यह आधुनिक है? रामायण, महाभारत में इसका उल्लेख नहीं देख पाता।

श्री गोस्वामीजी :- ''यह तो अति प्राचीन है। रामायण में इसका उल्लेख है। ऋषि मुनि माघ के माह में प्रयाग में, भारद्वाज मुनि के आश्रम में समवेत हुआ करते थे। एक माह वहाँ रह कर प्रयाग में, त्रिवेणी संगम में स्नान करके, अपने-अपने आश्रम लौट जाते थे। कुंभ मेला मानो साधु संतो का कान्फ्रैंस है। कुंभ योग उनके सम्मेलन का संकेत काल है। इस समय सारे भारतवर्ष के सभी संप्रदायों के साधु संत एकत्र होकर साधन भजन, तपस्या के संशय व संदेहों पर परस्पर वार्तालाप करके उनकी मीमांसा ढूंढ लेते हैं। इसका यही प्रधान उद्देश्य है। अब ऐसा नहीं रह गया। अभी तो स्नान को लेकर संप्रदायों में वादविवाद, तर्क-झगड़े यहाँ तक कि मारपीट भी हो जाती है।''

कुम्भ मेले के सुचारूपूर्वक समापन के बाद गोस्वामीजी ने कहा था ''साधुसंत, महापुरुषों ने सरकार की सुव्यवस्था देखकर संतोष प्राप्त किया है। उन्होंने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया है कि कुछ समय और ब्रिटिश सरकार यहाँ शासन चलाए।''

कुम्भ मेले में एक दिन चाय पीकर श्री गोस्वामीजी आसन पर ही रहे, कहीं बाहर नहीं गए। एक तेजस्वी सन्यासी आकर श्री गोस्वामीजी के पास बैठे, उन्हें अद्वैत ज्ञान का उपदेश देने लगे। श्री गोस्वामीजी चुपचाप सुनते रहे। सन्यासी महापण्डित थे। वेद शास्त्र सब मानो उन्हें कण्ठस्थ हों। शायद उन्होंने सुन रखा था कि श्री गोस्वामीजी समाधिमग्न रहते हैं। वे शास्त्र प्रमाण से सिद्ध करना चाहते थे कि श्री गोस्वामीजी की समाधि श्रेष्ठ नहीं। अत: वे कोशिश करने लगे व कई ज्ञान के उपदेश देने भी लगे। तभी **एक पंद्रह-सोलह वर्षीय** हिन्दी भाषी तेजस्वी, गेरुवावस्त्रधारी बालक आ **बैठा और उन सन्यासी** को धमकाकर बोला -

ए जी! किसे शास्त्र समझा रहे हो। अब चुप रहो, आप शास्त्र कुछ भी नहीं जानते। सुनकर संन्यासी उत्तेजित होकर बोले-क्या कहा ? मैं शास्त्र नहीं जानता? तुम ने कभी शास्त्र पढ़ा भी है? देखते नहीं मैं ब्राह्मण हूँ, शास्त्र मुझे कण्ठस्थ हैं। सन्यासी ने अपनी बात की पुष्टि के लिए दो चार चरण कहना शुरु किया तो बालक ने अवज्ञा पूर्वक रोककर कहा -बस अब रहने दो, हो गया। दूसरी बातें करो। शास्त्र मत कहो, उच्चारण नहीं जानते, छंद नहीं आता, शास्त्र बताते हो। सन्यासी अभिमान से भरकर बोल पड़ा - तुम क्या जानते हो ? बालक - तो लो सुनो। सन्यासी ने जहाँ छोड़ा था, उसी के आगे के चरण छन्दयुक्त स्वर में कहने लगा। संन्यासी ने फिर कुछ शास्त्रों के पद कहकर अपनी बात प्रमाणित करनी चाही। प्रत्येक पद के साथ बालक धमका कर बोलता जाता-ठीक नहीं हुआ, भूल हो रही है। कहकर उन्हें फिर शुरु से अंत तक ठीक-ठीक कह देता। इतने पर सन्यासी निस्तेज पड़ गया। तब बालक ने शास्त्रों में जितने भी प्रकार की समाधियों का वर्णन है, सब कह सुनाया। फिर सामने की ओर दिखाकर बालक ने कहा-ये अभी जिस अवस्था में हैं, मानव शरीर में रहकर उससे आगे की अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। जिस समाधि में, गाय के सींग पर सरसों का दाना जितनी देर टिके, मात्र उतनी देर रहने पर ही शरीर छूट जाता है, वह भी उन्होंने आयत्त कर ली है। देह छूट जाएगा इसलिए उस समाधि में सदा अवस्थान नहीं कर रहे हैं। बालक की तेजस्वी बातें सुनकर सभी स्तब्ध रह गए। सन्यासी निर्वाक होकर चुपचाप चला गया। श्री गोस्वामीजी ने बालक को प्रणाम करके सामने बैठने का अनुरोध किया। बालक धूनी के सामने बैठा। श्री गोस्वामीजी ने उनसे क्या पूछा, यह ज्ञात नहीं हो सका, पर उन्होंने कहा-'और दो दफा होने से ये देह छूट जाएगा। फिर तो आनंद।' बालक का शरीर बलिष्ठ गौरवपूर्ण, तेजस्वी प्रफुल्लित चेहरा, लम्बे हाथ पैर, उज्ज्वल नेत्र, ललाट में त्रिपुण्ड, गेरुवा वस्त्र - दिखने में बड़े ही मधुर लग रहे थे। श्री गोस्वामीजी के पास आधे घंटे बैठकर न जाने कितनी ही बातें करते रहे, फिर चले गए। दोबारा वे कुम्भ मेले में दिखाई नहीं दिये। बालक के जाने पर श्री गोस्वामीजी से उनका परिचय पूछा। श्री गोस्वामीजी ने कहा - ''ये काशी के तैलंग स्वामी हैं। एक मृत ब्राह्मण

बालक के शरीर में प्रवेश करके, बाकी जरा-सा कर्म काट रहे हैं। यह कर्म समाप्त होने पर और नहीं रहेंगे।'' पूछा गया - कौन सा कर्म बाकी है, जो काट रहे हैं ? श्री गोस्वामीजी - ''गंगा की उत्पत्ति से शेष तक गंगा की तीन बार परिक्रमा। एक बार परिक्रमा कर चुके हैं और दो बार होने पर समाप्त होगा। फिर यह देह धारण का प्रयोजन समाप्त हो जायगा।''

रात के ग्यारह बजे कुम्भ में एक दिन श्री गोस्वामीजी धूनी जलाकर सामने रखकर अपने आसन पर बैठे हैं। शिष्यों में से कोई बैठा है तो कोई सो रहा है। तभी तम्बू के द्वार पर कोट, पेंट, टोप पहने कोई व्यक्ति आ खड़ा हुआ। श्री गोस्वामीजी ने उन्हें देखते ही सीने से लगा लिया। उन्हें आसन पर बिठाया। यह देख सब शिष्य हैरान रह गए। कितने ही साधुसंत आते हैं, श्री गोस्वामीजी सादर उन्हें पृथक् आसन पर ही बिठाते हैं। अब तक किसी को अपने आसन पर बिठाया हो, ऐसा नहीं देखा था। शिष्यगण विस्मय पूर्वक उन्हें देखने लगे। पंद्रह बीस मिनट वे श्री गोस्वामीजी से बातचीत करते रहे, परन्तु वर्षा के कारण शिष्यगण को कुछ सुनाई न पड़ा। बाहर जाते समय उन्हें छाता देना चाहा, पर श्री गोस्वामीजी ने ही मना किया। उनके जाने के बाद श्री गोस्वामीजी से पूछा - ये कौन थे ? श्री गोस्वामीजी ने कहा - ''ये शाह साहब हैं, जाति के मुसलमान हैं, मेरे गुरुभ्राता हैं। अभी जाति बोध नहीं है, परमहंस की अवस्था है, ये ऐश्वर्य मार्ग पर चलकर सिद्ध हुए हैं। इनकी शक्ति असामान्य है। इस भारी वर्षा में आए थे, पर एक भी बूँद पानी शरीर पर नहीं लगा। इसी प्रकार चले भी जाएंगे। हम लोग किस प्रकार हैं, खोज खबर लेने आए थे। इलाहाबाद में गुप्त रूप से वास करते हैं। वैसे भी कम ही लोग इन्हें जानते हैं।''

कुम्भ प्रवास के दौरान एक दिन शिष्यगण श्री गोस्वामीजी के साथ एक महात्मा के दर्शनार्थ चले। दूर से ही उनके दर्शन मात्र से, उनके असामान्य प्रभाव का अनुभव होने लगा। बिना प्रयास तीव्रता से भीतर नाम होने लगा। श्री गोस्वामीजी ने जाते ही साष्टांग प्रणाम किया। बाबाजी ने उन्हें एक जीर्ण, मलिन वस्त्र बैठने के लिए दिया। श्री गोस्वामीजी उस पर बैठे, चुपचाप बाबाजी की ओर देखते रहे। बाबाजी भी चुप रहे।

बाबाजी का तपस्या से उद्दीप्त चेहरा, दीर्घ शरीर, उठी हुई नासिका, उन्नत ललाट, परिधान में कौपीन व कमर पर लिपटा कम्बल का टुकड़ा था। उनके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे, शरीर स्थिर, शांत एवं निष्पन्द था। आसन के नाम पर एक धूल व भस्म से भरी हुई, फटी, चटाई। बाबाजी ने सेवकों से श्री गोस्वामीजी को चाय पिलाने की इच्छा प्रकट की। तुरंत ही मिट्टी के कुल्हड़ों में उत्तम चाय आई जिसमें बादाम, पिस्ता, अखरोट पीस कर डाला गया था। चाय का जैसा सुंदर स्वाद, वैसा ही गर्म करने का गुण, पीते ही शरीर गर्म हो उठा। श्री गोस्वामीजी ने कहा - ''ऐसी बढ़िया चाय मैंने कभी नहीं पी।''

काफी देर उनके पास बैठकर श्री गोस्वामीजी तम्बू की ओर लौट आए। राह में उनसे पूछा -ये कौन हैं ? श्री गोस्वामीजी ने कहा - ''ये नाथ योगियों के महन्त गंभीरनाथजी हैं। चारों ओर जो भीषण आकृति वाले साधु थे, वे गोरख पंथी कनफटा योगी हैं, इनमें अघोरी भी हैं। गंभीरनाथजी ने ऐश्वर्य पथ पर कठोर तप करके सिद्धि प्राप्त की हैं। अब ये सिद्धि लाभ कर चुके हैं। इनके जैसा शक्तिशाली योगी हिमालय के नीचे और कोई नहीं है। ये पलभर में ही सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर सकते हैं। अभी किंतु ये मधुर भाव में डूबे हुए हैं। इनके साथ मेरा विशेष संबंध है। पहले जिन चार महात्माओं के दर्शन पर्वत पर किया था, उनमें से ये एक हैं, गोरखपंथी योगीराज गंभीरनाथजी। आलेखी, कनफटा, अघोरी ये सब तांत्रिक योगी हैं। इनकी साधन प्रणाली भी बड़ी कठिन है।'' मेले में आकर जितने साधु महात्माओं के अब तक दर्शन मिले, गंभीरनाथजी जैसा कोई न मिला। देह में ठंड लगने की भाँति उनके प्रभाव का स्पष्ट अनुभव आकर देह मन को स्पर्श करने लगता है।

एक दिन कुम्भ मेले में द्वार की तरफ देखा, एक सन्यासी ने गौर-निताई को साष्टांग प्रणाम किया। यह देख कुछ आश्चर्य हुआ क्योंकि अधिकांश सन्यासी न तो गौर निताई को जानते हैं न मानते हैं। वे इन्हें गंगा यमुना कहते हैं। हमने देखकर पहचाना कि कल ये ही धूनी के सामने आधे घंटे चुपचाप बैठे थे। जाते समय प्रणाम करके अपना लकड़ी का कमण्डल रखकर श्री गोस्वामीजी का कमण्डल लेकर चले गए थे। श्री गोस्वामीजी यह देखकर भी चुप रहे, कुछ न बोले। श्री गोस्वामीजी से

इनका परिचय पूछने पर उन्होंने कहा - ''ये सत्यदासी के पूर्वजन्म के गुरुदेव हैं। बद्रिकाश्रम से भी काफी ऊपर हिमालय के बर्फीले उच्च शिखर पर गुफा में रहते हैं। इस स्थान को साधु लोग बर्फान कहते हैं। वहाँ केवल कंदमूल ही इनका आहार है। ये बड़े प्राचीन महापुरुष हैं। ये जनसमुदाय का न कुछ जानते, न ही यहाँ आते हैं। अब बहुत काल बाद जनसमूह के बीच आए हैं।'' उन महात्मा से शिष्यों ने पूछा - आपकी उम्र कितनी है ? महात्माजी :- 'मैं तो नहीं जानता, मेरे गुरुजी ने कहा था - तुम्हारे तीन सौ वर्ष पूरे हुए, चाहो तो एक बार जन्मभूमि दर्शन कर आओ। कई बरस बाद गुरुजी की बात स्मरण आते ही मैं नीचे की ओर जन्म भूमि दर्शन के लिये चला आया। आकर सुना, यवनों ने भारत भूमि में प्रवेश किया है तो फिर अपने आसन पर लौट गया। फिर नहीं उतरा। अब की कुंभ मेले में आया हूँ।' सुना है, वे रात ढाई प्रहर के समय मानसरोवर में स्नान करते, फिर बद्रिकाश्रम बद्री नारायण के दर्शन करके, श्री क्षेत्र जगन्नाथ जी की मंगल आरती दर्शन करते, फिर द्वारका नाथ का दर्शन करके, होम करके त्रिवेणी संगम पर स्नान करके अपने आसन पर लौट जाते हैं, यह उनका नित्य कर्म है। उनके मुख से सुना-'यह जो त्रिवेणी देख रहे हो, ऐसी तीन त्रिवेणी हिमालय के ऊपर भी हैं। मन्दाकिनी, अलकनंदा, भागीरथी गंगा की तीन धाराओं से सरस्वती का संगम है। हिमालय पर्वत पर पम्पा व मानस सरोवर जैसे चार सरोवर हैं। जिनकी देह पर अस्त्र आघात न कर सके, जिनकी देह अग्नि न जला सके, ऐसे शरीर से केवल मानस सरोवर जाया जा सकता है और इन सरोवरों में स्नान किया जा सकता है। बाबा, मैं उन चारों में नहाता हूँ।' इतना कहकर वे जाने किधर चले गए, पता ही न चला। शौच से लौटकर श्री गोस्वामीजी आसन पर बैठे। एकान्त पाकर उनसे सब कुछ कह सुनाया।

कुम्भ मेले में आज दोपहर एक बजे एक पंजाबी सज्जन श्री गोस्वामीजी के पास आए। उन्हें देखते ही श्री गोस्वामीजी ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया और धूनी के सामने बैठाया। सज्जन की वेशभूषा में कोई धर्मसूचक चिन्ह तक नहीं है। सादा, स्वच्छ, सफेद परिधान, सफेद दाढ़ी मूँछें हैं। उनकी आकृति दीर्घ, स्वस्थ, सुडौल व रंग गोरा

देखने से ही तेजस्वी मालूम पड़ते हैं। वे एक भी बात न करके, चुपचाप श्री गोस्वामीजी के पास बैठे रहते। वे बड़े अपने से लगते। वे बार बार श्री गोस्वामीजी को देखते, श्री गोस्वामीजी भी निर्वाक् हो उन्हें देखते। आधे घंटे बैठकर प्रणाम करके वे कहीं चले गए। तम्बू में से किसी की बाहर जाने की इच्छा न हुई।

श्री गोस्वामीजी :- ''ये साधारण व्यक्ति नहीं हैं, छद्मवेश लेकर महापुरुष आए थे। इनका प्रभाव असाधारण है।'' शिष्य - इन्होंने तो एक भी बात नहीं की। श्री गोस्वामीजी-''कहा कैसे नहीं ? बहुत सी बातें कह गए। मुँह से नहीं कह रहे थे, पर दृष्टि से तो कहा ही है।'' शिष्य- इनका क्या परिचय है? ये कौन हैं? श्री गोस्वामीजी - ''परिचय है, पर ये दस लोगों के बीच अपना परिचय देना नहीं चाहते। ये कर्नल अल्कट के गुरुजी कौथुम ऋषि हैं।''

श्री गोस्वामीजी के साथ कुम्भ मेले में आने के दिन ही रेत पर पड़े एक महात्मा को देखकर श्री गोस्वामीजी ने कहा था-''ये असाधारण महापुरुष हैं। मस्तक से शुभ्र ज्योति सूर्य किरणों की भाँति चारों ओर बिखर रही है।'' वे भी एक दिन के लिये भी श्री गोस्वामीजी का संग नहीं छोड़ते। श्री गोस्वामीजी किसी बाहर के व्यक्ति को रात को रहने नहीं देते। लेकिन यहाँ वे रोज रात को ही रहते हैं, श्री गोस्वामीजी ने भी कोई आपत्ति नहीं की। श्री गोस्वामीजी जिस तरह इनका आदर सत्कार करते हैं, उससे लगता है ये श्री गोस्वामीजी के बड़े ही घनिष्ठ हैं। काफी कोशिश करके भी शिष्यों को इनका कोई परिचय न मिल पाया। इनका कोई निर्दिष्ट आसन भी नहीं है। अन्दर की बात ईश्वर ही जाने, बाहर किसी प्रकार धर्म चिन्ह, वेशभूषा या अनुष्ठान नहीं देख पाया। माला, तिलक, जटा, विभूति कुछ भी नहीं है। चेहरे पर भी कोई धर्म की छाप नहीं झलकती। नितान्त मजदूर श्रेणी के समान जान पड़ते हैं। पहलवानों की तरह मजबूत, दीर्घकाय, श्याम वर्ण का शरीर है। दाढ़ी मूँछें नहीं हैं, बाल काले हैं, मुखमंडल देखकर लगता है इनकी आयु चालीस-पचास के करीब है। जन समुदाय में संपूर्ण नग्न न रहकर एक फटे मफलर की कौपीन बनाकर पहने रहते हैं। उनके पास एक मात्र जंग लगी लोहे की कड़ाही है, उसी में जल पीते, भोजन करते और उसे ही स्नान शौचादि

के लिये भी काम में लाते हैं। उसे मांज कर साफ नहीं करते हैं। महात्मा, गृहत्यागी साधुओं में भी समाज की रीति नीति, आचार व्यवहार के संबंध में कुछ संस्कार रहते हैं, परन्तु इनमें वह बिल्कुल नहीं है। श्री गोस्वामीजी उनकी अवस्था के बारे में कहते हैं -''जड़ोन्मत्त पिशाचवत् हैं।'' आश्चर्य की बात यह है कि उनकी कोई भी बात अप्रिय नहीं लगती, अच्छा ही लगता है। श्री गोस्वामीजी ने इनके संबंध में कहा है - ''ये त्रिकालज्ञ, षडैश्वर्यशाली, देहमुक्त महापुरुष हैं। अपनी इच्छा मात्र से व्योम मार्ग से कहीं भी आ जा सकते हैं। केवल स्वयं ही नहीं, दो हाथों से और भी दो आदमियों को साथ ले जा सकते हैं। मुझे थोड़े समय में ही श्री वृन्दावन, पुरी, द्वारका, सेतुबंध रामेश्वर, काशी आदि स्थानों में घुमाकर ले आए। प्रेम भक्ति में भी इनकी अवस्था अतुलनीय है। पंचभावों में किसी भी एक को इच्छानुरुप वर्तमान रख कर, उसी का संभोग कर सकते हैं।'' ये नाना प्रकार के भावों में रहते हैं, इसलिये श्री गोस्वामीजी इन्हें खैपाचाँद कहते हैं। ये प्रतिदिन रात बीतने पर गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु, कावेरी इन सप्तनदियों में स्नान करते हैं। नेती धौती इनका नित्य कर्म हैं। वे पेट की अँतड़ियों को धोकर, बाहर निकाल कर साफ कर लेते हैं।

कुम्भ में श्री माधवदास जी, छोटे काठिया बाबाजी एवं महात्मा नरसिंहदास जी के दर्शन भी भक्तगणों को हुए।

श्रीमाधवदासजी के आश्रम में श्री चैतन्य महाप्रभु की मूर्ति थी। गोस्वामीजी को देखते ही वृद्ध महात्माजी ने साष्टांग प्रणाम किया। गोस्वामीजी ने भी पहले महाप्रभु को साष्टांग प्रणाम करने के बाद महात्माजी की चरण रज ग्रहण की। महात्माजी ने गोस्वामीजी को महाप्रभु के मंदिर के सामने बरामदे में बिठाया। आनंद के आवेश में महात्माजी की देह में सात्विक भाव प्रकट होने लगे। थोड़ी ही देर में वे समधिस्थ हो गये। गोस्वामीजी भी समाधिस्थ हो गये। काफी देर बाद दोनों स्वाभाविक अवस्था में आए। महात्माजी ने कहा, ''आज आप आ रहे हैं, यह संवाद महाप्रभु ने सुबह मुझे दे दिया था। उन्होंने आपके लिए प्रसाद रखने के लिये कहा था, वह आपके लिये रखा है।'' ऐसा कहकर उन्होंने गोस्वामीजी को लड्डू, मालपुआ आदि प्रसाद दिया। थोड़ा प्रसाद

ग्रहण कर शेष प्रसाद गोस्वामीजी ने शिष्यों को दे दिया। गोस्वामीजी के आशीर्वाद मांगने पर वृद्ध महात्माजी ने कहा, 'बीज तुमने लगाया है, वृक्ष तथा फल फूल होने दो, तुम उसका भोग करो, इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है?'' बाद में उनका परिचय देते हुए गोस्वामीजी ने बताया था, ''यह महात्माजी मेरे गुरुभ्राता हैं! इनका नाम माधवदासजी है। तीस वर्ष से यहीं रहकर भजन कर रहे हैं। कहीं जाते नहीं हैं। शहर में इन्हें कोई विशेष रूप से नहीं जानता है।''

छोटे काठिया बाबाजी का परिचय अज्ञात है, इस कारण उन्हें छोटे काठिया बाबाजी कहा जाता था। गोस्वामीजी ने इनके संबंध में कहा था - ''ये सिद्ध महात्मा रामचंद्रजी के उपासक हैं। भरत की तरह भाव लेकर पड़े रहते हैं। पांच सौ वर्ष पूर्व उन्होंने 'कायाकल्प' किया था। वही शरीर अभी भी है। उनके इस तन का न क्षय हुआ है, न उसकी वृद्धि हुई है। उनके सिर के केश काले हैं और दांत पूरे हैं। वे किसी भी आश्रय में नहीं रहते हैं, कोई अवलम्ब भी नहीं है। वे पर्वतों में भी इसी प्रकार रहते हैं।''

वे खुले आकाश के नीचे, काठ का कौपीन पहनकर, निर्वसन रहते थे और एक फटी सी चटाई पर सर्वदा बैठे रहते थे। गोस्वामीजी को देखकर उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाह होने लगा। गद्‌गद्‌ तथा अस्फुट स्वरों में गोस्वामीजी से कुछ कहकर वे भावमग्न हो गए। बात करते समय उनके मुंह से बच्चों की तरह लार गिरती थी। उनकी त्वचा हाथी की चमड़ी की तरह थी, जिस पर असंख्य चक्र दिखाई पड़ते थे। गोस्वामीजी से भेंट होने के बाद, वे दिन में दो-तीन बार आकर गोस्वामीजी की धूनी के पास, चुपचाप बैठे रहते थे। किसी शिष्य के पूछने पर उन्होंने कहा था - ''हमारा रामजी अभी तम्बू में रहता है। जब भी हम यहां रहते हैं, रामजी का साक्षात्‌ दर्शन मिलता है।''

महात्मा नरसिंहदासजी हिमालय के बर्फीले स्थानों पर रहते थे। लोग इन्हें 'पहाड़ी बाबा' भी कहते थे। महात्माजी जटाधारी थे और केवल कौपीन पहनते थे। उनकी कमर में बहुत सी रस्सी लटकती रहती थी। सर्वांग पर भस्म लगी रहती और कभी कभी एक कम्बल उपयोग करते थे। उनका स्वभाव बालकवत्‌ था। भूख लगने पर बालक की तरह

ही कह उठते- 'मुझे भूख लगी है, कुछ खाने को दो।' कभी कभी वे कहते थे, **''भगवान जहां भी और जिस भी अवस्था में रखें, उसी में संतुष्ट रहना चाहिये। वे सर्वदा सुख ही देंगे, ऐसी कोई बात नहीं।'' ऐसा कहकर वे ''कभी घी-दूध घना, कभी मुट्ठीभर चना, कभी चना भी मना'' - इस पंक्ति को दुहराते थे।**

पहाडी बाबा कुंभ के बाद कलकत्ता आए थे। कुछ भाग्यवान लोगों ने उस समय उनसे दीक्षा प्राप्त की थी। गोस्वामीजी के शिष्यों पर उनका अधिक स्नेह था। शिष्यों ने एक बार उन्हें मिठाई, खीर आदि खिलाई और उन्होंने बालक की तरह सब खा लिया। लेकिन इससे उनका स्वास्थ्य कुछ गड़बड़ा गया। उस समय गोस्वामीजी ने कहा, ''ये पर्वतवासी महात्मा हैं। ये वस्तुएं उन्होंने कभी नहीं खाई हैं। फल, कंद मूल ही उनका आहार है। जिनका जो अभ्यास नहीं है, उन्हें वह वस्तु नहीं खिलानी चाहिये। इससे उनको कष्ट होता है। भविष्य में, पहाड़ी बाबा को ये वस्तुएं आहार हेतु मत देना।''

कुंभ के समय, गोस्वमीजी के तंबू में पहले कुछ लोग रहा करते थे। बाद में उनके निर्देश से एक पृथक तंबू की व्यवस्था की गई। इस तम्बू में रात्रि के समय विभिन्न सम्प्रदाय के संत-महात्मा गोस्वामीजी के पास आते थे। नागा सम्प्रदाय के साधु भी उनके पास आते थे। गोस्वामीजी के अंतरंग शिष्यों का कहना था कि इस समय अनेक नागा महात्माओं व अन्य संतों ने गोस्वामीजी से दीक्षा ली थी। उनमें से कुछ प्राचीन संतों का दर्शन बाद में भी मिला था। उस समय उन्होंने स्वीकार किया था कि गोस्वामीजी ने कृपापूर्वक उन्हें दीक्षा प्रदान की थी।

इसी दौरान, गोस्वामीजी ने एक दिन शिष्यों से कहा, '' तुम लोग यदि दिन भर 'नाम' जप न कर सको तो कोई बात नहीं, केवल रात्रि के समय 1 बजे से 4 बजे तक यदि नाम जप कर सको तो इसका प्रभाव समझ जाओगे।'' कुंभ मेले में संत महात्माओं के त्याग, उनकी तपस्या, निर्भरता आदि देखकर शिष्यों ने एक दिन गोस्वामीजी से, व्याकुल भाव से, प्रार्थना की - ''आपने दया करके हमको दुर्लभ 'साधन' दिया है पर हम लोगों से साधन-भजन आदि कुछ भी नहीं हो पाता। कभी कर सकेंगे, ऐसा आत्मविश्वास भी नहीं है। हम लोगों की

गति क्या होगी?'' शिष्यों की करुण-प्रार्थना सुनकर, गोस्वामीजी ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा, ''तुम लोगों की गति यदि तुम लोग स्वयं कर लो, तो मैं चौबीस घंटे इस प्रकार से क्यों बैठा हूँ? तुम लोग तो राजपुत्र हो!....तुम लोगों को क्या चिंता है?'' गोस्वामीजी का कथन सुनकर शिष्यों की दुश्चिंता दूर हो गई।

कुम्भ की एक घटना :- मृदंग करताल बज उठे। गुरुभ्राता कीर्तन में निमग्न हो उठे। वे उच्च स्वर में गाते, हरिध्वनि करते और नाचते रहे। कीर्तन की ध्वनि सुनकर आसपास के साधु सन्यासी दौड़कर आये, वे छावनी को चारों ओर से देखने लगे। गुरुभ्राताओं की भाव तरंग देख कर सब विस्मय पूर्वक खड़े रहे। श्री गोस्वामीजी कुछ देर बैठे रहे, फिर कूदकर आसन से उठ पड़े। कंपित कलेवर श्री गोस्वामीजी दाहिना हाथ ऊपर उठाकर, ऊपर देखकर ''जय शचीनंदन ! जय शचीनंदन !'' कहते हुए भावाविष्ट होकर नृत्य करने लगे। उनका मुख आरक्तिम हो उठा। जटाएँ काँपती रही, शरीर का आयतन बढ़कर प्रकाण्ड हो गया, जिसमें न जाने कितने सात्विक भावों का प्रकाश सभी ने देखा। भक्त श्रीधर मधुर नृत्य करते हुए, उच्चस्वर से हरिध्वनि करके, संज्ञा शून्य हो गए। विधु बाबू व महेन्द्र बाबू भी आहा ! वाह ! कहते हुए गर्जन, हुंकार करते जाते। आज संकीर्तन के आनंद कोलाहल में सभी एकाकार हो उठे। श्री गोस्वामीजी सामने की ओर देखकर गद्‌गद् कंठ से ''अवधूत ! अवधूत !'' कहकर चिल्लाते जाते। उस समय हमने देखा एक दीर्घ काय, मुण्डित मस्तक, श्यामवर्ण, नग्नगात्र संन्यासी श्री गोस्वामीजी के सामने धूनी के पास, बाहें फैलाए खड़े हैं। वे कुछ मिनटों बाद, बाहर नित्यानंद महाप्रभु की मूर्ति के गले की माला लेकर आए और श्री गोस्वामीजी के गले में पहनाकर कहीं अदृश्य हो गए। कीर्तन के समय, श्री गोस्वामीजी आसन से नीचे नहीं उतरे। संकीर्तन समाप्त हुआ। तम्बू में श्री गोस्वामीजी अपने आसन पर स्थित होकर बैठे। योगजीवन ने पूछा- ''कीर्तन में तुम्हारे अवधूत अवधूत कहने पर एक साधु धूनी के पास हाथ बढ़ाए खड़े थे, उन्होंने जाकर नित्यानंद महाप्रभु के गले की माला लाकर तुम्हारे गले में डाली, कीर्तन के बीच से ही वे अदृश्य हो

गए, वे कौन थे ?'' श्री गोस्वामीजी -''तुम सबने उन्हें देखा है क्या ? तुम सब भाग्यवान हो। स्वयं नित्यानंद महाप्रभु स्थूल देह में आविर्भूत हुए थे। उनका सच्चिदानन्द रूप भी उन्होंने मुझे दिखाया।'' योगजीवन वे दो-तीन मिनट से अधिक नहीं ठहरे। श्री गोस्वामीजी-''इतना ही यथेष्ट है। इतनी देर भी क्या वे रुकते हैं ?''

एक बार हरिद्वार के मेले में लाखों साधु-महात्मा आए थे। गोस्वामीजी ने कहा था- **''इनमें पूर्ण तत्त्वदर्शी महात्मा केवल तीन थे। अन्य सभी वेशभूषा, सम्प्रदाय और अपने मत को लेकर पड़े हुए हैं।''** इन तीनों में से उन्होंने एक महात्माजी से पूछा, ''इतनी कठोरता बरतने पर भी साधुजन 'तत्त्वज्ञान' प्राप्त क्यों नहीं कर पाते ?'' उन्होंने कहा, **''बाबा ! मैं क्षुद्र कीट हूँ। क्या कहूँगा ?'' बार बार पूछने पर महात्माजी कहने लगे, ''आजकल कोई ईश्वर को नहीं पाना चाहता। मान-मर्यादा, अपनी शक्तियाँ प्रकाशित करना, महंतगिरी-यही सब चाहते हैं, उन्हें यही मिलता है। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां'** (अर्थात: धर्म का तत्त्व 'हृदय गुहा' में रखा है।)'' इतना कहकर महात्माजी मौन हो गये।

प्रारब्धानुसार गोस्वामीजी के देह त्यागने का समय अब आ गया। कभी कभी स्वर्णमयी कहती थीं - **''विजयकृष्ण जगन्नाथपुरी से आया है। वहाँ जाने पर वह कभी भी नहीं लौटेगा।''**जब तक वे जीवित रहीं, अपने पुत्र को उन्होंने पुरी नहीं जाने दिया।

विजयकृष्ण गोस्वामीजी की माँ ठाकुरानी ने एक बार स्वप्न देखा कि विजयकृष्ण नीलाँचल गये हैं, वहाँ उनकी मृत्यु हो गयी है। तभी उन्होंने उन्हें नीलाँचल जाने के लिए मना कर दिया था। उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर अभी तक वे नीलाँचलनाथ के दर्शन करने नहीं गये थे। पर अब उनका स्वास्थ्य बहुत गिर चुका था। नीलाँचलनाथ का आह्वान हुआ। परमहंसजी की आज्ञा भी मिल गयी। इसलिये उन्होंने कुछ शिष्यों-सेवकों के साथ पुरीधाम के लिए प्रस्थान किया। चलते समय भक्तों से कहा - ''मुझे प्रसन्न चित्त से विदा दो, जिससे नीलाँचलनाथ के दर्शन और परमधाम की प्राप्ति हो।''

कलकत्ता होकर कलकत्ते के अपने निवास स्थान में एक दो दिन रुककर जाना था। वहाँ एक मेहतर काम करता था। वहाँ से जाते समय

गोस्वामीजी ने प्रेमावेश में विभोर हो उसे साष्टांग प्रणाम किया और कहा- ''भाई, आशीर्वाद दो, जिससे नीलाँचलनाथ की कृपा प्राप्त कर धन्य होऊँ।''

पुरी पहुँचे तो विजयकृष्ण गोस्वामीजी के आनन्द की सीमा न रही। आरम्भ हुआ नित्य समुद्र स्नान के पश्चात् नीलाँचलनाथ के दर्शन और उनके सामने उद्दण्ड नृत्य कीर्तनादिका कार्यक्रम। कीर्तन में अश्रु, कम्प, पुलकादि अष्टसात्विक भावों का प्रकाश देख नीलाँचल वासी चमत्कृत हुए।

गोस्वामीजी नीलाँचल में सालभर से कुछ अधिक रहे। धीरे धीरे स्वास्थ्य गिरता गया। चलने-फिरने की शक्ति न रही।

समुद्र स्नान के लिए जाना असम्भव हो गया। पर उनका समुद्र स्नान एक दिन भी बन्द न हुआ। जब वे ध्यानासन से उठकर बाहर आते तो उनके जटाजाल से पानी की बूँदें टपकती होतीं। पूछे जाने पर कहते - ''मैंने अभी-अभी ही तो समुद्र-स्नान किया है ।''

गोस्वामीजी ने जगन्नाथ जी के आदेश से नीलाँचल में दान-यज्ञ चलाया। वे नित्य प्रचुर परिमाण में दान करते। उनके पास जो भी आता-खाली हाथ न जाता। वे साधुओं को लोटा, कम्बल और गरीबों को भोजन और वस्त्र देते।

गोस्वामीजी के दान योगैश्वर्य और अलौकिक भक्ति भाव के कारण नीलाँचल वासियों में उनके प्रभाव का इतना विस्तार हुआ कि कुछ लोगों को उनसे ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने प्राण हरण करने के लिए एक षड्यंत्र की रचना की।

एक दिन एक साधु वेशधारी व्यक्ति जगन्नाथजी का प्रसादी लड्डू लेकर उनके सामने आया और बोला - ''बाबा, यह लीजिए जगन्नाथजी का प्रसाद। प्रसाद प्राप्त करते ही खा लेने का नियम है, इसलिए इसे पालें।''

अन्तर्दृष्टिसम्पन्न गोस्वामीजी को जानने में देर न लगी कि लड्डू में मिला है प्राणघातक विष। पर जगन्नाथजी के प्रसाद की अवहेलना कैसे करते ? उन्होंने यह समझकर कि जगन्नाथजी की इच्छा उन्हें विष के माध्यम से ही लीला संवरण करने की है, लड्डू तुरन्त खा लिया।

लड्डू खाते ही वे अचेत हो गये। चिकित्सकों के प्रयत्न से चेतना आ गयी। फिर भी विष धीरे-धीरे अपना काम करता रहा। एक महीने बाद आयी नित्य लीला में प्रवेश करने की निश्चित तिथि–बंगाब्द 1306 साल (सन् 1899) के ज्येष्ठ मास की 22 वीं तारीख, जब वे नित्य लीला में अपने श्यामसुन्दर से जा मिले।

विजयकृष्ण गोस्वामीजी का चरित्र बड़ा विलक्षण है। वे एकदम स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। स्वतंत्रता का परिचय उन्होंने जन्म से ही दिया। उनका जन्म किसी सूतिका गृहकी चारदीवारी के भीतर नहीं, एक वृक्ष के नीचे मुक्ताकाश में हुआ। मुक्ताकाश में जन्मे और जीवन भर मुक्त रहे। उनके हृदय-सरोवर से निकली सत्यानुसन्धान की वेगवती सरिता रास्ते के सभी बाँधों को तोड़ स्वच्छंद गति से बहती रही। उसने सत्य की खोज में समाज, शास्त्र और सम्प्रदाय आदि के प्रतिबन्धों को नहीं माना। इसलिए उन्हें समाज से लांछित भी बहुत बार होना पड़ा। पर उन्होंने इसकी चिंता नहीं की। उन्होंने जब जो रास्ता पकड़ा, उसे तब तक नहीं छोड़ा, जब तक उसका अन्त नहीं जान लिया।

उन्होंने अपनी साधना में कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति सभी को स्थान दिया। सभी में सिद्धि लाभ की। पर उनका मन यदि कहीं टिका, तो भक्ति में। उनकी पूर्ण आत्म तृप्ति तभी हुई जब वे भक्ति सिद्ध हुए। इसमें उनके गृह देवता श्यामसुन्दर ने उनकी आरम्भ से सहायता की। जैसा गोस्वामीजी ने स्वयं कहा है, वे ''उनके बाल्यकाल के सखा थे, यौवन के सहचर और शेषावस्था के एकमात्र आश्रय।'' जगन्नाथपुरी की यात्रा करने के समय उन्होंने कहा था - ''हमारे श्यामसुन्दर हैं जाग्रत, जीवन्त, प्रत्यक्ष देवता। उन्हें पकड़े रहने से ही तुम्हारी सर्वसिद्धि होगी। देखो न, मैं कहाँ चला गया था और कैसे कान पकड़कर खींच लाये।''

श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का चरित्र कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति का अभूतपूर्व समन्वय है। वे महाज्ञानी, महायोगी होते हुए भी महान भक्त थे। कदाचित् उन्हें श्यामसुन्दर ने कर्म, ज्ञान, योगादि के मार्गों में घुमाकर अन्त में भक्ति में प्रतिष्ठित किया इसलिए कि वे उनके माध्यम से इनकी उपयोगिता और आवश्यकता के अनुसार इन्हें अपने-अपने स्थान पर सुरक्षित रखते हुए भक्ति के साध्य और साधन की श्रेष्ठता से जीवों को अवगत कराना चाहते थे। इसीलिए विजयकृष्ण इन मार्गों में विचरते हुए

श्यामसुन्दर से चाहे कितनी दूर चले गये, श्यामसुन्दर ने उनके परम्परागत, मूलभूत भक्ति के संस्कारों को पूर्णतः मिटने कभी नहीं दिया। ब्राह्मसमाज में निराकार ब्रह्म के ध्यान में लीन रहते हुए भी वे हरि-संङ्कीर्तन को नहीं भूले। योग की चरम अवस्था को प्राप्त करके भी हरि नामजप की महत्ता को नहीं भूले।

श्री गोस्वामीजी ने अनेकों व्यक्तियों को दीक्षा प्रदान की। उनके प्रमुख शिष्यों में प्रसिद्ध देशभक्त विपिनचन्द्र पाल, अश्विनी कुमार दत्त के साथ-साथ श्री सतीश मुखोपाध्याय, श्री किरणचन्द दरवेश, श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी, श्री मयूर मुकुट बाबा जैसे प्रसिद्ध भक्त थे। माता योगमाया देवी को ब्रजधाम की प्राप्ति गोस्वामीजी के जीवन काल में ही हो गई थी, श्रीगोस्वामीजी के पुत्र श्री योगजीवन एवं पुत्री श्रीमती शांतिसुधा ने भी श्री गोस्वामीजी की आध्यात्मिक धारा को आगे बढ़ाया। योगजीवन आध्यात्मिक रूप से उच्च कोटि के महापुरुष थे उनके एक प्रसंग से उनके आध्यात्मिक स्तर का आभास लगाया जा सकता है। एक बार योगजीवन ने गोस्वामीजी के पास आकर कहा ''आज बहुत मजा आया'' गोस्वामीजी ''क्या हुआ''? योगजीवन ''आज ध्यान में आसन पर बैठा हुआ था, भगवान श्रीकृष्ण अनेक ऋषि-मुनियों के साथ प्रकट हुए तथा मुझसे कहा कोई वरदान मांगो क्योंकि मेरे दर्शनोपरान्त वरदान आवश्यक है। गोस्वामीजी ''फिर क्या हुआ''? योगजीवन ''मैनें कुछ क्षण सोचा एवं उनसे वरदान मांगा कि मुझे पचास लाख करोड़ रूपये दीजिए, इतना सुनना था कि श्रीकृष्ण भाग छूटे और पीछे मुड़कर भी नहीं देखा''। गोस्वामीजी ''तुम बड़े मूर्ख हो, तुम्हें भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन हुए, उनसे प्रेमभक्ति का वरदान मांगना चाहिए था''। योगजीवन:- ''प्रेमभक्ति तो मेरी मुट्ठी में है, वह तो आपने प्रदान कर ही दी है उस ओर से तो मैं निश्चिन्त हूँ, ''गोस्वामीजी मुस्कुरा कर रह गये। गोस्वामीजी के जामाता श्री जगद्बंधु मैत्र ने भी अनेकों जीवों का आध्यात्मिक कल्याण किया। श्री गोस्वामीजी की समाधि पुरी में जटियाबाबा की समाधि के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी गोस्वामीजी की आध्यात्मिक विचारधारा निर्बाध रूप से चारों ओर बह रही है एवं अनेक साधक उससे लाभ उठा रहे हैं।

✻ ॐ-हरि ✻

*

उ
प
दे
श

सद्गुरु, दीक्षा और कुलगुरु

शिष्य :- किस समय साधन करने पर महापुरुषों की कृपा मिल सकती है या अनुभव की जा सकती है।

श्री गोस्वामीजी :- महापुरुष रात को एक बजे बाद निकलते हैं। एक बजे से चार बजे तक विचरण करते हैं। एक निश्चित स्थान पर, निर्दिष्ट समय में कुछ देर नाम करो तो महापुरुषों की कृपा समझ में आती है। कुछ बार प्राणायाम करके, स्थिर होकर बैठकर नाम करना चाहिये। बिस्तर में मच्छरदानी के भीतर बैठकर नाम करने से भी चलता है, कोई हानि नहीं होती। नाम करते समय महापुरुषगण सामने आकर खड़े होते और सहायता करते हैं। तब उनके देह की सुगंध पाई जाती है। कभी धूप, गुगल, राल, चंदन या हवन के धुएँ की सुगन्ध, तो कभी गाँजा, लोबान और फूलों की सुगन्ध मिलती है। कभी-कभी उनके दर्शन या वाणी सुनकर उन्हें जाना जा सकता है। नाना प्रकार से महापुरुष लोग कृपा करते तथा अपना परिचय देते हैं।

❋ ॐ–हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- देवी-देवता, ऋषि-मुनि अथवा महापुरुष लोग दया करके जहाँ पर आते हैं, वहाँ उन्हीं की कृपा से उनकी देह की सुगन्ध किसी-किसी को आती है। यह सुगन्ध तरह-तरह की होती है। कभी धूपबत्ती और धूप की, कभी चन्दन-गुग्गुल की, कभी कमल की, कभी दूसरे प्रकार के सुगन्धित फूलों की, केले की और कटहल की सुगन्ध आती है। फकीरों के आने पर गाँजे या लोबान की सुगन्ध आती है। उस समय पर उनके चरणों को उद्देश्य करके भक्ति से प्रणाम करे और स्थिरता से बैठकर खूब नाम का जप करने लगे। इससे उन्हें आनन्द होता है। धीरे-धीरे उनकी कृपा का और भी अनुभव होने लगता है।

❋ ॐ–हरि ❋

तुम तो अभी गर्भ की सन्तान हो। तुमको फिक्र करने के लिए है ही क्या? माँ को जिस तरह गर्भ के बच्चे की हालत मालुम हो जाती है, सन्तान के हिलते-डोलते ही वे समझ जाती हैं, उसी तरह गुरु भी

शिष्य की सारी अवस्था, सारी चेष्टा को हर समय जान लेते हैं। सन्तान जब तक पैदा नहीं हो जाती है, तब तक उसमें किसी प्रकार की योग्यता नहीं रहती है। माता जो कुछ खाती-पीती है उसी का थोड़ा थोड़ा रस, नाड़ी के भीतर होकर, सन्तान की देह में पहुँचता है; सिर्फ उतने से ही गर्भ के बच्चे की पुष्टि होती है। इसी प्रकार गुरु को जो कुछ प्राप्त होता है उसका अंश, आवश्यकता के अनुसार, शिष्य को मिलता रहता है। गुरु की उन्नति के साथ साथ ही शिष्य की भी उन्नति होती जाती है। इसके बाद बच्चे का जन्म हो चुकने पर भी माता ही उसको भोजन देती है; सारी आवश्यक वस्तुएँ एकत्र करके माता ही उसका लालन-पालन करती है। जब तक वह चलने-फिरने और खाने-पीने योग्य नहीं हो जाता, तब तक, माता उसे आँखों से ओझल नहीं होने देती; सदा अपनी नज़र के सामने रखती है। किन्तु शिष्य के सिद्धावस्था प्राप्त कर चुकने पर भी सद्गुरु उसे छोड़ नहीं देते। वे उसे उस समय भी बच्चे की तरह गोद में लिये रहते हैं। गुरु सदैव सब बातों में शिष्य का सुभीता देखते रहते हैं।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य - जब तक गुरु पर दृढ़ निष्ठा न उत्पन्न हो, उससे पहले क्या अन्य साधु का सत्सङ्ग करना ठीक नहीं है ?

गोस्वामीजी - अन्य क्या? अन्य समझकर उसका सत्सङ्ग न करे। एक गुरुशक्ति ही सारे संसार में व्याप्त हो रही है, यह समझकर सभी का सत्सङ्ग करने से लाभ ही होगा। रक्ताधार में रक्त रहता है; तो क्या इसी से शरीर के अन्य स्थानों में रक्त नहीं है? रक्त का आधार- मूल स्थान - ही रक्ताधार है। वहीं से सञ्चरित होकर रक्त सारे शरीर में व्याप्त हो रहा है। सारे शरीर में जो रक्त है वह उसी रक्ताधार का ही तो रक्त है। हाँ, यह ठीक है कि यदि रक्ताधार (कलेजे) में रक्त न हो तो शरीर में कहीं रक्त नहीं रह सकता। सारे विश्व में एक गुरुशक्ति ही व्याप्त है। संकोर्ण भाव कुछ नहीं है। संकीर्ण भाव से बड़ी हानि होती है।

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी :- (अग्नि सर्वत्र है, पर उसे कोई नहीं पाता, न हीं उससे काम होता है। अग्नि की आवश्यकता पडे, तो जहाँ उसका विशेष प्रकाश है, जैसे चूल्हा, दीपक आदि, वहाँ से ही अग्नि लेनी पड़ती है। उसी प्रकार भगवान भी सर्वत्र है, सर्वव्यापी है, पर उन्हें पाने के लिये विशेष स्थानों मे उनकी उपासना करनी पड़ती है।) ऋषियों ने ऐसे आठ स्थान बताए हैं, गुरु, सूर्य, शालग्राम, अग्नि, जल, आत्मा, माता-पिता एवं स्त्रियों के लिये पति।

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी :- ''सभी मनुष्य गुणों के अधीन हैं, गुरु के अधीन मनुष्य बहुत बाद में होता है। बहुत कम लोग ही गुरु के अधीन होते हैं।'' गुरु में विश्वास हो जाय, तो कार्य सिद्ध हो गया समझो। कोई आश्चर्यजनक कार्य देखने पर विश्वास होगा सोचते हैं, लेकिन आश्चर्यजनक कार्य देखकर सोचते हैं, अरे इसमें इतना क्या आश्चर्य ? इससे भी विशेष कुछ आश्चर्य देखा तो सोचेंगे, यह व्यक्ति जादुई कला जानता है, वही दिखा रहा है। इस प्रकार के उपायों से भी विश्वास नहीं होता। एक ही व्यक्ति बैठा है, वही खड़ा भी है, वहीं कमरे में घूमता भी है - ऐसी विविध घटनाएँ दिखाने या समझाने पर भी कोई कुछ नहीं समझता। इसलिये स्वयं साधारण व्यक्ति की तरह चलना ही ठीक है, नहीं तो गोलमाल की सृष्टि होती है। यह सब गोपनीय रखना चाहिये। खोलकर बताना ठीक नहीं। विश्वास प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है कि गुरु जैसा उपदेश देवें, उसी का आचरण करना। आचरण करते करते जब हृदय का विकास होता है, तब जाकर विश्वास बन पाता है।''

* ॐ-हरि *

शिष्य :- कलियुग में जीव के उद्धार के लिये किस प्रकार दीक्षा-मंत्र की व्यवस्था की गई है?

श्री गोस्वामीजी :- ''कलियुग में ब्रह्मनाम की दीक्षा का प्रयोजन है,

इसके अलावा कलि के जीवों के उद्धार की कोई और गति नहीं है। यह महादेव ने पार्वती से कहा है, किंतु उनके उपदेश अनुसार दीक्षा प्राप्ति के लिए हृदय प्रस्तुत है या नहीं, देखना पड़ता है। महानिर्वाणतंत्र पर जिन्हें 'देव-वाक्य है' यह विश्वास हो, केवल वे ही उनके उपदेशों का अनुसरण कर सकते हैं।''

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी :- ''बाहर धर्मलाभ के लिये जो प्रयोजन है, वह सब हो गया है। साक्षात् सद्गुरु से दीक्षित न होने पर, परमपिता के दर्शन का अधिकार नहीं मिलता। ध्रुव पाँच वर्ष की उम्र में 'कहाँ हो पद्मपलाश लोचन' कहकर वन में रोता रहा, किंतु गुरुकरण के पहले दर्शन न मिल सके। ईसा ने जॉन द बैप्टिस्ट के पास, श्री चैतन्य महाप्रभु ने ईश्वर पुरी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। मैं यह निश्चित जान गया हूँ कि गुरुकरण बिना ब्रह्म दर्शन नहीं होता।

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी :-' 'क्या सत्य है क्या असत्य, यह आप नहीं जानते। पूर्व शिक्षा को सत्य मानते हैं, पर वह भी सत्य नहीं है। ब्रह्म दर्शन से जब यथार्थ ज्ञान उज्वल होगा, तभी एक एक करके सत्य का ज्ञान होगा। गुरुकरण के बाद जब सभी वासनाओं का अंत होगा, तभी दर्शन होंगे। अन्तःकरण में जो भी वासना हो, वह तो प्राप्त होगी, परब्रह्म की प्राप्ति नहीं होगी। **धर्म-प्रचार की वासना भी छोड़नी होगी।** अपनी इच्छा से कोई भी कार्य न करें। जब तक अपनी इच्छा है, तब तक ब्रह्म का सहवास बहत दूर है। मनुष्य अपने प्रयत्न से जो कुछ कर सकता है, वह सब आपने किया। अब आगे गुरुकरण के बिना अग्रसर नहीं हो पाएंगे। भगवान के सभी कार्यों का एक नियम है। बाहरी जगत का कोई कार्य जैसे बिना नियम से नहीं होता, वैसे ही अन्तर्जगत का भी कोई कार्य बिना नियम के नहीं हुआ करता। ब्रह्मदर्शन के लिये सद्गुरु का आश्रय अकाट्य नियम है।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- सद्‌गुरु की कृपा से सब कुछ हो सकता है; और गुरु जब चाहें तभी सब कुछ कर सकते हैं, यह बात बिलकुल ठीक है। किन्तु इसमें फायदा क्या है? एक वस्तु का मूल्य मालुम हुए बिना ही अगर वह सहज में मिल जाय, तब तो उसके लिए प्रयत्न नहीं होगा। जिस वस्तु की जितनी ही अधिक जरूरत मालूम होगी; उसके मिल जाने पर उसकी प्राप्ति से उतना ही अधिक आनन्द होगा। गुरु यदि एकाएक कोई अवस्था प्रदान कर दें तो फिर उस अवस्था की मर्यादा नहीं समझी जाती! इसीलिए साधन भजन करके, प्रयत्न करके लोग जब समझ लेते हैं कि एक अवस्था को प्राप्त करना कठिन है, वह कितनी दुर्लभ है, तब गुरुजी कृपा करके वह अवस्था प्रदान करते हैं। पहले वस्तु का मूल्य बतला कर फिर वह गुरुजी शिष्य को देते हैं। बस, यही नियम है।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- ''हम जो साधन करते हैं, वह स्वप्न नहीं प्रत्यक्ष घटना हैं। किंतु 'समय' न हो तो कोई इसे नहीं पा सकता? यदि आपकी भूमि तैयार है, आपका समय हो जाये, तो आप जहाँ भी रहें, घर बैठे पा सकते हैं। कुछ होने मात्र से ही भूमि तैयार हो जाने का तात्पर्य नहीं है। इसका अर्थ पृथक् है। साधन पाने पर वह समझा जा सकता है अन्यथा नहीं समझा जा सकता।''

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य :- छोटे बच्चे जो धर्म का कुछ नहीं जानते, जिन्हें अक्षर ज्ञान तक न हुआ हो, ऐसे बालकों को साधन देना - यह बात कुछ समझ में नहीं आती।

श्री गोस्वामीजी :- ''शक्ति सभी के भीतर है, किसी भी समय उसे जागृत कर दिया जा सकता है? नारद जी ने शुकदेव में गर्भावस्था में रहते ही शक्ति संचार किया था। भक्त प्रहलाद को भी इसी प्रकार शक्ति

संचार किया था। आँखों की पीड़ा होने पर, आँखों पर ही दवा प्रभाव डालेगी। उसी प्रकार जिस पर शक्ति संचार किया जाये, नाम उसी पर क्रिया करता है। गुरु का स्मरण रख सकें, ऐसी अवस्था में साधन देना ही उचित है।''

शिष्य :- शक्ति संचार क्या है?

श्री गोस्वामीजी :- ''ईश्वर की शक्ति सभी के बीच है; एक महापुरुष की शक्ति द्वारा उस शक्ति को, जिसे परमात्मा या कुलकुण्डलिनी शक्ति कहा जाता है, जागृत कर देना ही शक्ति-संचार कहलाता है। यह शक्ति सामान्यत: निद्रित होने का यत्न करती है। जो सदा श्वास-प्रश्वास में नाम जप करके उसे पुन: सोने नहीं देते, उनमें यह शक्ति अच्छी तरह खेलती है।''

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - जिन लोगों को हमारा यह साधन प्राप्त हो चुका है; क्या उन्हें भी फिर जन्म लेना पड़ेगा?

इस प्रश्न को सुनकर माताठाकुरानी ने प्रसङ्ग पाकर कहा- श्यामाकान्त पण्डितजी ने एक दिन देखा था कि सभी साधन प्राप्त लोगों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है; पण्डितजी प्रथम श्रेणी में हैं; द्वितीय श्रेणी में बहुत अधिक लोग नहीं हैं; तीसरी श्रेणी में ही लोगों की अधिक संख्या है। जो लोग प्रथम श्रेणी में हैं उनको दुबारा न आना पड़ेगा, उनका यही अन्तिम जन्म है। जो लोग दूसरी श्रेणी में हैं, उनको एक बार और आना पड़ेगा। किन्तु जो लोग तीसरी श्रेणी में हैं, उनको संभव है, दो बार और भी आना पड़ेगा।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - अच्छा, जो लोग सद्गुरु को पाकर देह छोड़ेंगे और इस संसार में फिर आवेंगे उनको क्या फिर भी कृपा प्राप्त होगी?

श्री गोस्वामीजी - इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है, उनको अवश्य ही सद्गुरु की कृपा प्राप्त होगी।

शिष्य - जब सद्गुरु की कृपा प्राप्त हो ही जायेगी, तब फिर संसार में आने में झिझक ही किस बात की है? कठिनाई ही कौन सी है?

श्री गोस्वामीजी - बापू, दुनिया की माया से बड़ी आशंका है, संसार में बड़ी जलन है।

शिष्य - सद्गुरु मिल जाने पर क्या एक जन्म में ही मुक्त हो जाना सम्भव है?

श्री गोस्वामीजी - नि:सन्देह रूप से गुरु की आज्ञा का पालन करने और गुरु में निष्ठा उत्पन्न हो जाने से उसी जन्म में ही मुक्त हो जाना सम्भव है।

शिष्य - गुरु की आज्ञा का प्रतिपालन, चेष्टा करने से, बहुत कुछ हो भी सकता है परन्तु नि:संदेह होना तो चेष्टा की सीमा से बाहर की बात है। मन में अपने आप जो संशय उपस्थित होता है उसको रोकूँगा किस तरह?

श्री गोस्वामीजी - गुरु जो कुछ करने को कहें वह कर देने से ही काम हो गया। सन्देह हो तो हुआ करे, काम को ठीक-ठीक कर लेने से ही सब हो गया।

शिष्य - जिनको यह साधन इस जन्म में प्राप्त हो गया है, वे यदि सावधानी से इसे करते जायँ तो क्या फिर संसार में न आवेंगे? इसी एक जन्म में उन लोगों का बेड़ा पार हो जायेगा?

श्री गोस्वामीजी - तीन जन्म के पहले मुक्ति प्राप्त करते प्राय: नहीं देखा जाता। अक्सर तीन जन्म लगते हैं।

शिष्य - तो हम सभी को तीन बार जन्म लेना पड़ेगा?

श्री गोस्वामीजी - हाँ, लेना पड़ेगा और नहीं भी लेना पड़ेगा।

शिष्य - 'सद्गुरु का आश्रय लेने पर लोगों की मुक्ति तीन जन्मों में होगी; उनके मुक्त न होने तक क्या सद्गुरु को भी संसार में आना पड़ेगा? जन्म लेकर क्या सद्गुरु शिष्य के साथ-साथ रहते हैं?

श्री गोस्वामीजी - हाँ, सद्गुरु साथ ही रहते हैं। जन्म लिये बिना भी कई तरह से, कई उपायों से वे शिष्य पर कृपा करते हैं। वृक्ष, लता,

मनुष्य इत्यादि के भीतर होकर, अनेक के भीतर होकर सद्गुरु कृपा करते हैं। वे लोग क्या हमेशा आते हैं? चार कल्पों के बाद इस दफा नानक आये थे।

शिष्य - तब तो बड़ी मुसीबत है। प्रत्यक्ष रूप में गुरु न मिलने से बड़ा झमेला है।

श्री गोस्वामीजी - मुसीबत तो है ही। हाँ, जो लोग गुरु का वचन मानकर चलते हैं, उनको तो फिर कुछ भी झञ्झट नहीं है। अपनी सूझ बूझ से मनमाने तौर पर चलने पर भटकना पड़ता है। जब तक गुरु के वचन के अनुसार नहीं चलेगा, उनमें निष्ठा नहीं उत्पन्न होगी तब तक आवागमन से पीछा छूटने का नहीं। सद्गुरु का दुनिया से कुछ भी मायिक सम्बन्ध नहीं है, वे सिर्फ शिष्य के भले के लिए ही संसार में आते हैं, उनके आने का उद्देश्य शिष्य का उपकार करना ही है। अतएव उनकी आज्ञा के अनुसार बिना चले काम कैसे बनेगा? गुरु जैसा कहें उसके अनुसार सोलहों आने चलना चाहिए, बस फिर किसी तरह का बखेड़ा नहीं रह जाता।

शिष्य - कई बार तो शायद गुरुजी शिष्य की तरह-तरह से परीक्षा किया करते हैं न ? इस दशा में यह कैसे मालूम होगा कि उनकी ठीक ठीक क्या आज्ञा है ?

श्री गोस्वामीजी - सद्गुरु कभी शिष्य की परीक्षा नहीं लेते। वे यह काम करेंगे ही किसलिए? सद्गुरु तो वही काम बतला देते हैं जिसके करने से शिष्य का सचमुच कल्याण होता है। हाँ, जो लोग उनकी बात को न मानकर अपनी मर्जी का काम करते हैं, उन्हीं को अनेक झमेलों में फँसाकर गुरु महाराज ठीक कर लेते हैं।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य- ''अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक भगवान् की धारणा किसी तरह नहीं होती। उनकी पूजा किस प्रकार करें? क्या गुरु का ध्यान और पूजन करने से भगवान का पूजन नहीं हो जाता?

श्री गोस्वामीजी :- अग्नि तो सभी स्थानों में है; किन्तु उस अग्नि

को क्या कोई पकड़ सकता है? क्या उसके द्वारा कोई काम लिया जा सकता है? आग की आवश्यकता होने पर, सर्वत्र जो आग है, आकाश में जो अग्नि वर्तमान है, वहाँ से कोई उसको पा सकता है? प्रदीप, धूनी, चूल्हा आदि जिन स्थानों में वह अग्नि प्रज्वलित रूप से खास तौर पर प्रकाशित है वहीं जाकर आग लानी पड़ती है। इसी प्रकार ईश्वर यद्यपि सर्वव्यापक हैं; फिर भी कोई उसको पकड़ नहीं सकता। गुरु में ईश्वर की चित्शक्ति का प्रकाश देखकर वहीं पूजा करनी चाहिए। गुरु मनुष्य नहीं है। गुरु ही तो भगवान् हैं, उनकी पूजा करने से ही भगवान् की पूजा हो जाती है।

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- '' प्राचीन काल में उपनयन के पश्चात् गुरु के घर में रहकर अपने-अपने संकल्प को सिद्ध कर लेने के अनन्तर जब शिष्य घर लौटता था तब गुरुदक्षिणा देकर जाता था। हम लोगों को गुरुदक्षिणा देनी होगी?''

श्री गोस्वामीजी :- मोक्षार्थियों को गुरुदक्षिणा देने की आवश्यकता नहीं। जो लोग गुरु के घर में रहकर विद्या पढ़ते थे, वे ही अध्ययन कर लेने पर गुरुदक्षिणा देकर जाते थे। सद्गुरु दीक्षा देकर सब प्रकार से अपना लेते हैं। फिर उन्हें गुरुदक्षिणा कौन दे? हमारे यहाँ ऐसा कोई बन्धन नहीं है।

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- गुरु के अनुगत होने का क्या उपाय है?

श्री गोस्वामीजी :- गुरु के अनुगत होने का कोई निश्चित उपाय नहीं बतलाया जा सकता। वृक्ष किस प्रकार बड़ा होगा, फूलों और फलों से सुशोभित होगा, क्या यह कोई बतला सकता है? पानी और उत्ताप आदि के मिलने पर वृक्ष बढ़ता है, और फूल-फल आदि से सुशोभित होता है, इतना ही कहा जा सकता है; इसी प्रकार रीति के अनुसार गुरु की आज्ञा का पालन करते-करते मनुष्य भी तद्नुरूप

श्रद्धा, भक्ति और अनुकूलता प्राप्त कर लेता है। इतना ही कहा जा सकता है। ठीक आज्ञा के अनुसार चलने की चेष्टा करने से ही समझ जाओगे कि अनुगत किस प्रकार होना चाहिए।

* ॐ–हरि *

शिष्य :- ''सदा गुरु के साथ रहकर उनकी सेवा टहल करने में अधिक लाभ है या दूर रहकर उनकी बताई विधि से साधन भजन करने में जीवन का अधिक कल्याण है?''

श्री गोस्वामीजी :- सब के लिए एक ही मार्ग नहीं है। ऐसी तबियत के आदमी भी होते हैं जो गुरु के पास रहते हैं तो क्रमश: गुरु के प्रति उनको सन्देह बढ़ने लगता है, अतएव उनको कुछ विशेष लाभ नहीं होता है। फिर किसी-किसी को गुरु के समीप रहने से ही विशेष लाभ होता है।यह सब स्वभाव के ऊपर निर्भर है। सब का स्वभाव एकसा नहीं होता। यह तो निश्चित है कि गुरु के समीप रहने से हानि किसी को नहीं होती; सेवा शुश्रुषा में रहने से वात्सल्यभाव कुछ अधिक होते देखा जाता है।

* ॐ–हरि *

शिष्य :- गोस्वामीजी, आप सचमुच हमारा उद्धार करेंगे?''

श्री गोस्वामीजी :- तुम लोगों का उद्धार हुए बिना मुझे छुट्टी नहीं मिलने की। देखो न, चरवाहा तमाम चौपायों को नदी किनारे एकत्र क़रता है और फिर एक एक करके सब को पार पहुँचा देता है; अन्त में जो गाय (चौपाया) रह जाती है उसकी पूँछ पकडकर वह भी पार हो जाता है। तुम सब लोगो के पार हो जाने पर पीछे वाले को पकड़ कर मैं भी पार हो जाऊँगा।

* ॐ–हरि *

शिष्य :- ''सदा सद्गुरु के साथ-साथ रहने पर भी मेरी ये कुप्रवृत्तियाँ किसी तरह नहीं छूटतीं।''

श्री गोस्वामीजी :- ''सद्‌गुरु की सङ्गति ! वह तो बहुत दूर की बात है, तुम तो भली भाँति सत्सङ्ग भी नहीं करते। सत्सङ्ग करने से सारी कुप्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।

शिष्य :- ''तो सत्सङ्ग किस तरह किया जाता है? सत्सङ्ग कहते किसे हैं?''

श्री गोस्वामीजी :- ''साधु के साथ दस-पाँच धर्मसम्बन्धी बातें करना ही सत्सङ्ग नहीं है। साधु के पास रहकर उस का सारा कार्यकलाप और आचार व्यवहार आदि बड़े धैर्य के साथ, धीर भाव से, देखता जावे। वह किस समय क्या करता है, किसके साथ किस दशा में वह कैसा बर्ताव करता है, वह किस प्रकार समय बिताता है ? साधुओं के इन समस्त कार्यों पर सदा दृष्टि रखने से चित्त उसी में आकृष्ट हो जाता है। धीरे-धीरे अपनी त्रुटियां भी पकड़ में आ जाती हैं और उनके प्रति धिक्कार उत्पन्न हो जाता है। साथ-साथ प्रकृति के ये सभी विकृत भाव भी नष्ट हो जाते हैं।

*** ॐ-हरि ***

शिष्य :- 'महाशय ! लोग कहते हैं कि गुरु किये बिना धर्म की प्राप्ति नहीं होती। इस विषय में आपकी क्या राय है?'

श्रीगोस्वामीजी :- राय की बात मैं नही जानता; राय दे भी नहीं सकता। हाँ, यह बात मुझे पक्के तौर पर मालूम हो गई है कि बिना गुरु के धर्म कभी प्राप्त नहीं हो सकता। कुछ मामूली-सा काम सीखने के लिए, साधारण लिखना पढ़ना सीखने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है; बिना गुरु के क्या हो सकता है? जो विषय सब से अधिक दुर्बोध है; उसको बिना ही गुरु के सहज में पा जाना सम्भव नहीं है।

शिष्य :- 'पशु, पक्षी, मनुष्य सभी तो देखकर काम सीख लेते हैं; साधारण भाव से सभी तो गुरु हैं, फिर विशेष रूप से किसी एक मनुष्य को पकड़ रखने की क्या आवश्यकता?'

श्री गोस्वामीजी :- विशेष रूप से एक ही मनुष्य को पकड़ना पड़ेगा। एक विशिष्ट व्यक्ति में गुरुत्व की स्थापना कर लेने से सच्चा गुरू

मिल जाता है। उस समय सभी पदार्थ गुरुमय हो जाते हैं।

प्रश्न :- 'तो कैसे मनुष्य को गुरु बनाना चाहिए?'

श्री गोस्वामीजी :- जिनमें भगवान की चित्‌शक्ति का विलास होता हो, जिनमें भगवान की ज्ञानशक्ति का प्रकाश हो वही गुरु हैं। गुरु और कोई नहीं हो सकता। महापुरुष लोग ही गुरु होते हैं।

प्रश्न :- 'हम लोगों को अन्तर्दृष्टि तो प्राप्त है नहीं, इसलिए बताइये कि बाहरी किन-किन लक्षणों से हम महापुरुषों को पहचान सकेंगे।

श्री गोस्वामीजी :- साधारणत: इन पाँच लक्षणों से महापुरुष पहचान लिये जाते हैं –

पहले तो - महापुरुष कभी आत्मप्रशंसा नहीं करते; कार्य द्वारा अथवा किसी दूसरे प्रकार से भी वे अपना बड़प्पन प्रकट नहीं होने देते।

दूसरे :- महापुरुष लोग कभी किसी की निन्दा नहीं करते।

तीसरे :- महापुरुष लोग कभी समय को वृथा नष्ट नहीं करते; आत्मा के लिए कल्याणकारी किसी न किसी कार्य में सदा तत्पर रहते हैं।

चौथे :- महापुरुष लोग सभी जीवों पर दया रखते हैं; मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग और वृक्ष लता तक के दु:ख में सहानुभूति दिखाते हैं; वे दूसरों की सारी दशाओं को अपनी समझते हैं; वे स्वयं किसी के लिए उद्वेग का कारण नहीं बनते।

पाँचवें :- महापुरुष लोग सदा सन्तुष्ट रहते हैं; कभी किसी कारण चञ्चल नहीं होते।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- किसी-किसी समय पर किसी विशेष आवश्यकता से, भगवान् की शक्ति, व्यक्ति विशेष के भीतर होकर कार्य करती देखी जाती है, यही अवतार है। ज्यों ही वह कार्य पूरा हो जाता

हैं; उस व्यक्ति में फिर वह शक्ति नहीं रह जाती। उस समय फिर वह अवतार भी नहीं रहता। जिस प्रकार 'परशुराम' एक विशिष्ट समय के लिए अवतार थे। कभी कभी जीवन भर तक अवतार रहता है, जैसे 'रामचन्द्र'। अंश, कला, आविर्भाव और आवेश आदि अनेक प्रकार के अवतार होते हैं। अवतार सदा पूर्ण होते हैं, क्योंकि भगवत् शक्ति का प्रकाश ही तो अवतार होता है। भगवान् सदैव पूर्ण हैं। हाँ, उनका अंश, अंशांश इत्यादि कहने का तात्पर्य यह है कि कहीं पर ज्ञान का कार्य, कहीं पर वीर्य का कार्य और कहीं पर भक्ति का कार्य ही दिखाई देता है। भगवान जिस कार्य में जितनी शक्ति को प्रकट करना आवश्यक समझते हैं उतनी को ही प्रकट करते हैं। इससे यह कहना ठीक नहीं कि उनमें अन्य शक्ति है नहीं। शक्ति तो पूरी मात्रा में ही रहती है, किन्तु वे उसको प्रकट नहीं करते। यदि पल भर के लिए भी किसी में भगवान् की शक्ति का आवेश हो जाता है तो समझना चाहिए कि उसमें पूरी पूरी शक्ति है। भगवान् कहीं भी अपूर्ण नहीं हैं, सर्वत्र सभी दशाओं में पूर्ण हैं। सभी अवतार पूर्ण हैं, जितना प्रकट रहता है उतने को ही लोग जानते हैं।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य :- ''सद्गुरु से केवल दीक्षा ले लेने से ही क्या सभी को एक-सी दशा प्राप्त हो जायगी?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, ऐसा तो होगा ही; किसी एक स्टेशन का टिकट कटाकर दस मुसाफिर रेल में बैठ जायँ, फिर चाहे वे सोते रहें चाहे जागते, लड़ाई-झगड़ा करते रहें; चाहे ताश-पासा खेलते जायँ, सभी को एक ही स्थान पर जाकर पहुँचना होगा।

शिष्य :- ''तब फिर आज्ञा का और नियम प्रभृति का पालन करने से क्या लाभ?''

श्री गोस्वामीजी :- लाभ बहुत है। जायेगा तो सभी एक जगह, किन्तु कोई जायेगा पालकी में बैठकर और कोई जायेगा पालकी को कन्धे पर उठाये हुए। बस, मार्ग का पार्थक्य इतना ही है।

*** ॐ–हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- आजकल गुरु करना बड़ी कठिन समस्या का विषय हो गया है। पहले हमारे देश में जो लोग गुरु थे, वे सभी सिद्ध पुरुष थे। कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होने पर ही उन्हें कुलगुरु कहा जाता था। आजकल कुल गुरु का अर्थ लोग वंशपरम्परागत गुरु समझते हैं। आजकल जो लोग गुरु का कार्य करते हैं, पता लगाने से ज्ञात होता है कि उनके वंश में कोई न कोई सिद्ध पुरुष था। कुछ समय पहले भी सिद्ध पुरुषों के वंश में जो लोग गुरु का कार्य करते थे वे सिद्ध न होने पर भी बड़े बड़े शास्त्रज्ञ पण्डित थे। वे ज्योतिष आदि के भी अच्छे ज्ञाता थे। कोई दीक्षा लेने की प्रार्थना करता था तो गुरु लोग उसकी जन्म पत्री लेकर जन्मलग्न से गणना करते थे; गणना के द्वारा दीक्षाप्रार्थी की प्रकृति को मालूम कर लेते थे कि वह सात्त्विक है या राजस अथवा तामस; फिर यह निश्चय करते थे कि उस प्रकृति के साथ किस देवता का विशेष सम्बन्ध है। फिर उस व्यक्ति के देह, मन ओर प्रकृति के साथ चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह और सारे ब्रह्माण्ड तक का योगायोग अनुकूल है या प्रतिकूल - यह भी निरूपित कर लेते थे। इसके पश्चात जिन अक्षरों का स्मरण करने से सारा ब्रह्माण्ड, उसकी गुणानुयायी प्रकृति के अधिष्ठाता देवता के अभिमुख उसे अग्रसर करने में सहायक होगा, उन्हें भी एक एक करके गणना द्वारा मालूम कर लेते थे। अन्त में उन अक्षरों की संयोजना द्वारा मन्त्र का उद्धार करके वही वे शिष्य को प्रदान करते थे और उसके अनुरूप पूजा की रीति भी बतला देते थे। इस रीति से दीक्षा होने पर, गुरु की कोई सहायता न मिलने पर भी, शिष्य यदि श्रद्धापूर्वक, यथाविधि मन्त्र का जप और उन क्रियाओं को करता रहे तो उसके साथ साथ ब्रह्माण्ड की एवं उस देवता की सहायता मिल जाने से इष्टवस्तु की प्राप्ति की ओर वह अग्रसर हो सकता है।

*** ॐ–हरि ***

ठीक प्रकृति के अनुरूप, रीति के अनुसार दीक्षा मिलने पर, साधक यदि प्रणाली के अनुसार चेष्टा करे, तो उसका कुछ न कुछ

फल अवश्य होगा। इससे अनेक स्थानों में देखा जाता है कि गुरु के साधारण अवस्था में रहने पर भी शिष्य को सिद्धि मिल जाती है। आजकल ठीक इस प्रणाली से दीक्षा प्रायः नहीं दी जाती। शाक्त के घर में वैष्णव प्रकृतिवाले को, गुरु आकर, वंश की रीति के अनुसार शक्ति की ही उपासना सिखा जाते हैं और वैष्णव वंश के किसी शाक्त भाव के व्यक्ति को विष्णु मन्त्र ही देकर उस मत के अनुकूल पद्धति बतला जाते हैं। यों प्रकृति के विरुद्ध मार्ग पर चलकर साधन भजन करने से कुछ भी लाभ होता नहीं देखा जाता। किसी तामस भाव वाले को सात्त्विक उपासना करनी हो तो उसकी प्रकृति शरीर तक के अणु परमाणु का प्रलय साधित करके उनको सात्त्विक उपादानों द्वारा गठित करना पड़ता है, नहीं तो सत्त्वगुणी देवता को प्रसन्न कर पाना असम्भव है। इसी प्रकार यदि कोई सत्त्वगुणी तामस देवी-देवता की उपासना करना चाहे तो उसे भी उक्त प्रकार से परिवर्तित होना होगा। यह कार्य सहज नहीं है। इसीलिए पन्द्रह वर्ष की उम्र में साधन लेकर अस्सी वर्ष तक जप तप करके भी किसी देव देवी के दर्शन अथवा कृपा की प्रत्यक्षता के विषय में कुछ भी साक्ष्य नहीं दे सकता। फिर कोई कोई बचपन में ही थोड़े दिन साधन भजन करने पर, अपने उपास्य देव की कृपा के विषय में, स्पष्ट प्रमाण दिया करते हैं। जो लोग आज कलगुरु का काम करते हैं वे प्रायः दूसरा और कोई विचार किये बिना ही, केवल वंश की धारा पकड़कर, साधन दे देते हैं, इससे बहुत अनिष्ट होता है; कारण यह है कि साधन भजन करने पर लोग फल नहीं पाते हैं तो उनको मन्त्र पर, क्रिया पर और देवी देवता पर अविश्वास हो जाता है। फिर भी लौकिक गुरु से यथाविधि दीक्षा अथवा गुरुशक्ति की कोई सहायता न पाने पर भी और किसी अनिष्ट की वैसी आशङ्का नहीं है बल्कि साधक की श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा और चेष्टा रहने से उससे लाभ ही होता है; किन्तु अज्ञात कुल शीलवाले से दीक्षा ले लेने से अनेक अवसरों पर विषम सङ्कट हो जाता है।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य :- ''आजकल बहुत-सी पुस्तकों में योगाभ्यास की समस्त **प्रणाली** लिखी हुई मिल जाती है। उसको देख-देखकर योगाभ्यास करने

से क्या वैसा लाभ नहीं होता?''

श्री गोस्वामीजी :- लाभ होना दूर रहा, निरी पुस्तकों के सहारे योगाभ्यास करना तो बहुत भयानक है। बहुत लोग तो पुस्तकों की सहायता से योगाभ्यास करने की धुन में हर्निया, कुष्ठ, मस्तिष्क का रोग और कभी-कभी दूसरे प्रकार के उग्र रोगों के पल्ले पड़कर बिलकुल सत्यानाश कर लेते हैं। साधन भजन की किसी भी क्रिया का, कौशल को बिना जाने, केवल पुस्तक देखकर अभ्यास न करना चाहिए। प्राय: सभी क्रियाओं के करने की विधि को शास्त्रकारगण संकेत में ही लिख गये हैं। उन क्रियाओं का अभ्यास करना हो तो क्रियावान गुरु से उनको ठीक ठीक समझ लेना चाहिए, प्रणाली से सीखना चाहिए, नहीं तो कुछ हाथ नहीं लगता।

❋ ॐ–हरि ❋

शिष्य :- सिद्ध पुरुष से दीक्षा लेने में किसी इष्ट अथवा अनिष्ट की सम्भावना तो नहीं है?

श्री गोस्वामीजी - ''बिना सोचे समझे 'कोई सिद्ध पुरुष' सुनते ही उसके पास जाकर दीक्षा लेना भी ठीक नहीं है। सिद्ध न जाने कितने प्रकार के होते हैं। जिसका जो संकल्प है उसकी प्राप्ति हो जाने से वह सिद्ध हो गया। मैं जो कुछ चाहता हूँ, उस विषय में जो सिद्ध नहीं है वे मुझे वह मार्ग कैसे बतला सकेंगे और उस विषय में सहायता ही क्या करेंगे ? जो जिस विषय का सिद्ध है वह उसी मार्ग को बतला सकता है। सिद्ध हो जाने से ही कोई सर्वज्ञ नहीं हो जाता और यह भी नहीं कहा जा सकता कि सिद्ध होने से वह धर्मात्मा भी होगा। धर्म के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखते हुए भी कितने ही लोग कितने ही विषयों में सिद्ध हो जाते हैं ! निरे योगाङ्ग के अभ्यास द्वारा, ऐश्वर्य की सहायता से, कोई व्यक्ति चन्द्रलोक, सूर्यलोक और नक्षत्रलोक में सशरीर अनायास आ-जा सकता हो, फिर भी वह नास्तिक हो सकता है। अतएव किसी सिद्ध व्यक्ति से साधन लेने के पहले अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि वह कैसा सिद्ध है। सात्त्विक स्वभाव का कोई आदमी, सिद्ध नाम सुनते ही, यदि किसी कापालिक

या पिशाचसिद्ध से दीक्षा ले ले और उसकी प्रणाली से मद्य, मांस आदि लेकर तामस साधन किया करे तो इससे उसको कौन सा लाभ होगा? स्वभाव के विरुद्ध साधन करने पर, सिद्धगुरु की सहायता मिलने से भी लाभ तो कुछ होगा नहीं, हाँ, अनिष्ट हो जायगा। इसलिए दीक्षा लेने से पहले, सिद्ध पुरुष जानकर भी, नियम से उसके साथ कुछ समय तक रहना चाहिए। धीरे धीरे उसका चित्त आकृष्ट हो जाय और अपने लक्ष्य के विषय में वह व्यक्ति सिद्ध जान पड़े तो उससे दीक्षा ली जा सकती है। ऐसा होने पर, सिद्ध गुरु की सहायता और अपनी प्रकृति के अनुकूल साधन की चेष्टा से वह शीघ्र सिद्धि पा सकता है।

* ॐ-हरि *

शिष्य :- 'सद्गुरु क्या हैं? उनकी दीक्षा की कौन सी विशेषता है? और वह दीक्षा मिलने पर कैसी दशा होती है?'

श्री गोस्वामीजी :- सद्गुरु से दीक्षा लेना बिलकुल स्वतन्त्र प्रकार का है। वहाँ किसी समय असमय और योग्य अयोग्य का विचार नहीं है। वह तो उनकी कृपा पर निर्भर है। यह दीक्षा चाहे जिस अवस्था में, चाहे जहाँ, एकमात्र भगवान् की कृपा से ही हुआ करती है। भगवान् ही सद्गुरु हैं। उनके पदाश्रित भगवज्जन महापुरुष ही सद्गुरु हैं। सद्गुरु शिष्य नहीं करते, वे तो गुरु करते हैं। वे शिष्य के भीतर अपने इष्ट देव को प्रतिष्ठित करके उन्हीं की सेवा पूजा करते हैं। शिष्य की देह उनके देवता का मन्दिर है। देवमन्दिर में किसी प्रकार का अपचार या अनाचार होने पर उसको देखकर जैसे सेवक लज्जित होता है, दु:खित होता है वैसे ही शिष्य की किसी प्रकार की दुर्दशा देखने से ये गुरु स्वयं, सेवा-पूजा में त्रुटि होना समझकर मलिन हो जाते हैं। सद्गुरु का दिया हुआ नाम (मन्त्र) न तो नाम है, न अक्षर और न एक शब्द ही; इस नाम में ही भगवान् की अनन्त शक्ति निहित रहती है। शिष्य के भीतर इस शक्ति का सञ्चार ही सद्गुरु की दीक्षा है। यह दीक्षा, भगवान् की कृपा से, **किसी को एक बार भी प्राप्त** हो जाय तो फिर स्वयं करने के लिए कुछ **भी नहीं रह जाता। उस**के जीवन का समस्त

कार्य प्रत्येक श्वास प्रश्वास तक उसी एक के इच्छाधीन हो जाता है। जिस तरह घड़ियाल पकड़ता है उसी तरह सद्‌गुरु शक्तिसञ्चार करके, दीक्षा देकर, शिष्य को धीरे धीरे आत्मसात कर लेते हैं। इस सम्बन्ध में शास्त्र का वचन है- 'दीक्षा ग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्।'

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य :- दीर्घकाल कठोर तप करके उन्नत अवस्था लाभ करके भी साधारण अपराध से पतित होना पड़ता है तो क्या कोई निरापद स्थान नहीं है?

श्री गोस्वामीजी :- सद्‌गुरु का आश्रय जिन्होंने पाया है वे ही निरापद हैं। सद्‌गुरु का आश्रय पाकर कोई भय नहीं रह जाता। सद्‌गुरु लाभ करना क्या इतना सहज है? कई जन्म सिद्धि लाभ करके एकमात्र भगवान की कृपा से सद्‌गुरु लाभ हो पाता है। सद्‌गुरु लाभ हो जाने पर वे किसी भी अवस्था से पतित नहीं हो सकते। परन्तु कर्म काटने के लिये कुछ समय तक उनकी अवस्था दबाये रखना प्रयोजनीय हो सकता है। नष्ट कभी कुछ नहीं होता। सद्‌गुरु प्राप्ति के बाद कोई भी अवस्था लाभ हो, वह चिरस्थाई होती है। सद्‌गुरु लाभ होते ही शिष्य पूर्णत: निरापद हो जाते हैं।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी ने भाव की अवस्था में कहा :- ये चतु: सनत सनकादि ऋषि योग शिक्षा के प्रथम प्रवर्तक, योग शिक्षा देते हैं। जो शिक्षा देते हैं, स्वयं न करने पर बेंत खाते हैं। शिष्य न करे तो भी बेंत खाते है। पीछे से नारद बेंत मारते हैं। गुरु होना क्या भयानक है बाबा ! मैं किसी का गुरु नहीं हूँ। परमहंसजी ही गुरु हैं। उन्हें कौन बेंत मारेगा? वे ब्रह्म से युक्त स्वयं ब्रह्म हैं। वे ही सब करते हैं, मैं कुछ भी नहीं करता। वे ही सब कु छ हैं। वे सब देख रहे हैं। जो-जो कुछ कर रहा है, सब देख रहे हैं । अच्छा-बुरा सब कुछ, बचने का रास्ता ही नहीं है। गुरु सब जानते हैं, सावधान!

एक गुरुभाई बड़ा निर्भीक, बड़ा हठी और सरल प्रकृति का था। उसने एक दिन मन में दु:ख होने से क्षोभ पूर्वक अत्यंत उत्तेजित दशा में आकर सबके सामने श्री गोस्वामीजी से कहा- गोसाईं, आपका यह साधन आप लौटा लो। मैं यह साधन न कर सकूंगा।

श्री गोस्वामीजी हँसकर बोले :- क्यों क्या हुआ? गुरुभाई - होगा क्या? यह साधन क्या हम सब कर सकते हैं? हमारे लड़के, लड़कियाँ, घर, संसार, समाज हैं। दस बड़े लोगों के साथ सद्भाव और आत्मीयता रखकर चलना पड़ता है। हम क्या साधन के नियम मानकर चल सकेंगे?

श्री गोस्वामीजी :- केवल मांस, मंदिरा, उच्छिष्ट मात्र खाना ही तो निषिद्ध है इसके अलावा और क्या नियम हैं। क्या यह सब लिये बिना नहीं रहा जाता?

गुरुभाई - महाशय ! चिरकाल से मदिरा, मांस खाता आया हूँ। यह सब छोड़ दूँ तो खाऊँ क्या ? आजकल सभ्यता बचा कर चलना हो तो यह सब खाना ही पड़ता है। घर में तो उच्छिष्ट मानकर चलना संभव नहीं हो पाता ! फिर समाज में उच्छिष्ट विचार कर चलना असंभव है।

श्री गोस्वामीजी :- अच्छा थोड़ी कोशिश करना फिर भी न कर सको तो क्या किया जायेगा ?

गुरुभाई :- जी, यह बात न कहें। आपके पास झूठ नहीं कह सकता। इस विषय में मेरी बिल्कुल चेष्टा नहीं है, करूँ कहाँ से।

श्री गोस्वामीजी :- अच्छा नाम तो कर सकते हो। उसी से बन जाएगा। गुरुभाई-गोसाईं, नाम क्या करूँ, वह तो याद ही नहीं रहता।

श्री गोस्वामीजी :- अच्छा तुम एक काम करना ? उस समय मुझे स्मरण करना और याद रखना कि तुम जो भी अपराध करो उसका दण्ड मुझे भोगना पड़ेगा। तुम्हारे अपराध के लिए अब तुम्हें भोगना नहीं पड़ेगा। श्री गोस्वामीजी गद्गद् होकर सजल नेत्रों से उसे देखने लगे। तब गुरुभाई कैसा बदल सा गया। उसका सारा शरीर काँपने लगा। वह श्री गोस्वामीजी के पैरों में गिरकर चिल्लाते हुए रोने लगा और लोटते हुए कहने

लगा- प्रभु मेरे लिए आप भुगतेंगे? मेरे प्राण चले जाएं पर आज से आपके आदेश का उल्लघंन न करूँगा। ऐसा कहकर व्याकुल होकर रोते-रोते चला गया। अब उसमें अद्‌भुत परिवर्तन देखा गया है। श्री गोस्वामीजी की बातें गुरुभाईयों से करते हुए वह आँसू से भीग जाता है और पछताकर कहता है, श्री गोस्वामीजी ने मुझे साँड की तरह छोड़ दिया और मेरे अपराधों की सजा स्वयं भोगते हैं। मेरे प्रति उनकी दया की कोई सीमा नहीं है।

✻ ॐ–हरि ✻

अवस्था लाभ साधन सापेक्ष नहीं है, कृपा सापेक्ष है। अप्राकृतिक अवस्था गुरुदेव के हाथों है। वे जब चाहेंगे कृपा कर तभी देंगे अन्यथा हजार साधन भजन करके भी उसे नहीं पा सकते।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- अवस्था की प्राप्ति की प्रत्याशा तो गुरु पर ही निर्भर है, फिर अनिष्ट की आशंका कैसी?

श्री गोस्वामीजी :- यह सब क्या सहज है? तुम एक अवस्था पाने के लिए बहुत दिनों से यथाशक्ति यत्न कर रहे हो, परंतु कुछ नहीं हो रहा है। जब एक साधु आकर कहे - ऐसा करो तो हो जाएगा। तब वह न करना क्या सरल बात है। ऐसा प्रलोभन कोई नहीं टाल सकता। ऐसा करके कई लोग विपत्ति में भी पड़ते हैं। स्वप्न में भी ऐसे प्रलोभन आते हैं।

शिष्य :- स्वप्न में देखूँ कि गुरु आकर आदेश या उपदेश दे गए तो वह भी असत्य हो सकता है?

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, हो सकता है। गुरु रूप लेकर कोई भी परीक्षा ले सकता है।

शिष्य :- फिर वह गुरु का आदेश सच या झूठ है, कैसे समझूंगा?

श्री गोस्वामीजी :- नाम करते हुए यदि रूप अदृश्य हो जाए तो

जान लो वह ठीक नहीं था। नाम करने पर भी ठीक रहे तो जानो वह सत्य है। नाम करने पर माया या असत्य टिक नहीं सकता।

शिष्य - यदि स्वप्न में नाम करने का स्मरण न रहे तो क्या करेंगे, यथार्थ गुरु आदेश कैसे समझ पायेंगे?

श्री गोस्वामीजी :- गुरु यदि उस समय सशरीर हैं तो गुरु से पूछ लेना चाहिए। न हो सके तो संदेह आने पर ऐसे उपदेशों का पालन या अनुसरण न किया करें। प्रथमतः गुरु स्वप्न आदेश करें या उपदेश दें तो उसमें मन में किसी प्रकार संदेह उदित ही न होगा और यदि ऐसे आदेश पर मन में संदेह उत्पन्न हो तो समझना यह गुरु आदेश नहीं है।

ॐ-हरि

आज मग्नावस्था में श्री गोस्वामीजी अचानक बोल उठे - उफ ! कितना कष्ट है! क्या ही कष्ट है ! देखा नहीं जाता ! माता-पिता पर इतना अत्याचार! क्या भयानक है ! सारे संसार में धर्म ग्लानि है, भगवान ! अब यहाँ नहीं रहना चाहता। अब अंत करो, मुझे हटा लो, अब नहीं देखा जाता। उफ ! कुछ देर बाद ठाकुर सचेत हुए। आँख मुँह पोंछकर स्थिर होकर बैठे।

शिष्य :- संसार की दुरावस्था देखकर महात्मागण भी कष्ट पाते हैं?

श्री गोस्वामीजी :- महात्मागण कष्ट नहीं पाते तो और कौन पाता है? यह सब देखकर उन्हें जैसा कष्ट होता है दूसरे उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। संसारी लोग उसका एक आना भी नहीं भोगते। इसी कारण महात्मागण चले जाते हैं। यह सब देख कर सहन नहीं कर पाते। आँख पड़ ही जाती है बिना देखे भी नहीं चलता। संसार पाप से पूर्ण हो गया है। धर्म लुप्त हुआ जा रहा है।

ॐ-हरि

श्री गोस्वामीजी :- गुरु का जो देह नित्य है, वह यह देह नहीं। इस देह के भीतर ठीक इसी रूप का एक और देह है। वही सच्चिदानंद

नित्य रूप है। यह देह जो देखते हो उसकी छाया है। जैसे दर्पण में चेहरा देखो; मुख के समान ही छाया पड़ेगी। जो वस्तु नहीं केवल इसकी छाया है। यह देह भी उसी प्रकार है। इस छाया के द्वारा ही काया को पकड़ पाते हो और कोई अन्य उपाय नहीं है। इसी रूप के ध्यान से वह सच्चिदानंद रूप दिखेगा। छाया बिना काया पाओगे भी तो कैसे ?

ॐ-हरि

श्री गोस्वामीजी :- मुक्त पुरुषों को सहज ही नहीं पहचाना जा सकता। मुक्त पुरुषों के भाव, भाषा अत्यंत गंभीर होती है। कभी कभी तो अश्लील भाषा का भी प्रयोग करते हैं। आचरण भी कभी ऐसा करेंगे कि साधारण व्यक्ति पहचान न सके अतएव श्रद्धा भी न करे। शास्त्र में कहा है - जिनमें श्रद्धा का विकास नहीं हुआ हो वे धर्म के लिए कई गुरुओं का आश्रय ले सकते हैं। जैसे मधुमक्खी एक पुष्प से दूसरे पुष्प में जाती है। इससे यथार्थ धर्म की प्राप्ति नहीं होती। समय आने पर अपने आप श्रद्धा का विकास होता है, तब मन एक स्थान पर स्थिर होता है। यह तंत्र का मत है। उपनिषद का मत यह है कि जब तक श्रद्धा उत्पन्न न हो तब तक गुरुकरण नहीं करना चाहिये।

श्रद्धा होने पर पैतृक गुरु के पास दीक्षा ली जा सकती है किन्तु पैतृक गुरु के पास दीक्षा लेनी ही पड़ेगी ऐसा शास्त्र में कहीं नहीं लिखा है। कुल गुरु के पास दीक्षा लो - यह व्यवस्था भी है। किन्तु कुलगुरु का अर्थ पैतृक गुरु नहीं है। जिनकी कुलकुण्डलिनी शक्ति जागृत हुई हो वे ही कुलगुरु हैं। शास्त्रों में है कि शिष्य गुरु को तथा गुरु शिष्य को एक वर्ष तक परीक्षा करके देखे। यदि दोनों शास्त्रोक्त लक्षण युक्त हों तभी दीक्षा दी जाए। अपात्र से दीक्षा लेने या अपात्र को दीक्षा देने से कोई लाभ नहीं होता। मनु ने मंत्रदाता गुरु के बारे में कुछ नहीं कहा। जो वेद पढ़ाते हैं, उन आचार्य गुरु के सम्बन्ध में ही कहा है। वेद में जो है वह केवल ब्राह्मणों के लिए है। मंत्रदाता गुरु के विषय में तंत्र, सनत्कुमार संहिता, गौतम संहिता तथा नारद पंचरात्रादि ग्रंथों गें है।

✻ ॐ–हरि ✻

आजकल शास्त्र अनुरूप दीक्षा नहीं होती। सद्‌गुरु से दीक्षा लेने में कोई विचार नहीं करना पड़ता। तिथि, क्षण कुछ भी नहीं देखना पड़ता। कोई लक्षण देखकर सद्‌गुरु पहचाने भी नहीं जा सकते। कई जन्मों के साधन भजन तथा भगवत् कृपा से समय आने पर सद्‌गुरु पहचाने जा सकते हैं। गुरु लाभ न हो तो भी विधिवत् व्यवस्था मानकर चलना चाहिये। शास्त्र के अनुरूप चलनें पर धोखा नहीं होता।

✻ ॐ–हरि ✻

गुरु पर विश्वास होते ही धर्म लाभ होता है। पर यह तो सहज ही नहीं हो पाता। धर्म साधन करके अर्थात गुरु जो कहे वैसा ही करते करते क्रमश: विश्वास का जन्म होता है। जितने दिनों तक हृदय में संशय है उतने दिनों तक उसकी क्रिया होगी ही। जैसे काम, क्रोध, लोभ अन्तस में रहते हैं, उनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, संशय भी उसी प्रकार है। यह भी आत्मा की अवस्था है। एक मात्र नामजप द्वारा ही आत्मा के सब संशय तथा पाप नष्ट हो जाते हैं। तब विश्वास अपने आप आयेगा। प्रत्येक श्वास प्रश्वास में नाम जप करना ही एकमात्र उपाय है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''मानव जीवन में जो कुछ भी सीखना चाहे उसमें गुरु का प्रयोजन है। संसार में जो भी दर्शन करते, श्रवण करते, घ्राण, स्पर्श, आस्वादन आदि सारी इन्द्रियों द्वारा भोग करते हैं, जब इनके तत्वों के बारे में जानना चाहे तो इस विषय के उत्तम ज्ञाता के पास शिक्षा लेनी पड़ती है ; उसी प्रकार ईश्वर है, मैं हूँ, जगत है, यह सहज ज्ञान से तो सभी जानते हैं, पर कोई सहज ज्ञान से संतुष्ट होकर उनका कारण व उत्तर जानना चाहता हो तो उसे तत्त्वज्ञ गुरु के पास ही शिक्षा लेनी होगी। ब्रह्मविद् के सिवा दूसरा कोई पण्डित ब्रह्मविषयक उपदेश देने का अधिकारी नहीं होता। **इसीलिए गुरु के बिना तत्त्वज्ञान लाभ होना** संभव नहीं।''

*** ॐ-हरि ***

शिष्य :- किस प्रकार गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। साधारण गुरु के पास दीक्षा लेकर क्या उपकार मिलता है? उनके वाक्यों पर तो विश्वास नहीं होता।

श्री गोस्वामीजी :- ''देववेत्ता एवं ब्रह्मज्ञानी, जिन्होंने ब्रह्म में शांति लाभ किया हो ऐसे गुरु का आश्रय लेना चाहिये। जो ब्राह्मण हैं, वासना हीन हैं, जिनके सारे रिपु नष्ट हो गये हैं, जिनका शरीर निर्मल है, अंगहीन न हो, जिनकी श्री कृष्ण चरणों में गरिष्ठाभक्ति हो, ऐसे गुरु का आश्रय लो। जो वस्तुत: महाजन हैं, उनका ही आश्रय लेना होगा। लोगों के मुख से सुन लिया कि वे धर्मात्मा साधु हैं, तो उससे काम नहीं बनता। विशेषत: यथार्थ साधु कौन है, यह सुनकर नहीं समझा जा सकता। पथ चलते हुए, पूर्वजों के दर्शाए मार्ग का अनुसरण करते हुए, यथार्थ साधु से साक्षात्कार हो जाने पर ही सब तरफ से निरापद हुआ जा सकता है। प्रत्येक गुरु के वाक्य के साथ ही एक न एक शक्ति होती है। विश्वास पूर्वक करने पर वह अवश्य ही क्रिया करेगी। गुरु वाक्य का महत्त्व बोध होने पर भी विश्वास नहीं बैठ पाता। गुरु के प्रत्येक वाक्य पर विश्वास होना पूर्वजन्म की साधना के साथ संबंधित है। शास्त्र या ऋषि वाक्य के विरुद्ध जो उपदेश देवें, वे आर्यऋषि, शास्त्र के मतानुसार गुरु नहीं हैं।''

*** ॐ-हरि ***

शिष्य :- क्या गुरु के समक्ष किसी और की पूजा करनी चाहिये ?

श्री गोस्वामीजी :- ''गुरु की अनुमति हो तो कर सकते हैं। गुरु में ही सर्वदेवों का अधिष्ठान दर्शन हो जाय तो गुरु से पृथक् स्थान में पूजा निषिद्ध है।''

गुरु सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्य देवतां।
स याति नरके घोरे सा पूजा विफला भवेत।।

श्री गोस्वामीजी :- ''दीक्षा के संबंध में दो प्रकार की व्यवस्था है। वैदिक नियम के अनुसार वेद वेदांत वेत्ता आश्रमी अर्थात्, ब्रह्मचर्य,

गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास इन चार आश्रमों में से किसी एक का जो नियमित आचार प्रतिपालित करते हों, ऐसे वेदज्ञ, सदाचारी, आश्रमी ब्राह्मण सद्गुरु शब्द वाच्य हैं। वैदिक सद्गुरु के पास केवल ब्राह्मण ॐकार मंत्र ले सकते हैं, अन्य जातियों को यह अधिकार नहीं है। द्वितीय व्यवस्था तांत्रिक है। कलियुग में सब दुर्बल ब्राह्मण, जो वैदिक आश्रम व सदाचार का पालन नहीं कर सकते, उनके लिये दया करके महादेव जी ने तंत्र शास्त्र की व्यवस्था की है। तंत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं वर्णसंकर सभी मनुष्यों का अधिकार है। तंत्र साधना के तीन सोपान हैं पशु, वीर एवं दिव्य। इन तीनों साधनाओं में कृतकार्य होकर जिस व्यक्ति ने मंत्रार्थ सहित - मंत्र चैतन्य कर लिया हो, उनका मंत्र सिद्ध हो जाता है। इस सिद्ध मंत्र के साथ ॐकार युक्त रहता है। सिद्ध मंत्र से जिन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली हो, वे ही सद्गुरु हैं। ये सद्गुरु महादेव की आज्ञा के अनुसार ॐकार युक्त मंत्र सभी वर्णों को प्रदान करते हैं। उनकी साधना से नितांत श्रद्धाहीन व्यक्ति भी तीन जन्मों में मुक्ति लाभ करता है। यह सत्य है, सत्य है, सत्य है, शिववाक्य है।''

*** ॐ–हरि ***

शिष्य :- विश्वास, भक्ति नहीं है, लेकिन दीक्षा ग्रहण करके धर्मलाभ करने की आकांक्षा हो तो इस अवस्था में क्या करना कर्तव्य है?

श्री गोस्वामीजी :- ''अपना विश्वास न हो तो मंत्र लेना केवल समाज का एक नियम पालन मात्र करना होगा। सभी धर्म-संप्रदायों में, धर्म शास्त्रों पर श्रद्धा रखकर, क्रमशः शास्त्रानुसार चलते-चलते किसी एक बात पर विश्वास किया जाता है। अन्यथा भगवान ने मानव आत्मा में जो धर्मभाव दिया है, उस पर स्वाभाविक हो तो भी चलता है। शास्त्र या आत्मप्रत्यय में विश्वास न हो किंतु धर्मलाभ करने की व्याकुलता रहे तो, पूर्वपुरुषगण तथा देश के प्रसिद्ध धार्मिक गण जिस पथ का अनुसरण करके धर्म लाभ किए हों, महाजनों के द्वारा दर्शित उसी पथ का अनुसरण करना कर्त्तव्य है।''

यदि कोई किसी सिद्ध महात्मा या महापुरुष से दीक्षा लेकर इष्टमन्त्र को भूल जाय, गुरु को बिल्कुल भूल जाय, तो गुरुभाई से किसी प्रकार का थोड़ा सा संस्त्रव (संभाषण) हो जाने से भी उसके भीतर सोई हुई गुरुशक्ति की एक क्रिया होने लगती है; श्री गोस्वामीजी ने इसे एक प्रसंग से इस प्रकार समझाया :-

''गया में एक खुशहाल आदमी ने बचपन में किसी सिद्ध महात्मा से दीक्षा ली थी। फिर रुपये पैसे और धन दौलत के फेर में पड़कर वे साधन भजन, इष्टनाम और गुरु तक को भूल गये; धीरे धीरे वे खासे दुनियादार हो गये। एक दिन एक उदास साधु ने उनके दरवाजे पर आकर कहा, 'हम भूखे हैं, हमको कुछ भोजन दीजिए।' मकान के नौकर ने मुट्ठी भर चावल लाकर साधु से कहा, 'यह ले लो और चले जाओ।' साधु ने कहा, 'मैं दाना नहीं माँगता, मुझको थोड़ा सा भोजन दो।' साधु की बात सुनकर मालिक ने नौकर को धमकाकर कहा, 'यह क्या गोलमाल हो रहा है ? खासा झमेला है ! उसे धक्का देकर निकाल दे। अब क्या था, नौकर उस साधु को धक्के मारने लगा। धक्के खाकर साधु वहीं बैठ गया और कहने लगा, 'हम बहुत भूखे हैं, जरा भोजन तो दीजिए।' साधु का हठ देखकर मकान मालिक आग बबूला हो गया और उसने साधु को जा पकड़ा और घूँसे, चाँटे व लातें मारने लगा। ''अहा गुरुजी'' कहकर साधु चिल्ला उठा, इसी समय न जाने मकान मालिक को क्या हो गया कि वह लातें मारते-मारते एकाएक रुक गया और थर-थर काँपते हुए गिरकर उसने साधु को पकड़ लिया। अब वह बार-बार साधु के चरणों में गिरकर रोने लगा। 'अरे हम तेरे गुरुभाई हैं, तेरे गुरुभाई हैं।' यह कहकर साधु उठा और दौड़ता हुआ एक ओर चला गया। यह घटना होने के बाद से उस आदमी के स्वभाव में अद्भुत परिवर्तन हो गया। वह साधन-भजन करने लगा और थोड़े ही दिनों में खासा सदाचारी, निष्ठावान भजनानन्दी हो गया।

❊ ॐ-हरि ❊

सब काम तो अपनी इच्छानुसार करेंगे और जब नाम करने की बात आती है तो चाहते हैं कि गुरु करवा लें, ऐसा क्या संभव है।

''किसी एक मनुष्य को विशेष रूप से प्रेम करना धर्म-साधन का प्रधान अंग है। जब तक भीतर रोग है, उसके निवारण का यत्न करना पड़ेगा। अपनी कोशिश से निवारण न हो पाया तो अपना कोई दायित्व नहीं रह जाता। जरा चिंतन करके देखने पर ही देखा जा सकता है, कि जगदीश्वर स्वयं ही सारी सृष्टि के खेवनहार हैं। पंचभूत, ग्रह-उपग्रह, सागर, नदी, पर्वत, वन, उपवन, मरुस्थल, वृक्षलता, कीट पतंग, पशुपक्षी, सब कुछ बन कर स्वयं आनंद ले रहे हैं। पिता-माता, भाई-बहन, स्त्री-स्वामी, पुत्र-कन्या, वेश्या, बदमाश, चोर, डाकू , पण्डित, साधु, राजा प्रजा, उपास्य-उपासक और मुक्तिदाता सब कुछ वे ही हैं।

❋ ॐ--हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- ''अबकी बार कुछ लोगों को कई प्रकार से कार्य करना होगा किंतु कोई स्थिर नहीं हो रहा है। अब महापुरुषगण स्वयं कुछ नहीं करेंगे। उपयुक्त शिष्यों द्वारा करवाएंगे।'' महापुरुषों ने अभी कई प्रकार से कार्य करना आरंभ कर दिया है।

❋ ॐ–हरि ❋

श्री राधा जी के प्रति विशेष अनुग्रह दिखाने से उन्हें गर्व हो गया, उस समय श्रीकृष्ण छुप गये। फिर सखियाँ और श्री जी एकत्र होकर श्रीकृष्ण के लिए रोने लगीं। तब श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर रासलीला की। श्रीकृष्ण के वाम भाग में श्री जी को देखकर सखियाँ आनन्द से विह्वल हो गईं और श्री जी भी श्रीकृष्ण के वाम भाग में सखियों को देखकर आनन्दित हुईं। गुरु शिष्य-सम्बन्ध भी ऐसा ही है। गुरु यदि शिष्य को तुच्छ समझता है तो भगवान उसका परित्याग कर देते हैं। गुरु और शिष्य के एकत्र होकर क्रन्दन करने पर भगवान् प्रकट हो जाते और रासलीला करते हैं। उस समय कृष्ण के बाईं ओर गुरु को देखकर शिष्य सुखी होता है और भगवान के वाम भाग में शिष्य को देखकर गुरु भी सुखी होते हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''राधारानी सखियों से कहती हैं कि (आयान घोष की इष्टदेवी काली हैं) मैं श्यामा की पूजा करना चाहती हूँ कि श्याम आकर दर्शन देते हैं। अब मैं क्या करूँ, मेरा धरम-करम सब गया और श्यामा पूजा भी न हो पाई।'' श्री गोस्वामीजी - ''जब तुम अपने इष्टदेव या गुरु का ध्यान करो तब वे जिस रूप में भी दर्शन दें, उसे ही आदर देना। यदि कुत्ते बिल्ली के रूप में भी आएँ तो भी आदर करना, पर ध्यान भंग न करना।'' ''आप लोग जिसे एक ब्रह्म कहते हैं, वे ब्रह्म गुरु ही हैं। मस्तक पर ही गुरु विराजमान हैं। ब्रह्म तालु में गुरु का निवास है। वे अनन्त है, उनका अन्त नहीं। ध्रुव जब वन में गया तो वे ही पीछे रहकर उनकी रक्षा करते रहे। बाघ आया तो ध्रुव ने कहा - तुम मेरे इष्टदेव ही आए हो ? बाघ ने किसी प्रकार की हिंसा नहीं की। फिर वे ही अनन्त नारद के रूप में आए एवं उन्होंने ध्रुव को दीक्षा दी।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- हमारे यहाँ सोलहों आने गुरुकृपा का भरोसा है, पौरुष की तनिक भी अपेक्षा नहीं रहती।

*

उ
प
दे
श

नाम महिमा,
श्वास-प्रश्वास में नाम
और प्राणायाम

श्री गोस्वामीजी :- ''श्वास-प्रश्वास में नाम करते करते एक अवस्था ऐसी आती है जिसमें गुरु के दर्शन होते हैं। गुरु के मध्य से ही, नाम के चैतन्य रूप के दर्शन होते हैं। तभी गुरु, ब्रह्म एक हो जाते हैं। जिनको ऐसे दर्शन प्राप्त हों या ऐसी अवस्था प्राप्त हुई हो, उनके लिये गुरु ब्रह्म हैं।''

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - ''जिन्हे श्वास-प्रश्वास के साथ नामस्मरण का अभ्यास हो जाता है, उनके शरीर में क्या कोई विशेष चिह्न प्रकट हो जाता है? यदि कोई यह कहे कि मुझे श्वास-प्रश्वास में नामस्मरण हुआ करता है तो उसके किस बाहरी लक्षण को देखकर समझा जा सकता है कि उसकी बात सच है?''

श्री गोस्वामीजी :- मुँह से कह देने से ही तो हो न जायेगा। ऐसे लोगों के शरीर में भी विशिष्ट लक्षण देखने को मिलेंगे। श्वास प्रश्वास के साथ नाम गुँथ जाने पर शरीर के ऊपर ऐसा चिह्न दिखाई देगा। ध्यान से देखने पर उसकी परख हो जायेगी।

यह कहकर श्री गोस्वामीजी ने अपनी उँगली के पिछले भाग में एक प्रकार का चक्राकार चिह्न दिखलाया। दोनों हाथो की उँगलियों के पिछले हिस्सों में वैसे घुँघराले ॐकारवत् चिह्न दिखलाये।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- प्रतिदिन आपके मुख से नाम की कितनी ही महिमा सुनता हूँ। शास्त्रकारों ने भी नाम की बड़ी महिमा बताई है। फिर भी नाम करके कुछ भी तो फल नहीं पा रहा हूँ, हमारी यह दुर्दशा क्यों है?

श्री गोस्वामीजी :- ''शास्त्रकारों ने नाम की असीम महिमा बताई है। वैसे ही नाम के बल पर जो पाप करते हैं, उसे भयानक अपराध भी बताया है। नाम अपराध जैसा और कोई पाप नहीं। तृण की भाँति नीचा, वृक्ष की भाँति सहिष्णु, अमान्य व्यक्ति को मान देकर स्वयं अभिमान का त्याग करके, नाम करने पर नाम का फल तुरन्त प्राप्त होता है। यह **अवस्था** सत्संग, धर्म ग्रन्थ पाठ, गुरु आज्ञा पालन, मातापिता एवं **गुरुजनों** तथा भगवत् भक्तों की सेवा द्वारा प्राप्त होती है।''

❊ ॐ-हरि ❊

उत्तीर्ण होने का एक ही उपाय है, श्वास प्रश्वास में नाम-जप। उस समय नाम में ठीक रह सको तो सब बन जाएगा। नाम में रुचि हो जाए तो कोई प्रलोभन या परीक्षा कुछ नहीं कर पायेगी। नाम में रुचि न होने तक ही विपत्ति की आशंका है। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करते करते ही नाम में रुचि का जन्म होता है। फिर कोई कठिनाई नहीं होती।

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- ''मन तो नितान्त चञ्चल है, उसके ऊपर बाहरी बाधाएँ भी बहुत-सी हैं, फिर स्थिर होकर नाम का जप किस प्रकार करूँ? हम लोगों के यहाँ क्या कुछ ध्यान की व्यवस्था नहीं है?''

श्री गोस्वामीजी :- वैध ध्यान और राग का ध्यान, यों दो प्रकार के ध्यान हैं सही- किन्तु हम लोगों को उनकी कुछ आवश्यकता नहीं है। मन को किसी एक 'चक्र' में बैठाकर और आँखों की दृष्टि को किसी वस्तु में स्थिर करके नाम का जप किया जाता है। ऐसा करने पर बहुत से उत्पातों से पिण्ड छूट जाता है। नाम भी सभी दशाओं में प्राय: ठीक चलता है। चक्र में मन को बैठाकर नाम का जप करते - करते तनिक स्थिर होते ही चक्र के भीतर एक रूप प्रकट होता है; वह ज्यों ही प्रकट हो, त्यों ही उसको आयत्त कर ले। हमारे यहाँ कल्पना करके किसी भी रूप के ध्यान की व्यवस्था नहीं है। भगवान् के अनन्त रूप हैं। यह कौन कह सकता है कि वे किस रूप में किसके आगे प्रकट होंगे? और इसी का क्या निश्चय कि वे सदा एक ही रूप में दर्शन देंगे? केवल श्वास प्रश्वास के साथ साथ नाम का जप करते जाओ, इसी में सब कुछ ठीक हो जायगा।

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- ''नाम का जप करते-करते मन स्थिर हो जायेगा या मन को शान्त करके जप करना चाहिए?''

श्री गोस्वामीजी :- क्या यह कोई कर सकता है? श्वास-प्रश्वास

के साथ साथ भगवान् के नाम का जप करते-करते उन्हीं की कृपा से मन स्थिर हो जाता है। ऐसा करने पर धीरे-धीरे सब समझ लोगे।

✻ ॐ–हरि ✻

''हम जो कुछ कहते हैं, वही करते जाओ। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करने की चेष्टा करो। नाम साधना से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। हमने अपने जीवन में नाम साधन का फल पाया है। एक बार उस तरह नाम साधन करो तो सही, देखें कैसे फल नहीं मिलता है? पहले- पहले नाम का जप करने से विरक्ति होती है; किन्तु इसी से उसे छोड़ न देना चाहिए। विरक्ति होती है तो होने दो। उससे तनिक भी हानि नहीं है। नाम का जप खूब किया करो। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करने से, धीरे-धीरे, प्रारब्ध कट जाता है। तब फिर अच्छी-अच्छी अवस्थाएँ भी प्राप्त होने लगती हैं। प्रारब्ध को काट डालने का इससे उत्कृष्ट उपाय नहीं है।''

✻ ॐ–हरि ✻

'कभी कल्पना न करना। नाम का जप करते-करते सत्य वस्तु अपने आप प्रकाशित हो जायेगी'।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी - दर्शन का विषय जिस प्रकार क्रम से थोड़ा थोड़ा, धीरे-धीरे, साफ तौर पर प्रकट होता है, वही हाल श्रवण का भी होता रहता है। श्रवण के आरम्भ में एक तरह का 'किच् किच्' शब्द सुनाई पड़ता है। उस शब्द के होते ही ऊबकर, न सुनने से अनिष्ट हुआ करता है। नाम जप करते हुए उस शब्द को बड़ी निष्ठा से सुनना चहिए; निष्ठा रखने से ही धीरे-धीरे सब प्रकार के शब्द सुनाई पड़ने लगते हैं। हाँ, अन्यान्य शब्दों की तरह यह शब्द नहीं है, इसमें थोड़ी-सी विशेषता रहेगी ही। उसका पता पहले से ही लग जाता है। निष्ठा रख कर स्थिर चित्त से उन शब्दों को सुनने से ही धीरे-धीरे बातचीत भी सुनाई देने लगती है। तब बातें की जा सकती हैं, प्रश्न करने पर उत्तर मिलता है किन्तु जब तक बातचीत नहीं होती, तब तक पूरा-पूरा विश्वास नहीं

होता। विश्वास की दृढ़ता के साथ साथ बातें करने वाले के अङ्ग आदि का स्पर्श भी क्रम से साफ-साफ हुआ करता है। यह स्पर्श पाञ्चभौतिक स्पर्श नहीं है। यह स्पर्श दूसरे ढंग का है। यह सब जब होता है तभी ठीक-ठीक समझ में आता है। नियमानुसार साधन करते जाने पर ये अवस्थाएँ सभी को प्राप्त होंगी। इच्छा करने से भी होंगी और न करने से भी होंगी। ठीक समय आने पर ही इनकी प्राप्ति होगी।

ॐ-हरि

शिष्य :- इन दर्शन, स्पर्शन और श्रवण आदि के लिए तथा नाना प्रकार के अलौकिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए क्या कोई दूसरे प्रकार का साधन करना पड़ता है?

श्री गोस्वामीजी- 'इसी नाम से सब हो जाता है' एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम के जप का अभ्यास हो जाने से ही सब कुछ होता है। जब तक ज्ञान नहीं हो जाता कि हम शरीर से अलग हैं, तब तक उक्त अवस्थाओं की प्राप्ति नहीं होती। शरीर से अपनी पृथक्ता समझने के लिए श्वास प्रश्वास में नाम का जप करना चाहिए। श्वास प्रश्वास में नाम का जप करना कुछ सहज काम नहीं है; चाहे नाम का तीन चार लाख जप करो, चाहे तीन-चार करोड़, किन्तु श्वास प्रश्वास पर लक्ष्य रखकर किये गये नाम के जप की तरह लाभ और किसी तरह नहीं होता। इसका लाभ दूसरे ही ढँग का है। सहज श्वास-प्रश्वास में एक बार ठीक ठीक नाम के गुँथ जाने से ही आत्मदर्शन हो जाते हैं। 'शरीर से आत्मा की पृथकता' को जानकर जहाँ तनिक स्थिर हुआ, वहीं आत्मा में नाना प्रकार की क्षमता आ जाती है। तब वह आत्मा बहुत से अलौकिक काम सहज में कर सकती है।

ॐ-हरि

शिष्य :- आपने जिस अमृत का उल्लेख किया है उसका स्वाद कैसा होता है? जब कि वह रक्त के ही किसी प्रकार के परिवर्तन से उसी का चुवाया हुआ रस है तब उसको पीने से क्या किसी तरह का अनिष्ट नहीं होता?

श्री गोस्वामीजी - भिन्न-भिन्न समयों पर उसका स्वाद भिन्न प्रकार का होता है। भक्ति के भावों के साथ उसका योग है। जिस भाव से भक्ति होती है वैसा ही स्वाद भी हो जाता है। कभी नमकीन, कभी मीठा, कभी नमकीन और मीठा मिला हुआ और कभी तीता, इस प्रकार तरह तरह का स्वाद होता है। भक्ति का जब जैसा भाव होगा, वैसा ही स्वांद रहेगा। हम तो देखते हैं कि उसको पीने से कुछ भी अनिष्ट नहीं होता बल्कि शरीर और भी चङ्गा रहता है। उसको पीकर मुद्दत तक भोजन न करने पर भी किसी तरह की सुस्ती नहीं जान पड़ती; शरीर खासा सबल और नीरोग बना रहता है। उससे शरीर का बहुत कल्याण होता है। इसी से शास्त्र ने उसको 'अमृत' कहा है। वह सचमुच अमृत है।

शिष्य :- जिस भक्ति से यह अमृत होता है वह भक्ति कैसे प्राप्त हो ? हम लोग क्या उस अमृत को प्राप्त कर सकते हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- यह अमृत प्राप्त करना चाहो तो श्वास प्रश्वास में नाम का जप किया करो। जब ऐसा करने लगोगे तभी देखना कि क्रम से कुछ मिलेगा। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करना ही सबसे बढ़िया उपाय है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- अभी समझ में न आवेगा कि क्या फायदा हो रहा है ? अभी तो सिर्फ जप करते जाओ। धीरे-धीरे सब मालूम हो जायेगा। इसमें संदेह नहीं कि श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करना बहुत कठिन काम है किन्तु कठिन होने से छोड़ देना नहीं चाहिए। पहले-पहले नाम बहुत ही रूखा लगता है। हम से जब गुरुदेव ने श्वास-प्रश्वास में नाम जप करने के लिए कहा तब कुछ दिनों तक चेष्टा करते ही हमारा जी बेहद ऊबने लगा क्योंकि बिना कुछ समझे-बूझे, रुखे-सूखे नाम जप भला कब तक किया जाय ? कई बार तो नाम का जप करने में इतनी रुखाई जान पड़ती कि जप करना, व्यर्थ समझकर, छोड़ देने की इच्छा होती थी। तब एक दिन परमहंसजी ने दर्शन दिये। हमने कहा-'अब व्यर्थ इस तरह जप नहीं हो सकता। रूखा नाम जपने से क्या होगा ? कुछ भी तो समझ नहीं पड़ता।' तब उन्होंने तनिक हँसकर हम से कहा-

'सिर्फ हमारा अनुरोध मानकर नाम जप किये जाओ। रूखा जान पड़ता है तो उसकी परवा न करो। जी ऊबता है तो उसमें भी कुछ हानि नहीं है। नाम का जप करते जाओ, धीरे-धीरे सब मालूम हो जायेगा।' परमहंसजी की बात मान कर मैं फिर नाम का जप करने लगा। गयाजी में आकाश गङ्गा पहाड़ पर और विन्ध्याचल में नाम का जप करते करते छः महीने बिता दिये, तब थोड़ा-थोड़ा पता चलने लगा। वहाँ पर हमारी अनेक प्रकार की अवस्थाएँ होने लगी। समय-समय पर यह भी सन्देह होता था कि हम जागते हैं या सोते, तब सन्देह को दूर करने के लिए कभी-कभी शरीर में काँटा चुभो दिया है, या और न जाने क्या क्या किया है? फिर जब दरभङ्गे में आये तब एक दिन गुरुदेव ने दर्शन दिये। उनको हमने सारा हाल खुलासा कह सुनाया; उस समय उन्होंने इतना ही कहा- 'हठयोग प्रदीपिका' और 'विचार सागर' ग्रन्थ लाकर एक बार पढ़ो। हमने कहा- 'ये ग्रन्थ हमको मिलेंगे कहाँ?' उन्होंने एक दुकान का नाम बतलाकर कहा-'दरभङ्गे में सिर्फ उसी दूकान में ये ग्रन्थ हैं, पाँच रुपये में देगा। जाकर ले आओ।' गुरुजी के कहने के अनुसार हमने उस दूकान में जाकर देखा, सिर्फ वही दो पुस्तकें उस दुकान में हैं। कीमत भी पाँच रुपये ली। हमने दोनों पुस्तकें पढ़ी। देखा कि उन दोनों ग्रन्थों में जितनी अवस्थाओं की बातें लिखी हुई हैं, वे सभी हमको प्राप्त हो गई हैं। उक्त अवस्थाएँ जब हमको प्राप्त हुई थी तब समझा था कि हमारा दिमाग खराब हो गया है। जब हमने ग्रन्थों को पढ़ लिया तब फिर गुरुजी ने दर्शन दिये। हमने उनसे कहा, पहले से क्यों न आपने इन पुस्तकों के लिए हमसे कह दिया, तब तो मैं इस झमेले से बचा रहता। गुरुजी ने कहा- ''नहीं, पहले से पढ़ लेना ठीक न होता। हम जानते हैं कि तुम तो बेढब कट्टर लड़के हो। अगर उक्त ग्रन्थ तुम्हें पहले से पढ़ने को दिये जाते तो तुम इस समय समझते कि उनके पढ़ लेने के संस्कार से ही तुम्हारे दिमाग में कुछ खराबी पैदा हो गई है। उन अवस्थाओं की वास्तविकता पर तुम्हें विश्वास न होता। अब तो अपनी अवस्था का अनुभव तुम स्वयं कर रहे हो। हजारों वर्ष पहले मुनि ऋषियों ने जिन शास्त्रों को लिख दिया है उनसे भी उन अवस्थाओं की साक्षी मिलती है; अब हम भी कहते हैं कि साधन के द्वारा तुम्हे जो अवस्थाएँ प्राप्त हुई हैं,

वे सब सत्य हैं। अब इस विषय में तुम्हे रत्ती भर भी सन्देह न होगा।''
अवस्था की प्राप्ति हो चुकने पर उसकी सत्यता का प्रमाण शास्त्र में देखना ही ठीक है। इससे शास्त्र पर भी सोलहों आने विश्वास जम जाता है।

✲ ॐ-हरि ✲

श्री गोस्वामीजी :- वेद में इस साधन के विषय का उल्लेख है। इसका अवलम्बन करके बहुत योगी और ऋषि सिद्ध हो गये थे। कुछ समय तक नियमानुसार यह साधन किया जा सके तो इसका लाभ मालूम होता है। वीर्य-धारणा के साथ-साथ यह प्राणायाम और कुम्भक छः महीने तक करने पर अन्याय प्रकार के प्राणायामों का फल प्राप्त किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप कर सकने पर फिर और किसी चीज की आवश्यकता नहीं होती। उसमें प्राणायाम और कुम्भक आदि सब कुछ हो जाता है। अलग प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता। इस मार्ग की तरह सीधा मार्ग दूसरा नहीं है। सिर्फ श्वास और प्रश्वास में नाम का जप करते रहने से ही सारी अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं, और कुछ भी नहीं करना पड़ता।

✲ ॐ-हरि ✲

शिष्य :- प्राणायाम की बहुत रीतियाँ हैं, हम लोगों के इस प्राणायाम का वर्णन क्या किसी शास्त्र में भी है ?

श्री गोस्वामीजी :- शास्त्र में आठ प्रकार के प्राणायाम की रीति प्रकट रूप से है; क्योंकि पहले पहल सीखने वालों को उसी की आवश्यकता रहती है। किसी किसी तापनी में, उपनिषद में हमारे इस प्राणायाम का बहुत ही संक्षेप में उल्लेख मात्र है। शास्त्र में यह सङ्केत है कि इसको सिद्ध-गुरु से सीख लें। चिरकाल से ही यह सिद्ध महर्षियों के भीतर बहुत ही गुप्त रूप से चला आ रहा है। शास्त्र देखकर इसका अभ्यास करने से अकस्मात् मृत्यु तक हो सकती है। देखादेखी इस प्रणायाम के करने की चेष्टा करके बहुत लोग कठिनाई से आराम होने वाले

रोग के झमेले मे पड़ गये हैं। इसलिए, और अन्य कारणों से भी यह सदा से ही बहुत गुप्त बना हुआ है। बहुत ही विश्वस्त पात्र देखकर ही सिद्ध महापुरुष लोग यह प्राणायाम सिखाया करते हैं। अन्यान्य कुम्भक, प्राणायाम आदि करने से जो-जो फल मिलते हैं वे सब फल इस प्राणायाम का ठीक विधि के अनुसार थोड़े समय तक अभ्यास करने से ही मिल जाते हैं।

* ॐ-हरि *

शिष्य :- मैं तो नाम स्मरण नहीं कर पाता।

श्री गोस्वामीजी :- नाम स्मरण करने की इच्छा हो तो यही बहुत है। हमारा जो योग है वह नाम का योग है। गम्भीरनाथ बाबा से हमने श्वास प्रश्वास में नाम का जप करने की बात सुनी थी। बीस वर्ष के बाद उनकी बात का मतलब समझा।

* ॐ-हरि *

शिष्य :- प्राणायाम कितने प्रकार के होते है ?

श्री गोस्वामीजी :- मनुष्य की देह में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं। उन नाड़ियो में प्राणवायु को पहुँचाने की जितनी प्रक्रियाएँ हैं उन सभी को प्राणायाम कहते हैं। एक एक नाड़ी में एक-एक प्रकार की प्रक्रिया द्वारा इस प्राणवायु का सञ्चार होता है। इसलिए प्राणायाम के भी बहत्तर हजार भेद हैं। शरीर के तरह-तरह से हिलाने डुलाने और अनेक प्रकार के शब्द करने से भी प्राणायाम होता है। लोगों को पता नहीं है कि किस प्रकार की चेष्टा करने से किस नाड़ी में, किस तरह, प्राणायाम की क्रिया होती है। आजकल प्राणायाम की उक्त रीतियाँ कहीं दिखाई नहीं पड़तीं। उनका तो एक प्रकार से लोप ही हो गया है। अब तक फकीरों में प्राणायाम के ये भेद थोड़े बहुत पाये जाते हैं।

* ॐ-हरि *

शिष्य :- ''नाम का जप करते समय मन तो किसी प्रकार स्थिर होता ही नहीं। क्या करूँ ?''

श्री गोस्वामीजी :- मन क्या सहज में स्थिर हो जाता है? मन स्थिर हो गया तो फिर रह क्या गया? पहले पहल मन बहुत अस्थिर ही रहता है, नाम का जप करने से मन उचटता है। किन्तु इस समय नाम को छोड़ न दे। जबर्दस्ती औषधि खाने की तरह इच्छा न रहने पर भी जप करता जाय। इस समय जबर्दस्ती जप किये बिना निस्तार नहीं होता। जप करते-करते जहाँ एक बार उसका भली भाँति अभ्यास हुआ वहाँ फिर और कठिनाई नहीं रह जाती। जब तक जप करने का अच्छा अभ्यास न हो जाय तब तक किसी प्रकार उसको छोड़ न दे। सर्वदा चेष्टा करता रहे। मन लगाकर चेष्टा करते जाओ, भगवान् की कृपा से समय पर सब कुछ होगा।

* ॐ-हरि *

स्वाभाविक कुम्भक करके सदा नाम का जप किया करो। धीरे धीरे हर एक दम (श्वास) में कुम्भक के साथ नाम का जप करने लगने पर इस विषय में भरपूर लाभ होगा। इन क्रियाओं का जिन के साथ शरीर का एक विशेष योग है, उन्हें ये अकस्मात् एक बार में ही नहीं हो जाती; कुछ समय लगता है। अनेक कारणों से अनेक दशाओं में देह का वीर्य मथित होकर प्रशस्त मार्ग में हो उपस्थ की ओर जाता है। वीर्य को ऊपर की ओर जाने के लिए भी एक सँकरा मार्ग है। नीचे के मार्ग का मुख बिल्कुल बन्द हुए बिना वीर्य कभी ऊपरी मार्ग में नही जा सकता। वीर्य के स्रोत को ऊपरी मार्ग में न कर पाने से और किसी उपाय से उसको शरीर में नहीं रोका जा सकता। वीर्य कभी एक स्थान में रहने वाली वस्तु नहीं है। उसे अधोगामी न होने देने के लिए कितने ही लोग कितने ही काम करते हैं। शरीर की गर्मी को घटाने के लिए कोई शिरा काट डालते हैं; कोई मन की उत्तेजना को घटाने के लिए अङ्ग आदि का छेदन करते हैं किन्तु इससे वास्तविक कुछ भी लाभ नहीं होता। ऐसे उपायों का अवलम्बन करने से धर्मजीवन का भी कुछ कल्याण नहीं होता। **संयम द्वारा चित्त को स्थिर रखकर नाम** का जप करते हुए कुम्भक द्वारा **वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित** करना

पड़ता है। कुम्भक करने से वीर्य के नीचे वाले मार्ग पर दबाव पड़ता है और ऊपर का रास्ता प्रशस्त हो जाता है; अतएव वीर्य की गति नीचे की ओर न होकर ऊपर की ओर हो जाती है। एक बार वीर्य की गति ऊपर की ओर पलट जाने पर फिर वह नीचे नहीं जाता। जब मुझे ऐसा हुआ था तब ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे एक अमृत के सागर में डुबा दिया है। चेष्टा करके किये गये कुम्भक करने से ही यह सब होता है। अस्वाभाविक कुम्भक से कुछ लाभ नहीं। नाम के साथ साथ थोड़ा थोड़ा इसी रीति से कुम्भक का अभ्यास करो। इन मामलों में सदा खूब चेष्टा भी करनी चाहिए। दृढ़ता न हो तो अधिक समय तक चेष्टा भी नहीं हो सकती।

*** ॐ-हरि ***

शिष्य - ''नाम का जप करते-करते जो कुछ प्रकट होता है उसकी मर्यादा की रक्षा कैसा व्यवहार करने से होती है ?''

श्री गोस्वामीजी :- नाम का जप करते-करते जो कुछ प्रकट हो उसको श्रद्धा भक्ति के साथ नमस्कार करे और वहीं आशीर्वाद भी माँग ले। ऐसा करने से ही कल्याण होता है।

शिष्य - ''आशीर्वाद में क्या माँगना चाहिए ?''

श्री गोस्वामीजी :- भगवान् के चरणों में मति गति लगी रहे उनके चरणों की भक्ति हो, इतना आशीर्वाद माँगने से ही वे सन्तुष्ट हो जाते हैं।

*** ॐ-हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- श्वास-प्रश्वास के साथ नाम की क्रिया होने लगने पर जब नाम का जप प्रत्येक शिरा में होने लगता है; तब हाथ, पैर, नाक, कान, आँखें सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों का भीतर की ओर खिंचाव होता है। उस दशा के आरम्भ में ही सावधान न रहने से और नाम का जप उस समय बिलकुल बन्द कर देने से बड़ी कठिनाई हो जाती है। उस दशा में हाथ-पैर सभी बिलकुल पेट के भीतर चले जा सकते

हैं। फिर दूसरा हाल भी होता है। जब नाम की क्रिया अस्थि, मांस, मज्जा प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग में हुआ करती है तब हाथ, पैर, घुटने प्रभृति शरीर के सभी जोड़ खुलकर अलग अलग हो जाते हैं; हाथ पैर लम्बे हो जाते हैं। वैसा होने पर न केवल हाथ पैर ही बल्कि मस्तक तक शरीर से टूटकर अलग हो जाता है फिर धीरे धीरे ठीक स्थान पर आकर जुड़ जाता है। इसे निरी कहानी मत समझ लेना, मैं अपनी आँखों देख चुका हूँ।

ॐ-हरि

शिष्य :- ''नाम का जप करते-करते कभी-कभी शरीर में बेहद जलन क्यों होती है?''

श्री गोस्वामीजी :- यह जलन क्या जलन है? यदि जप करते रहो तो जलन का पता लगेगा। प्राचीन काल में ऋषियों के समय में तुषानल का चलन था। देह की शुद्धि के लिए वे किसी-किसी को तुषानल में शुद्ध कर लेते थे। इस युग में तो वह हो नहीं सकता। शरीर भी तो वैसा नहीं है। उस ढंग के हठयोग का भी कोई अभ्यास नहीं करता। अब महापुरुष लोग कृपा करके नामरूपी अग्नि में देह को शुद्ध कर लेते हैं। जब श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का जप होने लगता है तभी ऐसी जलन का आरम्भ होता है। फिर नाम के साथ-साथ यह जलन इतनी बढ़ जाती है कि ऐसा लगता है मानो शरीर के सभी अणु-परमाणु बिल्कुल जल गये। इस नामाग्नि की जलन के मारे मनुष्य पागल की तरह भागने लगता है। संन्यास लेने के पश्चात् परमहंसजी की आज्ञा से, मैं जब विन्ध्य पर्वत पर रहता था तब मुझे यह जलन हुई थी। इस जलन से बचने के लिए मैं दिन भर बदन में पतले कीचड़ का लेप लगाया करता था। एक दिन जलन के असह्य हो जाने पर मैं पर्वत पर एक कुण्ड में जाकर कूद पड़ा। उस समय एक संन्यासी ने मुझे उठा लाकर कहा- 'यह क्या करते हो? इस पानी में न उतरना चाहिए। इसी समय पत्थर बन जाते। अपने बालों, दाढी मूछों को देखो। सब बिल्कुल सफेद हो गये हैं। इस पानी की यही विशेषता है।'' अब संन्यासी पहाड़ में से खोजकर एक लता ले आये।

उसका रस निचोड़कर उन्होंने बालों में लगा दिया। वह रस जहाँ जहाँ पर लगा वहाँ के बाल काले हो गये और जहाँ पर नहीं लगा वहाँ के अभी तक सफेद हैं। इसी से मेरे सामने के बाल सफेद हैं और दोनों ओर के तथा पीछे के काले हैं। गुरुजी के दर्शन पाकर उनको जलन का हाल बताया तो वे कहने लगे- 'इस जलन से ही घबरा रहे हो? अब तुम ज्वालामुखी चले जाओ। वहाँ जाकर साधन करने पर स्थान के प्रभाव से यह जलन चौगुनी बढ़ जायगी फिर शीघ्र ही बिलकुल शान्त हो जायगी। बस, मैं ज्वालामुखी को चला गया।

✻ ॐ-हरि ✻

मोहिनी बाबू - इस साधन को प्राप्त कर मुझे अचानक क्या हो गया ? इतने वर्ष तक अपने जिन ब्राह्म मित्रों के साथ उपासना करता था, अब जब वहाँ जाता हूँ तो ''नाम'' बन्द हो जाता है। नाम करना कष्टकर प्रतीत होता है ।

गोस्वामीजी - जो लोग भगवत् विद्वेषी हैं, उनके पास ''नाम'' चलना कठिन है ।

मोहिनी बाबू - ब्राह्मगण तो उपासना करते हैं, वे भगवत् द्वेषी कैसे हो सकते हैं ?

गोस्वामीजी - जो लोग, साधू, सन्यासी, भक्तगणों से द्वेष करते हैं, वहाँ भगवत् नाम स्मरण करना कष्टप्रद होगा बल्कि जो लोग अपवित्र, कुकार्य करते हैं, चरित्रहीन हैं परन्तु अपने को हीन समझकर भगवान् एवं भगवत् भक्तों को श्रद्धा-भक्ति करते हैं, वहाँ ''नाम'' करना सहज होता है ।

✻ ॐ-हरि ✻

'' नाम से ही सब होता है, श्वास-प्रश्वास में नाम अभ्यस्त होने से सब होता है। शरीर से स्वयं को पृथक समझाने के लिए श्वास-प्रश्वास में नाम जप करना जरूरी है। श्वास-प्रश्वास में नाम करना सहज नहीं हैं तीन चार लाख नाम करो या तीन चार करोड़ नाम करो,

श्वास-प्रश्वास में नाम करने का उपकार और किसी से नहीं मिलेगा। इसकी उपकारिता अन्य प्रकार हैं स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास में एक बार नाम का अभ्यास हो जाने पर आत्मदर्शन होगा। शरीर से आत्मा पृथक जानकर स्थित होने से आत्मा की विभिन्न प्रकार से क्षमता बढती है तब जीवात्मा अनेक अलौकिक कार्य आसानी से कर सकता है।''

✲ ॐ-हरि ✲

नामब्रह्म-पूजा के प्रत्यादेश - प्रसंग में श्रीश्री नित्यानन्द प्रभु ने कहा था, ''नामब्रह्म ही कलि का एकमात्र देवता है, यह नामब्रह्म एंव आचार्यपूजा कलियुग में घर-घर में प्रतिष्ठित होगी। यथासमय इसके द्वारा भारत के एक प्रांत से दूसरा प्रान्त आलोड़ित होगा।

✲ ॐ-हरि ✲

''शास्त्रानुसार नामब्रह्म पूजा में जाति वर्ण के विचार की आवश्यकता नहीं। इसके निकट निवेदित अन्न महाप्रसाद के तुल्य है। यह नीचवर्ण के लोग द्वारा अर्पित एवं स्पर्शित होने पर भी ब्राह्मणदि उच्च वर्ण के लोगों द्वारा ग्रहणीय है। कोई अवज्ञा करे तो उसका अपराध होता है,''

✲ ॐ-हरि ✲

श्री गोस्वामीजी :- पाँच वर्ष के बालक को क्षेत्र तत्व, ज्योतिष की शिक्षा दी जाय, तो कोई फल न होगा। साधारण सत्य पर तो सभी का अधिकार है। जगत में एकमात्र नाम का उपदेश देना ही यथेष्ट है, किंतु किसका नाम ले रहे हैं - यह तो दृढ़ रूप से विश्वास करना ही पड़ेगा। एक नाम से अनेकों वस्तुओं का ज्ञान हो सकता है, जैसे हरि का अर्थ - सूर्य, चन्द्र, अश्व, सिंह, वानर सभी समझा जा सकता है, फिर पापहारी भगवान भी समझे जा सकते हैं। इसलिए नाम के साथ, उस नाम के वाच्य को भी सुन्दर तरीके से समझना पड़ता है। ब्रह्म नाम में जगत, ब्रह्माण्ड, आत्मा, ज्ञान, वेद ऐसे अनेकों अर्थ हैं, इसलिए पहले वस्तु-ज्ञान का प्रयोजन है। इस जगत के एक स्वामी हैं, यह दृढ़ विश्वास

जिन्हें है, उन्हें नाम उपदेश दिया जा सकता है, अन्य उपदेश का प्रयोजन नहीं है। मुँह से तो सभी कहते है कि एक स्वामी है पर यथार्थ में यह विश्वास नहीं है। क्योकि जरा भी संकट आने पर स्वामी पर विश्वास नहीं रख पाते। शिशु जैसे माता पर निर्भर होता है, उसी प्रकार स्वाभाविक निर्भरता आए तो सारे युक्ति, तर्क लुप्त हो जाते हैं। जो और कुछ नहीं जानता शिशु की भाँति रोता है, उसे मात्र नाम से ही नामी की प्राप्ति हो जाती है।''

ॐ-हरि

शिष्य :- क्या नाम जप करते हुए ऐसी अवस्था आती है कि देह के अणु परमाणु भी नाम करते हैं ? एक रुप चिंतन करते-करते भी क्या इसी प्रकार की अवस्था होती हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- नाम करते - करते ऐसी अवस्था होती है कि शरीर का प्रत्येक रक्त बिन्दु, अणु-परमाणु नाम करता है। यह कल्पना नहीं प्रत्यक्ष सत्य है। इस अवस्था में महापुरुष देह को वस्त्राच्छादित रखते या भस्म लगाये रहते हें। जैसा ध्यान किया जाता है - क्रमश: देह उसी रूप का हो जाता है।

ॐ-हरि

शिष्य :- श्वास-प्रश्वास में नाम करने पर कौन सी अवस्था प्राप्त होती है ? भगवान को पाकर क्या उनमें मिल जाते हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- ''श्वास-प्रश्वास में यह नाम साधन ही यथार्थ साधन है। इससे कामादि सभी रिपुओं का विनाश हो जाता है। नाम करते हुए प्रेम, भक्ति, पवित्रता आएगी, विश्वास पाओगे। नाना प्रकार के दर्शन भी होते हैं। भगवान हमसे बहुत दूर हैं, ऐसी बात नहीं है। वे सर्वदा पास ही वर्तमान हैं। नाम करते-करते पाप राशि दग्ध हो जाने पर ही, उनके दर्शन होते हैं। श्वास-प्रश्वास में नाम करते-करते सामने एक दर्पण की भाँति प्रकट होने लगता है। ग्रह उपग्रह आदि भी स्पष्ट गोचर होने लगते हैं। अन्त:करण की मलिनता नष्ट होने के साथ-साथ ही सब

कुछ समझा जा सकता है। मानव कितना भी उन्नत क्यों न हो, एकदम भगवान से नहीं मिल सकता। यदि कोई समुद्र गर्भ में अहंकार पूर्वक समुद्र नापने जाय एवं उसका पृथक अस्तित्व बोध रहे तब उसकी जो दशा होगी, चिदानंद सागर में डूबने पर मानव की भी वही दशा होगी, दूसरे सोचते हैं कि वह भगवान से मिल गया, लेकिन उसे अब भी पृथकता का बोध रहता है। जब जीवात्मा ब्रह्मज्ञान लाभ करता है, तब कभी तो मधुर सागर में, कभी चीनी के सागर में डूबा रहता है; यह एक कल्पना मात्र है, क्योंकि उस आनंद अनुभूति की तुलना नहीं की जा सकती। तब जीवात्मा आनंद में विह्वल होकर यही सोचता है कि क्यों न इस आनंद में ही रहूँ ? मधुरं, मधुरं, मधुरं।''

❊ ॐ–हरि ❊

गोस्वामीजी :- 'नाम' जप में आलस्य मत करना। 'नाम' की कृपा होने पर, ऐसी अवस्था होगी कि तब नाम किये बिना, नहीं रह सकेंगे। श्रद्धा पूर्वक 'नाम' जप करते-करते नाम की कृपा होती है।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य - बोलपुर में इतना कीर्तन होता है, सब लोग भाव में गद्‌गद् हो जाते हैं। अदीक्षित लोग भी बेहोश हो जाते हैं। मैं शुष्क लकड़ी के समान नीरस खड़ा होकर देखता रहता हूँ । ऐसा क्यों होता है ? मुझे संकीर्तन-झाँझ, मृदंग की ध्वनि में भी मिठास का अनुभव नहीं होता ।

गोस्वामीजी - कोई मधुमक्खी के छत्ते में छेद कर दे तो यदि छत्ते में मधु हो तो, मधु प्राप्त होता है, और यदि छत्ते में मधु न हो तो केवल मधुमक्खी के काटने की जलन का अनुभव उसे होगा ।

शिष्य - यह दुरावस्था कैसे दूर होगी ? मधु संचय कैसे हो सकता है ?

गोस्वामीजी - **श्वास-प्रश्वास में अविश्रान्त (अविराम) नाम करते रहो। नाम के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है। नाम से सब दुरावस्था दूर हो जायेगी ।**

गोस्वामीजी - यह सब भगवत् नाम की महिमा है । भगवत् भक्त के रक्त, मांस, अस्थि, मज्ञा सब में भगवत् नाम अंकित हो जाता है । भगवत् भक्त जो वस्त्रादि धारण करता है, वह भी नामांकित हो जाता है, तथा जिस गृह में भक्त भजन करता है उसके दिवाल व अन्य जगहों में भी भगवत्नाम हो जाता है । श्री वृन्दावन धाम में एक वैष्णव की एक अस्थि मिली थी, जिसमें 'हरे कृष्ण' नाम खुदा हुआ था ।

*

उपदेश

प्रारब्ध, पुरुषार्थ और कर्मक्षय

शिष्य :- ''भरसक चेष्टा करके स्वभाव के एक दोष को भी नहीं छुड़ा पाया। अब क्या करूँ?''

श्री गोस्वामीजी ने बड़े स्नेह से सहानुभूति प्रकट करके कहा- स्वभाव के दोष को क्या कोई इच्छा करते ही छोड़ सकता है? निषिद्ध से बचे और विधि को करे- इसमें निषिद्ध से बचने की अपेक्षा विधि-विहित को करना ही सहज है। विधि विहित को करते करते निषिद्ध विषय अपने आप धीरे धीरे छूट जाते हैं। नियमों का प्रतिपालन करते रहने की चेष्टा करो, दोष अपने आप हट जायँगे।

✻ ॐ-हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- जो लोग अन्तर्दर्शी हैं वे बाहरी कार्य-अकार्य को कुछ भी महत्व नहीं देते। वे तो भीतरी भाव को ही देखते हैं। किसके किस कार्य से लाभ होता है? यह समझना बहुत कठिन है। बहुतेरे बीमार कुपथ्य करके भयंकर रोगों से बच जाते हैं। जिन कामों को संसारी आदमी बहुत ही घृणित समझते हैं, कदाचित उन्हीं को करने से किसी के जीवन का विशेष रूप से कल्याण हो जाता है। अपने कर्त्तव्य पर स्थिर रहकर दूसरे के कार्य को केवल देखता रहे। इसी से बचाव हो सकता है। लोगों के गुणदोषों की छान-बीन करने से अनिष्ट ही होता है।

✻ ॐ-हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- इच्छा न रहने पर अनजान में यदि किसी से अकस्मात् कोई अनुचित काम हो जाय तो उसके लिए उसे अपराधी नहीं होना पड़ता। जान बूझकर अनुचित काम करने से ही अपराध होता है। अच्छा करने जाकर यदि कुछ अनिष्ट हो जाय तो इसमें भी अपराध नहीं लगता।

✻ ॐ-हरि ✻

शिष्य :- कैसा आचरण करने से वास्तविक वैराग्य प्राप्त होता है, यह कैसे मालूम होगा कि **वैराग्य प्राप्त हो गया?**

श्री गोस्वामीजी :- विषय की आसक्ति नष्ट हुए बिना, त्रिताप गये बिना, वास्तविक वैराग्य प्राप्त नहीं होता। भूख-प्यास, रोग-शोक और मान-अपमान आदि से जब तक कर्त्तव्य कार्य करने में बाधा होती रहेगी तब तक समझना कि त्रिताप दूर नहीं हुआ। तब तक खूब नियम से रहना चाहिए। दिन को अनेक कार्यों में विभक्त करके, बड़ी निष्ठा के साथ उसमें लगा रहे। कुछ भी क्यों न हो, उन नियमों के विपरीत आचरण न करे। ऐसा बर्ताव करते-करते धीरे-धीरे त्रिताप नष्ट हो जाते हैं।

ॐ-हरि

शिष्य :- ''जीव जब पराधीन है, अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं करता तब फिर उसके लिए बन्धन क्यों है?''

श्री गोस्वामीजी :- जीव है तो सम्पूर्ण रूप से पराधीन, फिर भी उसके मन में वासना, कामना जो कुछ उठती हैं, वे ही उसके लिए बन्धन का हेतु होती हैं। यह वासना ही तो कर्म है, यह स्वाधीन या पराधीन की अपेक्षा नहीं रखता। आत्मा के प्रकाश के साथ-साथ वासना का क्षय हो जाता है; जब उनका क्षय होता है तब स्पष्ट मालुम हो सकता है।

ॐ-हरि

शिष्य - क्या प्रारब्ध लंघन का कोई उपाय नहीं ?

श्री गोस्वामीजी - संसार में सभी प्रारब्ध के अधीन हैं। कोई कितनी ही चेष्टा क्यों न करे, प्रारब्ध कार्य की गति को कोई रोक न सकेगा। पौरुष के द्वारा प्रारब्ध पर आधिपत्य जमाना असम्भव है। पौरुष से मनुष्य को सामयिक लाभ हो सकता है, किन्तु वह बहुत समय तक नहीं टिक सकता। ब्रह्मचारीजी (लोकनाथ गोस्वामी), पौरुष के प्रभाव से, प्रारब्ध कर्म को लाँघकर साधन की चौथी अवस्था को भी पार कर चुके थे, अन्त में निर्विकल्प समाधिस्थान में पहुँच कर फिर वापस लौट आये। फिर वे बहुत समय तक 'नाश्ता' करके, खेत निराते और सूअर भगाते रहे। बिना अवस्था में पड़े ये बातें समझ में

नहीं आतीं। प्रारब्ध के हाथ से छुटकारा पाने के दो उपाय शास्त्र ने बतलाये हैं - विचार और अजपा साधन। जब जो कुछ करो, विष्णु भगवान् के प्रीत्यर्थ करो। उठना-बैठना, नहाना-धोना आदि सभी काम, कामना छोड़कर अथवा विष्णु भगवान् के प्रीत्यर्थ किये जायँ तो फिर जल्दी ही प्रारब्ध कर्म बेबाक हो जाता है और श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का जप करते रहने से यह काम और भी आसनी से हो जाता है।

❋ ॐ-हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- ''अभी एकदम स्थिर होना कठिन है। विवाह करने पर साधन की हानि होगी, ऐसी बात नहीं है, बल्कि कई बार अवस्था अनुसार विवाह कर लेने पर लाभ ही होता है। अपना जो विषय भोग है, वह पूरा न हो तो भी विषय बार-बार आकर्षित करता है। अभी शोक है, जब वह चला जाएगा, तब वृद्धावस्था में अपनी प्रवृति के साथ युद्ध करना भी दु:साध्य है। इसलिये कई सन्यासी वर्षों वन में, पर्वत की गुफा में, अनाहार में रहकर तपस्या करके भी पुन: संसारी होने को बाध्य हो जाते हैं। अपना चित्त समझना कठिन है। शास्त्रकारों ने कहा है - गृहस्थाश्रम साधक का दुर्ग है। स्त्री-पुरुष का संसार करना पाप नहीं है। संसार वासना का क्षय करने के लिये, संसार करने में ही भलाई है। लाभ कुछ नहीं, पर अपने अपने भोग काटने के लिये प्रयोजन है। भोग करके ही भोग क्षय करना सहज है। कृपा के पथ में, जरा भी आसक्ति रहे, तो वह आसक्ति कटते समय बड़ी ही कष्टदायी होती है।''

❋ ॐ-हरि ❋

श्री गोस्वामीजी - तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुए बिना कर्म का अन्त नहीं होता। कहीं जबर्दस्ती करके कर्म काटा जा सकता है? हमने हरिमोहन (ब्रजवाला) से पहले बार-बार कहा था कि इन कर्मों को पूरा कर डालो। अब देखो, संन्यास लेकर पछतावा तक कर लिया। यह पछतावा करने से उसका सभी कुछ नष्ट हो गया। अब कायदे से कर्म को पूरा न कर आवेंगे तो हरिमोहन किसी तरह शान्त न रह सकेंगे। अब कुछ भी न होगा।

श्री गोस्वामीजी - तीव्र वैराग्य का सहारा लेकर भी मुक्त होना सम्भव है, किन्तु वैसा वैराग्य है कहाँ? विषय से मन को सोलहों आने भीतर की ओर खींच ले सको और प्रति श्वास प्रश्वास में नाम कर सको, तभी आशा की जा सकती है। एक भी श्वास अथवा प्रश्वास व्यर्थ चला जायेगा तो काम न होगा; क्योंकि छिद्र पाते ही कितने ही शत्रुओं की पहुँच भीतर हो सकती है ! इस निष्काम मुंक्ति के मार्ग में मनुष्य, गन्धर्व, देवता आदि अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित करते हैं; सभी इस मार्ग में कठोर परीक्षा लेते हैं। वासना से वैध कर्म की व्यवस्था है। वैध कर्म के द्वारा भोग को पूरा कर लेने से रास्ता सहज हो जाता है।

शिष्य- जिस कर्म को पूरा कर डालने के लिए आप कह रहे हैं वह कर्म है कैसा? नौकरी-चाकरी करके गृहस्थी चलाना ही क्या कर्म है?

श्री गोस्वामीजी - कर्म का मतलब गृहस्थ हो जाना अथवा नौकरी कर लेना नहीं है। जिसकी जिस विषय में आसक्ति है उसका कर्म उसी विषय के साथ है।

शिष्य- आपने जो वैध भोग की चर्चा की सो वह कैसा है? शास्त्रानुसार भोग करना ही क्या वैध भोग है?

श्री गोस्वामीजी - यह समझना बहुत कठिन है कि वैध भोग क्या चीज है? शास्त्रोक्तभोग तो है ही, किन्तु शास्त्र में भोग काटने की प्रकृति भेद से भिन्न-भिन्न कर्म की व्यवस्था है। जिसकी जैसी प्रकृति है, उसके लिए वैसी ही व्यवस्था है। ऐसी व्यवस्था के अनुसार किया गया कर्म का भोग ही वैध भोग है। शास्त्र देखकर प्रकृति के उपयुक्त व्यवस्था पसन्द कर लेना बहुत ही कठिन काम है। विधि के अनुसार प्रकति के उपयुक्त कर्म कर लेने से ही क्रंम से भोग कट जाता है।

शिष्य - शास्त्रोक्त लक्षणों द्वारा क्या प्रकृति की पहचान नहीं हो सकती?

श्री गोस्वामीजी - प्रकृति को पहचान लेना क्या इतना सहज काम है? शास्त्रों के पढ़ने अथवा अन्य किसी चेष्टा के बल-बूते पर उसका कुछ पता नहीं लगता।

शिष्य :- तो फिर अन्दाज से किस प्रकार कर्म किया जायगा ?

श्री गोस्वामीजी :- स्वयं अपनी प्रकृति कभी नहीं पहचानी जा सकती। इसीलिए सद्‌गुरु का आश्रय लेना पड़ता है। जिसकी जैसी प्रकृति है उसको साफ-साफ देखकर सद्‌गुरु, प्रकृति के अनुसार, कर्म की व्यवस्था कर देते हैं। बिना आगे-पीछे किये उनकी आज्ञानुसार कर्म करते जाने से ही सहज में कर्म पूरा हो जाता है। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

शिष्य :- अब तक मैं समझता था कि नौकरी करना और गृहस्थ हो जाना ही कर्म है।

श्री गोस्वामीजी :- वासना में ही कर्म है; वासना की निवृत्ति करना ही कर्म का उद्देश्य है। वैध भोग द्वारा ही वासना का अन्त करना चाहिए। जिसकी वासना जिस ओर हो उसका कर्म भी उसी ओर है। सिर्फ शादी ब्याह करके गृहस्थ हो जाना अथवा नौकरी कर लेना ही कर्म नहीं है।

शिष्य :- धर्म को प्राप्त करने के लिए घर-द्वार, माता-पिता को छोड़कर जो लोग आते हैं धर्म प्राप्ति ही तो उनकी वासना है। अतएव वही तो उसका कर्म हुआ न ?

श्री गोस्वामीजी :- सो तो है ही, हाँ यदि सिर्फ धर्म की ही ओर उसकी वासना रहे तब तो वह उसे निर्विघ्न कर सकेगा परन्तु यदि अन्यान्य और भी उसकी वासना हो, तब तो वह शान्त होकर धर्म-कर्म न कर सकेगा। जिस परिमाण में दूसरी वासना रहेगी उसी परिमाण में उसे अशान्त होना होगा और कष्ट सहना होगा। इसीलिए अन्यान्य वासनाओं से पीछा छुड़ाकर आना चाहिए।

शिष्य :- सद्‌गुरु तो वही करने के लिये कहते हैं जिससे कर्म बेबाक हो जाय। किन्तु कैसे मालूम होगा कि वैसा करने से कर्म पूरा हुआ या नहीं ?

श्री गोस्वामीजी :- जब देख पड़े कि किसी ओर तनिक सी वासना नहीं रह गई है, विषयों के पास होते हुए भी इन्द्रियाँ बिल्कुल अनासक्त हैं, निवृत्त हैं, तभी समझ ले कि सारा कर्म बेबाक हो गया।

※ ॐ–हरि ※

शिष्य :- अन्दर से कुचिन्ता, संशय, सन्देह कैसे दूर होगा ?

श्री गोस्वामीजी :- जो नाम मिला है उसी से सब कुछ हो जायेगा। श्वास प्रश्वास में नाम जप करो।

शिष्य :- वह क्या आपकी कृपा बिना होगा ? मेरी क्या क्षमता है?

श्री गोस्वामीजी :- **यह सब भावकुता छोड़ दो। इससे कोई भलाई नहीं होगी। अधिक भक्ति दिखाने पर खुद की ही हानि होगी। कृपा की बात तो दूर है, अभी कृपा समझने की शक्ति भी नहीं हुई है। जब तक मान–अपमान, सुख–दुःख, काम–क्रोध है, तब तक स्वयं भी यत्न करना पड़ेगा। इसी प्रयास का नाम साधन है, नाम जप करना। मैं नहीं कर सकता, यह तो केवल भावकुता है। जब तक मनुष्य की स्वयं की इच्छा तथा क्षमता है, तब तक कृपा की बात नहीं हो सकती। स्वयं परिश्रम करना पड़ेगा नहीं तो कुछ न होगा।**

※ ॐ–हरि ※

श्री गोस्वामीजी – जो कर्म–धर्म की प्राप्ति में अनुकूल हो उन्हीं को करना चाहिए। धर्म के प्रतिकूल कर्म ही पाप है। मनुष्य चाहे तो दो दिन के साधन से ही पाप को दूर कर सकता है; उसमें पाप को, छोड़ने की शक्ति तो है परन्तु कर्म को छोड़ने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। कर्म को करके ही क्षय करना पड़ता है। कर्म किये बिना किसी का निस्तार नहीं हो सकता। कर्म कुछ धर्म से बाहर का विषय नहीं है, असल में कर्म ही धर्म है। धर्म–कर्म से अतीत अवस्था बहुत दूर की बात है। वैराग्य का यह अर्थ नहीं है कि काम–काज छोड़–छाड़ कर बैठे रहें। भीख माँगकर निर्वाह करने लगे। सब विषयों से इन्द्रियों का सोलहों आने अलग हो जाना ही वैराग्य है। विषय में अनासक्त होने से ही समझना कि वैराग्य हो गया। कर्म किये बिना वैराग्य नहीं होता। तुम लोग अच्छी तरह समझ लो कि कुछ भी क्यों न करो, जिसके हिस्से का जितना कर्म है वह, आज हो, चाहे कल हो, चाहे दो दिन बाद, करना ही पड़ेगा। उसे किये बिना किसी तरह गुजर नहीं होने

का। एक मात्र भगवान् की कृपा से पल भर में ही सब कर्म निःशेष हो सकता है, नहीं तो जबर्दस्ती कर्म से पीछा भला कौन छुड़ा सकता है?

॥ ॐ-हरि ॥

शिष्य :- ''सद्गुरु का आश्रय ग्रहण कर लेने पर मनुष्य जिन कर्मों को किया करता है वे क्या पिछले प्रारब्ध के प्रभाव से होते हैं अथवा स्वाधीन इच्छा से? और ऐसा आश्रित व्यक्ति कर्म करके नवीन कर्मफल को उत्पन्न कर सकता है या नहीं?''

श्री गोस्वामीजी :- एक बार वास्तविक सद्गुरु का आश्रय ले लेने पर मनुष्य कभी नवीन कर्म को उत्पन्न नहीं कर सकता। वह केवल पिछले कर्म का ही भोग किया करता है। सद्गुरु का आश्रय लेने पर मनुष्य दुष्कर्म कर तो सकता है, किन्तु उन दुष्कर्मों में आबद्ध कभी नहीं हो सकता। दुष्कर्म करते समय वह समझ सकता है कि यह दुष्कर्म है और उससे बचने की एक चेष्टा भी भीतर होती है। केवल प्रारब्ध ही मानो बाध्य करके उन कर्मों को करा लेता है। सद्गुरु का आश्रय लेने पर नवीन कर्म नहीं कर सकता। यह भी उसका एक प्रमाण है।

शिष्य :- ''तो भोग किसका होता है? और उस भोग का अन्त ही किस समय और किस प्रकार होता है?''

श्री गोस्वामीजी :- संस्कारवश भोग तो देह का ही होता रहता है। मनुष्य का शरीर जब बिल्कुल विशुद्ध सात्त्विक हो जाता है तभी भोग का अन्त हो जाता है।

शिष्य :- ''मनुष्य किस उपाय से देह को विशुद्ध सात्त्विक कर सकता है?''

श्री गोस्वामीजी :- विशुद्ध सात्त्विक देह की प्राप्ति केवल नाम साधन द्वारा ही होती है। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करते रहने से देह सात्त्विक हो जाती है। देखो, श्वास-प्रश्वास के द्वारा ही देह की रक्षा होती है, श्वास प्रश्वास का कार्य देह के प्रत्येक परमाणु में होता

रहता है। श्वास प्रश्वास से ही रक्त विशुद्ध होता है और देह में सर्वत्र सञ्चारित होता है। सौ बात की एक बात यह है कि देह की वृद्धि, स्थिति और क्षय श्वास-प्रश्वास द्वारा ही सम्पन्न होता है। इस श्वास-प्रश्वास के साथ जब नाम गुँथ जायेगा, प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में जब अपने आप नाम चलने लगेगा तब श्वास प्रश्वास कार्य ज्योंही समस्त देह में होगा त्योंही नाम का कार्य भी प्रत्येक परमाणु में होने लगेगा। श्वास प्रश्वास में नाम मिल जाने पर धीरे-धीरे देह भी नाममय हो जायगी। देह नाममय हो जाने पर उसके द्वारा फिर अन्य कार्य होना सम्भव न होगा। केवल सात्त्विक कर्म ही होगा। प्रत्येक श्वास प्रश्वास पर लक्ष्य रखकर नाम का जप किया करो। चेष्टा करते-करते सब कुछ सहज हो जाता है।

※ ॐ-हरि ※

शिष्य :- ''हाड़, मांस और रक्त में जब 'नाम' हुआ करता है तब उन सब में क्या नाम की छाप लग जाती है?''

श्री गोस्वामीजी :- वृक्ष की शिरा में नाम की स्वाभाविक छाप तो तुम श्रीवृन्दावन में देख ही आये हो। मनुष्य के शरीर के प्रत्येक परमाणु में जब नाम हुआ करता है तब हड्डी, मांस और रक्त में भी नाम की छाप लग जाती है, मुसलमानों के धर्मग्रन्थ में एक फकीर के सम्बन्ध में लिखा है कि जब उनका रक्तपात हुआ तब रक्त की प्रत्येक बूँद में 'अनहलक' शब्द अङ्कित दिखाई दिया। इस बार अर्धकुम्भी के अवसर पर श्रीवृन्दावन में यमुना की रेती में एक दिन हम साधुओं के दर्शन करने गये थे। बालू पर एक हड्डी देखकर उसे उठा लिया। देखा कि तमाम हड्डी में नागरी लिपि में ''हरे कृष्ण, हरे कृष्ण'' लिखा हुआ है। हमने वह हड्डी साधुओं को दिखलाई तो उन लोगों को भी बड़ा अचम्भा हुआ। किसी वैष्णव महापुरुष की हड्डी समझकर उन्होंने उसको ले लिया और बड़ी धूमधाम से उत्सव करके यमुना की रेती में उसको **समाधिस्थ कर दिया।**

शिष्य :- ''सद्गुरु का आश्रय ले लेने पर भी कर्म के नि:शेष होने में इतनी देर क्यों होती है? सद्गुरु का आश्रय आदि लेने पर भी क्या फिर साधन भजन करके प्रारब्ध कर्म को नि:शेष करना होगा?''

श्री गोस्वामीजी :- सद्गुरु का आश्रय मिल जाने पर कर्म अपने आप नि:शेष होने लगता है। आग के ऊपर लकड़ियों का ढेर लगाकर दबा रखने से धुँधुवा कर धीरे-धीरे जिस प्रकार वह जलता है और फिर तनिक हवा लगते ही लकड़ियाँ तुरन्त जलने लगती हैं और थोड़ी देर में सब लकड़ियों को जलाकर बिल्कुल भस्म कर डालती है उसी प्रकार गुरु की दी हुई शक्ति भी अनेक जन्मों के कर्मरूप कूड़े कचरे के नीचे से धीरे-धीरे कार्य करती है और धीरे धीरे उस तमाम कूड़े-कचरे को नष्ट करते हुऐ गुरु की कृपा से जब वह एक बार जलने लगेगी तब सारी कर्मराशि को पल भर में नष्ट करके प्रकृत शान्ति की दशा में ले जायगी। गुरुशक्ति अपने आप कार्य करती है।

शिष्य :- ''जो दुष्कार्य प्रारब्ध के वश किये जाते हैं, वे प्रारब्ध के ही कार्य हैं, यह किस प्रकार ज्ञात होता है?''

श्री गोस्वामीजी :- एक कार्य में नितान्त अनिच्छा होने पर भी और बार-बार उससे बचने की चेष्टा करने पर भी जब अवश होकर उसे कर डालते हो, तब समझ लेना कि वह प्रारब्धवश ही हुआ। ऐसे कार्य के हो जाने पर सचमुच पछतावा होते ही वह नि:शेष हो जाता है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास पर लक्ष्य रखकर नाम का जप करने लगने से समस्त प्रारब्ध ही बड़ी शीघ्रता से नष्ट हो जाता है। इतनी सरलता से और किसी प्रकार नहीं होता।

शिष्य :- ''मनुष्य जब बिल्कुल नि:स्वार्थ हो जाता है, जीवन्मुक्त हो जाता है, तब भी क्या उसका कर्म रहता है?''

श्री गोस्वामीजी :- मनुष्य का जब तक स्वार्थ है तब तक उसका कर्म कहाँ है? मनुष्य जब मुक्त हो जाता है तभी उसके वास्तविक कार्य का आरम्भ होता है। स्वार्थ नष्ट होकर मुक्तावस्था की

प्राप्ति होने पर सारे संसार के लिए बेहद परिश्रम करना पड़ता है। नि:स्वार्थ हुए बिना वास्तविक कर्म का आरम्भ नहीं होता है। जीवन मुक्त होने पर ही वास्तविक कर्म आरंभ होता है।

शिष्य :- ''जो प्रारब्ध में है, उसको न भोगने का भी क्या कुछ उपाय नहीं है? क्या समस्त प्रारब्ध को भोग कर ही नि:शेष करना होगा।''

श्री गोस्वामीजी :- भगवान प्रारब्ध का जितना भोग करावेंगे उतने को किसी प्रकार छुड़ा नहीं सकोगे। हाँ, जो लोग प्रसन्नता से कर्म करते जाते हैं, उनका कर्म चट से नि:शेष हो जाता है और बेगार सी टालने से धीरे-धीरे बहुत कर्म जकड़ लेता है। कर्म की उपेक्षा कभी न करनी चाहिए। कर्त्तव्य समझ कर प्रसन्नता से कर्म किये जाओ। ऐसा करने पर बड़ी शीघ्रता से प्रारब्ध नि:शेष हो जायेगा।

भगवान् ही सब के कर्ता हैं, उन्हीं की इच्छा से प्रारब्ध - भोग होता है। साधन भजन करके भगवान् के शरणापन्न हो सकने से उनकी कृपा होने पर पल भर में सारा प्रारब्ध नि:शेष हो सकता है। अतएव एकाग्र मन से उन्हीं को बुलाओ।

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी :- एक उन्नत श्रेणी के योगी ने कर्मविपाक में पड़कर, एक बड़ा भारी अपराध कर डाला। इससे शाप मिला कि सात बार गर्भ की यन्त्रणा भोगनी पड़ेगी। इससे ये कभी जीवित अवस्था में जन्म नहीं लेते। अभी इनको तीन बार और गर्भवास करना है, तभी इनको पुरानी अवस्था की प्राप्ति होगी। ये ऐसे-वैसे क्षेत्र में प्रवेश नहीं करते हैं। इनका जन्म होने के पश्चात् ही प्रसूता भी चल बसती है।

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी :- योगजीवन, अच्छी तरह समझ ले कि ब्रह्मा, विष्णु ओर महेश्वर भी बहुत होगा तो सामयिक एक आनन्द की तरङ्ग मन में उत्पन्न कर देंगे, वे प्रारब्ध के भोग को नष्ट नहीं कर सकते; यह कार्य केवल एक के ही हाथ में है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- ऐसे अज्ञात संस्कार कैसे छुड़ाये जा सकते हैं?

श्री गोस्वामीजी :- स्वभाव में जिसका जो संस्कार है, वह उसका प्रकट होगा ही। श्वास-प्रश्वास में नाम जप से देह मन निर्मल होता है तथा चित्त शुद्ध होता है। तब दैहिक, मानसिक कोई भी संस्कार नहीं रह पाता।

✻ ॐ–हरि ✻

साधन भजन न करके केवल ''गुरु करेंगे'' ''गुरु करेंगे'' बोलने से कुछ नहीं होने का। गुरु पर विश्वास है, ऐसा साधन प्राप्त लोगों में अब तक मैं किसी को नहीं देखता। गुरु पर विश्वास क्या सहज है? जो गुरु पर विश्वास करता है, वह सृष्टि, स्थिति, प्रलय भी इच्छा मात्र से कर सकता है। जब तक अहंकार है, तब तक गुरु करेंगे, कहने से नहीं चलेगा। खुद श्रम करो, स्वयं न करोगे तो कुछ नहीं होने का। कोई साध्य अनुसार यत्न करे तो गुरु सहायता अवश्य करते हैं। गुरुवाक्य ही गुरु है। गुरु जो कह दे वही करने से गुरु कृपा प्राप्त की जा सकती है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्वास-प्रश्वास में नाम जपो तो महात्मागण तुम्हें मुक्ति दिलाने के उत्तरदायी होंगे। उनके आदेशानुसार कुछ न करो तो क्या हो सकता है? किस उपाय से दूर करें ?

श्री गोस्वामीजी :- बाहर जैसे ग्रहों का प्रभाव है भीतर भी उसी प्रकार है। जो साधन भजन करते हैं, वे समय-समय पर इस बात का अनुभव करते हैं। पूर्व काल के साधकगण इसे इन्द्रदेव का अत्याचार कहते हैं। मुसलमान, ईसाई इसे ही शैतान कहा करते हैं। इससे किसी का छुटकारा नहीं। केवल महादेव, शुकदेव, ब्रह्मदेव तथा हरि दास ठाकुर ही रक्षा पा सके थे। पहले काम, क्रोध के रूप में, फिर वासना-कामना के रूप में, **उसमें भी न हो तो धर्म रूप में आकर साधक का सर्वनाश**

करते हैं। इसकी एक ही औषधि है - धैर्यपूर्वक पड़े रहकर श्वास प्रश्वास में नाम जप करते जाना। रोग की औषधि खाते-खाते उसमें अरुचि हो जाती है, कष्ट होता है फिर भी औषधि लेनी ही पड़ती है क्योंकि दूसरा उपाय नहीं है। साधन भी उसी प्रकार करना ही पड़ता है। पूर्व जन्मों में जो कार्य किये गये हैं, उनके फल भोगकर मुक्ति पाने के लिए कई जन्म जन्मांतर फिरना पड़ता है। भगवान के नाम के गुण से सहज ही मुक्ति मिलती है। विघ्न यही है कि नाम में रूचि नहीं आती। चारों ओर दुःख-कष्ट हैं। अग्नि कुण्ड में रहकर नाम करना होगा। प्रह्लाद चरित्र इसका ज्वलंत उदाहरण है। आहार में विष, अग्नि में फेंकना, हाथी के पैरों के नीचे डालना, सभी विपक्षी, अस्त्राघात, केवल एक सहारा हरिनाम। अन्त में जय प्रह्लाद की ही हुई। भगवान ने नरसिंह रूप में प्रकट होकर उनकी रक्षा की। इस साधन मार्ग में भी उसी ज्वाला यंत्रणा के भीतर से जाना होगा। यह सब अग्नि परीक्षा है। इसमें जितना जलोगे, शुद्ध हो जाओगे। ये नाना प्रकार के साधन प्रवृति व संस्कार के अनुरुप आते हैं। मैं भी यंत्रणा में आत्महत्या करने गया था। परमहंस जी ने रक्षा की। जन्मजन्मांतर के संचित पाप दग्ध करने में बहुत अग्नि की आवश्यकता है। यह यंत्रणा ही मुक्ति का हेतु है। यह जिसे हो वह कृत्रिम धर्म का भान नहीं कर सकता। पाप होते हुए भी यदि धर्म में आनंद हो तो विडम्बना ही है। जैसे रोगी कुपथ्य खाकर सुखी हो। पहले यंत्रणा में सूखकर नीरस होगे। विषय रस की एक बिन्दु रहते भी ब्रह्मानंद नहीं आता। इस यंत्रणा में कई सूक्ष्मतत्व हैं। समय पर सब प्रकट होवेंगे, तब समझोगे। अभी श्वास प्रश्वास में नाम जप करो। उसी से सारे कष्टों का अवसान होगा।

✻ ॐ-हरि ✻

शिष्य :- मानव जन्म पाकर जीव किस प्रकार क्रमोन्नति प्राप्त करता है?

श्री गोस्वामीजी :- ''प्रथम मानव जन्म में मनुष्य, भील आदि असभ्य, अशिक्षित, जंगली जीवन जीव प्राप्त करता है। इस प्रकार उसके दस जन्म बीतते हैं उसके बाद लोक समाज में जन्म ग्रहण करते हैं।

इस प्रकार अनेकों जन्म लेने के बाद तत्त्वज्ञान का विकास होता है। विषय ज्ञान प्रथम जन्म से ही प्राप्त होता है। मनुष्य, जडत्व, वृक्षत्व, जीवत्व, मनुष्यत्व, देवत्व, एकत्व, एवं रस, ये मानव के सप्त सोपान या सप्तभूमि हैं। जैसे छोटा सा बड़ का बीज विशाल वट वृक्ष उत्पन्न कर सकता है, उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा प्रथम सोपान से धीरे-धीरे सप्तसोपान पार करके, 'रसो वै सः' इस शब्द का सर्वदा गान करती है।''

※ ॐ-हरि ※

प्रश्न :- संचित व क्रियमाण कर्म किसे कहते हैं? किस उपाय से ये सब कर्म कट कर जीवों का उद्धार संभव होता है?

श्री गोस्वामीजी :- ''चौरासी लाख योनि भ्रमण करते हुये मनुष्य जन्म की प्राप्ति होती है। इस जन्म में जैसा कर्म करता है उसे प्रारब्ध, संचित, क्रियमाण कहते हैं। इन तीन प्रकार के त्रिविध कर्मों को समाप्त करने में कई बार जन्म-मृत्यु होते हैं। यह तो मानव जन्म की घटना मात्र हुई। ऐसे कर्मफल भोग करते-करते स्थूल, सूक्ष्म, कारण ऐसे त्रिविध देह नष्ट हो जायं, तब हम माया से मुक्त हो पाते हैं। मनुष्य जन्म पाकर यदि भगवत भजन-पूजन न करें तो फिर से अधोगति आंरभ होकर चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ता है। मनुष्य जन्म पाकर यदि एक बार भगवान का नाम सुनने की तरह सुना, पुकारने की तरह पुकारा और कहने की तरह कहा जाय तो जैसे शिशु माँ शब्द सुनता और माँ कहकर पुकारता है, तो माँ शिशु के पास दौड़कर आ जाती हैं वैसे ही भगवत् प्राप्ति होती है।''

※ ॐ-हरि ※

शिष्य :- भगवत् कृपा से ही यदि सब कुछ हो रहा है तो फिर तपस्या या पुरुषार्थ का क्या प्रयोजन है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''पुरुषार्थ, यदि कार्य न करे तो वस्तुतः आत्म-परिचय नहीं होता। रामायण में विश्वामित्र की तपस्या का पाठ करने पर इस विषय में अच्छी तरह जाना जा सकता है। **पुरुषार्थ कृषक के कृषि**

कार्य की भाँति है। कृषक भूमि तैयार करके बीजारोपण करता है, यहाँ तक उसका कार्य है। उसके बाद और उसकी क्षमता नहीं रह जाती। बादल जल न बरसाये तो कई बार पानी सींच कर भी वह कुछ नहीं कर पाता। आंतरिक उद्यम ही तपस्या है, यह ठीक प्रयुक्त हो तो मेघ से जल बरसने की भाँति कृपावृष्टि होती है।''

* ॐ–हरि *

श्री गोस्वामीजी :- ''तपस्या द्वारा आत्मा जितनी निर्मल होगी उतना ही अपने आप को निकृष्ट मान पाओगे। शरीर से अपने को पृथक देख पाओगे, आत्मदृष्टि प्रबल होगी। अपने को तपस्या द्वारा निकृष्ट समझने के बाद भी, शरीर-मन का शासन करने के लिये एक प्रकार का अहंकार उत्पन्न होता है। तब लगता है, मैं स्वाधीन हूँ, मुक्त हूँ, मनुष्य हूँ। यह भाव सबके भीतर रहता है, तपस्या द्वारा प्रबल हो उठता है। उस समय आत्म समर्पण करने की इच्छा होते हुए भी नहीं कर पाते, कोई भीतर से रोकता है। सोचकर गए कि आज अपना सब कुछ अर्पण कर देंगे, पर जाने पर रोना आया, कोई अन्दर ही अंदर निषेध करता हुआ लगा। अभी यदि कहा जाय मरो, तो क्या करोगे ? यदि कहें स्त्री-पुत्र का त्याग करके, कौपीन धारण करके वन को चले जाओ, तब क्या करोगे ? यह मानसिक संग्राम प्रत्येक साधक के अन्त:करण को झकझोरता है। इसलिये संपूर्ण रूप से अपने आपको बारीकी से जाँच करो और विचार करो। डॉक्टर जैसे सड़े घाव को काटते हुए अस्थि एवं मज्जा के भीतर के भीषण रोग को ढूँढकर, काट फेंकता है, वैसे ही। सुनी हुई बातों से, ग्रंथ पढ़कर, उपदेश लेकर, कोई एकाएक निश्चय कर डालना ठीक नहीं। अपना विचार स्वयं करके जो अपनी यथार्थ अवस्था है, उस पर दृष्टि रखो। यदि आत्मा में भाव आता है, कोई अवस्था है, तो चुपचाप उसकी गतिविधियाँ देखने मे परमानंद लाभ करोगे। धर्म भाव ने पापों से मुक्ति दिलाकर मुझे देवतुल्य बना दिया। मैं वही पतित, इस प्रकार कैसे बन पाया-आश्चर्य की बात है। यदि पाप चोर की भाँति भीतर छुपा रहा तो, सारा दिन साधन भजन करके भी मुझे नरक की आग में क्यों जलाया ? - यह देख कर भी आश्चर्य होगा। मनुष्य के

अभ्यन्तर में श्रेय व प्रेय दोनों क्रिया करते हैं। तपस्या द्वारा, सत्संग द्वारा आत्मा का धर्मबल प्रबल होता है, पापभाव निस्तेज होते हैं। इस अवस्था में भगवत् आश्रय का लाभ होता है।''

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- त्रिताप कब जाता है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''कर्तव्य जितने दिनों तक है, तब तक ताप नहीं जाता। त्रिताप न जाने तक मनुष्य मुक्त नहीं होता। मुक्त व्यक्ति कर्म त्याग नहीं करते। अनासक्त होकर, बालक की क्रीड़ा के समान उन्माद की तरह, कार्य करते जाते हैं, क्यों करते हैं, यह भी वे नहीं जानते। भीतर से अकर्ता और बाहर कार्य - ये महापुरुषों के लक्षण हैं। कर्तृत्व अभिमान न रहने पर, कोई ताप स्पर्श नहीं कर पाता। मुक्त भक्त होने पर ताप नहीं रह जाता।''

✻ ॐ–हरि ✻

एक साधक ने कहा :- अजी अभी कुछ भी क्यों न करो, अन्त में न जाने क्या परिणाम होगा? युवास्था में जिस प्रकार इन्द्रियों की प्रबलता हुआ करती है उसी प्रकार सत्सङ्ग रहने से धर्मोत्साह भी खूब बढ़ता हुआ देखा जाता है। प्रकृति की गलती युवास्था में दबा दी जा सकती है किन्तु वह अक्सर बुढ़ापे में उभड़ आती है। युवास्था में धर्म की धुन मुझ पर सवार रहती थी, सन्ध्या-पूजा ओर जप-तप में ही मेरा बहुत सा समय लग जाता था। चरित्रबल भी मुझ में असाधारण था। एक बार जरूरी मामले के लिए, बेढब आँधी पानी के दूसरे दिन, मैं पद्मा नदी में ही नाव की सवारी से ढाका जा रहा था। पिछली रात को बहुत सी नावें डूब गई थीं। मैंने पनसुइया (एक प्रकार की लम्बी नाव) में से देखा कि 17।18 वर्ष की परम सुन्दरी युवती, नङ्ग धड़ङ्ग, बालू पर बैठी रो रही है। उसे विपद्ग्रस्त समझकर मैं तुरन्त उसके पास गया। युवती ने कहा, 'कल रात को इस नदी में हमारी **नाव डूब** गई। पता नहीं, मेरे स्वामी जीवित हैं या नहीं। मैं तो बेहोशी **में इस** बालू के टीले पर आ लगी हूँ। मैं बड़ी सङ्कट में हूँ; मेरी रक्षा

कीजिए।' उसकी बातें सुनकर मैं रो पड़ा। मैं अपनी आधी धोती पहनने को देकर उसे अपनी नाव पर ले आया। जब तक मेरा काम पूरा नहीं हुआ, वह मेरी पनसुइया पर 3।4 दिन तक मेरे साथ ही रही। फिर मैं उसको उसके घर पहुँचा आया। उस समय साथ में और कोई नहीं था। उस समय क्षण भर के लिए भी मेरे मन में किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ। उन दिनों मैं 27।28 वर्ष का था और आज तक जीवन में कभी कोई विशिष्ट दुष्कर्म भी मैंने नहीं किया। अब मैं 67 वर्ष का हूँ, मेरे दाँत गिर गये हैं, बीमार रहता हूँ, देह सुस्त है; इस निस्तेज वृद्धावस्था में भी मेरी ऐसी दुर्गति हुई है कि उस समय की याद करके दिन रात हाय-हाय किया करता हूँ। यही सोचता हूँ कि 'हाय ऐसा मौका पाकर मैंने क्यों छोड़ दिया? इसी से कहता हूँ भैया! बेढब प्रलोभन में पड़कर भी किसी समय अपनी चेष्टा से भले बने रह सकते हैं; किन्तु मूल (असलियत) में भले नहीं बन सकते। स्वभाव में जो दोष हैं उनको दबा देना सहज है किन्तु उनकी जड़ को उखाड़ फेंकना अपनी शक्ति से बाहर का काम है। यह तो गुरुकृपा से ही हो सकता है।'

ॐ-हरि

मैं - किस प्रकार वे (पंडितजी) उस 'ग्रन्थि' से छुटकारा पा सकते हैं ?

गोस्वामीजी - **उन्हें साधू-सन्तों की सेवा करनी पड़ेगी ।**

मैं - आपने तो कहा था कि एक मात्र नाम करने से सब अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं। फिर आप साधू-सेवा के लिए क्यों बोल रहे हैं ?

गोस्वामीजी - 'नाम' कर सकने पर और कुछ करने की जरुरत नहीं होती किन्तु सब समय 'नाम' करना साधक के लिए कठिन है । कर्म के रहते साधक 'नाम' नहीं कर सकता, **कर्म के द्वारा कर्मक्षय सहज होता है ।**

मैं - आप साधू-सेवा करने के लिए कह रहे हैं, साधू-असाधू किस प्रकार से जाना जा सकता है ? पंडितजी किस प्रकार के साधू की सेवा करेंगे ?

गोस्वामीजी - जो व्यक्ति अपना कर्म सुचारु रूप से संपन्न करता है, जो दिन में एक बार भी भगवान का नाम उच्चारण करता है, वह साधू है ।

मैं - पंडित जी बोलपुर में रहते हैं, लोग उनको परम साधू समझते हैं, उनकी सेवा कौन लेगा ?

गोस्वामीजी - किसी नयी जगह में जाकर लोगों की सेवा करें ।

मैं - जन-सेवा के लिए वे कौन सा कार्य कर सकते हैं ?

गोस्वामीजी - अधिक क्या कहूँ ? गाय की सेवा कर सकते हैं। चारा वगैरह काट कर भी सेवा कर सकते हैं ।

*** ॐ-हरि ***

मैं - आपने जो साधन प्रणाली हम लोगों को प्रदान की है, उससे मनुष्य को क्या प्राप्त हो सकता है ?

गोस्वामीजी - इस पृथ्वी में जितने प्रकार की साधन प्रणाली वर्तमान हैं; उनमें मनुष्य जो कुछ प्राप्त कर सकता है, वह तो उसे प्राप्त होगा ही, साथ ही साथ ''प्रेमभक्ति'' की प्राप्ति भी होगी ।

मैं - प्रेमभक्ति किसको कहते हैं ?

गोस्वामीजी - भक्ति साधारणत: तीन भागों में विभक्त है । सात्विक, राजसिक एवं तामसिक । भगवान के प्रति जो अहैतुकी (निष्काम) भक्ति होती है, उसे प्रेमभक्ति कहते हैं । भक्ति-शास्त्र पाठ करने से भक्ति के संबंध में विशेष रुप से जान सकते हो ।

मैं - इस साधन द्वारा आपको क्या प्राप्त हुआ है ?

गोस्वामीजी - मनुष्य जो कुछ प्राप्त कर सकता है, वह मुझे पूर्णरुप से प्राप्त हो गया है। मुझे और कुछ अवस्था प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है ।

*** ॐ-हरि ***

श्री गोस्वामीजी - **प्रकृति को तृप्त करना** होगा। प्रकृति ने ही आकर तुम से वैसा कहा **था। दो उपायों से प्रकृति** को तृप्त किया जा

सकता है। एक तो वैध भोग के द्वारा और दूसरे साधन द्वारा। साधन द्वारा ही तुम्हें प्रकृति को तृप्त करना होगा। तुम्हारे लिए साधन ही एकमात्र उपाय है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- '' सन्यास लिये बिना, घर में रहकर भी क्या कोई ऐसी परमहंस अवस्था को प्राप्त कर सकता है?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, अच्छी तरह प्राप्त कर सकता है; भीतर समस्त वासना कामनाओं के रहते हुए, सामयिक उत्साह में आकर सन्यास लेकर कठिन वैराग्य के मार्ग पर चलना बुद्धिमानी का काम नहीं है। दुर्ग के भीतर रहकर जिस प्रकार बेखटके युद्ध किया जाता है उसी प्रकार घर गृहस्थी में रहते हुए भी वैध उपाय से कर्म का क्षय करना सहज है। कर्म का क्षय न हो तो कुछ भी होने का नहीं। संन्यास कुछ साधारण बात अथवा मत नहीं है, वह तो मनुष्य के भीतर की ही एक अवस्था है; भगवान् में सम्यक प्रकार से आत्मसमर्पण ही तो सन्यास है।

शिष्य :- ''संसार का त्याग करके संन्यासी हो जाने पर भी क्या फिर साधारण कर्मबन्धन बना रहता है?''

श्री गोस्वामीजी :- घर-द्वार, रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद को ही कुछ संसार नहीं कहते। इन चीजों का त्याग कर देने से ही कोई संन्यासी नहीं हो जाता। संसार तो देहात्म बुद्धि ही है। इस देहात्मबुद्धि के नष्ट हुए बिना सब कुछ विडम्बना है। जब तक मनुष्य को ठीक ठीक वैराग्य नहीं हो जाता तब तक कर्म भी बना रहता है। बाहर चाहे संन्यास लो चाहे न लो, कर्म करना ही होगा। भगवान पर लक्ष्य रखकर कर्म करते जाने से शीघ्र ही वह कर्म निःशेष हो जाता है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- भविष्य को देखने की आवश्यकता नहीं । इस समय जो बताया जाता है उसी को करते जाओ। युवावस्था में ही

साधन भजन करना चाहिए। अधिक उम्र होने से मन का उत्साह, उद्यम, धीरे धीरे ठण्डा पड़ जाता है। शरीर सुस्त और रोगी हो जाता है। उस दशा में साधन भजन करना क्या सहज है? युवावस्था ही साधन भजन करने का उपयुक्त समय है। इस समय खूब लगन के साथ धर्म के संस्कार और रूचि उत्पन्न कर लो तो बहुत कुछ बचाव हो जायेगा। जब तक श्वास-प्रश्वास के साथ नाम के जप का अभ्यास नहीं हो जाता तब तक निरापद् भूमि की प्राप्ति नहीं हो सकती।

यदि भाग्य का लिखा सोलहों आने भोगना पड़े, स्वभाव के दोष का त्याग करना असम्भव ही हो जाय तब तो साधन, भजन, व्रत तपस्या इन सब का अर्थ ही क्या रह गया? भगवान की तनिक सी कृपा होने से लाखों जन्मों का कर्म भोग पलभर में नष्ट हो जाता है; यह बिल्कुल सच बात है। उनकी कृपा ही सार वस्तु है, और कुछ भी नहीं। दीन होकर उनकी ओर देखने से वे अवश्य कृपा करते है।''

❋ ॐ–हरि ❋

शिष्य :- आप तो कहते हैं कि औषधि का सेवन करने से भी बहुत सा कर्म-भोग कट जाता है।

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, वह ठीक है।

❋ ॐ–हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- वास्तविक सत्य को प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार के संस्कारों को छोड़ना पड़ता है। संस्कारों को बिल्कुल छोड़ देने से मन सर्वथा निर्मल हो जाता है। उस दशा में कोई भी भाव नहीं रह जाता। उसी दशा में सत्य का अनुसन्धान होता है। मत, आचरण, भावों और संस्कारों के मन से बिल्कुल निकल जाने पर जो प्राप्त होती है, वही तो वास्तविक सत्य वस्तु है। संस्कारों से वर्जित अन्तर में सत्य के एक कण का भी प्रकाश हो जाय तो वही अमूल्य है। बौद्ध योगी लोग रीति के अनुसार उच्च साधन करने से पहले ही संस्कार को बिल्कुल नष्ट कर डालते हैं। इसमें उनका कोई तीन वर्ष का समय लग

जाता है। बौद्ध लोग आरम्भ में ही संस्कार शून्य हो लेते हैं, इसी से बहुतेरे उनको नास्तिक कहते हैं।

❊ ॐ–हरि ❊

अभी जिसे पाप पुण्य कहते हो वे सब संस्कार हैं। वस्तुत: यह सब कुछ नहीं। यह पाप है, यह पुण्य है, यह सुख, यह दु:ख इन संस्कारों में आबद्ध होकर हम दु:ख पाते और उन्नति नहीं देख पाते हैं। वृक्ष जैसे अपने आप बढ़ता है जीवात्मा भी उसी प्रकार हमारे कार्य, कर्म, इच्छा अनिच्छा की अपेक्षा न रख उन्नति करती जा रही है। वृक्ष को कीड़े लग सकते हैं या डाल काटे जा सकते हैं, तो भी उसकी वृद्धि रुकती नहीं। पाप पुण्य केवल संस्कार मात्र है। इसलिए मन दु:खी करके अशांति भोगना ठीक नहीं। स्वभाव जो करवा ले करवा लेने दो, जो होना है, हो जाये। देखते जाओ, अशांति क्यों भोगते हो ? जो भी करो यह निश्चित जानो कि आत्मा की क्रमश: उन्नति ही हो रही है। सदा विचार पूर्वक चलो। भीतर जो संस्कार हैं, उनका स्फुरण होगा ही, किन्तु इससे आत्मा की उन्नति नहीं हो रही है, ऐसा मत सोचो। विचार, शम, संतोष द्वारा आत्मा की उन्नति उपलब्ध की जा सकती है। काम क्रोधादि आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते। आत्मा अनंत उन्नतिशील है।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य - यदि सबकुछ पूर्व निश्चित है तो क्या मनुष्य 'कर्म' को न करें ?

श्री गोस्वामीजी - मनुष्य बिना कर्म किये नहीं रह सकता, भगवान जिनके द्वारा जो कर्म करवायेंगे, उन्हें वही कर्म करना ही पड़ेगा। इस कारण 'भगवान के प्रति समर्पण की भावना से कर्म करना चाहिए।

शिष्य - 'कर्म' समाप्त हो गया है किस प्रकार समझा जावेगा ?

श्री गोस्वामीजी - जब वासना कामना न रहे।

शिष्य - 'कर्म' द्वारा क्या 'कर्म' समाप्त (शेष) नहीं हो सकता है?

श्री गोस्वामीजी - 'कर्म' द्वारा केवल कर्म बन्धन और बढ़ जाता

है। 'निष्कामकर्म'' द्वारा कर्म समाप्त हो सकता है, पर मन में वासनाओं के रहने से, 'निष्काम कर्म'' करना बहुत कठिन है।

शिष्य - वासना की निवृत्ति किस प्रकार होती है ?

श्री गोस्वामीजी - श्वास-प्रश्वास में नाम-जप द्वारा बहुत शीघ्र 'वासना' की निवृत्ति होती है।

शिष्य - नाम जप करने का क्या कोई समय असमय है ?

श्री गोस्वामीजी - नहीं, अविराम नाम करना। पहिले पहल 'नाम' जप करना बहुत कठिन होता है। ऐसा लगता है मानो श्वास बंद हो रहा है, शरीर में कांटा चुभ रहा है, आदि।

*

उ
प
दे
श

जन्म, पुनर्जन्म और परलोक

शिष्य :- ''शास्त्र में लिखा है कि विषय में आसक्ति होना ही पुनर्जन्म का कारण है? विषय में आसक्ति होने से जो आकृति अंकित हो जाती है क्या उसी से तो परलोकगत जीव संसार में नहीं खिंच आता?'

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, यह भी हो सकता है। संसार में आने के और भी गुरुत्तर कारण होते हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - ''जिस वस्तु के सम्बन्ध में मनुष्य का जैसा भाव होता है उस वस्तु में मनुष्य की जो आकृति अंकित हो जाती है, वह क्या उस भाव के ही अनुरूप होती है?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, बिलकुल वैसी ही।

शिष्य - ''तब तो बड़ी कठिनाई है। छिपाया कुछ भी नहीं जा सकता!''

श्री गोस्वामीजी :-छिपाने की सामर्थ्य कहाँ है? प्रकृति में जो चहरे की छाप अपने आप सदा पड़ती रहती है उसमें क्या किसी का हाथ है? जिसके आँखें हैं, वह प्रकृति की ओर देखते ही तो पल भर में सब कुछ देख लेगा। कोई कुछ क्या छिपा सकेगा?

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - क्या श्राद्ध करने से सचमुच में प्रेतात्मा के क्लेश शान्त हो जाते हैं?

श्री गोस्वामीजी :- ''एक दिन हम यमुना किनारे-किनारे चलकर ज्योंही कालीदह के पास पहुँचे त्योंही एक प्रेत हमारे सामने आकर गिर पड़ा और बेतरह तड़पने लगा। हमने उससे पूछा- ''ऐसा क्यों करते हो?'' प्रेत ने कहा - 'प्रभो, रक्षा कीजिये, मैं अब इस क्लेश को सहन नहीं कर सकता। मुझे सदा सैकड़ों हजारों बिच्छू डंक मारते रहते हैं। दर्द के मारे बेचैन होकर मैं दिनरात इधर-उधर दौड़ता रहता हूँ। मुझे घड़ी भर के लिए भी आराम नहीं मिलता। आप मेरी रक्षा करें।' हमने उससे

पूछा- ''यह आपके किस पाप का दण्ड है?'' प्रेत ने ढाड़ें मारकर रोते हुए कहा- 'प्रभु, यहाँ पर मैं मन्दिर में पुजारी था। श्री ठाकुर की सेवा पूजा के लिए मुझे जो रूपया पैसा आदि मिलता था उसको भगवान् की सेवा मे खर्च न करके मैं भोग-विलास और ऐयाशी में फूँक देता था। यही मेरा सबसे भारी अपराध है।'' हमने उससे पूछा- ''क्या करने से आपको इस क्लेश से छुटकारा मिलेगा ?'' प्रेतात्मा ने कहा - 'मेरा श्राद्ध नहीं हुआ; श्राद्ध कर दिया जायेगा तो इन क्लेशों की शान्ति हो जायेगी। आप दया करके मेरे श्राद्ध का प्रबन्ध कर दीजिए।' हमने पूछा - 'किस प्रकार का प्रबन्ध कर दें?' प्रेत ने कहा - 'श्राद्ध कर देने के लिए मैंने अपने भतीजे को डेढ़ हजार रूपये दिये थे; किन्तु उसने अब तक मेरा श्राद्ध नहीं किया। आप दया करके वह रुपया मँगवाकर कुछ तो ठाकुर जी की सेवा पूजा में लगा दीजिए और बाकी रुपये द्वारा मेरे कल्याणार्थ श्राद्ध करके महोत्सव करने से ही मेरा इस यन्त्रणा से छुटकारा हो जायेगा।' प्रेत के मुँह से ये बातें सुनकर हमने उक्त मन्दिर के वर्तमान पुजारी के पास जाकर सारा हाल कह सुनाया। इसके बाद उस प्रेत के भतीजे को भी यह खुलासा हाल बतलाया गया। उन्होंने समझ रक्खा था कि उस रुपये की कोई खबर ही न लेगा। जो हो, उन्होंने पूरी रक़म देकर विधि के अनुसार श्राद्ध कर दिया। महोत्सव इत्यादि भी हुआ। इसके बाद उस प्रेत का सारा दुख दर्द जाता रहा। इस घटना को हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं।

* ॐ-हरि *

पिता-माता आदि बड़े-बूढ़ों पर भक्ति क्यों नहीं होती ? क्या करने से भक्ति होगी?

किसी के यह पूछने पर ठाकुर ने कहा-पिछले जन्म में शरीर अशुद्ध रह जाता है तो पिता, माता और अन्यान्य गुरुजनों पर अभक्ति और घृणा होती है। उनके प्यार करने पर भी अश्रद्धा होती है। और तो क्या, भगवान पर भी भक्ति नहीं होती। पिछले जन्म के सूक्ष्म परमाणु अगले **जन्म की सूक्ष्म देह के साथ स्थूल देह** में प्रविष्ट हो जाते हैं। इसी से **अगले जन्म में भी माता-पिता प्रभृति के** ऊपर अश्रद्धा रहती है। भक्ति

का शरीर के साथ सम्बन्ध है। इसके साथ आत्मा का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। पिता-माता के साथ देह का सम्बन्ध है। पिता के शुक्र और माता के शोणित से देह बनती है। इस देह को शुद्ध करना होगा, शुद्ध रखना होगा, नहीं तो पिता माता पर भक्ति होने की नहीं। गङ्गास्नान, तीर्थयात्रा, एकादशी का व्रत, पूर्णिमा और अमावस्या का निशिपालन आदि व्रत तथा उपवास आदि करने से देह शुद्ध होती है।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य - ''साधक को फिर संसार में आना होगा ?''

श्री गोस्वामीजी :- खूब चेष्टा करके साधक यदि एक बार ही सब निपटा ले तो फिर क्यों आना होगा? वासना को जीत सकने पर फिर न आना पड़ेगा। वासना रह जाने से ही दुबारा आना पड़ता है।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य - ''जो लोग जीवन्मुक्त हो जाते हैं, वे चाहें तो क्या फिर संसार मे आ सकते हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, चाहेंगे तो आ क्यों न सकेंगे?

शिष्य - ''जीवन्मुक्त व्यक्ति संसार में आ जाय और संसार के पापस्रोत में पड़ जाय तो क्या उसका कुछ अनिष्ट नहीं होता?''

श्री गोस्वामीजी :- उनका अनिष्ट और हो ही क्या सकता है? वे तो संसार में आते और कुछ समय तक संसार का कार्य करके चले जाते हैं। सङ्गदोष में पड़ जाने से उन्हें भोग की इच्छा होने पर भी वे उसमें बिल्कुल आबद्ध नहीं हो जाते, ऊपर से ही नाना प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। गड़बड़ देखते हैं तो महापुरुष ही उन्हें हटाकर ले जाते हैं। जैसा कि लाल के साथ हुआ था।

शिष्य - ''वे तो विष खाकर मर गये थे। अपमृत्यु होने से क्या उन्हें दण्ड नहीं मिलता?''

श्री गोस्वामीजी :- उन्होंने विष खा लिया था सही, किन्तु उनके देहत्याग के समय पर महापुरुषों ने मृत्यु को बुलाकर उनकी जीवात्मा

को ग्रहण करने के लिये कहा, इसी से न तो उनकी अपमृत्यु हुई और न ही कोई अपराध लगा; दण्ड भी नहीं मिला।

प्राणवायु निकलते समय मृत्यु आकर जीवात्मा को ग्रहण कर लेता है तो स्वाभाविक मृत्यु होती है और अकस्मात् किसी दुर्घटना में पड़कर देह में जीवात्मा के रहने पर भी यदि प्राणवायु निकल जाता है तो वह मृत्यु अस्वाभाविक होती है। वही अपमृत्यु हैं; ऐसा होने से ही असद्गति हुआ करती है।

※ ॐ–हरि ※

शिष्य - अपघात, मृत्यु आदि से जिनकी परलोक में असद्गति होती है उनके वंशवालों के कौन से कार्य से प्रेतात्मा की सद्गति हो सकती है?

श्री गोस्वामीजी :- शास्त्र का वचन है कि गयाजी में रीति के अनुसार श्राद्ध करने से आत्माओं का उद्धार हो जाता है।

शिष्य - ''गयाजी में किया गया पिण्डदान क्या सचमुच प्रेत को मिल जाता है?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, रीति के अनुसार किया गया पिण्डदान परलोकगत आत्मा को मिल जाता है। मैं जिस समय गयाजी में ब्राह्मधर्म का प्रचार करने गया था उस समय आकाश गङ्गा पहाड़ पर अक्सर जाकर रहता था। उस समय एक बार एक अद्भुत घटना हुई थी। उन्ही दिनों मेरा एक ब्राह्मसमाजी मित्र डाक्टर जो बिलायत हो आया था, गयाजी गया हुआ था। उसके परलोकगत पिता ने उससे एक दिन स्वप्न में कहा - 'बेटा, गया में आ गये हो तो मुझे एक पिण्ड दे दो; मै बड़ा कष्ट पा रहा हूँ।' ब्राह्मसमाजी होने के कारण उस डाक्टर को इन बातों पर विश्वास नहीं था, इससे उसने स्वप्न की बात पर विश्वास नहीं किया। अगले दिन उसने रात को फिर स्वप्न देखा, पिता बड़ी कातरता से कह रहा है - 'बेटा, तुम्हारा कल्याण होगा, मुझे एक पिण्ड दे दो; मैं बड़ा कष्ट पा रहा हूँ।' किन्तु दो बार स्वप्न देखने पर भी उसने कुछ परवा न की। एक दिन आकर मुझे यह हाल सुनाया। मैंने उससे कहा- 'जब आपको बार-बार यही स्वप्न

दिखाई देता है तब पिण्डदान कर देना ही अच्छा है।' उसने चिढ़कर मुझसे कहा, आप ब्राह्मधर्म के प्रचारक होकर ऐसे कुसंस्कारों पर विश्वास करते हैं? मैंने उसको समझाया कि, 'आप अपने विश्वास के अनुसार पिण्डदान न करें, आप अपने पिता के विश्वास के अनुसार करें। इसमें रुकावट ही कौन सी है? 'वह इस पर भी राजी न हुआ। इसके बाद वह एक दिन लेटा हुआ था, जरा सी तन्द्रा आ गई। देखा कि पिता हाथ जोड़ कर कह रहा है, 'बेटा, मुझे एक पिण्ड नहीं दिया?' तब मित्र ने आकर मुझसे कहा, 'महाशय, आज फिर स्वप्न में पिता को देखा है। वे हाथ जोड़े हुए कातर होकर कह रहे थे - 'बेटा, मुझे एक पिण्ड नहीं दिया? मैं बहुत कष्ट पा रहा हूँ।' सुनकर मुझे रोना आया। तब मैंने कहा, 'आप स्वयं पिण्ड नहीं देना चाहते तो प्रतिनिधि के द्वारा दिला दीजिए।' वह चुप हो गया। मैंने दो रुपये देकर एक पण्डे को उसका प्रतिनिधि बनाया और उसी के हाथ से पिण्ड दिलाने का प्रबन्ध कर दिया। इस पिण्डदान के दिन मित्र को साथ ले मैं घूमता फिरता विष्णुपदमन्दिर में जा पहुँचा। प्रतिनिधि पण्डे ने जिस समय पिण्डदान किया उस समय उस मित्र की आँखों से आँसू बहने लगे। वह रोते-रोते बेचैन हो गया। बाद में पूछने पर उसने बतलाया, 'महाशय, जब पिण्ड दिया गया तब मैंने साफ-साफ देखा कि मेरे पिता ने मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा, 'बेटा, मेरा यथार्थ उपकार कर दिया, तुम सुख से रहो, भगवान् तुम्हारा भला करें।' यदि मुझे पहले से मालूम होता कि पिता इस तरह आकर पिण्ड को ग्रहण करेंगे तो मैं स्वयं बहुत अच्छी तरह पिण्ड देता।' ये बातें क्या युक्ति और तर्क से समझाई जा सकती हैं?

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- यमुनातट पर कई प्रेतात्माओं ने बहुत ही कातर होकर मुझसे कहा 'हमें ऐसा क्लेश होता है मानो सैकड़ों बिच्छुओं ने डंक मार दिया हो, दीक्षा देकर हम लोगों को इस क्लेश से बचा लीजिए।' मैंने कहा 'मैं कुछ भी नहीं जानता। अपने गुरुदेव की आज्ञा मिले बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता।' उन लोगों ने कहा

'आप यमुना मे स्नान कर लीजिए।' फिर मैं यमुना में स्नान करके बाहर निकला तो गीले शरीर से जल टपक-टपक कर गिरने लगा। प्रेत लोग बड़े आग्रह से उसी को चाटने लगे। तब देखा कि उन लोगों का शरीर ज्योतिर्मय हो गया और दिव्य रथ आकर उन लोगों को ले गया।

* ॐ-हरि *

शिष्य :- ''जीव की कैसी दशा में, देहान्त के अनन्तर ही फिर देह का आश्रय करना पड़ता है?''

श्री गोस्वामीजी :- घर-गृहस्थी में जिनकी अत्यन्त वासना रहती है, जिनके भोग की इच्छा अत्यन्त प्रबल होती है; वे शरीर छूटते ही अन्य देह का आश्रय ले लेते हैं।

प्रश्न :- ''पितृलोक को कौन जाते हैं?''

श्री गोस्वामीजी :- विषय उपस्थित होने पर जो उसको भोग तो लेते हैं किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए कोई प्रबल स्पृहा नहीं रखते, साधारणत: ऐसे लोग ही पितृलोक को जाते हैं।

प्रश्न :- ''वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक में तथा उससे भी अतीत लोक में जीव, किस अवस्था की प्राप्ति कर लेने पर, जाता है?''

श्री गोस्वामीजी :- जो लोग धर्मशास्त्र पर लक्ष्य रखकर किसी भी अच्छे कार्य में जीवन लगा देते हैं, उनको कर्म के अनुसार वासनानुयायी एक प्रकार का लोक मिलता है और जिनकी वासना की जड़ तक कट जाती है, एक मात्र भगवान् पर ही जिनका लक्ष्य रहता है उन्हीं की गति ब्रह्मलोक के अतीत लोकों मे होती है। केवल वासना के ही कारण जीव को भिन्न-भिन्न लोकों में जाना पड़ता है। इन बातों की और भी बहुत सी छानबीन है, किन्तु सभी को सब दशाओं का हाल नहीं बतलाया जाता। जिसकी जैसी दशा है, जिसको जिस ओर से समझने का अधिकार है उसको उसी ढँग से बतलाया जाता है; नहीं तो वह समझ ही नहीं पाता। बतला देने से लाभ होने के बदले हानि हो जाती है। यह सब सुनने से कुछ लाभ नहीं है, काम करते जाना चाहिए।

❋ ॐ–हरि ❋

शिष्य :- ''जहाँ कभी गये ही नहीं, जिसे कभी देखा भी नहीं, ऐसे किसी किसी स्थान में जाने पर जान पड़ता है कि मानो इसे पहले कभी देखा है। ऐसा क्यों होता है?''

उत्तर - पूर्व जन्म में जिन स्थानों से विशेष सम्बन्ध रहता है वहाँ पहुँचने पर किसी किसी को वही पूर्व परिचित जान पड़ता है।

यह कहकर श्री गोस्वामीजी अपने पूर्वजन्म की स्मृति का हाल बतलाने लगे –

''मैं जब गयाजी में था तब एक दिन टहलता-टहलता, फल्गु के उस पार रामगया में जा निकला। वहाँ एक मन्दिर में नृसिंहदेव के दर्शन करने पर तुरन्त ऐसा जान पड़ा कि मानों पहले कभी मैंने इस मूर्ति को देखा है। इसके बाद धीरे-धीरे मुझे सब बातों की याद आने लगी। वहाँ, फल्गु के उस पार, पुराने बँधे हुए घाट पर एक पीपल का पेड़ है। उस पेड़ के पश्चिम ओर की एक डाल में छुरी से छेद-छेद कर 'ॐ रामः' बड़े बड़े अक्षरों में लिख रक्खा था। उसकी भी मुझे याद आई। मैं चटपट उठकर उस पेड़ के पास गया तो उस डाल में मेरी वह लिखावट मिल गई। हाँ, डाल के बढ़ते रहने से अक्षर अवश्य दूर दूर हो गये थे। फिर रामगया के जिस स्थान में रहकर मैंने साधन भजन किया था और उस समय मेरे साथ जो दो परमहंस थे, उन सबका मुझे स्मरण हो आया। धीरे-धीरे और भी बहुत सी बातों की याद आ गई। पहाड़ पर सब जगह घूम फिरकर उन स्थानों और चिह्नों को देखने से मुझे बड़ा अचम्भा हुआ। पूर्व जन्म की सब बातों की उस दिन उसी समय याद आ गई।

❋ ॐ–हरि ❋

बहुत से तीर्थों की यात्रा और अनेक स्थानों की सैर करते-करते, कोई पूर्वजन्म के साधन भजन का या विशेष सम्बन्ध का स्थान मिल जाता है तो अकस्मात् उसका पूर्वभाव या स्मृति (याद) पल भर में उदित हो सकती है। बहुत साधन-भजन करने से भी यह याद

सहज नहीं आती। यह नहीं कहा जा सकता कि किस स्थान और किस विग्रह के साथ किसके जीवन का कौन सा सम्बन्ध है? समस्त योगायोग होने पर किसी-किसी के लिए वह प्रकट हो जाता है। यह कोई शर्त नहीं कि सब के लिए वह हो ही।

❋ ॐ-हरि ❋

प्रश्न :- ''किसी मैले गन्दे स्थान में पहुँचने पर कई बार मन प्रफुल्ल होता देखा जाता है, चित्त मानों अपने आप केन्द्रित हो जाता है और साफ सुथरे बगीचे के बढ़िया घर में जाने पर भी मन उचटा उचटा फिरता है, चित्त चञ्चल हो जाता है। इसका क्या कारण है ?''

उत्तर :- विशेष-विशेष भाव से, जहाँ-जहाँ पर, जिस-जिस कार्य का अनुष्ठान होता रहता है उन सबका एक भाव उन स्थानों में पुञ्जीभूत रहता है। वहाँ पहुँचने पर वे सभी भाव चित्त को स्पर्श करते हैं। चित्त जितना निर्मल रहता है उतना ही उन भावों का अनुभव होता है, नहीं तो नहीं होता। भजन, साधन, तपस्या, देव-देवी का अनुष्ठान, महापुरुषों का निवास या परलोकगत पुण्यात्माओं का अवस्थान जिन स्थानों में होता है वहाँ हजार वर्ष बाद जाने पर भी वे सभी भाव चित्त को अभिभूत करते हैं। इसी प्रकार जिन स्थानों में विषम अत्याचार, अनाचार ओर दुष्कर्म आदि होते हैं वहाँ मुद्दत के बाद जाने पर भी उन भावों का असर चित्त पर पड़ता है। चित्त के निर्मल होने पर ही स्थान के प्रभाव की परख हो सकती है।

❋ ॐ-हरि ❋

शिष्य :- मृत्यु के बाद क्या सभी को एक ही स्थान में जाना पड़ता है ? मृत बंधु गण कोई भी परलोक के बारे में कुछ परिचय क्यों नहीं देते ?

श्री गोस्वामीजी :- ''मनुष्य जब तक जीवित रहता है, परलोक जानने के लिये व्याकुल रहता है। परलोक की बातें कहता व सुनता है किन्तु मर जाने के बाद वही व्यक्ति अपने मित्रों से आकर कोई बात करने का यत्न नहीं करता। इससे यही सिद्ध होता है कि परलोक सबके

लिये एक ही प्रकार का नहीं होता। धार्मिक, जिन्होंने नाना प्रकार की कामना करके धर्म किया है, उनका परलोक एक प्रकार का होगा। वे धार्मिक, जिन्होंने निष्काम धर्म किया है, उनका परलोक दूसरी तरह का होगा। पापी लोगों के लिए प्रकृति के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार के परलोक की व्यवस्था है। इसलिये जो परलोक सिधार जाते हैं वे सक्षम होने पर भी धरती के लोगों से यह सब कहना प्रयोजनीय नहीं समझते। कहने पर भी कोई विश्वास नहीं करेगा।''

*** ॐ–हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''माता जी की मृत्यु से अनेक तत्व प्रकट हुए। मृत्यु के दिन तीन घंटे पहले से उनकी आत्मा शरीर से निकल कर कमरे में कष्टपूर्वक विचरण कर रही थी। देह को कमरे से बाहर लाने पर मुक्त आसमान की ओर आत्मा ने दृष्टि डाली। तब उनके पूर्वजों ने आकर ग्रहण कर लिया। पूर्वज गण पुण्यात्मा को ले जाकर पितृलोक या मातृलोक में रखते हैं। वहाँ एक वर्ष तक आनंद पूर्वक रखते हैं। एक वर्ष बाद जिनका जैसा कर्म हो, उसी के अनुसार अवस्था प्राप्त करते हैं। वे इस एक वर्ष में श्राद्ध के फल का भोग करते हैं। पापात्मा होने पर इस एक वर्ष में उत्कट यंत्रणा भोगते हैं। माता इस प्रकार अनेक घटनाओं की जानकारी मुझे दे रही हैं। यह मेरे लिये बड़ी आनंददायक बात है।''

*** ॐ–हरि ***

''जीव के स्थूल देह में क्षुधा, तृष्णा लगने पर, स्थूल वस्तु से ही स्थूल देह की प्रत्येक ग्रास में तृप्ति, क्षुधा निवृति, पुष्टि होती है। सूक्ष्म देह में आहार की वस्तु दर्शन मात्र से ही तृप्ति एवं क्षुधा निवृति, पुष्टि होती है। कारण देह में, यह देह स्वयं कुछ नहीं कर पाता, तब कोई ब्रह्मविद् ब्राह्मण यदि खाद्य ग्रहण कर अपनी जठराग्नि को आहुति दे तो उसकी तृप्ति द्वारा ही, परलोक गत कारण देह की तृप्ति, क्षुधा निवृति **और पुष्टि** होती है। इसीलिये श्राद्धपात्र, घृत, खीर आदि ब्राह्मण को देने **की प्रथा** है।''

*** ॐ–हरि ***

''यथाविधि गया में पिंड़दान करने से, प्रेतात्मा की मुक्ति होती है। माताजी की मृत्यु के बाद पितृलोक एवं मातृलोक से पूर्वजगण आकर मुझसे बोले कि ग्यारहवें दिन योगजीवन द्वारा श्राद्ध कार्य संपन्न हो। उनके नाम से द्रव्यादि दान करें। ब्राह्मण, वैष्णवों को, दुखियों को भोजन करायें तथा दान करें। दूसरे पक्ष में गया जाकर पिंडदान करें। अन्य पक्ष में, आश्विन माह में, यथासाध्य चावल, जलपात्र, फलमूल, खाद्यवस्तु दान करें। शास्त्रानुसार अभी गया में पिण्डदान नहीं हो सकता। उन्माद रोग के समय जो कुछ किया था, उसका प्रायश्चित हुए बिना ही मृत्यु हुई है। अत: या तो एक वर्ष बाद कुश पुत्तलिका बनाकर श्राद्ध करना होगा या एक वर्ष बाद अन्य पखवाड़े में गया जाकर पिण्डदान करना होगा। अभी अन्न, वस्त्र, जलपात्र, भोजनपात्र तथा खाद्यपदार्थ दान करके वैष्णव, ब्राह्मण तथा दुखियों को दान देना होगा।''

*** ॐ–हरि ***

शिष्य :- जो मुक्त होते हैं, वे क्या पुन: संसार में आते हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- ''मुक्ति कई प्रकार की होती है। स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण देह। वासना लय होने पर स्थूल देह से मुक्ति मिलती है, किन्तु सूक्ष्म और कारण देह तो रहता है। जिन जिन वासनाओं के फलस्वरूप सूक्ष्म देह उत्पन्न होता है, उनके लय होने पर सूक्ष्म देह का भी लय हो जाता है, किन्तु कारण देह रह जाता है। समस्त वासनाओं की पूर्णत: निवृति न हो जाय तब तक कारण देह बना रहता है। कारण देह का लय होने पर ही संपूर्ण मुक्ति जानना चाहिये। कारण देह का विनाश न होने तक निर्विघ्न अवस्था में नहीं पहुँचा जा सकता। एक दो वासनाएँ रह जाने पर भी सूक्ष्म देह धारण कर जन्म लेना पड़ता है। कारण देह लय हो जाने पर वह सदा सच्चिदानंद, आनंद सागर में डूबा रहता है। वहाँ सर्वदा भगवत् लीला दर्शन होते रहते हैं। इसे ही गोलोक धाम या कैलाश कहते हैं। नाम करते-करते वस्तुत: ये सभी अवस्थाएँ आती हैं।''

✼ ॐ–हरि ✼

''शास्त्रकारों ने मुक्ति लाभ के विषय में सुंदर व्यवस्था की है। गया में पिण्डदान से लोगों का कल्याण होता है। जिनका इस संबंध में कोई संस्कार ही नहीं, उन्हें सम्भवत: लाभ न भी मिले। विश्वास के अनुरूप ही फल मिलता है। गया में पिंड देने पर लाभ होता है, मैंने यह प्रत्यक्ष देखा है। स्थूल देह की आहार से, सूक्ष्म देह की दृष्टि से और कारण देह की लोगों की शुभेच्छा से, पुष्टि हुआ करती है। पुष्टि का अर्थ यहाँ संतुष्टि है। गया में पिण्ड को देखकर सूक्ष्म देह की वासना निवृत हो जाती है। केवल शुभेच्छा प्राप्त करके कारण देह भी नाश प्राप्त करता है।''

✼ ॐ–हरि ✼

शिष्य :- पितृलोक में क्या सभी को जाना पड़ता है?

श्री गोस्वामीजी :- ''जिनका कर्म है, उन्हें ही पितृलोक जाना पड़ता है।''

शिष्य :- जिन्होंने गया में पिण्ड यथाविधि प्राप्त कर लिया है, क्या उनका भी पुन: श्राद्ध करना प्रयोजनीय है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''जिन्हें गया में यथाविधि पिण्ड दिया गया है, उनका पुन: श्राद्ध करना जमीन पर पानी डालने के समान है।''

प्रश्न :- फिर तर्पण को नित्यकर्म में क्यों रखा गया है?

श्री गोस्वामीजी :- ''नित्य तर्पण की बात अलग है। वह अवश्य कर्त्तव्य है। प्रत्येक वंश के एक पृथक् पितृ देवता रहते हैं। तर्पण करने पर उन्हें तृप्ति होती है। सभी के लिये तर्पण करने का विशेष प्रयोजन है।''

✼ ॐ–हरि ✼

प्रश्न :- मरने के बाद भूत कौन लोग बनते हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- ''**बहुत दिनों तक रोग भोग**ते हुए एक अविश्वास सा उत्पन्न होता है। साधा**रणतया ये लोग ही मरकर भूत**योनि प्राप्त करते हैं।''

*** ॐ–हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''पूर्व शरीर के पुराने परमाणुओं के परिवर्तन के समय नाना प्रकार की अवस्थाएँ आती हैं। उस समय किसी के देह में ज्वर विकार, किसी देह में जलोदर, किसी को निमोनिया आदि होने लगता है। प्रलय से सृष्टि और सृष्टि से प्रलय तक जो भी कुछ हो, प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। वेद पुराण, तंत्र आदि सभी शास्त्रों के तत्त्व प्रकट होते हैं। मेरे साथ भी दरभंगा एवं ढाका में इस प्रकार की घटनाएँ हुई थीं। दरभंगा में तो सात डॉक्टरों ने एकमत होकर कहा था कि तीन घंटों में इनकी मृत्यु हो जायेगी। उसी दिन शाम को मैं उठ बैठा और तीन दिन बाद कलकत्ता आ पहुँचा। एक बार ढाका में भी मृत्यु हो जाने की बात डॉक्टरों ने स्पष्ट कह दी थी और मैं उठ कर बैठा, स्वस्थ हो गया।''

*** ॐ–हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''एक को पिण्ड पुत्र देता है, तो भी पौत्र आदि द्वारा पिण्ड देने की व्यवस्था है। यदि किसी का पिण्डदान प्रेतात्मा को न मिले तो वंश के पुरुष जो भी गया जाये, उन्हें अपने पूर्वजों व स्वजनों को पिण्ड देने का नियम है।'' ''विधिवत् पिण्ड देने पर उससे अवश्य ही प्रेतात्मा का उद्धार होता है। किंतु विधि से दिया नहीं जाता। जो पिण्ड दें, वे यान आरोहण न कर पैदल यात्रा करें। फिर शुद्ध चित्त होकर एकाहार या हविष्यान्न खाकर एक माह साधन-भजन करते हुए गया में वास करें। जमीन पर, हाथ को सिरहाने बनाकर सोएँ। फिर शास्त्र अनुसार प्रेतात्मा का पिण्डदान करें। तब वह पिण्ड अवश्य प्रेतात्मा को प्राप्त होता है और उसका उद्धार हो जाता है। इसमे कोई अन्यमत नहीं हो सकता। यह ऋषिवाक्य है। इस विधि से पिण्ड दिया ही नहीं जाता। तो भी गदाधार इतने दयालु हैं कि किसी भी प्रकार दिया हुआ पिण्ड ग्रहण करके प्रेत का उद्धार करते हैं। किसी विशेष अनियम या अनाचार के कारण यदि गदाधर पिण्ड न ग्रहण करें, तो इसीलिये बार-बार पिण्डदान की व्यवस्था है :- देते-देते कभी न कभी लग ही जायेगा।''

॰ ॐ–हरि ॰

शिष्य :- शास्त्र, पुराणों में जो नरक का वर्णन है, वह वस्तुतः है या नहीं। यमदूत क्या हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- ''शास्त्रों में नरक का वर्णन जैसा है, वस्तुतः नरक वैसा ही है। यमदूत, विष्णुदूत सभी सत्य हैं। मृत्यु के बाद इनके साथ विचार होता है। पितृपुरुष भी मृत्यु के समय उपस्थित रहते हैं। जिनकी आत्मा नरक जाती है, पितृपुरुष उन्हें सान्त्वना देते हैं। पितृपुरुष भी माया के अतीत नहीं होते, त्रिगुण के अधीन होते हें। पूर्वजों में जो केवल मुक्त हैं, वे ही उपस्थित होकर, मृत आत्मा को पितृलोक ले जाते हैं। जिनके कर्म कम होते हैं, वे शिशुकाल में ही देह त्याग देते हैं। जो नरहंता, मानव द्रोही, पातकी जन होते हैं, वे बार-बार जन्म लेते, मरते और गर्भ यातना की सजा भोगते हैं। जैसी यह पृथ्वी है, वैसे ही ऐसे ग्रह उपग्रह हैं, जहाँ स्वर्ग, नरक का भोग है।''

॰ ॐ–हरि ॰

प्रश्न :- मृत्यु के बाद पुनः कब जन्म होता है ?

उत्तर :- ''मृत्यु के बाद सभी पितृलोक गमन करते है। वहाँ क्रमशः उनकी वासना वृद्धि होती है। पितृलोक मे प्रत्येक वंश का एक पितृपुरुष रहता है। लोगों की मृत्यु के बाद उससे वे उसकी अवस्था बता देते हैं। वासना वृद्धि के साथ-साथ जन्म लेने की इच्छा होती है। जन्म केवल पृथ्वी पर ही लेना होता है, ऐसी बात नहीं है। हम जो सौर जगत जानते हैं, ऐसे असंख्य सौर जगत हैं। विष्णुलोक, चन्द्रलोक आदि स्थान भी हैं। उनके अधिष्ठात्री देवता भी हैं। वासना के अनुसार जन्म लेने की तीव्र इच्छा होने पर कहाँ जन्म होगा, उसे पितृपुरुषगण ही बताते हैं। उसी के अनुसार वह प्रार्थना करता है। प्रार्थना पूर्ण होने पर अवस्थानुसार विभिन्न ग्रहों में उसका जन्म होता है। इस पृथ्वी पर जन्म न लेने पर मुक्त हो गया, ऐसी बात नहीं है। इस तरह के अन्य ग्रह-उपग्रहों में भी वासस्थान हैं। वहाँ स्त्री पुरुषों का संबंध इस प्रकार नहीं होता। पर वे भी मोह के अधीन हैं। वहाँ भी वासना है। ऐसे ग्रह ग्रहान्तर में जन्म हो सकता है। अवस्था अनुरूप जन्म लेने पर भी सबकी वासना

एक सी नहीं होती। वासना के भेद के अनुसार नानाविध ग्रहों में जन्म होता है। सबका जन्म एक ही ग्रह में नहीं हुआ करता।''

*** ॐ–हरि ***

शिष्य :- गंगा-स्नान से क्या वस्तुतः जीव का उद्धार होता है?

श्री गोस्वामीजी :- ''यदि शास्त्र मानो तो, गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतेरपि । मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥' गंगा से चार कोस के बीच जो 'गंगा गंगा' उच्चारण करके स्नान करता है, वहाँ से उद्धार होकर विष्णुलोक गमन करता है। जिसको ऐसा दृढ़ विश्वास है, उसे अवश्य ही ऐसी प्राप्ति होगी। गंगा हिमालय के अति उच्चशिखर से उतरती है। इसके जल में अनेक औषधियाँ मिली हुई हैं। गंगा की असीम महिमा है। गंगा की मिट्टी सारे बदन में मलकर, गंगाजल से स्नान करना चाहिये।''

*** ॐ–हरि ***

शिष्य - देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृऋण से किस प्रकार उद्धार होता है?

श्री गोस्वामीजी :- पुत्र उत्पन्न करके पितरों के ऋण से; याग यज्ञ, पूजा, तीर्थयात्रा आदि के द्वारा देव ऋण से और ऋषि प्रणीत शास्त्र ग्रन्थों के अध्ययन आदिके द्वारा ऋषि ऋण से छुटकारा मिलता है। इसके लिए दूसरा उपाय नहीं है।

शिष्य - श्राद्ध-तर्पण आदि करने से क्या पितरों के ऋण से छुटकारा नहीं मिल सकता? इसके लिए क्या सभी को पुत्र उत्पन्न करना पड़ेगा?

श्री गोस्वामीजी - सिर्फ तर्पण आदि कर देने से पितृ-ऋण से छुटकारा नहीं मिलता। ऋण से मुक्त होने का वही उपाय है। हाँ, जो लोग असमर्थ हैं, उनके लिए दूसरे प्रकार की व्यवस्था है।

शिष्य - असमर्थ और किस प्रकार के?

श्री गोस्वामीजी - यों समझो कि कोई बहुत बीमार है; शारीरिक अस्वस्थता के कारण वह पुत्र नहीं उत्पन्न कर सकता अथवा ऐसा भी

होता है कि अन्य किसी विशेष असुविधा या असमर्थता के कारण उक्त कार्य सम्पन्न नहीं हुआ। बहुतों के विवाह कर लेने पर भी लड़का नहीं पैदा होता। इन कारणों से यदि पुत्र न पैदा हो तो ऋणी नहीं रहना पड़ता।

श्री गोस्वामीजी :- तर्पण प्रतिदिन करते रहना चाहिये। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ, ये सभी नित्यकर्म हैं; इनमें से एक को भी न छोड़े। यथासाध्य इन सब को प्रतिदिन करते रहना चाहिए।

शिष्य - ''इन यज्ञों के करने की कौन सी रीति है?''

श्री गोस्वामीजी :- ब्रह्मयज्ञ-ऋषिप्रणीत ग्रन्थ आदि का अध्ययन और सन्ध्या गायत्री जप आदि।

पितृयज्ञ - श्राद्ध तर्पण आदि; कम से कम प्रतिदिन तर्पण तो करे ही।

देवयज्ञ - होम, पूजा।

भूतयज्ञ - जीवसेवा, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतङ्ग, वृक्षलता आदि सभी जीवों की सेवा प्रतिदिन किया करे।

नृयज्ञ - अतिथिसेवा।

अध्ययनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञऽतिथिपूजनम्॥

इन सब को प्रतिदिन नियमानुसार करते जाने से थोड़े समय में ही इसका लाभ समझ में आ जायेगा।

※ ॐ–हरि ※

अपघात से मरे हुए व्यक्ति की प्रेतात्मा द्वारा एक गुरु भाई का उत्पीडन करने के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर गोस्वामीजी ने कहा:-

उसका एक पूर्व पुरुष एक धनवान् आदमी के साथ चन्द्रनाथ को जा रहा था। उस धनवान के पास बहुत रुपया पैसा था। रुपये के लालच में पड़कर उसने निर्जन मार्ग में उस धनवान को बड़ी क्रूरता से

मार दिया। अपघात से मारे जाने के कारण उस प्रेत को बड़ा आक्रोश हुआ। हत्यारा जब तक जीवित रहा तब तक इस प्रेत ने उसको तरह तरह से सताया। मर जाने पर भी वंशवालों के द्वारा उसकी किसी प्रकार से सद्‌गति न होने देने के लिए वह उसके वंश का ही नाश कर देने की चेष्टा कर रहा है। इस लड़के के द्वारा उसके पूर्व पुरुष की सद्‌गति हो जायगी, यह जानकर ही वह प्रेत इसको लग गया है और अनेक प्रकार से विपन्न करने की चेष्टा कर रहा है। **अर्थ (धन) से कितने अनर्थ होते हैं, रुपये की बदौलत अपमृत्यु हुई और परलोक में प्रेतयोनि मिली दूसरा व्यक्ति रुपये के लोभ से नरहत्या करके परलोक में दुर्गति भोग रहा है। उसने वंशवालों तक को संकट में डाल रक्खा है। रुपया बड़ा कालकूट है, उसका पालन कभी न करे। रुपये को पैदा करके आवश्यकतानुसार खर्च कर डाले। जो कुछ बच रहे उसे दीन दु:खी को बेखटके दे दे। यदि कोई विपत्ति ग्रस्त कुछ माँगे तो तुरन्त दे दे, किसी प्रकार की दुविधा में न पड़े। जिनको धर्म प्राप्त करना हो उनको ऐसा ही बर्ताव करना चाहिए।**

शिष्य - ''वह बीच बीच में ऐसा बेढब काम कर डालना चाहता है कि देखकर सहन नहीं होता। डर लगा रहता है कि क्या जाने कब किसकी जान ले ले। सहन न होने पर क्या करूँगा?''

श्री गोस्वामीजी :- मन ही मन प्रेत को लक्ष्य करके बड़े तेज के साथ नाम का जप करते हुए उसे घूँसा और चाँटे मारना। इससे प्रेत को चोट लगेगी; लड़के को कुछ न होगा। ऐसा करने से प्रेत छूट भी जा सकता है।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- एक बार गुरु की मर्यादा का लघंन करने से ही इस बार दाऊजी को संसार में आना पड़ा है। दाऊजी पूर्व जन्म में एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। सदा गुरु के साथ रहते थे। गुरु थे एक महापुरुष। नर नारी उनके दर्शन करने आया करते थे। एक दिन कई स्त्रियाँ दर्शन करने आई तो उक्त महापुरुष ने आदर करके बैठाया। एक ब्रजमाई थोड़ी देर तक तो बैठी फिर हँसी और बातचीत करके चली

गई। गुरु के पास स्त्रियों का आना-जाना, उठना-बैठना, बातचीत करना और हँसना बोलना दाऊजी को बिल्कुल पसन्द न था; कई बार तो वे चिढ़ जाते थे। उस दिन स्त्रियों के जाते ही दाऊजी ने अपने गुरु जी को धमका कर दो चार बातें कही, उस समय दाऊजी के गुरुजी के समीप एक और महापुरुष बैठे हुए थे। उन्होंने दाऊजी से कहा, 'अरे बच्चा, गुरुजी से ऐसा कहना ठीक नहीं, चुप रहो।' दाऊजी ने कहा, क्यों? वाजिब बात क्यों न कहें?'' महात्मा ने कहा, 'अरे हाथी कितना खाता है और कितना हजम करता है, इसको तुम कैसे जानोगे? तुम तो बिल्ली हो।' दाऊजी को क्रोध आ गया, उन्होने चट से कह दिया, ''हाँ, जी हाँ। बहुत से ऐरावत देख लिये हैं।' सुनकर महापुरुष ने कहा,'यह बात है ! तो एक बार फिर देखना होगा, लौटना पड़ेगा।' यह सुनते ही दाऊजी के गुरु ने उन महापुरुष के चरणों में गिरकर कहा, 'वह तो लड़का है, आप दया करके उसके अपराध को क्षमा कर दीजिए।' महापुरुष ने उत्तर दिया,'एक बार और लौटने से इसका विशेष कल्याण होगा, कुछ भी अनिष्ट न होगा।' इसीलिए दाऊजी पुन: जन्म लेकर आये हैं।* **परलोक में रहकर दाऊजी ने पचीस वर्ष तक प्राणपण से ऐसी चेष्टा की थी जिससे संसार में न जाना पड़े किन्तु महापुरुष का वाक्य किसी तरह अन्यथा न हुआ। मर्यादा का उल्लंघन करना बड़ा भारी अपराध है। दण्ड भोगे बिना उस अपराध से किसी प्रकार छुटकारा नहीं मिलता।**

---

* दाऊ जी गोस्वामीजी के दोहित्र थे, (गोस्वामीजी की पुत्री शांतिसुधा के पुत्र) जिनका शरीर अल्प आयु में ही पूर्ण हो गया

उ
प
दे
श

*

आहार सम्बन्धित

श्री गोस्वामीजी :- मादक वस्तु सेवन करना सोलहों आने निषिद्ध है; शास्त्र में कहीं भी धर्मार्थियों के लिए मादक वस्तु का सेवन करने की व्यवस्था नहीं है। जो लोग सदा पहाड़ों में घूमते रहते हैं और वहीं पर रहकर साधन आदि करते हैं, उन्हें शरीर से बहुत क्लेश सहना पड़ता है। अनेक प्रकार की सर्दी-गर्मी आदि से शरीर को बचाये रखने के लिए उन लोगों को मादक वस्तु सेवन करने की आवश्यकता होती है लेकिन सिर्फ शरीर की रक्षा के लिए ही वे यह काम करते हैं, उससे साधन में किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती; उल्टा बहुत अनिष्ट हो जाता है, चित्त अस्थिर हो जाता है। योगशास्त्र में और आयुर्वेद में मादक वस्तु के व्यवहार को बड़ा भारी दोष बताया गया है। सिर्फ शरीर की रक्षा के लिए ही लोग दवा के तौर पर उसका सेवन करें, दवा का काम पूरा होते ही उससे परहेज करने लग जायें - यही व्यवस्था है।

❋ ॐ-हरि ❋

वीर्य धारण करने के लिए भोजन के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना पड़ता है। भोजन के दोष से अनेक अवसरों पर उत्तेजना हो जाया करती है। सब कामों में खूब सावधानी न रखने से इस विषय में सफलता मिलनी कठिन है।

❋ ॐ-हरि ❋

शिष्य- देखते तो हैं कि तान्त्रिक साधक डटकर शराब पिया करते हैं। शायद शराब पिये बिना उन लोगों का साधन ही नहीं होता। यह तो सभी जानते हैं कि वीराचारी लोग जी भर कर शराब पीते और मांस खाते हैं।

श्री गोस्वामीजी - वीराचारियों के लिए भी शराब पीकर साधन करने की व्यवस्था नहीं है। हाँ, वे लोग अपनी परीक्षा करने के लिए उसका उपयोग किया करते हैं। इतनी बात है। तन्त्र में जिस अवस्था को 'वीर' कहते हैं, वह बहुत मामूली नहीं है।

शिष्य - किस अवस्था में तांन्त्रिक लोग 'वीर' होते हैं ?

श्री गोस्वामीजी - वीर आसानी से नहीं हो जाता; सारा पशुभाव

विनष्ट होने पर ही वीर होता है। काम, क्रोध आदि सभी शत्रु जब बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं तभी वीराचारी हो सकता है।

शिष्य - आपने कहा है कि सुरा पीने की व्यवस्था शास्त्र में नहीं है; किन्तु तान्त्रिक लोग तो सुरा पान का माहात्म्य दिखाकर कहते हैं- ''पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले। उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥''

श्री गोस्वामीजी - यह जिस सुरा-पान की व्यवस्था है वह बाहरी सुरा नहीं है। ये नशीली चीजें नहीं। मनुष्य इस बात को समझे बिना ही चक्कर में पड़ जाते हैं। भक्ति के द्वारा इस देह से ही एक प्रकार की सुरा उत्पन्न होती है; उसको पीने से बेहद नशा चढ़ता है। उसी को अमृत कहते हैं; उसको पी लेने से फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

शिष्य - भक्ति के द्वारा देह के भीतर सुरा किस तरह उत्पन्न हो जाती है? और उसको पीते ही किस तरह हैं?

श्री गोस्वामीजी - देखो, जब हम लोग क्रोध करते हैं तब मस्तिष्क के एक विशेष स्थान में एक प्रकार का अनुभव होने से उस स्थान के रक्त में दूसरी तरह का परिवर्तन हो जाता है। तब वही रक्त गरम होकर अस्वाभाविक अवस्था में सारे शरीर में फैल जाता है। यही दशा काम की अवस्था में भी होती है। इस प्रकार सत और असत सभी भावों में मस्तिष्क के विशेष विशेष स्थानों में एक एक तरह का अनुभव होने से रक्त आदि में परिवर्तन होता है। वही नसों और नाड़ियों में होता हुआ सारे शरीर में पहुँच जाता है। भाव भक्ति और आनन्द होने से भी रक्त में एक प्रकार का परिवर्तन होता है। भक्ति में मस्तिष्क के रक्त की जो दशा होती है वही बहुत अधिक होते ही क्रमशः गरम होकर भाव के द्वारा एक तरह के रस को उत्पन्न करती है। वही रस धीरे-धीरे तालू से चूकर जीभ पर आ गिरता है, वही रस अमृत है। उस रस की दो-तीन बूँदें पीते ही इतना नशा चढ़ जाता है कि 5।7 दिन सहज में ही बीत जाते हैं, कुछ खाने की भी जरूरत नहीं होती। उसी को सुरा कहा गया है; उसी के पीने की व्यवस्था है। उस सुरा का नशा इतना अधिक होता है कि जिन्होंने उसे पिया नहीं है वे, सिर्फ सुनकर, किसी तरह नहीं समझ सकेंगे। उसे पीते ही मनुष्य बेसुध हो जाता है, शरीर बिल्कुल अचल हो

जाता है किन्तु भीतरी ज्ञान नहीं घटता; वह ज्यों का त्यों बना रहता है। सिर्फ बाहरी ज्ञान नहीं रहता।

*** ॐ–हरि ***

शिष्य :- ''किस अवस्था की प्राप्ति कर लेने से चाहे जिसके हाथ का खा लेने में कुछ अनिष्ट नहीं होता?''

श्री गोस्वामीजी :- जिस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य सभी वस्तुओं में एक के ही अस्तित्व को देखता है जो नित्यशुद्ध, मङ्गलमय और पतितपावन हैं, जिनका नाम लेने से महापापी का भी उद्धार हो जाता है-वे जहाँ पर विराजमान हैं-वह जब प्रत्यक्ष हो जाता है, तब वह क्या कभी अपवित्र माना जा सकता है? क्या तो विष्ठा और क्या चन्दन; सर्वत्र जो अपने इष्टदेवता का ही अधिष्ठान प्रकाशित देखता है, वह क्या उसे परम पवित्र तीर्थ समझे बिना रह सकता है? फिर वस्तुविशेष में उनकी भेद बुद्धि होगी किस तरह? ऐसी परमहंस अवस्था की प्राप्ति हो जाने पर वह सर्वत्र सभी कार्यों में भगवत्‌लीला को देखता है; वह सर्वत्र ही अमृत भोजन करता है; उसकी बात अलग है। यह न हो तो जब तक भेदबुद्धि है तब तक मेहतर, मोची और ब्राह्मण को एकाकार करके चाहे जिसके हाथ खा लेने से ही जातिभेद दूर नहीं हो जाता। अन्दर से जातिबुद्धि का दूर हो जाना सहज बात नहीं है, बहुत ही कठिन है।

*** ॐ–हरि ***

शिष्य :- ''सर्वसाधारण के हाथ की रसोई खाने से आपने जिस अनिष्ट की सम्भावना बतलाई वैसा अनिष्ट होने की सम्भावना क्या ठाकुर जी का प्रसाद खाने में भी है?''

श्री गोस्वामीजी :- प्रसाद पाना तो बड़े भाग्य की बात है, उससे परम कल्याण ही होता है किन्तु रसोई बनाकर देवता उसको स्वीकार कर लेंगे और प्रसाद हो जायगा, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। बहुत समय हुआ, बचपन में इसी शान्तिपुर में एक महात्मा को देखता था। लोग उन्हें श्यामा क्षेपा कहते थे। उनके चलन, आचार-

विचार और बातचीत से कोई यह नहीं समझ पाता था कि वे किस सम्प्रदाय के साधु थे। वे कभी एक स्थान पर न रहते थे। प्राय: नित्य रास्ते-रास्ते, गली-गली में, पागल की तरह घूमते फिरते रहते थे। ठाकुर जी का भोग लग चुकने का समय पहचानकर वे भोजन के लिए एकाएक किसी के यहाँ ज़ा पहुँचते थे। ठाकुरजी के लिए भोग बनाते समय स्त्रियों की असावधानी से किसी प्रकार का अनाचार हो जाता तो अनेक अवसरों पर वे प्रसाद पाये बिना ही उठ जाते और गालियाँ देकर कह जाते कि 'अरे, भोग में यह गन्ध आ रही है; रसोई बनाते समय रसोई बनाने वाली ने यह किया था, ऐसा हो गया था, इसी से आज यह प्रसाद नहीं हुआ। ठाकुरजी ने आज इसको ग्रहण नहीं किया, आज वे भूखे हैं, झटपट दुबारा रसोई बनवा दो।' आश्चर्य की बात यह है कि वे जो कुछ कह जाते थे वह बात पता लगाने पर सही निकलती थी। स्त्रियाँ लज्ञा के मारे गड़ जाती थीं। स्त्रियाँ इसलिए सदा शङ्कित बनी रहतीं और बड़ी सावधानी से नियम के अनुसार रसोई बनाया करती थीं कि क्या जाने कब किस के घर श्यामा क्षेपा प्रसाद पाने को पहुँच जायँ। ऐसी घटना एक बार हमारे यहाँ भी हुई थी। श्यामा क्षेपा ठाकुर जी का प्रसाद पाने के अतिरिक्त बस्ती में और किसी काम से न घुसते थे।

एक बार पुरी धाम से शान्तिपुर निवासी एक गोस्वामी ने पत्र द्वारा खबर दी कि 'श्यामा क्षेपा श्रीक्षेत्र में कुछ दिन से आये हुए हैं। उनको प्राय: श्रीश्री जगन्नाथदेव के मन्दिर में देखा करता हूँ।' और मजा यह कि उस समय श्यामा क्षेपा शान्तिपुर में मौजूद थे। वे मुझे देख लेते तो लपक कर पकड़ लेते और कई सैकेंड तक मेरी ओर ताकते रहकर कहते ''खूब काला, लाल सुर्ख, साफ सफेद; और यह पीला क्या है भाई, और यह पीला क्या है भाई।'' बार बार ऐसा ही कहकर किसी ओर जाकर गायब हो जाते थे। कुछ समय के अनन्तर वे न जाने कहाँ चले गये। उनका कहीं कुछ पता न लगा।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- शरीर को नीरोग ओर अधिक समय तक स्थायी रखने के लिए भोजन का परिमाण और समय निर्दिष्ट रखना

पड़ता है। असली चीज है वीर्यधारण किन्तु उक्त दोनों नियमों का पालन हुए बिना वीर्यधारण भी ठीक-ठीक नहीं होता। पहले क्या योगी और क्या ऋषि, सभी का इस ओर विशेष रूप से ध्यान रहता था। वे कभी उन दोनों नियमों में गड़बड़ न होने देते थे।

* ॐ-हरि *

शिष्य :- ''आहार शुद्धि, देहशुद्धि और वीर्यधारण यह सभी शारीरिक तपस्या है न?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, है तो यही किन्तु इन सब के ठीक हुए बिना सहज में धर्म प्राप्त नहीं होता। धर्म को प्राप्त करने का सब से प्रधान उपाय शरीर ही है। सब से पहले इस शरीर की ही रक्षा करनी चाहिए। दूध, दही, घी, मक्खन इत्यादि के खाने से देह की जो पुष्टि होती है, वह तो बिल्कुल असार है। वीर्यधारण से ही ठीक-ठीक देह की रक्षा होती है। भोजन यदि बड़ी पवित्रता से नहीं होता तो वीर्यधारण नहीं होता। शरीर के स्वस्थ और पवित्र हुए बिना साधन क्या लेकर करोगे ?

* ॐ-हरि *

शिष्य :- ''पवित्र भोजन, पैर के अँगूठे पर दृष्टि, वाणी का संयम आदि और वीर्यधारण के जो नियम आपने बतला दिये हैं उनका पालन मैं प्राणापण से किया करता हूँ किन्तु वीर्यधारण किसी तरह नहीं हो रहा है। बतला दीजिए क्या करूँ जिससे स्वप्नदोष से पीछा छूटे?''

श्री गोस्वामीजी :- दो घण्टे खूब स्थिरता से बैठकर नाम का जप किया करो। देखें कैसे स्वप्नदोष होता है?

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी :- जो खाने से बच जाय वह प्रसाद नहीं है। वह तो उच्छिष्ट है, जूठन है। भाव ही प्रसाद है। प्रसाद भाव से होता है। कृपा ही प्रसाद है, दया ही प्रसाद है। गुरु जिन नियमों को बतला दें उनको ठीक ठीक मानकर चलने से ही गुरु का वास्तविक प्रसाद मिलता है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- एक पंक्ति में दस आदमी भोजन करने को बैठे, तो वहाँ परोसने में छोटे-बड़े का विंचार न करना चाहिए; पारस एक सा ही करना चाहिए। प्रसाद पाने की आशा से कोई वस्तु अधिक परोसना जूठन देना है। खा लेने से न तो तृप्ति होती है और न पेट भरता है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- लोभ की यंत्रणा अब मुझसे सही नहीं जाती। अच्छी वस्तु देखते ही खाने की इच्छा होती है। आसन पर बैठकर नाम जपते समय भी अनजाने ही सुस्वादु वस्तु की कल्पना आ जाती है। नाम ध्यान कुछ भी नहीं होता। पहले मेरा यह हाल कभी भी न था। अब क्या करूँ ?

श्री गोस्वामीजी :- जो खाने की इच्छा हो खा लेना । जब तक न खा लोगे तो वह इच्छा जायेगी नहीं। जो नितान्त अच्छा लगे, खा लेना। एक काम और करना, जो वस्तु अत्यंत लोभनीय लगे उसे पास बैठाकर किसी व्यक्ति को तृप्ति पूर्वक खिला देना। उपकार होगा। नमक त्याग देने पर खाद्य वस्तु पर लोभ कम होता है। यह तो तुम कर नहीं सके। ब्रह्मचारीजी कहते थे रिपु केवल दो ही हैं-जिह्वा एवं उपस्थ। उपस्थ संयम करना सहज है किन्तु जिह्वा नियंत्रित रखना कठिन है। लोभ की स्थूल वस्तु के संग से क्रमश: जीव जड़त्व प्राप्त करता है। इसके लिए ऋषि-मुनि गण कितना ही कठोर तप करते थे। अनाहार या गिरे हुए पत्ते खाकर काल बिताया करते थे। असंयत जिह्वा द्वारा कितने ही पापों की सृष्टि होती है। जिह्वा वश में रखने लिए ऋषिगण मौन रहते थे। लोगों का गुणागान, शास्त्रपाठ और भगवत् नाम-कीर्तन से जिह्वा क्रमश: संयत और शुद्ध होती है।

✻ ॐ–हरि ✻

आज भोजन करते समय सामने द्वार से उत्तर की ओर आकाश की तरफ गोस्वामीजी काफी देर अपलक देखते रहे, फिर श्री गोस्वामी

जी ने कहा -अहा ! क्या सुन्दर ! क्या सुन्दर ! कहकर आंखे पोंछकर, धीरे धीरे आहार करने लगे। पूछने पर बोले- ये जो सब आये थे, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती ओर कितने ही देवी देवता, ऋषि, मुनि आये थे। देखकर वे बड़े आनंदित हुए। शिष्य - क्या देखकर आनंदित हुए? श्री गोस्वामीजी - तुम लोगो का आहार देखकर कितने आनंदित हुए।

शिष्य :- हमारा आहार देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, खुश हुए?

श्री गोस्वामीजी :- खुश क्यों न होंगे? तुम लोग क्या साधारण हो? तुम्हारे जो लक्ष्य हैं, उनके चारों ओर कितने ही योगी, ऋषि, देव-देवी, कितने ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं। इस अनन्त उन्नति के पथ में कोटि ब्रह्मांड, कोटि वैकुण्ठलोक बिन्दु के समान हैं, कुछ भी नहीं। हम जिन्हें चाहते हैं, कोटि अवतार, भक्त ओर पार्षदगण उनके चारों ओर घूम रहे हैं। वह अन्तहीन महान पुराणपुरुष ही हमारा लक्ष्य है। हम उसी ओर अविराम चलेंगे। सर्वत्र हमारा निमंत्रण होगा। आनंद मनायेंगे पर रुकेंगे कहीं भी नहीं। किसी निन्दा-प्रशंसा में नहीं पड़ेंगे। पार्षद हो या नहीं उससे क्या? कितने ही इन्द्र आये और गये एवं आयेंगे, जायेंगे? इस पथ पर बद्ध होना ही विपत्तिजनक है। कहीं बद्ध न होना। थोड़ा रुककर फिर बोले - इस साधन पथ पर चलने से भगवान की अनन्त विभूतियाँ, सभी लीलाएँ क्रमशः प्रकट होंगी। नाव में चलने के समान दोनों ओर कितने ही सुन्दर दर्शन पाओगे। सर्वत्र श्रद्धाभक्ति से प्रणाम करो पर आसक्त कहीं न होना। आसक्त होते ही बद्ध हो जाओगे। अग्रसर न होने पर नए-नए दर्शन नहीं होते। नई अवस्था की भी प्राप्ति नहीं होती।

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- कौन-कौन सी वस्तु के आहार से तथा किन-किन रसों से किस-किस रिपु की वृद्धि होती है? रिपुओं से निष्कृति पाने के लिये हमें आहार आदि के विषय में किन नियमों का पालन करना चाहिये ?

श्री गोस्वामीजी :- ''बालक शिशु काल में मलत्याग करके कभी-**कभी स्वयं** उसे खा लेता और आनंद से हँसता भी रहता है, किन्तु **माता-पिता** घृणा से नाक सिकोड़ते हैं? उसी प्रकार क्रोधी यदि मिर्च,

सरसों तथा पित्त वर्धक, उत्तेजक वस्तुएँ भोजन करे-कामुक व्यक्ति यदि मछली माँस, घी, मधु, मिठाईयाँ खाए - लोभी यदि कड़वा - अहंकारी व्यक्ति यदि अधिक खटाई और अभिमानी अधिक नमक खाये तो उसी शिशु की भाँति आहार करना होगा। ज्ञानी पुरुष उसे देखकर हैरान होंगे।''

''मछली, मांस, अधिक मिर्च, सरसों, अधिक खटाई, अधिक मीठा, मधु खीर आदि तथा मसूर, उड़द की दालें कामोद्दीपक वस्तुएँ हैं। काम-क्रोध मन की क्रियाएँ हैं। मन शारीरिक परिणति है। जिससे शरीर की उत्तेजना बढ़े, ऐसी वस्तुएँ न खाना ही अच्छा है। आहार का अभ्यास एकाएक छोड़ना ठीक नहीं। अधिक मिर्च वाले एक दम मिर्च न लें, तो भी पीड़ा उत्पन्न होती है। इस बारे में वैद्यशास्त्र की व्यवस्था अति उतम है। आहार के साथ धर्म का संबंध या योग है, क्योंकि शरीर व आत्मा एकत्र हैं। आहार अत्यन्त सावधानी पूर्वक न करने पर धर्म नष्ट होता है। कोई बिल्कुल मिर्च न खाता हो, उसे मिर्च खिला दिया जाय तो सारा दिन शरीर जलेगा, धर्म साधन नहीं हो पायेगा।''

❋ ॐ-हरि ❋

श्री गोस्वामीजी - जिस पर किसी का जी लगा हुआ है, किसी को लोभ है, ऐसी चीज उसे दिये बिना खा लेने से अनिष्ट होता है। किसी तमोगुणी व्यक्ति के साथ एक आसन पर बैठकर भोजन करने से भी अनिष्ट होता है; यहाँ तक कि एक जगह बैठकर खाने से भी हानि होती है। भोजन की वस्तु पर तमोगुणी की दृष्टि पड़ जाय तो इससे भी नुकसान होता है। इन मामलों में जब तुम्हारी दृष्टि खुल जायेगी तब साफ साफ देखोगे कि वैसे लोगों की नज़र पड़ते ही भोजन की वस्तु में कीटाणु ही कीटाणु हो जाते हैं। पहले हम स्वयं न तो इन बातों को समझते थे और न मानते ही थे किन्तु प्रत्यक्ष देख लेने पर अब अविश्वास किस तरह करें? भोजन की वस्तु को यदि लोग छू लें अथवा देख लें तो इससे बड़ी हानि होती है। अब तक बहुतेरे ब्राह्मण दरवाजा बन्द करके भोजन करते हैं। इसलिए देवता को नैवेद्य भी किवाड़ें बन्द करके ही लगाया जाता है। भोजन की सामग्री पर तमोगुणी

व्यक्ति की नज़र पड़ जाय तो वह नैवेद्य के लायक नहीं रहता, खराब हो जाता है। इसलिए दरवाज़े को बन्द करके ही नैवेद्य बनाने की रीति है। भाव-दूषित, स्पर्श-दूषित और दृष्टि-दूषित वस्तु खाने से नुकसान होता है, उसका नैवेद्य देवता को लगाया जाय तो अपराध होता है। भोजन के दोष से तरह-तरह के उपद्रव हो जाते हैं, उससे सभी रिपु उत्तेजित हो जाते हैं। इसीलिए इन विषयों में बहुत सावधान रहना पड़ता है।

* ॐ-हरि *

शिष्य- इष्टदेवता की कृपा से भोजन की सामग्री शोधित हो जाने पर भी तो दुबारा दूषित हो सकती है; इसलिए मैं प्रत्येक ग्रास का नैवेद्य लगाता जाता हूँ। उच्छिष्ट वस्तु का बारम्बार नैवेद्य लगाने से इष्टदेवता का कुछ अनिष्ट तो नहीं होता ?

श्री गोस्वामीजी - नहीं, कुछ नहीं होता। ऐसा ही करना चाहिए। इसी लिए तो भोजन करते समय बहुत से ब्राह्मण बातचीत नहीं करते, मौन रहते हैं। देश में बहुत से ब्राह्मणों के बीच इस समय भी यह नियम प्रचलित है। पहले ऋषियों ने इन बातों को खूब आवश्यक समझ लिया था। इसी से हमारे भले के लिए वे इनको शास्त्र आदि में लिख गये हैं। बहुत तपस्या करके जिन भ्रम रहित विषयों का उन्होंने आविष्कार किया था, उसके तत्त्व को बिना समझे बूझे, एकदम कुसंस्कार कहकर उड़ा देना ठीक नहीं है। ऋषियों ने सत्य समझकर जिसको प्रत्यक्ष कर लिया था उसी को हमारे कल्याण के लिए वे छोड़ गये हैं। कुछ झूठी बातों को लिख जाने में उनका तो रत्ती भर भी स्वार्थ न था। हम लोग वास्तविक धर्म को प्राप्त करें, इसी के लिए वे शास्त्र आदि लिख गये हैं। सभी नियमों का प्रतिपालन तुम इस समय न कर सकोगे; इसलिए जितना बन जाय उतना करते जाओ; इसी से बहुत लाभ होगा। सभी नियमों का पालन करना सहज काम होता तब तो सभी लोग बड़ी आसानी से सिद्धि प्राप्त कर लेते। **भोजन सब से बढ़कर भजन है।** रीति के अनुसार भोजन करने लगने पर सब कुछ हो जाता है; फिर और **कुछ नहीं करना पड़ता**। सो तो कोई कुछ

करता नहीं, जानता तक नहीं। भोजन के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अनियम होते रहते हैं, इससे बड़ा अनिष्ट होता है। इस समय जो बन जाय वही करते जाओ। धीरे-धीरे सब बातें मालूम हो जायेंगी, करने भी लगोगे।

✻ ॐ-हरि ✻

श्री गोस्वामीजी - मछली खाने से भी हानि होती है। हाँ, जो लोग पहले पहल योग का अभ्यास करते हैं उनकी उतनी हानि नहीं होती; थोड़ी सी उन्नति होते ही वे लोग बखूबी समझ सकते हैं कि मछली खाने से कितनी हानि होती है? मछली खाने से सूक्ष्म शरीर में आवा जाही करने में बड़ा क्लेश होता है। इसलिए बहुतों को उस समय मछली खाना छोड़ना पड़ता है। हमने मुसलमान फकीरों और बौद्ध योगियों में भी देखा है कि जो लोग मुद्दत से मांस मछली खाते रहे हैं, उन्हें भी, योग का आरम्भ करने पर, कुछ उन्नति करते ही वह छोड़ देना पड़ा है।

शिष्य - सूक्ष्म शरीर में आना-जाना तो बहुत ऊपर की बात जान पड़ती है। मांस-मछली खाने से क्या और भी कुछ अनिष्ट होता है?

श्री गोस्वामीजी - आहार के साथ मन का बहुत ही समीप का सम्बन्ध है; आहार सात्त्विक होता है तो मन भी सात्त्विक हो जाता है। राजसिक और तामसिक आहार करने से मन भी वैसा ही हो जाता है। मांस मछली रजस्तमोगुणी आहार है, इन खान-पान की बातों में सदा बहुत ही सावधान रहना चाहिए।

✻ ॐ-हरि ✻

शिष्य - ''भोजन के सम्बन्ध में किन नियमों का पालन किया करूँ?''

श्री गोस्वामीजी :- भोजन बिल्कुल एकान्त में किया करो। भोजन की चीज पर किसी की दृष्टि न पड़ने दिया करो। उस समय प्रत्येक ग्रास पर नाम का जप किया करो। उस समय भोजन की वस्तु के अतिरिक्त और किसी ओर न देखना। शुद्ध सात्त्विक वस्तु ही खाना। अधिक चरपरा, खार और खट्टा मत खाना। मिठाई तो बिल्कुल ही

छोड़ दो। दूध पीना भी ठीक नहीं। आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा सा एक उबाल आया हुआ ले सकते हो। गाढ़ा दूध बहुत अनिष्ट करता है।

*** ॐ–हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- लोकालय में रहने से अभिमान के अनेक कारण होते हैं। पर्वत पर जा कर रहने से इन झंझटो से बहुत कुछ छुटकारा भी हो जाता है; किन्तु भोजन के लिए बेचैन होकर फिर बस्ती मे आना पड़ता है। भोजन की चिन्ता सभी को बेचैन करती है। भोजन की चिन्ता से साधकों का अनेक अवसरों पर बहुत अनिष्ट हो जाता है। इसलिए अनेक अवसरों पर साधु लोग कठोर साधन करके पहले ही भोजन के त्यागने का अभ्यास करते हैं। भोजन का त्याग हो जाने पर इन्द्रियदमन आदि में भी बड़ा सुभीता हो जाता है। बड़े अध्यवसाय से कुछ समय तक नियमों का पालन करने से भोजन का त्याग सम्भव हो जाता है। यह सभी के लिए तो न सहज ही है और न सम्भव किन्तु चेष्टा करता कौन है?

शिष्य - 'यदि मै चेष्टा करूँ तो क्या मुझमें निराहार रहने की क्षमता आ सकती है? सम्भव हो तो इसके लिए नियम बतला दीजिए, मैं एक बार यथाशक्ति चेष्टा करुँ।

श्री गोस्वामीजी :- भोजन त्यागने की इच्छा हो तो अभी तुम उपाय कर सकते हो। अभी तुम्हारी अवस्था अधिक नहीं हुई है। जान पड़ता है, चेष्टा करोगे तो सहज में सफल हो जाओगे। एकाएक भोजन नहीं छोड़ दिया जाता। रीति के अनुसार बड़े धैर्य से धीरे-धीरे अभ्यास करना पड़ता है। जिन वस्तुओं को खाते हो उनमें अन्न (भात) का एक परिमाण निर्दिष्ट कर लेना। पहले-पहल भोजन कम कर देना ठीक नहीं। दाल, तरकारी आदि बहुत सी वस्तुओं का भोजन करना छोड़कर एक चीज के साथ भोजन करने का अभ्यास किया जाता है। जब केवल दाल भात या तरकारी भात खाने की आदत पड़ जाय तब 'भाते सिद्ध भात' का अभ्यास करे, जब यह अभ्यास हो जाय तब धीरे धीरे भाते सिद्ध भात का परिमाण कम कर दे और उसकी कमी को पानी से पूरा कर ले। इसके पश्चात् पानी के साथ भात खाने लगे। इस समय

बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे भात का भी परिमाण कम करके पानी की मात्रा बढ़ा दे। पानी और भात के अभ्यास के साथ साथ नमक छोड़ने की आदत डाले। नमक छूट जाने पर पानी और भात की मात्रा घटा देना। फिर फल और पानी पर ही रहने लगना। इस समय फल के साथ दो-चार नीम के पत्ते ओर बिल्वपत्र खाने का अभ्यास करना। फिर फलों की मात्रा घटाकर पत्तियों का परिमाण बढ़ा लेना। इसके बाद पत्तियों और जल पर ही रहना। यह सब अभ्यास बहुत धीरे धीरे करना; नहीं तो बीमार पड़ जाओगे। बड़ी दृढ़ता से बहुत समय तक अभ्यास करते करते भोजन का त्याग किया जाता है। यदि भोजन का त्याग करने की इच्छा हो तो मिठाई को अभी से छोड़ दो। मिठाई में केवल फल खा सकते हो।

ॐ-हरि

शिष्य - ''श्राद्ध के निमंत्रण में भोजन से क्या कुछ अनिष्ट होता है?

श्री गोस्वामीजी :- श्राद्ध में भोजन करने से विशेष अनिष्ट होता है, भक्ति भाव बिल्कुल चौपट हो जाता है। श्राद्ध का अन्न खाने से उसके द्वारा सभी प्रकार के दुष्कार्य हो सकते हैं।

श्राद्ध के समय प्रेत को बुलाया जाता है। उस प्रेत की दृष्टि जिन जिन वस्तुओं पर पड़ती है वे सभी प्रेत की जूठी हो जाती हैं। इसी से श्राद्ध वाले घर की कोई भी वस्तु न खानी चाहिए; खाने से उस प्रेत की जूठन खाई जाती है।

ॐ-हरि

शिष्य :- 'महाशय, क्या भोजन के साथ धर्म का किसी प्रकार का सम्बन्ध है?'

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, अवश्य है। भोजन के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना चाहिए। अपवित्र वस्तु खा लेने से शरीर रोगी हो जाता है, मन भी बहुत चञ्चल हो उठता है, इससे धर्म को प्राप्त करना कठिन हो जाता है। सदा पवित्र भोजन करना चाहिए।

✻ ॐ–हरि ✻

दूसरे का बनाया भोजन नहीं करने का तुम्हारा नियम है। सब के खा पी लेने पर एक निर्दिष्ट समय में रसोई बनाकर और उसे निवेदन करके खा लिया करो। रसोई बनाकर रख देना, फिर कुछ देर में जाकर खा लेना ठीक नहीं। ढककर रख देने से उस पर मनुष्य की दृष्टि तो नहीं पड़ती है प्रत्युत भूत, प्रेत, अपदेवता आदि की दृष्टि और कुत्ते बिल्ली आदि का स्पर्श भी तो चाहे जब हो सकता है। इसलिएं रसोई तैयार होते ही निवेदन करके भोजन कर लिया करो। सदा विचार करके न चलने से कई मौकों पर गोलमाल हो जाता है। अपराधी बनना पड़ता है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- भिक्षान्न में दोष नहीं रहता। वह सदा पवित्र रहता है, जो मिले ले लेना।

अच्छे ब्राह्मण द्वारा अन्न पकाकर भोग दिया जाए, तो प्रसाद पा सकते हो।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - जो लोग भगवान को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें आहार का नियम मानना जरुरी है क्या ? कुछ लोग कहते हैं कि आहार के साथ धर्म का संबंध नहीं है ?

गोस्वामीजी - आहार के साथ धर्म का घनिष्ठ संबंध है । राजसिक एवं तामसिक **आहार ग्रहण** करने से शरीर में रजोगुण एवं तमोगुण की वृद्धि होती है, इससे उसके द्वारा भजन साधन करना कठिन हो जाता है । अत: सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए ।

शिष्य - सात्विक आहार में मुख्य-मुख्य कौन सी वस्तुएँ हैं ?

गोस्वामीजी - अरवा चावल, घी, दुग्ध, आटा, मूंग की दाल इत्यादि वस्तुएँ जिसको खाने से पेट में विकार पैदा न हो ।

✼ ॐ–हरि ✼

शिष्य - हम लोगों को मांस आदि खाना निषिद्ध क्यों है ?

गोस्वामीजी - इससे अत्यन्त तमोगुण की वृद्धि होती है। दया, क्षमा आदि वृत्तियों का विकास नहीं हो पाता ।

शिष्य - मछली खाना भी दोष-युक्त है ?

गोस्वामीजी – जो लोग नये–नये साधन भजन में प्रवृत्त होते हैं, उनको उतनी क्षति नहीं होती । परन्तु साधन में उन्नति के साथ क्षति होने लगती है । सूक्ष्म देह में भ्रमण के समय कष्ट होता है । दया वृत्ति का नाश होता है । बौद्ध एवं मुसलमान (सूफी) योगीगण भी मत्स्य, माँस का आहार उन्नत अवस्था प्राप्त होने पर छोड़ देते हैं। आहार सात्विक होने से मन भी सात्विक होता है । इसलिए आहार के विषय में सावधान होना साधक के लिए आवश्यक है ।

✼ ॐ–हरि ✼

शिष्य - आहार द्रव्य कोई स्पर्श करे तो क्या क्षति होती है ?

गोस्वामीजी - हाँ, उसमें भी क्षति होने की संभावना रहती है । किसी को यदि कोई रोग हो तो वह रोग संक्रमण होने की संभावना रहती है । उसके सब गुण-अवगुण तुम्हारे मन बुद्धि पर प्रभाव डालेंगे ।

✼ ॐ–हरि ✼

श्री गोस्वामीजी :- '' जिसका जो आहार है, उससे दोष नहीं होता। किन्तु मन में ऐसा बोध हो कि मत्स्य व माँस खाना दोषनीय है, तो उनका त्याग करना ही होगा।''

✼ ॐ–हरि ✼

जब तक शरीर और मन ठण्डा न हो तब तक रुद्राक्ष माला उतार कर रख दो, केवल तुलसी की माला पहनो। भोजन में भी किसी प्रकार का अनियम या गड़बड़ हो जाने पर स्वप्न दोष से बचाव नहीं हो सकता। अशुद्ध भोजन एक बार पेट में पहुँचकर रक्त के रूप

में परिणत हो जाता है तो धीरे धीरे शरीर भर के रक्त को दूषित कर देता है। वैसा रक्त जब तक देह में रहता है, नाना प्रकार के विकारों को उत्पन्न किया करता है। जब तक वह निःशेष नहीं हो जाता, विविध उत्पातों को सहन करना पड़ता है। एक-एक प्रकार के रस से एक-एक प्रकार का विकार उत्पन्न होता है। इसका त्याग किये बिना शरीर सहज में निर्मल नहीं होता। शरीर के विकार शून्य हुए बिना साधन-भजन भी नहीं होता। विशुद्ध सात्त्विक भोजन से शरीर शुद्ध रहता है। पहले शरीर को ठीक कर लो। शरीर से ही सब कुछ है। शरीर ठीक न होगा तो किससे क्या करोगे ?

*

उ
प
दे
श

विभिन्न पन्थ और मत

''सत्य अनंत है, उसके भाव अनंत हैं, सत्य के रूप अनंत हैं और सत्य की प्राप्ति के उपाय भी अनंत हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सभी को एक ही मार्ग से, एक ही मत को मानकर चलना होगा। जिस प्रकार मनुष्य पृथक हैं, उसी प्रकार उनकी प्रकृति भी भिन्न-भिन्न होती है। भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों के लिये भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। अतएव भिन्न भिन्न प्रणालियों का अवलंबन करना भी आवश्यक होता है।''

श्री गोस्वामीजी :- ''श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस प्रकार प्रचार किया है, उसका उल्लेख शास्त्रों में है। बहुत पहले सनक, सनातन, सनत् कुमार व सनंदन ये चारों ब्रह्मा के मानस पुत्र, सर्वदा भगवान का नाम-गान करते थे। अहिंसा ही धर्म, सर्व जीवों पर प्रीति, तृण के समान नीचे, वृक्ष के समान सहिष्णु, अमानी को मानदान, सर्वदा हरिनाम स्मरण, मनन, कीर्तन इत्यादि भावों को इन चारों ने प्रचारित किया। इसलिये उन्हें वैष्णव कहा गया। सनत कुमार संहिता के अनुसरण से वैष्णव उपासना आज भी प्रचलित है। काल क्रम से यह वैष्णव धर्म मलिन होता गया और याग-यज्ञ, कर्म काण्ड प्रचारित हुए। क्रमश: धर्म इतना म्लान हुआ कि मनसा पूजा, विषहरि गान तथा दो एक स्त्रोत, मंत्र पाठ, मात्र यही धर्म बनकर रह गया। इस समय विशुद्ध वैष्णव धर्म प्रचार करने पर वह नवीन जान पड़ा। महाप्रभु ने जिस वैष्णव धर्म का प्रचार किया था, वर्तमान वैष्णवों में वह दुर्लभ हो गया है। जो पाँच सात हैं भी तो वे अधिकांश समय एकान्त में ध्यान-धारणा में मग्न रहते हैं। समय समय पर एक साथ हरि संकीर्तन करके कृतार्थ होते हैं।''

शिष्य :- ''साधु महात्माओं की सङ्गति प्राप्त होने पर वे जो जो उपदेश देंगे उनके अनुसार क्या हम लोग चल सकते हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, चाहो तो चल सकते हो। जहाँ सत्य है, न्याय है, वहीं हम लोगों का अधिकार है। सभी स्थानों में, सभी के पास हम शिक्षा ले सकते हैं, इसकी कुछ भी रोक टोक नहीं है; किन्तु कुछ आवश्यकता भी नहीं है। इस साधन को करते जाने से धीरे-धीरे सब कुछ प्राप्त हो जायेगा। किसी वस्तु की कमी न रहेगी। दूसरे के उपदेश के अनुसार चलने से कई बार हानि भी हो जाती है। निष्ठा

बढने की बजाय अनिष्ट हो जाता है। बहुतेरे लोग अपने मत में खीच ले जाने की चेष्टा करते हैं, यह तो अक्सर देखा जाता है।

*** ॐ-हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में है कि अनेक जन्म लेते हुए जीव को धर्म में रुचि होती है। प्रथम गणेश उपासना, फिर सूर्य, फिर शैव, वैष्णव एवं शक्ति उपासना करने पर मुक्ति मिलती है। तब राधा-कृष्ण उपासना का अधिकार मिलता है। इस समय सद्गुरु की कृपा हो तो राधा-कृष्ण तत्त्व सुधा का पान करके जीव कृतार्थ हो सकता है। ऐश्वर्य भाव के उपासक, सौर्य, गाणपत्य, शाक्त एवं शैव होते हैं। माधुर्य भाव के उपासक - वैष्णव होते हैं। सीता-राम, लक्ष्मी-नारायण या राधा-कृष्ण के उपासक यदि ऐश्वर्य भाव रखकर उपासना करें तो शैव, शाक्त, गाणपत्य एवं सौर्य ही कहलाएंगे। काली, दुर्गा, शिव, गणपति, सूर्य, नारायण के उपासक यदि मधुर भाव के उपासक हैं तो इन्हें यथार्थ वैष्णव कहा जाएगा। ब्रह्म संहिता में इसका प्रमाण है। शिव-पार्वती, सीता-राम, लक्ष्मी नारायण इनमें माधुर्य भाव हो, तो पराधर्म ही होगा। किंतु ऐश्वर्य भाव के हो तो ईश्वर उपासना ही होगी। रामप्रसाद के समान परम वैष्णव कौन है? काली, दुर्गा ये नाम शाक्त नहीं होते, शाक्त ऐश्वर्य भाव है।''

*** ॐ-हरि ***

शिष्य :- हमारे देश में पंच उपासना प्रचलित है। हमें किस प्रकार उपासना करनी चाहिए, जिससे हमारा कल्याण हो।

श्री गोस्वामीजी :- ''पंच देवों की पूजा के विषय में, ब्रह्मवैवर्त पुराण में मीमांसा है। उतना गहन अनुसंधान न करना चाहो तो प्रचलित प्रणाली के अनुसार चलना भी ठीक है। उपासना दो नियमों में प्रचलित है - वैदिक तथा तांत्रिक। बंगाल में वैदिक प्रथा नहीं के बराबर है, केवल ब्राह्मण गायत्री संध्या करते हैं। उस पर तांत्रिक दीक्षा लेते हैं। शाक्त, शैव, वैष्णव, गाणपत्य, सौर इन पंचदेव के किसी एक देवमंत्र से दीक्षा ग्रहण करते हैं। प्रतिदिन पूजा के समय इन पंच देवताओं की पूजा

करके, फिर इष्टदेव की पूजा करना होता है। इसमें निष्ठा हो तो कुछ लाभ हो सकता है। नारदपंचरात्र और अन्यान्य ग्रंथों में है - 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिर्न्यथा।' निरपराध हो हरिनाम करने पर ही भवबंधन से मुक्ति मिल सकती है। मूल बात यही है कि शास्त्र व सदाचार का अनुसरण करते हुए धर्माचरण करने पर ही धर्म लाभ होता है।''

✻ ॐ-हरि ✻

मनुष्य की प्रकृति देखकर, दशा का ख्याल करके, उसे चलने दिया जाता है और चलाना पड़ता है। सब के लिए एक सी ही व्यवस्था नहीं है। बालक, वृद्ध, युवक, तीनों को एक ही घर में बुखार आ जाय तो उनको चङ्गा करने के लिए निरी कुनैन देने से हमेशा काम नहीं होता। किसी को कुनैन से लाभ हो भी जाता है और किसी का मर जाना भी सम्भव है। रोग के एक होने पर भी रोग के कारण की और रोगी के शरीर की हालत वगैरह की जाँच पड़ताल करके दवा और पथ्य की व्यवस्था करने के लिए प्रत्येक रोगी की पृथक्-पृथक् चिकित्सा करने की आवश्यकता हो सकती है। जिसका जो है वह उसी को लेकर रहेगा, दूसरे को कैसे क्या होता है, यह देखने की क्या आवश्यकता? और देखने से ही समझोगे क्या? 'मेरी तरह चले बिना किसी के हाथ कुछ न लगेगा', यह समझना बिल्कुल व्यर्थ है।

✻ ॐ-हरि ✻

संसार में जिन स्त्रियों के संतान होती हैं उनकी गर्भस्थ सन्तान, अपनी अपनी माता के गर्भ में रहते समय, माता की खाई हुई चीज़ का अंश आवश्यकता के अनुसार पाती है। बच्चा पैदा हो जाने पर भी सारी माताएँ बड़ी हिफाज़त से उसका पालन करती हैं। अब तुम्हारी माँ के पेट से पैदा न हो तो कोई बच्चा न बचेगा, उसे सुभीता न होगा 'उसका अमङ्गल होगा'- ऐसा समझो तो यह ठीक न होगा। यदि माता सी माता हो तो तुम्हारी माँ से भी बढ़कर स्नेह और सावधानी के साथ अपने बच्चे का लालन-पालन कर सकती है। तब तो तुम लोगों से कहीं अच्छे होने की बात है। माँ के सेवा-शुश्रूषा करने से ही तो बच्चे

बढ़ते हैं। माता के पेट से पैदा होने पर अच्छी सेवा शुश्रूषा होती रहे तो बच्चा बहुत अच्छा क्यों न होगा? यह आवश्यक नहीं कि सभी की माता एक ही हो। भगवान् की यही इच्छा है कि भिन्न-भिन्न माताओं के गर्भ से उत्पन्न होकर बच्चे सुख में आराम में रहें।

※ ॐ–हरि ※

श्री गोस्वामीजी :- सभी कार्यो की एक प्रणाली होती है। असमय में अनियम से किसी भी कार्य को करने से उसका सुफल प्राप्त नहीं होता, उल्टी हानि हो जाती है। शास्त्र के पढ़ने और साधुसङ्गति करने का भी एक समय निर्दिष्ट है, एक अवस्था है। असमय में उल्टी सीधी रीति से उन कार्यों के करने से कोई भी लाभ नहीं होता, उल्टा अनिष्ट हो जाता है। शास्त्र में भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के अनुरूप भिन्न-भिन्न मार्ग हैं और अवस्था भेद से भिन्न-भिन्न उपदेश हैं। प्रकृति के अनुकूल मार्ग पर कुछ दूर तक अग्रसर होने पर अवस्था के अनुरूप शास्त्र को पढ़ना चाहिए। जब तक अपने साधन-मार्ग पर थोड़ी बहुत निष्ठा न हो जाय तब तक किसी भी शास्त्र को पढ़ना अथवा किसी भी साधु की सङ्गति करना ठीक नहीं है। कई अवसरों पर देखा गया हैं कि वैसा कर बैठने से लोगों की बहुत हानि हो गई है। अपने साधन भजन के मार्ग की निष्ठा बिल्कुल नष्ट हो जाती है।

※ ॐ–हरि ※

बाउल पंथ के बारे में श्री गोस्वामीजी ने कहा- एक बार मैं बाउल साधना सीखने हेतु उनके एक अखाडे में कुछ दिन रहा। वह बेढब मामला है। मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया था। बाउल सम्प्रदाय में, अनेक स्थानों में बड़े निन्दित काम होते हैं। उनको मुँह से कहना ठीक नहीं। उन लोगों में अच्छे लोग भी हैं। वे लोग चन्द्रमा के उपासक हैं। चन्द्रमा के वे चार रूप मानते हैं- (1) शुक्र (2) शनि (3) गरल और (4) उन्माद। इन चारों चन्द्रों की सिद्धि होते ही समझ लेते हैं कि सब कुछ हो गया। शरीर का मवाद, रक्त ,विष्ठा, मूत्र किसी चीज को वे फेंकते नहीं, खा लेते हैं। एक दिन एक बाउल को खूनी आँव (मैला)

खाते देखकर मैं बहुत बिगड़ा। यह सुनकर अखाड़े के महन्त ने धमकाकर मुझसे कहा, 'उन्माद चाँद, गरल चाँद की सिद्धि प्राप्त करने के लिए तुम्हें मल मूत्र खाना-पीना पड़ेगा।' मैंने कहा, 'यह मुझसे न होगा। मल-मूत्र के खाने-पीने से प्राप्त होने वाला धर्म मुझे नहीं चाहिए।' महन्त बहुत ही क्रुद्ध होकर बोला , 'इतने दिन तक हमारे सम्प्रदाय के भीतर रहकर तुमने हमारा सारा भेद मालुम कर लिया और अब साधन क़रने से इन्कार करते हो। तुमको बतलाया हुआ साधन करना ही पड़ेगा।' मैंने कहा, 'मैं कभी करने का नहीं ! इस पर महन्त गालियाँ देता हुआ मुझे मारने को चला; चेले भी 'मारो मारो' कहते हुए झपटे। तब मैंने जोर से धमकाकर कहा, 'अच्छा, तुम्हारी यह मजाल है कि मारोगे ? मैं शान्तिपुर के अद्वैतवंश का गोस्वामी हूँ, मुझसे मल-मूत्र खाने-पीने को कहते हो ? धमकी खाकर सब लोग चौंक पड़े। महन्त ने बहुत ही दुखी होकर मुझे नमस्कार किया और हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभो ! मुझे मालूम न था कि आप गोस्वामी सन्तान व अद्वैत प्रभु के वंशज हैं। बड़ा अपराध हो गया है, दया करके क्षमा कर दीजिये।' मैं उसी दम वहाँ से चलता हुआ। उन लोगों के साधन का लक्ष्य ऊद्धरेता होना ही है। बाउलों में वैसे लोग मौजूद भी हैं।

✻ ॐ-हरि ✻

शिष्य - हम लोगों की यह साधना तान्त्रिक है या वैदिक ? किस किस ऋषि ने पहले इस साधन को किया था ?

श्री गोस्वामीजी -यह साधन आधुनिक नहीं है, यह तो बहुत पुराना वैदिक साधन है। पहले दत्तात्रेय प्रभृति योगीश्वर इस साधन को करके सिद्ध हुए थे।

✻ ॐ-हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- शाक्त और वैष्णव को अन्त में एक सी ही अवस्था प्राप्त होती है। हाँ, मार्ग में उपासना के भाव का पार्थक्य अवश्य देखा जाता है। जो लोग वैष्णव प्रकृति के होते हैं वे भगवदभक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं माँगते; वे लोग ऐश्वर्य को

अपनी भक्ति में विघ्न ही मानते हैं, वे उसको विष की भाँति त्याग देते हैं। वे लोग तो तन-मन से दास ही होना चाहते हैं। भगवद्भक्ति को प्राप्त करके वे लोग अभय पद पा लेते हैं। उन लोगों के इच्छा न करने पर भी समस्त ऐश्वर्य दासी की भाँति सदा उनके पीछे-पीछे चलती है। किन्तु शाक्तों का दूसरा ढँग है, वे पहले ऐश्वर्य की आकांक्षा से ही कठोर साधन करते हैं; फिर, धीरे-धीरे अनेक प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त करके पृथ्वी का प्रभूत कल्याण करते हैं, इस प्रकार सभी जीवों की सेवा करके भगवान् की उपासना द्वारा मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। अन्तिम अवस्था सभी की एक है।

ॐ-हरि

श्री गोस्वामीजी :- पन्थ कुछ एक ही नहीं है। सम्मति या असम्मति से यह काम नहीं होता। चाहे साकार का ध्यान करो, चाहे निराकार का, कुछ भी करो, किसी प्रकार भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती। वे तो स्वप्रकाश हैं, वे जब स्वयं दया करके प्रकट हो जाते हैं तभी उनको पहचाना जा सकता है। चित्त शुद्ध हुए बिना उनका प्रकाश पकड़ में नहीं आता। साधन भजन कुछ भी क्यों न किया करो, पहले चित्त को शुद्ध करो।

ॐ-हरि

श्री गोस्वामीजी :- जिसकी जो देशगत; समाजगत या कुल-क्रमागत रीति-नीति और आचार पद्धति हो, यथाशक्ति उसका पालन करते हुए इस साधनपथ पर चलने की चेष्टा करना।

ॐ-हरि

शिष्य :- वेदमत से कई वर्षों तक साधन करके जो प्राप्त होता है, तंत्र मत से कुछ काल साधन करने पर ही क्या वही फल मिलता है?

श्री गोस्वामीजी :- ''शिव वाक्य क्या मिथ्या हो सकता है? अवश्य ऐसा होता है। जीवों पर दया करके महादेव ने तंत्र संकलन किया है।''

शिष्य :- तंत्र में क्या मार काट और व्यभिचार लेकर ही साधना है। संयत होकर, गुणातीत होने का तंत्र में कोई उपदेश है या नहीं ? तंत्र क्या पूरा शाक्त मत का है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''तंत्र केवल शक्ति विषयक ही क्यों होगा ? पंच देवों का तंत्र भिन्न है। वैष्णव तंत्र, शैव तंत्र आदि सभी उपासनाओं का तंत्र है। संयम आदि विषय पर भी तंत्र में यथेष्ट उपदेश हैं। ज्ञान संकलनी तंत्र एक बार पढ़कर देखना। तंत्र का उद्देश्य एवं अर्थ कोई नहीं समझता, न समझ कर ही साधन करने जाते हैं और मरते हैं।''

❊ ॐ-हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- ''ब्राह्म समाज की प्रणाली से उपासना करके अब तक यदि तृप्ति न मिली हो तो जिन्होंने इस प्रणाली से तृप्ति लाभ किया है, उनसे पूछना चाहिए। अचानक अन्य साधन-प्रणाली ग्रहण करना उचित नहीं। धर्म साधन किसी प्रकार की चतुराई या कौशल नहीं कि उसके अनुसार कार्य करते ही हाथों-हाथ फल पा सकें। धर्म करने के लिये जगत में नाना प्रकार की प्रणालियाँ हैं, उनमें से एकमात्र प्रणाली से कोई शीघ्र, कोई देर से फल पाता है। अत्यन्त विलम्ब देखकर कोई-कोई हताश होकर अन्य प्रणाली का अनुसरण कर, इसे छोड़ देते हैं। भगवत् कृपा बिना किसी प्रणाली द्वारा सहज ही कुछ नहीं हो पाता। जब आपने एक पथ का अनुसरण किया है तब अचानक दूसरा कुछ करना उचित नहीं। हमारे क्रिया-कलाप की भली भाँति आलोचना व परीक्षण करके देखिये। किसी के मुख से सुनकर एकाएक उसमें प्रवेश करना उचित नहीं।''

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- तांत्रिक साधना में तुलसी व्यवहार निषिद्ध क्यों है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''वामाचार मत से जो महाशंख की माला में कारण का उपयोग करते हैं, तुलसी, गंगाजल से उसकी प्रेत शक्ति नष्ट हो जाती है। इससे उनकी साधना नहीं हो पाती। वीरभाव से क्रमशः जब दिव्यभाव आ जाय, तब कोई भेद नहीं रह जाता।''

* ॐ-हरि *

प्रश्न :- कबीर व नानक के धर्म मत में क्या अतंर है? जितने सामान्य लोग हैं वे कबीर पंथी हैं पर नानक शाही लोग संभ्रांत हैं, ऐसा क्यों ?

श्री गोस्वामीजी :- ''कबीर व गुरु नानक के धर्म में कोई भेद नहीं है। कबीर जी जुलाहा थे। ब्राह्मण, क्षत्रियों के बीच उनका मत का उतना अधिक प्रचार न हो पाया। उत्तर-पश्चिम के दलित, चमार, डोम आदि जातियाँ भी कबीर पंथी हैं। उनसे यदि मिलो तो उनकी चरणधूलि लिये बिना नहीं रह पाओगे। गुरु नानक क्षत्रिय थे, अतः सभी ने उनका मत निर्बाध रूप से ग्रहण किया। गुरु नानक ने वेद, पुराण, स्मृति को मान्यता देकर तदनुसार उपदेश दिया है। वे सदा मनोमुखी या शास्त्रविहीन पथ की हानि दर्शाते हैं।''

* ॐ-हरि *

शिष्य :- शंकराचार्य तो अद्वैतवादी थे ?

श्री गोस्वामीजी :- ''पहले तो वे अद्वैतवादी थे। इसी का प्रचार भी किया। बाद में द्वैतभाव का आश्रय लेने पर उनके प्राण सरस हुए। मुझे ही लो, पहले कालापहाड़ जैसा था, सिर्फ तोड़-फोड़ करता था। देवी, देवता, अवतार तथा तीर्थ आदि कुछ नहीं - ऐसा कहता था। अब देखो, कैसी अवस्था में आ पड़ा हूँ, ये सभी सत्य हैं। शुष्क मत पर कोई कब तक टिका रह सकता है ?''

* ॐ-हरि *

शिष्य :- बौद्ध साधन हिन्दूशास्त्रों द्वारा अनुमोदित है या नहीं? किसी वेद या पुराण में इसके विषय में उल्लेख है या नहीं ?

श्री गोस्वामीजी :- ''हिमालय में बौद्ध लामाओं का मठ है। मैं भी वहाँ कुछ दिन रहा। उनकी साधन प्रणाली देखकर आनन्दित हुआ। शाक्यसिंह ने साधना की प्रथम अवस्था में उन्हीं ज्वार-भाटाओं, उतार-चढ़ावों को भोगा था। इसीलिये उन्होंने पूर्व शिक्षा, जो कि आत्मा को

अंगीभूत न हो सकी, भूलने का यत्न किया और पुन: तपस्या आरंभ की। तब एक एक करके सत्य उद्घटित होने लगे, वे सब आत्मा के अंगीभूत होने लगे, बुद्धत्व का आलिंगन हुआ। अब बौद्ध लामा भी इसी प्रणाली का अनुसरण करते हैं। बौद्ध ग्रंथ पढ़ना हो तो पाली भाषा की शिक्षा ग्रहण करके, बौद्ध मठों में हिमालय में जाकर, अध्ययन करना पड़ेगा। अनुवाद में अनेक भूल, त्रुटियाँ हैं। लामा गुरुओं का आचरण, रहन-सहन, साधन-प्रणाली न देखकर बौद्ध धर्म ठीक से नहीं समझा जा सकता।'' ''सब बौद्ध शास्त्र योगमूलक हैं। अथर्ववेद में योग उपदेश अधिक हैं। जितने तंत्र हैं, वे सब तापनीश्रुति के अनुगत हैं। इन बौद्धों की उपासना तंत्रमूलक है। जब बौद्धों से ब्राह्मणों का विवाद हुआ, तब वे सब वचन पुराणों में प्रक्षिप्त हुए। शास्त्रों का तात्पर्य समझना हो तो सम्पूर्ण रूप से निरपेक्ष होना पड़ता है। स्वयं पढ़कर नहीं बल्कि अध्यापक के पास पढ़कर, शास्त्रों का सामंजस्य समझा जा सकता है।''

❊ ॐ-हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- ''नाम करते-करते जब एक-एक चक्र भेदन होता है, तो उन चक्रों में पद्म प्रकट होते हैं। उन पद्मों में एक कुटीर होता है। कुटीर के द्वार पर एक रमणीय, रूपवती देवी खड़ी होती है, प्रवेश में बाधा देकर वह कहती है, ''पहले हमसे रमण करो तब भीतर प्रवेश करने दूंगी।' यह कह कर वे विविध भाव भंगिमा करके परीक्षा लेती हैं। यदि उनकी भाव भंगिमा में भूलकर रमण करने की सोची, तो वहीं बद्ध हो जाना पड़ता है और यदि इसमें न भूल कर देवी की स्तुति करके कहा जाय - 'माँ मुझ पर दया करो ताकि मेरा यथार्थ कल्याण हो। आशीर्वाद दो कि मुझे प्रेम भक्ति की प्राप्ति हो सके।'' ऐसा कहने पर वे रास्ता छोड़ देती हैं। इस चक्र के भेदन पर, दूसरे चक्र में भी द्वार पर ऐसी ही सुंदरियाँ आकर रास्ता रोकतीं तथा और भी कठिन परीक्षा लेती हैं। सभी की मातृभाव से पूजा, स्तुति एवं नमस्कार करके, आशीर्वाद लेकर एक-एक चक्र भेद कर भीतर प्रवेश करते जाना पड़ता है। इन सब प्रलोभनों का अतिक्रमण सहज नहीं है। एकमात्र गुरुकृपा से संभव होता है।''

शिष्य :- इस तरह देवियों का प्रलोभन कब तक चलता है? क्या सभी चक्रों के द्वार पर ऐसे प्रलोभन हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- ''सभी चक्रों के द्वार पर प्रलोभन हैं। चक्र तो बहत्तर हजार हैं, उनमें से प्रमुख दस हैं। इन दस का भेद कर लेने पर जीवन का कार्य सफल हो जाता है। बहत्तर हजार चक्रों को एक जीवन में भेद पाना बहुत कम लोगों के भाग्य में हो पाता है।''

शिष्य :- इन चक्रों के भेद किए बिना क्या भगवान को नहीं पाया जा सकता ? सभी को क्या चक्र भेद करने ही पड़ते हैं?

श्री गोस्वामीजी :- ''जो प्रणाली लेकर चलते हैं, उन्हें साधन पथ में यह सब कुछ करना ही पड़ता है। जो भगवान की कृपा पर ही निर्भर हैं, एकमात्र उन्हें ही पाना चाहते हैं, उन्हें प्रलोभन में नहीं पड़ना पड़ता।

भगवान को पाकर, वे ये सब कुछ प्रत्यक्ष करते हैं। किंतु कृपा से जो पार होते हैं, भगवान उन्हें विभिन्न अवस्थाओं में डालकर पक्का कर लेते हैं।''

ॐ–हरि

साधन को छिपकर ही करना चाहिये। अपने अपने साधन भजन में निरुत्साहित किसी को न करना चाहिए। निरुत्साहित करने में बड़ा दोष है। कोई किसी मार्ग पर क्यों न चलता हो, उसे उत्साहित ही करना चाहिए। अपना साधन ग्रहण करने के लिए किसी से अनुरोध मत करना।

ॐ–हरि

श्री गोस्वामीजी :- सभी की दशा से सहानुभूति रखनी चाहिए। दूसरे के साथ मतभेद होने अथवा उसकी दशा के साथ मेल न खाने से उसे बिल्कुल उड़ा न देना चाहिए। दूसरे की दशा का विचार करने के लिए, अपनी समझ कर उसकी दशा का अनुभव करना पड़ता है। एक इञ्च का अन्तर रहने पर भी एक की दशा की आवश्यकता, गुरुत्व, दोष या गुण को दूसरा समझ नहीं सकता। मतभेद और दशा

की पृथक्ता तो संसार में सदा रहेगी ही। भगवान् के राज्य में कोई भी दो वस्तुएँ हूबहू एक सी नहीं हैं। किसी न किसी अंश में कुछ न कुछ पृथक्ता रहेगी ही। इन विविध विचित्रताओं के बीच में भी एक सुन्दर श्रृंखला है। मनुष्य उसको जब तक देख नहीं पाता तभी तक गड़बड़ करता है। वास्तव में सभी एक से हो जायें तो प्रकृति का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाय। विविध फूलों के पौधों से बगीचे की जैसी शोभा बढ़ती है, वैसी एक ही किस्म के पौधों से नहीं होती। वैसी ही विभिन्न प्रकृतियों के समावेश से यह संसार भी शोभित है। मनुष्य जब इसको देखने लगता है तब किसी प्रकार का भी विरोध नहीं रह जाता। वह प्रकृति की विचित्रता के भीतर भगवान् की अद्भुत सृष्टि श्रृंखला और विचित्र कौशल देखकर बिल्कुल मुग्ध हो जाता है और परम आनन्द पाता है। वह किसी तरह न तो विचलित होता है और न अशान्त होता है। अपने स्थान पर स्वयं ठीक रहकर केवल दूसरे की दशा देखते रहना चाहिए; तभी धीरे-धीरे शान्ति मिलती है।

'सब से रसिये,सबसे बसिए, सब से लीजिए काम।
हाँजी हाँजी करते रहिए, बैठिये अपने ठाम।।'

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - गुरु में एकनिष्ठता भी क्या संकीर्णभाव नहीं है?

श्री गोस्वामीजी - नहीं, उसे संकीर्णता नहीं कहते। जो रक्ताधार को भली भांति जानता है वह यह भी जानता है कि एक रक्ताधार का ही रक्त अनेक मार्ग से होकर सारे शरीर में व्याप्त हो रहा है। वह सर्वत्र एक ही वस्तु को देखता है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- अधर्म यदि अधर्म के रूप में मनुष्य के पास उपस्थित होता है तो उसको मनुष्य सहज में पहचान लेते हैं और उसके आक्रमण से भी बचने का कुछ न कुछ उपाय कर सकते हैं; किन्तु अधर्म जब धर्म बनकर आ जाता है तब उसको पहचान लेना बहुत ही कठिन हो जाता है। ऐसे अवसरों पर सिद्ध पुरुषों को भी

धोखा हो जाता है; स्वयं भक्तराज महावीर को भी मतिभ्रम हो गया था, फिर औरों की बात ही क्या है?

अपने इष्टदेव राम लक्ष्मण की रक्षा पापरूपी महिरावण से करने के लिए महावीर ने अपनी पूँछ की कुण्डली द्वारा ही गढ़ बनाया। उसके भीतर राम-लक्ष्मण को बिठाकर स्वयं फाटक पर चौकस होकर पहरा देने लगे जिसमें मायारूपी पापी महिरावण किसी छल से भीतर घुस कर राम-लक्ष्मण को न ले भागे। महिरावण ने कभी कौशल्या, कभी दशरथ, कभी जनक और कभी भरत का आकार धारण करके भीतर प्रवेश करना चाहा; किन्तु भक्तराज महावीर ने सभी से हाथ जोड़कर कहा, 'तनिक ठहर जाइए, अभी विभीषण आवेंगे, उनके कहने पर दरवाजे से हट जाऊँगा।' महिरावण जब किसी प्रकार हनुमान को चकमा न दे सका तब विभीषण बनकर आ गया और कहने लगा, 'महावीर, झटपट दरवाजे से हट जाओ, मैं एक बार राम लक्ष्मण को देख आऊँ।' हनुमान को एक बार संशय तो हुआ, किन्तु उन्हें उस पर ध्यान देने को अवसर न मिला। विभीषण बने हुए महिरावण ने तुरन्त ही कहा, 'महामायावी महिरावण सदा चक्कर लगा रहा है, क्या जाने कब किस बहाने भीतर घुस जाय। तुम चौकन्ने रहना, मैं एक बार राम-लक्ष्मण के सिर में रक्षा बाँध आऊँ।' तब हनुमान ने दरवाजा छोड़ दिया। महिरावण सहज ही भीतर जा पहुँचा और सोते हुए राम लक्ष्मण को लेकर पाताल में चला गया।

इस घटना का उल्लेख करके श्री गोस्वामीजी कहने लगे-अधर्म किसी भी रूप में भक्त के समीप क्यों न आवे, धर्म की ओर स्थिर दृष्टि रखने से भक्त को वह किसी तरह विचलित नहीं कर सकता। किन्तु धर्म के रूप में अधर्म आ जाता है तो वह महान् सिद्ध पुरुष को भी मुग्ध कर देता है।

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी - जो लोग किसी मत अथवा संस्कार के वशवर्ती होकर चलते हैं, वे विशिष्ट दलों में आबद्ध हो जाते हैं। जो लोग किसी भी मतामत या संस्कार के अधीन न होकर केवल अपने

अन्तर में सत्य का ही अनुसन्धान करते हैं, उनका न तो कोई दल होता है और न सम्प्रदाय ही। जिन दिनों मैं ब्राह्मधर्म का प्रचारक था उन दिनों कुछ समय तक मैं बागआँचड़ा में रहा था। उस समय की मेरी कार्य प्रणाली, वक्तृता और उपदेश आदि से ब्राह्मसमाज में खासी हलचल मच गई थी। मेरा समय बड़ी अशान्ति में बीतने लगा। मेरे कई मित्र कलकत्ते से मुझे बार-बार लिखने लगे कि उन आलोचनाओं का प्रतिवाद कर दो। उन लोग़ों ने मुझे कलकत्ते आने को भी लिखा। मैं बड़ी कठिन समस्या में पड़ गया। अपनी कर्तव्यबुद्धि को छोड़कर ब्राह्मसमाज के संसर्ग मे रहना ठीक होगा कि नहीं इसी की आलोचना मैं मन में सदा करने लगा। मैंने भगवान् से प्रार्थना की - 'महाराज, बतलाइए, मैं इस समय क्या करूँ।' उस समय स्पष्ट रूप से आकाशवाणी हुई। मैंने सुना '**संकीर्णता के भीतर रहने से जीवन में सत्य की प्राप्ति न होगी।**' आकाशवाणी सुनने से मेरी चिन्ता दूर हो गई। मनुष्य का मन रखकर चलने से कभी धर्म-कर्म नहीं हो सकता। मनुष्य चाहे हमारे कार्य की निन्दा करें चाहे प्रशंसा, उसका खयाल रखने से सब चौपट होगा। बिना किसी की परवा किये बिल्कुल स्वाधीन रूप से यदि अपनी कर्तव्यबुद्धि से कार्य किया जा सके तब तो काम बन गया, नहीं तो अपना बचाव करना बहुत ही कठिन है। सत्य अनन्त है, उसके भाव अनन्त हैं, सत्य के रूप भी अनन्त हैं और सत्य की प्राप्ति के उपायों का भी ओर-छोर नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सत्य को प्राप्त करने के लिए सभी को एक ही मार्ग से, एक ही मत को मानकर चलना होगा। जिस प्रकार मनुष्य पृथक् पृथक् हैं उसी प्रकार उनकी प्रकृति भी भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। सभी को अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार ही चलना है। भिन्न भिन्न प्रकृतियों के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग हैं अतएव भिन्न-भिन्न प्रणालियों का अवलम्बन करना भी आवश्यक है।

❊ ॐ–हरि ❊

ईसा व कृष्ण एक ही हैं जरा भी भिन्न नहीं। जिनके सामने यह तत्त्व प्रकट न हुआ हो वे ही भेद बुद्धि से भिन्न देखते हैं। वस्तुतः एक

ही व्यक्ति के दो नाम हैं। यीशु का क्रॉस, कृष्ण की चूड़ा तथा महादेव जी के त्रिशूल इन तीनों से मिलकर ही ॐकार बना है।

※ ॐ–हरि ※

जो जिस भाव से धर्मलाभ कर रहा है, करे - मैं किसी की निन्दा नहीं करूँगा। बल्कि प्रशंसनीय कुछ हो तो प्रशंसा ही करूँगा। भगवान कर्ता हैं, वे किसका किस तरह से उद्धार करेंगे, मैं क्या जानूँ ? ऐसा सोचकर चुप रहना ही अच्छा है। धर्मार्थियों के लिए किसी के किसी विषय को लेकर परिहास करना ठीक नहीं। परनिंदा सदा त्याज्य है। प्रत्येक में कुछ न कुछ गुण है। दोष की आलोचना करने से आत्मा मलिन होती है। दोष त्याग कर गुण का अंश ग्रहण करना चाहिये। इससे हृदय विशुद्ध होता है। दूसरों को, किसी के सामने नीचा बताने के लिए कुछ कहना ही परनिन्दा है। विद्वेषपूर्वक सत्यवचन कहना भी परनिन्दा है। जो किसी के उपकार के लिए कहा जाए, वह परनिन्दा नहीं होती। जैसे पिता दोष की बातें बालक को बताते हों। किसी का दोष बताना हो तो केवल उसके उपकार की बात ध्यान रखकर ही बताना चाहिये। किसी के हृदय में चोट न पहुँचे, इस प्रकार बोलना चाहिये। धर्म-जीवन प्राप्त करने मे परनिन्दा जैसे अनिष्टकारी काम, क्रोध आदि कोई नहीं है।

※ ॐ–हरि ※

शिष्य :- भक्ति किस प्रकार होती है ? हमें भक्ति क्यों नहीं आती?

श्री गोस्वामीजी :- अपने को अभक्त, दीन-हीन कंगाल मानकर यदि भगवान के चरणों में पड़े रहो तो भक्ति देवी अवश्य कृपा करेंगी किन्तु जहाँ मैं भक्त हूँ, यह अभिमान है, वहाँ भक्तिदेवी नहीं जाती। जिससे भगवान का भजन किया जाये वही भक्ति है। साधकगण इस भक्ति को वैधी और अहैतुकी ऐसे दो भागों में बाँटते हैं। वैधी भक्ति चार प्रकार की है - आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी। अभक्ति, शुष्कता, पाप-ताप आदि जब हृदय को कातर कर डालते हैं, भगवान का नाम लेने में भी अविश्वास आ जाता है, उस समय दीन-हीन कंगाल की भांति हाथ जोड़कर उनकी ओर ताकते रहना, उनका नाम लेना - यही

वास्तविक रूप में आर्त भजन है। शुष्कता में या अविश्वास पूर्वक नाम लेने पर भी वह व्यर्थ नहीं जाता। कड़वी दवा अनिच्छा से पीने पर भी रोग की शांति होती है। **भगवान के नाम से पातकी का भी उद्धार होता है। यह उसका वस्तुगुण है। द्रव्य गुण किसी बात की प्रतीक्षा नहीं करता। आग में हाथ डालो तो वह जलेगा ही।**

✻ ॐ–हरि ✻

अनन्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने वाले भगवान कैसे सुश्रृंखला पूर्वक, यथानियम उसे चला रहे हैं, सोचने में भी आश्चर्य होता है। प्रत्येक पदार्थ में दृष्टि डालो तो सभी के तत्त्व असीम लगते हैं। सबका नियम है, व्यवस्था तथा प्रयोजन भी है। हम जरा सी आँधी, तूफान, गर्मी, वर्षा की अधिकता देखते ही सृष्टिकर्ता का अतिक्रमण कर विचार करने लगते हैं और असंतोष प्रकट करते है। इसके मूल में अविश्वास तथा अविश्वास के मूल में स्वार्थ, परनिन्दा, हिंसा, द्वेष है। इसी से सारी दुर्गतियों की शुरुआत होती है। अतः धार्मिक व्यक्ति का प्रधान लक्षण है कि वे प्राण जाने पर भी परनिन्दा नहीं करते। आत्मप्रशंसा भी विषतुल्य समझते हैं। हिंसा उनके हृदय में स्थान नहीं पाती। भगवान के कार्यों में अविश्वास हो तो ही असंतोष है। मनुष्य के ज्ञान द्वारा केवल सृष्ट वस्तु का ही विचार किया जा सकता है। भगवत् तत्त्व मानवीय ज्ञान के अधीन नहीं होता। इसी से ऋषियों ने ज्ञान को पराविद्या तथा अपराविद्या दो भागों में विभाजित किया है।

उ
प
दे
श

*

भाव
सम्बंधित

शिष्य :- ''कोई यह पूछे कि किस भाव के उपासक हो तो क्या कहूँगा ?''

श्री गोस्वामीजी :- जिसे जो भाव अच्छा लगता हो वह उसी को बतला दे। विष्णु अच्छे लगते हों तो वैष्णव कहे और शिव अच्छे लगते हों तो शैव कह दे, इसी प्रकार और भी।

शिष्य :- ''किसी समय कोई भाव अच्छा लगता है और थोड़ी ही देर में एक दूसरा भाव श्रेष्ठ जान पड़ता है। स्थिरता से किसी एक का अवलम्बन नहीं कर पाता हूँ। ऐसी चञ्चलता क्यों होती है ?''

श्री गोस्वामीजी :- अनेक प्रकार की दशाओं में पड़कर, संसर्ग और सन्देह से, पूर्वभाव आकर उपस्थित हो जाता है। जब तक कर्म है, तब तक कोई किसी एक पर स्थिर नहीं हो सकता। ऐसी चञ्चलता से बचना असम्भव होता है। हमारा एक मात्र अवलम्बन नाम ही है, उसी को पकड़े रहो। इस नाम के भीतर होकर ही भगवान् को अनन्त राज्य, अनन्त रूप, अनन्त भाव और अनन्त लीला प्रकट होंगी, अनन्त राज्य में अनन्त दिशाओं से होकर अनन्त भाव से चलना होगा। कोई एक छूट जायगा तो पीछे से ऐसा जान पड़ सकता है कि उस ओर से उस भाव से चलने पर और भी सुभीता होता। पीछे से मन में इस ढंग का पछतावा न होने देने के लिए अनेक दशाओं के भीतर होकर, विभिन्न भावों से, अनेक दिशाओं में होकर चलना साधक के लिए आवश्यक है। ऐसा करने से सब कुछ मालुम भी हो जाता है।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी- स्वयं भगवान् के भाव, कार्य और लीला का भला विराम है ? तत्त्व, जो अनन्त हैं, ये तत्त्व कहीं साधन आदि करके प्राप्त किये जा सकते हैं ? लाखों जन्म कठोर साधन-भजन में लगा देने पर भी इन तत्त्वों में से सिर्फ एक को भी कोई नहीं जान सकता। ये साधन सापेक्ष नहीं, ये तो साधानातीत हैं। एक मात्र भगवान् की कृपा से ही इन तत्त्वों की उपलब्धि होती है। साधन द्वारा इनकी प्राप्ति होनी असम्भव है। उनकी कृपा से पल भर में भी सब कुछ हो सकता है। जीव मुक्त होकर एक मात्र भगवान् की कृपा से ही लीलातत्त्व में प्रवेश कर सकता है। यही परतत्त्व है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- ''राधाकृष्ण संवाद में राधा जीवात्मा हैं या और कुछ ?''

श्री गोस्वामीजी :- ये सब विषय अत्यन्त दुरूह हैं, अभी बतलाने से इन विषयों को कुछ भी समझ न पाओगे। असमय में बतला देने से, दशा की प्राप्ति न होने पर कोई भावार्थ को हृदयङ्गम नहीं कर सकता; बात का विकृत अर्थ समझ लेने से आत्मा का अनिष्ट होता है, और वर्णित विषय दूषित हो जाता है। देखो, कृष्णदास कविराज जी ने चैतन्यचरितामृत लिखकर जीव गोस्वामी को दे दिया। जीव गोस्वामी जी ने उस ग्रन्थ को पढ़कर उसका प्रचार करने के लिए कहते हुए कहा- 'यद्यपि इस ग्रन्थ के द्वारा भक्त वैष्णवों का बहुत कल्याण होगा तथापि इसके द्वारा साधारण जनसमाज का अनिष्ट के अतिरिक्त इष्ट कुछ भी न होगा।'

✻ ॐ–हरि ✻

सदा नाम का जप किया करो; भाव और लीला प्रभृति सब कुछ खुल जावेगा। तब अपने आप प्रकट हो जावेगा कि चैतन्य कौन हैं, ईसा कौन हैं और लीला क्या है? साधन करते-करते धीरे-धीरे पाँच दशाओं की प्राप्ति होती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। इन दशाओं (अवस्थाओं) को प्राप्त करने के लिए पहले कर्म करना पड़ता है, खूब साधना करनी पड़ती है। इस समय लोभ, मोह आदि शत्रुओं का आक्रमण होने पर साधक को बार-बार विषम परीक्षा देनी पड़ती है; साधक कभी तो परीक्षा में असफल हो जाता है और कभी उत्तीर्ण हो जाता है। समुद्र में मल्लाह नाव लेकर आगे बढ़ता है तो जिस प्रकार तरङ्ग के साथ-साथ कभी तो वह ऊपर और कभी नीचे जाता हुआ भी चलता रहता है उसी प्रकार साधक भी अनेक प्रकार की परीक्षाओं में उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होते हुए भी चलता ही जाता है। परीक्षा काल में बहुतेरे साधक साधन-भजन को बिल्कुल छोड़-छाड़ देते हैं। नाना प्रकार के क्लेश, अशान्ति, शुष्कता और निराशा में

पड़कर बिल्कुल घबरा जाते हैं, किन्तु दिन भर में यदि इस समय कम से कम चार पाँच बार भी नाम को जप लेते हैं तो किसी न किसी प्रकार उनका उद्धार हो ही जाता है। इस विषम दु:समय में नाम स्मरण ही उद्धार का एकमात्र उपाय है। ऐसी परीक्षा के प्रलोभन में पड़ना भी उन्नति का एक लक्षण है। बहुतों के जीवन में तो दो-तीन जन्मों तक इन परीक्षाओं का अवसर ही नहीं आता। दीक्षा लेने के अनन्तर साधन की अवस्था में ये प्रलोभन परीक्षाएँ न होने से अपने को शोचनीय अवस्था में समझना चाहिए। ये परीक्षाएँ हो जाने से मनुष्य की उन्नति की अवस्था का आरम्भ होता है। धीरे-धीरे इन दुरावस्थाओं में पड़ने पर साधक अपने को जब बिल्कुल अपदार्थ एवं असमर्थ समझने लगता है; मनुष्य जब यह समझ लेता है कि 'मेरी अपनी कुछ भी क्षमता नहीं है, अपनी शक्ति से मैं जब एक साधारण तिनके को भी नहीं उठा सकता' तभी से भक्ति का विकास होने लगता है। आत्मशक्ति असार से भी असार है; एकमात्र 'भगवत् इच्छा को ही सार' समझ लेने से साधक भगवान के ही भरोसे हो जाता है, तब भगवान् की कृपा से उसके हृदय में भगवतत्त्व भी प्रकाशित होने लगता है। थोड़ा समय बीतने पर अपने आप फिर कहने लगेगा- ''अंहकार के नष्ट हो जाने पर सर्दी, गर्मी, मान, अपमान आदि किसी का भान नहीं होता; क्योंकि ममत्व (मैं का भाव) रहने से ही ये सब होते हैं। मनुष्य जब भगवान से युक्त हो जाता है तब उसे सुख-दु:ख जो कुछ उपस्थित होता है उस सब को भगवान ही ग्रहण किया करते हैं। भगवान की कृपा से भक्तों को उसका भोग नहीं करना पड़ता। इस नियम से ही प्रह्लाद की रक्षा अग्नि, जल, हाथी इत्यादि से अनायास हो गई थी। भगवद्भक्त चाहें तो अनायास ही सब भोगों से बचे रह सकते हैं, किन्तु वे भूल कर भी ऐसा नहीं करते। भक्त लोग सारे संकटों को सहते रहते हैं। प्रकृति में एक यह साधारण नियम देखा जाता है कि यदि एक व्यक्ति दूसरे को सचमुच चाहता है तो एक को कष्ट होने पर उसे दूसरा भी भोगता है; एक को बेंत मारने से दूसरे की देह में भी उस चोट के दाग पड़ जाते हैं।''

श्री गोस्वामीजी :- भाव तो बहुत दूर की बात है। भाव का अंकुर मात्र जमने से जो-जो अवस्थाएँ प्रकट होती हैं उनका वर्णन वैष्णव शास्त्र में इस प्रकार है—

''क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबद्धसमुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचि:॥
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।
इत्यादयोऽनुभावा: स्युर्जातभावांकुरे जने॥''

भाव उत्पन्न होने के पहले ही यह सब होना चाहिए; मुँह से 'भाव भाव' कहने से क्या होगा।

1. ''क्षान्ति'' - सभी विषयों में उनको धैर्य और क्षमा रहेगी। निन्दा, अपमान और अत्याचार आदि कितना ही दुर्व्यवहार उसके साथ क्यों न किया जाय, वह तिल भर भी उससे विचलित न होगा। सर्वदा क्षमाशील रहेगा।

2. ''अव्यर्थकालत्वम्'' - वह कभी समय को न गँवावेगा, वह सदा किसी न किसी ऐसे काम में लगा रहेगा जिससे कि आत्मा का कल्याण हो।

3. ''विरक्ति'' - उसे सभी विषयों से विराग रहेगा, विषय में अनासक्त भाव उत्पन्न होगा।

4. ''मानशून्यता'' - उसे गर्व, अभिमान आदि कुछ भी न होगा।

5. ''आशाबद्धसमुत्कण्ठा'' - भगवत्कृपा की प्राप्ति और अपनी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के विषय में पक्का विश्वास रहेगा। जब तक अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति न हो जायगी तब तक सदा एक अतृप्तता सी रहेगी।

6. ''नामगाने सदा रुचि:'' - भगवान् का नामकीर्तन करने की सदा अभिलाषा रहेगी, उसी में आनन्द होगा।

7. ''आसक्तिस्तद्गुणाख्याने'' - भगवान् का गुण गान करने में वह सदा अनुरक्त रहेगा।

8. ''प्रीतिस्तद्वसतिस्थले'' - भगवान् के वसति स्थान, कोई कोई कहते हैं कि मूर्ति, प्रतिमा और तीर्थ आदि में, और किसी-किसी का कहना है कि चराचर विश्व ब्रह्माण्ड में, सर्वभूतों में उसको प्रीति और चाह होगी।

''इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावांकुरे जने'' - जिस में केवल भाव का अंकुर जमा है उसमें ये सभी लक्षण पहले ही होंगे। भाव कुछ खेल तमाशा नहीं है। आँखों से दो-चार आँसू गिरने से ही भाव नहीं हो जाता।

''आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः॥''

सबसे पहले श्रद्धा है; शास्त्र और सदाचार पर विश्वास। शास्त्र और सदाचार पर विश्वास हो जाने से साधुसङ्गति का अधिकार होता है। शास्त्र और सदाचार का अनुकरण करने पर, साधुओं ने कैसा जीवन प्राप्त किया है, वे कैसी शान्ति, आराम और आनन्द से दिन बिताते हैं, यह सब देख-सुनकर साधुओं का सा जीवन प्राप्त करने की आकांक्षा उत्पन्न होती है, आग्रह होता है। यह हो जाने पर भजन की क्रिया करते-करते सारे अनर्थ रुक जाते हैं। भीतर कोई भी अनिष्टकर प्रतिकूल दशा ही नहीं रह जाती। भजन करते रहने से वह सब नष्ट हो जाती है। यह सब हो जाने पर भाव का नम्बर आता है। भाव के पश्चात् भक्ति और तब प्रेम। भाव वृक्ष है, भक्ति पुष्प है और प्रेम है पका हुआ फल। ये बहुत दूर की बातें हैं।

प्रश्न :- 'अश्रु, पुलक और कम्प आदि का होना क्या भाव नहीं है ?''

श्रीगोस्वामीजी :- वह सब तो भीतर की एक अवस्था का विकार है, किन्तु अश्रु और कम्प होने से ही यह न मान लेना चाहिए कि ये भाव भी उसे हो गये। शास्त्रकारों ने भक्ति के दर्शनशास्त्र में बहुत ही बारीकी से इतना तक बतला दिया है कि कौन सा भाव उपस्थित होने

पर उस समय आँसू किस ओर से किस प्रकार गिरेगा और किस भाव में आँसू का स्वाद किस तरह का होगा। अश्रु, कम्प और पुलक आदि तो अभ्यास करने से भी बहुतों को होने लगते हैं।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- भावावेश में रहने अथवा अन्यमनस्क रहने पर किसी को छूना न चाहिए। छूना हो तो तीन बार पुकारकर उसको सचेत करके छूना चाहिए। इस समय भी अनेक स्थानों में यह नियम प्रचलित है। अकस्मात् कोई स्पर्श कर लेता है तो उसके भावों का सञ्चार देह में हो जाता है। समूचा शरीर झुलस सा जाता है। इस नियम को सब लोग नहीं जानते इसलिए कई मौकों पर बड़े झंझटों में पड़ना होता है।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- ''कीर्तन में तीन प्रकार के भाव होते हैं सात्विक भाव आये तो उपस्थित लोगों का भी उपकार होता है। रज भाव से कभी उपकार तो कभी हानि हो सकती है। तम भाव आने पर उपस्थित लोगों को भी उत्पात सा बोध होता है। नृत्य करने वाले के पैर लगने से कई गिरकर लंगड़े हो जाते, घर की वस्तुएँ नष्ट होतीं, बच्चे डरकर चिल्लाने लगते हैं। कोई-कोई भक्ति भाव प्रकट करने के लिए शरीर संकुचित करते हैं। ऐसा भाव अभी वैष्णव समाज में प्रबल है। शरीर संकुचित करना, नृत्य करना, वाक्य संकोच करना आदि। भक्ति भाव से जो भी होता है, वह सुंदर होता है।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- ''जिस भाव से पूजा करते हो, किसी और के पास प्रकट मत करना। भजन सदा गोपनीय रखना चाहिए। प्रकट कर देने पर हानि होती है।''

एक रात के अंत में माँ काली का आह्वान करने के बाद श्री गोस्वामीजी भाव अवस्था में कहने लगे - ''नए-नए घटों की स्थापना की गई है। जीव को अब कोई भय न रह गया। मन्द, मृदुल पवन से पताका फहरा रही है। स्त्री, पुरुष, सबकी चरण धूलि ग्रहण करो। उज्ज्वल ध्वजा उड़ रही है, डंका बज रहा है। शिशुओं को अधूरी नींद में मत जगाओ अन्यथा पुनः सो जाएंगे। जो पहले आए हैं, वे पीछे जाएंगे, जो पीछे आए हैं वे पहले जाएंगे। मंगलचण्डी की पूजा हो। आनंदमयी का घट स्थापन करो। घर-घर मंगलचण्डी की पूजा करो। देह में घट स्थापना करो, पूजा करो, मान मर्यादा करो, नही तो माँ चली जाती हैं, पूजा न करो तो नहीं रहती।'' ''सभी स्त्रियों को मातृवत् देखना होगा। माँ विश्वजननी एवं गर्भधारणी माँ समान हैं। स्त्रियों में उसी माँ को देखकर प्रणाम करो। माँ आनन्दमयी को सब नारियों में देख सको या एक नारी को यदि उस दृष्टि से प्रेम कर सको कि वह देवी है, तो उसे प्रणाम करने पर पाप दूर होते हैं। ऐसा करने पर एक दिन में सिद्धि लाभ कर सकते हो। चण्डीदास ने जैसा रजकिनी से किया था। लोग दोष देते हैं, वह असत्य है, ऐसा कुछ नहीं था। नारी पर कुदृष्टि डालने वाले का मरण भला है।'' ''धूल मिट्टी हो जाना पड़ेगा। जीवन्मृत होना पड़ेगा। जब तक भीतर अहंकार की भावना है, तब तक सिर पर पहाड़-पर्वत हैं। भगवान दर्पहारी हैं - जरा भी अहंकार आने पर दोनों गालों पर थप्पड़ जड़ देते हैं। नाक कान रगड़ना पड़ता है। 'माँ रे, बाप रे' बोलने तक का मौका नहीं देते हैं। इससे यदि कुछ सुधार हुआ तो ठीक, नहीं तो गर्दन पकड़कर कहाँ फेकेंगे कोई ठिकाना नहीं।'' ''साधन-भजन करके मेरी यह उन्नत अवस्था प्राप्त हुई'', ऐसा यदि मन में विचार आया, तो खैर नहीं समझो। भगवान का विचार तराजू के काँटे के समान है। लक्ष्मणजी सीताजी के पैरों की ओर देखते थे, पर क्या वे और कुछ नहीं देख पाते थे। वे सभी के पैरों की ओर देखते थे। मनुष्य, पशु पक्षी, कीट पतंग, वृक्ष लता, सबके निकट अवनत होना पड़ेगा। ऐसा करने पर ही कृतकार्य हुआ जा सकता है। आसमान में हल्के, सफेद मेघ हों तो जैसे विद्युत दिखाई पड़ती है, वैसे ही देखा जा सकता है। तभी धनुर्धारी रामचन्द्र जी साथ रहते हैं।''

श्री गोस्वामीजी :- यथार्थ धर्म पथ कटार की धार की तरह तीक्ष्ण है। भगवान का संग लाभ हो जाने पर, दीर्घकाल तक उसका भोग करना कितना कठिन है ? हिंसा, द्वेष, परनिन्दा जैसी भावनाएँ अन्त:करण में रहने पर धर्म लाभ नहीं होता। अज्ञातवश भी यदि भगवत् भक्त का कोई कार्य या आचरण किसी और को अप्रिय या उद्वेगकारी प्रतीत हो, तो तुरंत वे भगवतसंग से वंचित हो जाते हैं। श्री रूप गोस्वामी राधाकुण्ड के तट पर बैठे हुए, श्री राधा कृष्ण की जलक्रीड़ा का लीला दर्शन कर रहे थे। गोपिकाएँ घेरकर कृष्ण को पानी छींटकर परेशान कर रही थी। श्री कृष्ण उनके घेरेबंदी से किसी तरह निकल नहीं पा रहे थे। यह सब देख रूप गोस्वामी खिलखिला कर हँस पड़े। एक वैष्णव बाबाजी थोड़ी दूर पर खड़े थे, उन्हें हँसता देखकर सोचने लगे-शायद मेरी ही टेढ़ी-मेढ़ी आकृति व लंगड़ेपन को देखकर रूप गोस्वामी जी हँस रहे हैं, अब उनके पास जाकर क्या करूंगा ? यह सोचकर बाबाजी दूर से ही साष्टांग प्रणाम करके, मथुरा की ओर चल पड़े; इधर रूप गोस्वामीजी का लीला दर्शन अचानक बंद हो गया, अचानक यह क्या हुआ ? कोई भी कारण समझ में न आया। तब उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता सनातन गोस्वामी के पास जाकर सारी बात कह सुनाई एवं इसका उपाय पूछा। सनातन गोस्वामी ने कहा - अवश्य कोई वैष्णव अपराध हो गया है अन्यथा ऐसा नहीं हो सकता। रूप गोस्वामी ने कहा कि वे तो एकान्त में लीला-दर्शन में तल्लीन थे, वहाँ कोई भी न था। सनातन गोस्वामी ने कहा-अनुसंधान करो। खोज बीन के बाद रूप गोस्वामी जी को पता चला कि एक वैष्णव, वृद्ध, लंगड़े बाबाजी मथुरा से दर्शनार्थ आए थे एवं वे दर्शन न करके ही मथुरा चले गए। रूप गोस्वामी मथुरा पहुँचे, बाबाजी को ढूंढकर साष्टांग प्रणाम करके, बिना मिले लौट जाने का कारण पूछा। तब बाबाजी ने सब कह सुनाया। रूप गोस्वामी जी ने अपने हँसने का यथार्थ कारण बाबाजी से कह सुनाया, जिसे सुनकर बाबाजी लज्जित हुए। रूप गोस्वामी जी ने अपने अज्ञान में हुए अपराध के लिये क्षमा याचना की और लौट आए। उन्हें पुन: लीला दर्शन होने लगा।

गौड़ीय वैष्णवगण श्री नरोत्तमदास को चैतन्य महाप्रभु का आवेश अवतार कहा करते हैं। उनकी वैराग्यपूर्ण प्रार्थनावली एक अनमोल रत्न की भाँति है। वे सारा जीवन व्याकुल हो रुदन करते रहे। नरोत्तम दास जी ने जब सुना कि महाप्रभु सपार्षद अन्तर्ध्यान हो गए तो सोचने लगे - हाय ! यह क्या हुआ महाप्रभु और उनके पार्षदों का संग न पा सका। अब इस जीवन का क्या प्रयोजन है ? दु:ख से वे अधीर हो उठे। महाप्रभु के गणों में से उस समय केवल लोकनाथ गोस्वामी जीवित थे। नरोत्तम दास उनके दर्शनार्थ व्याकुल हो उठे। लोकनाथ प्रभु वृन्दावन में निर्जन कुटिया में दिन-रात भजन में तल्लीन रहते थे। नरोत्तमदास राजकुमार थे। उस समय उनकी सम्पत्ति की वार्षिक आय चौदह लाख रुपए की थी। उसकी ओर न देख कर, सब कुछ त्याग कर वे पैदल श्री वृन्दावन की ओर चल पड़े। वृन्दावन पहुँचकर उन्होंने सुना कि वयोवृद्ध लोकनाथ गोस्वामी ने जीवन में न तो किसी को दीक्षा दान किया है और न ही करेंगे। नरोत्तम रो-धो कर भी उनका आश्रय न पा सके। अंत में उन्होंने तय किया कि शेष जीवन गोस्वामी जी की सेवा में ही व्यतीत करेंगे। श्री लोकनाथ गोस्वामीजी किसी की सेवा भी नहीं लेते थे। नरोत्तम दास को एक युक्ति सूझी। लोकनाथ काफी भोर में ही शौच जाते थे, तो नरोत्तम उनके शौच जाने के बाद उसे साफ कर देते थे तथा उनके रास्ते से कांटे एवं कूडा-करकट साफ कर देते थे। काफी दिन छुप-छुप कर नरोत्तम इसी प्रकार सेवा करते रहे, एक दिन लोकनाथ गोस्वामीजी को कुछ संदेह हुआ, उन्होंने शौच के बाद छुपकर देखा कि उस स्थान पर कोई व्यक्ति सफाई कर रहा है, पूछने पर भेद मालुम हुआ। नरोत्तम राजकुमार थे और इतनी सेवा। दयावान लोकनाथ प्रभु का हृदय रो उठा। उन्होंने नरोत्तमदास को बुलाकर उनकी इच्छा पूर्ण की और दीक्षा प्रदान की। उन्होंने यह भी आदेश दिया कि 'एकमात्र भगवान की सेवा-पूजा, ध्यान-धारणा में ही जीवन व्यतीत करना।' नरोत्तमदास ने वैसा ही किया। एक दिन एक प्यासा व्यक्ति नरोत्तमदास की कुटिया में आकर पानी के लिए चिल्लाने लगा। नरोत्तम दास ने पूजा से उठकर, उसे पानी पिला कर तृप्त किया। **रोज आते-जाते लोग** पानी माँगते थे, अत: नरोत्तम

ने एक पानी का घड़ा अपनी कुटी के बाहर रख दिया ताकि उन्हें भजन से बार-बार उठना ना पड़े। एक दिन लोकनाथ गोस्वामीजी उनकी कुटिया के आगे से निकले तो घड़ा देखकर उसका कारण पूछा, कारण सुनकर लोकनाथ गोस्वामी जी ने कहा - बाबा नरोत्तम, तुम घर लौट जाओ। वहाँ जाकर ठाकुरजी की प्रतिष्ठा करके सेवा, पूजा करना। अतिथिशाला खोलकर दीनदु:खी, दरिद्र, अतिथि, ब्राह्मण, वैष्णवों की विधिवत् सेवा करो। इसी में तुम्हारा यथार्थ कल्याण होगा। **एकनिष्ठ होकर भगवान की सेवा छोड़कर, लोक-सेवा की प्रवृत्ति जिनमें है, उन्हें लोक-सेवा ही करना चाहिए। अभी तुम एकनिष्ठ होकर भगवत् भजन के अधिकारी नहीं हुए हो, जब तक लोक-कल्याण की वासना है, तब तक कृष्ण प्रेम कहाँ ? नरोत्तम को गुरु विछोह सहन नहीं हुआ परन्तु गुरु आज्ञा शिरोधार्य करके रोते-रोते लौट आये।**

❊ ॐ-हरि ❊

प्रश्न :- साधारण बाउल, वैष्णव एवं जन साधारण में भी कभी खूब भक्ति भाव देखा जाता है पर हमें तो ऐसा कुछ नहीं होता। ऐसा क्यों ?

श्री गोस्वामीजी :- ''श्वास-प्रश्वास में नाम जप करना ही परम साधन है। गोस्वामियों ने लिखा है कि स्मृति, श्रुति, पंचरात्र विधि बिना एकान्तिक की हरिभक्ति भी उत्पात का कारण होती है। भक्तिरसामृतसिंधु (वैष्णवों का भक्ति दर्शनशास्त्र) में लिखा है कि बाहर के नृत्य आदि देखकर भाव का अनुमान लगाना संभव नहीं। भाव का लक्षण, कर्म करते हुए यथासमय पर विवेक, वैराग्य का उदय होता है। निष्कामभाव से कर्म करने की इच्छा होती है। ऐसा करने पर कर्म समाप्त होता है, तब विश्वास का राज्य आता है।'' ''हरिभक्ति विलास में जिस प्रणाली से साधन भजन की विधि दर्शाइ गई है, वह प्रणाली अब प्रचलित नहीं है। पहले पण्डितों के सिर के बीच में शिखा रखी जाती थी और सारा मस्तक मुण्डित हुआ करता था। महाप्रभु के समय भी सभी संभ्रांत पण्डित इसे ही वेश मान कर धारण करते थे। अब कुछ वैष्णव मात्र इस वेश को धारण करते हैं एवं मान्यता रखते हैं।''

✲ ॐ–हरि ✲

दीक्षा के पश्चात् एक दिन किरणचंद्र ने गोस्वामीजी से पूछा, ''वृंदावन-लीला का दर्शन क्यों नहीं मिलता है?'' गोस्वामीजी ने कहा, ''क्यों नहीं मिलेगा? मैं तो सर्वदा लीला-दर्शन करता हूं। यहां श्रीकृष्ण लीला आज भी पूर्ववत् चल रही है ! लीला का विराम नहीं है !! तुम लोग यह नहीं देखोगे, तो कौन देखेगा? यह 'साधन' जिन्हें मिला है, उन्हें कोई डर नहीं है। एक न एक दिन उन्हें यह नित्य लीला अवश्य दिखेगी। किस प्रकार, क्या हो जायेगा, यह उसकी चिंता के बाहर है, पर होगा अवश्य। घर के मालिक जब भी सोचेंगे कि अब दरवाजा खोलना जरूरी है, एक क्षण में दरवाजा खुल जायेगा और पूरा घर प्रकाशमान हो जायेगा। उस समय घर और घर के मालिक, दोनों आनंदपूर्वक करतल ध्वनि करेंगे। साधना करते रहो। हिसाब किताब मत करो। साधना यदि न कर सको, तो मेरे ऊपर सब छोड़ दो।''

✲ ॐ–हरि ✲

शिष्य - श्री चैतन्य चरितामृत में चैतन्य महाप्रभु के विविध प्रकार के भावों के विषय में पढ़ा है। परन्तु यहाँ जो देख रहा हूँ, इस प्रकार का वर्णन तो वहाँ नहीं दिया गया है ।

गोस्वामीजी - भाव के विकारों का वर्णन करना असंभव है ।

इसमें शरीर में अंग-प्रत्यंग टूटकर अलग हो सकते हैं और फिर स्वस्थान में जुड़ सकते हैं । श्रीमन् महाप्रभु को इस प्रकार का भाव होता था, परन्तु वे अपने भावों को संवरण करके रखते थे । उसके बाद भी जो कुछ प्रकाशित होता था उससे ही भक्तगण शोक, दु:ख से व्यथित हो जाते थे ।

✲ ॐ–हरि ✲

शिष्य - हम लोगों में से किसी-किसी को खूब भावावेश होता है, और किसी को एकदम कुछ नहीं होता। ऐसा क्यों होता है ?

गोस्वामीजी - जिनके शरीर की संरचना अनुकूल होती है, प्रबल गुरुशक्ति के प्रभाव से उनको भावावेश होता है। जिनके शरीर की संरचना अनुकूल नहीं है एवं जिनके अन्दर गुरुशक्ति प्रबल नहीं हुई है - उनका भावावेश नहीं होता ।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य - विभिन्न लोगों को विभिन्न प्रक़ार का ''भाव'' होता है, ऐसा क्यो ?

गोस्वामीजी - **''भाव'' तीन प्रकार के होते हैं । सात्विक, राजसिक एवं तामसिक । सात्विक भाव मनोमुग्धकारी होता है। इसके दर्शन करने से भी उपकार होता है। राजसिक भाव उस प्रकार मनोमुग्धकारी नहीं होता, उससे कभी–कभी लोगों का उपकार होता है। कभी नहीं होता। इस भाव में मुख्यत: तेज की क्रिया ही दिखाई पड़ती है । तामसिक भाव उत्पातजनक है । तमोगुण के नृत्य अधिकतर बिना ताल के उछल्–कूद सरीखे होते हैं । नृत्यकारी के पदाघात से घर के सामान वगैरह कभी टूट जाते हैं। दर्शकों के ऊपर गिर जाने से वे आघात पाते हैं। बालकगण भय पाकर चीत्कार करने लगते हैं ।**

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य - स्वयं चेष्टा करके भाव लाना उचित है कि नहीं ।

गोस्वामीजी - कदापि नहीं ।

❊ ॐ–हरि ❊

गोस्वामीजी :- ''भाव'' प्रगट होने पर यथासाध्य संवरण करने की चेष्टा करना ही कर्तव्य है । जब क्षमता न रहे, तब उसे होने देना चाहिए। विरूद्धवादी लोगों के सामने यथासाध्य भाव को रोक लगाना ही उचित है।

शिष्य - भाव प्रगट होने से हम लोगों को किस प्रकार का आचरण करना उचित है ?

गोस्वामीजी - **भाव की मर्यादा रखना कर्तव्य है। भाव बड़ी कठिन वस्तु है । थोड़ा सा अनादर या अमर्यादा होने से यह चली जाती है। भाव सामान्य वस्तु नहीं है। यह सहज में प्राप्त नहीं होती ।**

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - हम लोगों के बीच अनेकों के भीतर, ये सब लक्षण नहीं दिखते परन्तु संकीर्तन में उनका खूब ''भाव'' होता है, ऐसा क्यों ?

गोस्वामीजी - प्रबल गुरुशक्ति के प्रभाव से संकीर्तन में चित्त विचलित होकर इस प्रकार का भाव प्रगट होता है किन्तु परिपक्व नहीं होने से ये सब भाव स्थायी नहीं होते हैं । भजन न करने से या अपराध होने से गुरुशक्ति म्लान हो जाती है एवं भाव भी खत्म हो जाता है ।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - ''भाव'' होने से कोई लाभ होता है ?

गोस्वामीजी - हाँ, इससे शरीर के गुणत्रय नष्ट होते है एवं आत्मा भी कामक्रोधादि अशेष बंधन से विमुक्त होती है ।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - अनेक व्यक्ति भावावेश के प्रति अश्रद्धा रखते हैं । वे लोग बोलते हैं कि भावुकता से ही देश का सर्वनाश हो रहा है । इससे भारतवासी जड़-प्रकृतिग्रस्त हो रहे हैं। कर्म ही मनुष्य जीवन के महत्त्व का परिचायक है ।

गोस्वामीजी - जो लोग इस प्रकार की बातें बोलते हैं, उन्हें धर्म की कोई जिज्ञासा ही उत्पन्न नहीं हुई है। वे लोग नित्य-बद्ध जीवन में हैं, विभिन्न योनि भ्रमण करके, अशेष संसार यंत्रणा ही भोग करते हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

प्रतिदिन एक स्तवन पाठ, एक ही संकीर्तन व एक ही नाम जप विधेय है। कई लोग नित्य नए संकीर्तन एवं संगीत आदि करते हैं। जब जैसा भाव आया, उस दिन उसी प्रकार के कीर्तन गान करते हैं। इसका फल यह होता है कि साधक भाव के अधीन हो जाता है, भाव साधक के अधीन नहीं होता। भाव स्रोत बंद करना उचित नहीं है, पर भाव के वशीभूत होना भी कर्तव्य नहीं है। इससे भाव-विकास में

असुविधा और चरित्र गठन में बाधा आती है। प्रबल भावावेश आने पर उसे नि:संकोच विकसित होने देना चाहिये। लेकिन सर्वदा अपने को ऐसे भावों के अधीन नहीं कर देना चाहिये। भाव आए तो पूजा अर्चना होगी, न आए तो नहीं होगी, ऐसा ठीक नहीं। जिस दिन जो भाव आया उसी के अनुरुप कीर्तन, पाठ करने पर साधक आत्मशक्तिहीन होकर, भाव के अधीन हो जाया करता है। अर्थात् रोज एक निर्दिष्ट समय में, निष्ठापूर्वक एक निर्दिष्ट पाठ तथा कीर्तन गान करना कर्तव्य है। इस प्रकार करने पर चित्त की स्थिरता, भाव की प्रगाढ़ता एवं चरित्र बल वर्धित होता है।

ॐ-हरि

जैसा संगीत व पाठ के विषय में है, वैसे ही आसन के बारे में भी स्थिरता रहना अच्छा है। प्रतिदिन साधन के समय, एक ही आसन पर ही, एक ही कक्ष में, एक ही दिशाभिमुख होकर बैठकर, एक ही समय साधन करना चाहिये। जैसे बिस्तर या शयन गृह परिवर्तन हो जाने पर पहले पहल असुविधा होती है, अच्छी नींद नहीं आ पाती, उसी प्रकार आसन, स्थान, दिशा परिवर्तन होने से साधन में चित्त स्थिर होने में बाधा पड़ती है। प्राचीन काल के साधक धर्मजीवन के प्रारंभ से ही गुरु उपदेश से यह सब सीख लिया करते थे। आजकल के क्रांतिकारी भावों से उन शिक्षा प्रणालियों के विलुप्त हो जाने से बहुतों को मिलने वाली ये सामान्य सहायता दुर्लभ हो गई है। विशेषत: जो स्वयं के प्रयास से धर्म साधन करने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें ये साधन संकेत दें, ऐसे व्यक्ति नहीं मिलते। इन संकेतो को न जानने से जो साधन तीन सप्ताह में होता हो, वह तीन वर्षों में भी नहीं हो पाता। इन सामान्य उपदेशों के अभाव से सरल, धर्म-पिपासु व्यक्ति, दीर्घ प्रयास करने के बाद भी अपने धर्म-जीवन में विशेष उन्नति नहीं कर पाते।''

*

साधना के अनुभव

उपदेश

शिष्य :- साधना काल में होने वाले अनुभव भिन्न भिन्न क्यों होते हैं ?

श्री गोस्वामीजी - ''साधना के समय आप लोग जो कुछ देखें उसे कल्पना न समझ लें। यह साधन ऐसी ही वस्तु है कि यह सब अवश्य दिखाई पड़ेगा। पहली अवस्था में ये सब दर्शन चञ्चल और क्षणिक होते हैं; चित्त की निर्मलता और स्थिरता के साथ-साथ ये सब धीरे-धीरे स्पष्ट और दीर्घकाल तक स्थायी होते देखे जाते हैं। पहले पहल एक तस्वीर की तरह, पट की तरह, पल भर दिखाई दिया करते हैं; फ़िर धीरे-धीरे वे साफ मूर्ति के रूप में सजीव दिखाई पड़ते हैं; बात-चीत भी सुन पड़ती है; उनके साथ बातें करने पर उत्तर भी मिलता है। न केवल सजीव दर्शन ही होते हैं बल्कि उनका हाथ-पैर हिलाना और संकेत आदि भी दीख पड़ता है। इस साधन से सिर्फ हमारे ही देश के देवी-देवताओं के दर्शन नहीं होते बल्कि अब तक किसी भी देश में मनुष्यों ने भगवान् की जिस-जिस रूप में पूजा की है- फिर चाहे आपको उसका पता हो चाहे न हो - साधन के प्रभाव से धीरे-धीरे वे सभी रूप सजीव दीख पड़ेंगे। पहले यूनान, रोम और अन्यान्य देशों की, यहाँ तक कि जङ्गली और पहाड़ों की असभ्य जातियों ने भी अब तक भगवान् की पूजा, जिसने जिस रूप में की है और जो इस समय कर रहे हैं वे सब रूप प्रकाशित हो जायेंगे। मैं ये कल्पना की बातें नहीं कह रहा हूँ, ये सब सच हैं, प्रत्यक्ष देखी हुई हैं। पहले से ही यदि इन कल्पनाओं का स्मरण कर इन्हें तुच्छ समझा जाय, बिल्कुल उड़ा दिया जाय तो सहज मार्ग हाथ से निकल जायगा। कल्पना समझिये या और कुछ समझिये, यह सब सामने आवेगा। हाँ, यह सब हमेशा नहीं दीख पड़ता। इसका कारण यह है कि हमारा चित्त हर वक्त, एक अवस्था में नहीं रहता; चित्त के स्थिर होते ही दर्शन स्पष्ट हो जाते हैं। चित्त को स्थिर रखने के लिए श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का जप करना चाहिए, पवित्र आचार से रहना चाहिए। नाम में रुचि होने और चित्त निर्मल होने पर एक-एक करके वासना और कामना पीछा छोड़ देती हैं। जिस परिमाण में वासना और कामना का त्याग हो जायगा उसी परिमाण में दर्शन आदि स्पष्ट हो जायँगे। उन दर्शन आदि की अवस्था से ही योग का आरम्भ होता है। योग का एक

बार आरम्भ हो जाने पर फिर बहुत समय नहीं लगता। धीरे धीरे सब अद्भुत विषय प्रत्यक्ष होने लगते हैं। जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती उनको प्रत्यक्ष देख करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।''

*** ॐ-हरि ***

शिष्य - साधन करते समय जिन अनेक प्रकार की ज्योतियों, आकृतियों अथवा छायाओं के दर्शन होते हैं वह सब क्या है? उस समय क्या करना चाहिए?

श्री गोस्वामीजी - जिसका भी दर्शन हो उसी का खूब आदर करना चाहिए, अनादर भूलकर भी न करे। दर्शन होने पर उन सबकी खूब भक्ति करके सम्मान और पूजा करनी चाहिए।

शिष्य - साधन करते-करते जो अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं वे यदि किसी प्रकार के अपराध के कारण जाती रहें तो क्या फिर साधन करने से उन सब की प्राप्ति हो सकती है?

श्री गोस्वामीजी - हाँ, अवश्य। ठीक-ठीक रीति के अनुसार साधन करने से फिर प्राप्त हो जाती हैं।

*** ॐ-हरि ***

शिष्य - अनेक बार मधुर मनोहर ध्वनि सुनाई देती है, यह क्या है?

श्री गोस्वामीजी - इसे अनाहत ध्वनि कहते हैं। यह शब्द साधकों के शरीर से निकलता है। यह इतना मधुर है कि साँप सुन ले तो एकदम साधक की देह पर चढ़ जाय।

*** ॐ-हरि ***

शिष्य - हम लोगों का लक्ष्य क्या है? हम लोगों के सामने भगवान् किस रूप में प्रकट होंगे?

श्री गोस्वामीजी - हमने कुछ घटनाएँ ऐसी देखी हैं; किसी-किसी अच्छे ब्रह्मसमाजी ने बहुत दिनों तक उपासना आदि करके हमसे आकर कहा है, 'महाशय, अमुक देवता का भाव और रूप क्यों मन में आ

जाता है? कभी तो उसका चिन्तन नहीं करते, कल्पना तक नहीं करते; फिर भी ऐसा क्यों होता है? हमने उनकी बातों का पता लगाकर देखा है कि जिनका जो कुलदेवता है उसी देवता का रूप और भाव उन लोगों के मन में आ जाता है। पितृपितामह आदि वंश के पूर्व पुरुषों से जो भाव रक्त मांस के साथ हम लोगों के भीतर भिदे हुए हैं, वे क्या सहज में हटते हैं? ब्रह्मोपासक होने से क्या होगा? ब्रह्म जब प्रकट होंगे, तब वे किसी रूप और किसी भाव में ही तो प्रकट होंगे। अनेक स्थानों पर देखा गया है कि जिनके वंश का जो देवता है उसी के रूप में ब्रह्म पहले उसके आगे प्रकट हुए हैं, फिर उससे अन्यान्य देव-देवी और चाहे जो कुछ धीरे-धीरे प्रकट होता रहता है।

❊ ॐ-हरि ❊

पहली अवस्था में ब्रह्मज्ञान ही होने की आवश्यकता है। ब्रह्मज्ञान हुए बिना किसी प्रकार ठीक तत्त्व जानने का अधिकार नहीं होता। इसी से ऋषि लोग प्रथम अवस्था में ब्रह्मज्ञान ही सिखाते थे। ब्रह्म के सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप, पवित्र स्वरूप, मङ्गलमय, निर्विकार, निराकार इत्यादि भावों का ध्यान करते-करते जब क्रम से उसके भीतर होकर अलौकिक रूप की अद्‌भुत छटा प्रकट होने लगती है तभी वह धीरे-धीरे समझ में आता है, पकड़ में आता है।

पहली अवस्था में जो लोग ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं उन्हें फिर तत्त्वों को ग्रहण करने में अधिक कठिनाई नहीं होती। वे लोग बड़ी सरलता से ग्रहण कर सकते हैं और ब्रह्मज्ञान हुए बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता। अतएव पहली अवस्था में ही ब्रह्मज्ञान का हो जाना अच्छा है, ऐसा हो जाने से सभी मार्ग सरल हो जाता है। वही करना चाहिए जिससे ब्रह्मज्ञान हो जाय, वही करो।

❊ ॐ-हरि ❊

श्री गोस्वामीजी - भक्त का वियोग होने से उन लोगों को जैसी जलन होती है उसकी और कहीं तुलना नहीं है। आत्मा के साथ जिनका सम्बन्ध हो जाता है उनका विच्छेद होने में जो यन्त्रणा होती है उसकी

कल्पना तक साधारण मनुष्य नहीं कर सकते। उस जलन की आँच तक को सह लेने की सामर्थ्य सर्व-साधारण में नहीं है। बड़ी बेढब जलन होती है।

शिष्य - जो लोग भक्त या महापुरुष हैं, उनके शोक का कोई लक्षण क्या बाहर प्रकट नहीं होता ?

श्री गोस्वामीजी - कभी प्रकट हो जाता है और कभी बिल्कुल ही छिपा रह जाता है। महाप्रभु का अन्तर्धान होने के पश्चात् रूप, सनातन आदि महाप्रभु के भक्तों में बाहर किसी प्रकार का शोक चिह्न न देखकर बहुतों के मन में सन्देह हुआ था कि भला ये लोग किस तरह के भक्त हैं! एक दिन एक वृक्ष के नीचे भागवत का पाठ हो रहा था। सभी लोग भागवत् सुन रहे थे। अकस्मात् उस वृक्ष का एक सूखा पत्ता रूप गोस्वामी के शरीर पर गिरा। ज्योंहीं वह उनके शरीर पर गिरा त्योंही भक् से जल उठा। इस घटना को देखने से लोगों की समझ में आया कि महाप्रभु के विरह की आग में उनके भक्त लोग किस तरह दग्ध हो रहे हैं।

शिष्य - ऐसी कितनी ही बातें सुनी जाती हैं, किन्तु वास्तव में क्या वैसा ही होता है ? शोक में क्या मनुष्य के शरीर से सचमुच आँच निकलती है ?

श्री गोस्वामीजी - अवश्य निकलती है। श्रीवृन्दावन में उनका (योगमाया ठाकुरानी का) शरीरान्त होने के बाद कुतू बहुत ही बैचेन हो गई। उसे ढाढस बँधाने के लिए मैंने ज्योंही उसकी पीठ पर हाथ रक्खा त्योंही कुतू 'अरेरे' करके चौंककर हट गई। मैंने उसी समय समझ लिया। थोड़ी देर में देखा कि कूतू की पीठ पर पाँच उँगलियों का निशान, आग से जले हुए फफोले की तरह, पड़ गया है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- ''साधक साधन की अवस्था में तो सभी काम विचारपूर्वक करेगा। क्या सिद्ध हो जाने पर फिर विचार करके कार्य न करेगा ?''

श्री गोस्वामीजी :- सिद्ध पुरुष के पास जो-जो विषय आवेंगे उनको वह भगवान् के सामने रख देगा। वह जिन विषयों में भगवान्

की ज्योति सुस्पष्ट रूप में पड़ती देखे, उन्ही को कर्तव्य मानकर स्वीकार कर ले। सिद्ध महापुरुष लोग सभी कार्यों को भगवान् के इङ्गित के अनुसार किया करते हैं। वे अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं करते। वे लोग तो भगवान् की इच्छा के पीछे खड़े होकर केवल निशान ले लेते हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - ''कैसे समझेंगे कि धर्म ठीक-ठीक प्रकृतिगत हो गया है या नहीं !''

श्री गोस्वामीजी :- आग जिस प्रकार सभी दशाओं में एक सी रहती है, किसी भी दशा में उसकी गर्मी (उत्ताप) नष्ट नहीं होती; उसी प्रकार आपत्ति-विपत्ति, आनन्द-उल्लास, किसी भी हालत में जिसका धैर्य नष्ट नहीं होता, सत्य और धर्म एक ही सा बना रहता है; विनय और समता में तनिक भी भावान्तर नहीं होता, समझ लेना कि उसी को धर्म प्रकृतिगत हो गया है। सभी अवस्थाओं में धर्म, धैर्य, विनय और मित्रता के ठीक रहने पर यथार्थ धर्म प्राप्ति हुई समझना। विपत्ति-सम्पत्ति में, निन्दा और प्रशंसा में ही परख हो जाती है कि मनुष्य को यथार्थ धर्म प्राप्त हुआ है कि नहीं।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - ''किसी वस्तु के ऊपर किसी की आसक्ति थी, यह उस वस्तु को देखने से ही कैसे मालूम हो जाता है?''

श्री गोस्वामीजी :- जिस वस्तु में जिसकी आसक्ति होती है उस वस्तु में उस व्यक्ति की आकृति की एक छाप पड़ जाती है। वस्तु की ओर देखते ही वह आकृति भली भाँति दीख पड़ती है। केवल साफ वस्तुओं में ही नहीं; मनुष्य जिस वस्तु को देखता है उसी में उसकी एक आकृति पड़ जाती है। स्वच्छ वस्तु में जो आकृति बन जाती है उसको तो सभी लोग देख लेते हैं। दर्पण के पास खड़े होने से उसमें चेहरे का प्रतिबिम्ब पड़ता है और हट जाने से वह भी नहीं रहता, यह ठीक है; किन्तु फोटो लेते समय काँच पर जो फोटो उतरता है वह

पक्का हो जाता है, मिटता नहीं है। उसका कारण यह है कि काँच में जो अर्क लगा रहता है उसी में आकृति बद्ध हो जाती है। इसी प्रकार साधारण रीति से वस्तुओं में जो आकृति झलकती है वह स्थायी नहीं होती। जिस वस्तु में आसक्ति रूपी अर्क लगा रहता है उसमें जो चेहरे की छाया पड़ जाती है तो फिर वह मिटती नहीं है - पक्की हो जाती है। जिनकी दृष्टि तनिक साफ हो गई है, वे तुरन्त ही उसको देख लेते हैं। ये तत्त्व जब तक प्रत्यक्ष नहीं हो जाते, तब तक अवगत नहीं हो सकते; यों सुन लेने से कुछ समझ में नहीं आता। जिस वस्तु पर लोभ होगा उसी पर आकृति अंकित हो जायेगी, यह समझ रक्खो।

शिष्य - ''आसक्ति होने से वस्तुओं में जो चेहरा अंकित हो जाता है, वह कब तक बना रहता है?''

श्री गोस्वामीजी :- जब तक जिस विषय में आसक्ति रहेगी तब तक उसमें आकृति स्थायी बनी रहेगी। आसक्ति नष्ट हो जायेगी तो फिर आकृति भी न रहेगी। फोटो का अर्क उड़ जाने पर जिस प्रकार चित्र भी समाप्त हो जाता है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - ''क्या निर्गुण परब्रह्म ही साकार होकर लीला करता है? महाप्रलय में यह सब क्या उसी परब्रह्म में लीन हो जाता है?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, महाप्रलय में कुछ भी नहीं बचता। क्षिति, अप, तेज, मरुत, व्योम, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह, मनुष्य, पशु, पक्षी, पतङ्ग, सभी कुछ अद्वय ब्रह्म का ही परिणाम है। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। श्रुति का कथन है- 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।''जिससे सब कुछ उत्पन्न हुआ है' यही कहा है, किन्तु यह नहीं कहा कि 'जिसके द्वारा हुआ है।' पञ्चमी विभक्ति का उपयोग किया है; करणार्थ तृतीया का नहीं। 'जिससे,' जैसे मृतिका से घट, सुवर्ण से कुण्डल और समुद्र से तरङ्ग इत्यादि। मृतिका और घट एक ही वस्तु हैं, मृतिका का ही एक परिणाम घट है, सुवर्ण का ही एक का प्रकार परिणाम कुण्डल है और समुद्र का ही परिमाण तरङ्ग

है। ऐसा होने पर भी घट को मृतिका और तरङ्ग को समुद्र नहीं कह सकते; घट ही कहना होगा, तरङ्ग ही कहना होगा। इसी प्रकार ब्रह्म अद्वय है और चराचर अनन्त ब्रह्माण्ड उसी का परिणाम है। इसी से ऐसे दृष्टान्त देकर समझाया है; कुम्हार और घट का दृष्टान्त नहीं दिया। जो कुछ भी है सब ब्रह्म है। पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, वृक्ष, लता, और यह लाठी, माला, अस्थि, मांस, मैं, सभी तो ब्रह्म है। इसी को ब्रह्मज्ञान कहते हैं। **यह अद्वय ब्रह्मज्ञान होने से ही सगुण ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान होता है। निर्गुण अद्वय तत्त्व की स्फूर्ति हुए बिना सगुण साकार त्तत्व को समझना क्या साध्य है? साकार क्या ऐसी सहज बात है?** श्रीमद्भागवत का वचन है-

वदन्ति तत्तत्त्वविद्स्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥''

फिर यह निर्गुण परब्रह्म ही साकार होकर लीला करता है। काकभुशुण्डी तक को संशय हो गया था। 'वह निर्गुण परब्रह्म ही क्या ये दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र हैं ? वही क्या यहाँ अयोध्या में दशरथ के घर में हैं ?'' एक दिन श्रीरामचन्द्र आँगन में हाथ में लिये कुछ खा रहे थे, उसका थोड़ा सा टुकड़ा नीचे गिर पड़ा, उसको उन्होंने उठा लिया! काकभुशुण्डी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने मुस्कुराकर उनको पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया। भुशुण्डी डर कर भागे। किन्तु हाथ उनके पीछे-पीछे चला। काकभुशुण्डी समूचे ब्रह्माण्ड में भागते फिरने लगे किन्तु श्रीरामचन्द्र का हाथ पीछे-पीछे था। अन्त में और कहीं स्थान न पाकर वे फिर दशरथ के आँगन में लौट कर उसी जगह आ गये। उनको देखकर श्रीरामचन्द्र तनिक हँसे। तब भुशुण्डी ने श्रीरामचन्द्र के मुख के भीतर प्रवेश किया। उन्होंने श्रीरामचन्द्र के श्रीमुख के भीतर अनन्त ब्रह्माण्ड, लोक, लोकान्तर, चौदहों भुवन, सभी कुछ वर्तमान देखा। कितने ही ब्रह्माण्डों में ऐसे ही सैकड़ों राम लीला कर रहे थे। स्वयं अपने को भी भुशुण्डी ने ऐसे ही स्थान पर देखा। यह सब देखने से भुशुण्डी को बड़ा अचम्भा हुआ। तब श्रीरामचन्द्र फिर तनिक हँसे। इसी समय भुशुण्डी मुख के बाहर निकल आये। यह सब अपनी आँखों से देख लेने पर भी उनका संशय दूर न हुआ। तब श्रीरामचन्द्र ने उस

पर कृपा की; अद्वय ब्रह्मतत्त्व और सगुण साकार लीलातत्त्व उनके लिए प्रकट हो गया। तब कहीं सारी बात भुशुण्डी की समझ में आई। खण्ड प्रलय में एक ब्रह्माण्ड के लीन हो जाने पर भी असंख्य ब्रह्माण्ड बने रहते हैं; किन्तु महाप्रलय में एक मात्र ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बचता। ब्रह्म के अतिरिक्त जब दूसरी वस्तु ही नहीं है तब यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि उस समय और कुछ नहीं रहता। ब्रह्म नित्य है, अत: सब कुछ नित्य है।

ॐ–हरि

श्री गोस्वामीजी :- जो भी दर्शन हो तब उसका विशेष सम्मान, भक्ति करना। दर्शन के समय कुछ मन में मत लाना। खूब भक्ति करना, कोई संदेह मन में नहीं लाना। किसी के पास कुछ प्रार्थना मत करना। वे स्वयं ही जो करें वही अच्छा। प्रार्थना करने पर अनिष्ट होता है, यह बात याद रखना।

ॐ–हरि

श्री गोस्वामीजी :- आसन पर बैठने से क्या हर समय उठा जा सकता है। कितनी अद्‌भुत् अवस्थाएँ आती हैं। नए-नए तत्त्व प्रकट होते हैं। तब आसन छोड़ो तो वह अवस्था खोनी पड़ती है। इसीलिए मृत्यु स्वीकार करके भी महात्मागण आसन नहीं छोड़ते, आसन पर स्थिर रहते हैं।

ॐ–हरि

श्री गोस्वामीजी :- केवल आम से क्यों किसी भी वृक्ष के नीचे निष्ठापूर्वक दीर्घकाल तक हवन यज्ञ, साधन-भजन, तपस्या की जाय या महापुरुषों का आसन रहे तो वे वृक्ष मधुमय हो जाते हैं। समय-असमय पर इन वृक्षों से मधु टपकता है। खूब भक्ति सहित पूजा करने पर जल भी मधुमय हो जाता है। शान्तिपुर मे गंगा जल में मधुकीट देखकर संदेह हुआ था, जल पीकर देखा कि मीठा तथा मधुर गंधयुक्त है। मैंने कई पुराने नीम तथा इमली के वृक्षों से झरने के समान मधु झरते देखा है।

कमण्डल भरकर पान भी किया है। बाद में अनुसंधान से जान पाया कि उस वृक्ष के नीचे किसी सिद्ध महापुरुष का आसन था।

यह कहकर श्री गोस्वामीजी यह वेद की वाणी करने लगे - ॐ मधुवाताऋतायते, मधु क्षरन्ति सिद्धव:।। माध्वीर्ण सन्तोषधी:।। ॐ मधुनक्तमूतोषसो मधुमत् पार्थिव रज:।। मधु व्दौरस्तु न: पिता।। ॐ मधुमान्नो वनस्पतिर्म्मधुमां अस्तु सूर्य:।। माध्वीर्गावो भवन्तु न:।। ॐ मधु, ॐ मधु, ॐ मधु, ॐ मधु।।

*** ॐ-हरि ***

शिष्य :- रात्रि के शेष भाग में देखा, आज्ञा चक्र में मन केन्द्रित कर नाम कर रहा हूँ। अचानक झिलमिलाता अपना ही रूप प्रकट हो गया। ठीक जैसे दर्पण में अपना मुँह स्वयं देख रहा हूँ। शुभ्रवर्ण, मुण्डित, मस्तक, शिखाधारी ब्राह्मण मेरी ओर देख रहे हैं, ऐसा स्पष्ट देखा। देखते ही मैं आनंद विह्वल हो गया। कुछ देर बाद मुझे बाह्य ज्ञान हुआ, जाग उठा। सारा दिन प्रफुल्लित व सरस रहा।

श्री गोस्वामीजी :- ऐसा दर्शन पाना अच्छा है। जब जाग्रत अवस्था में ऐसा दर्शन हो तभी ठीक हुआ समझो। इसे आत्मदर्शन कहते हैं। काम क्रोध के रहते जो आत्मदर्शन होते हैं वे स्थाई नहीं होते। समय समय पर केवल दर्शन होते हैं। रिपु सकल के दमन के बाद जो आत्मदर्शन हों, वह छूटता नहीं, स्थाई होता है।

शिष्य :- काली अस्पष्ट छाया के समान, अंगूठे के आकार की, मनुष्य की प्रकृति, सर्वथा इधर-उधर देख पाता हूँ। वह भी क्या ऐसा ही है।

श्री गोस्वामीजी :- नहीं वह ऐसा नहीं, वह भिन्न है। आत्मदर्शन नहीं है।

शिष्य :- हवन की अग्नि में गेरुआ पहने अंगूठे के समान मनुष्य आकृति देखता हूँ।

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, जितना चित्त शुद्ध होगा, स्पष्ट देख पाओगे। शिष्य-उज्ज्वल शुभ्र ज्योति सदा आँखों में लगी रहती है। कभी-कभी अत्यंत उज्ज्वल देखता हूँ। फिर कभी म्लान भी हो जाती है, ऐसा क्यों ?

श्री गोस्वामीजी :- चित्त जितना शुद्ध व पवित्र होगा, ज्योति उतनी ही उज्ज्वल दिखेगी। चित्त मलिन या अपवित्र होने पर ज्योति अस्पष्ट होकर क्रमश: अदृश्य हो जाती है। चित्त शुद्धि के साथ उज्ज्वल होकर क्रमश: नाना प्रकार की ज्योति दिखाई देती है।

* ॐ–हरि *

आकांक्षा पूर्ण होने लगे तो ही सर्वनाश है।

* ॐ–हरि *

योग का एक अंग है प्रत्याहार। प्रत्याहार का अर्थ है मन दूसरी ओर भागे तो उसे लौटा लाना। नाम जप के साथ जो अवस्था मिले या दर्शन हो उसे धारण किये रहना धारणा है। एकाएक अवस्था नहीं खुल जाती। क्रम से ये सब लाभ होता है। दृष्टि साधन से मन स्थिर होता है। विधिवत् वृक्ष, आकाश, जल, अग्नि की ओर दृष्टि साधन करना चाहिये। आत्मा प्रस्तुत हो तब भगवत् दर्शन प्रारंभ होता है। फिर संशय नहीं रह जाता। काम, क्रोध, वासना, कामना कुछ नहीं रह जाती। ईश्वर-दर्शन के पूर्व महापुरुष तथा देवी-देवताओं के दर्शन होते हैं। कुलदेवता या जो जिस देवता को चाहता है पहले वे ही दर्शन देते हैं। वेद, पुराण कैसे बने? सृष्टि कैसे बनी ? यह सब प्रकट होते हुए माया चली जाती है। तब सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है। क्रमश: भगवत् लीला दिखाई पड़ती है। भगवान ही चरम लक्ष्य हैं।

* ॐ–हरि *

शिष्य :- कौन सी ज्योति कौन से गुण की होती है, कौन सा सर्वश्रेष्ठ है ?

श्री गोस्वामीजी :- क्षिति की पीतवर्ण, अप की शुभ्रवर्ण, तेज की लाल, मरुत की नीली, व्योम की ज्योति गहरे कृष्ण युक्त नीलवर्ण की होती है। अपज्योति-शुभ्रवर्ण-सात्त्विक सर्वश्रेष्ठ है। तेज की ज्योति लाल-रजोगुणी है। मरुत की नीली ज्योति-रज: सत्व। व्योम की - तम: सत्व। किसी एक भूत तत्त्व पर दृष्टि साधन करने पर सभी क्रमश: दृष्टिगोचर होती हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''जिस तरह चल रहे हो, जैसे पूजा-ध्यान कर रहे हो, उसी प्रकार करते चलो। इसी से क्रमश: सब होगा, कुछ लोग कहते हैं, अलौकिक कुछ देखने पर ही विश्वास हो जाएगा, पर वह एक भूल है। कई दिनों तक बहुत कुछ दिखाने पर भी लोगों को कुछ भी न हुआ, बल्कि हानि हुई। विश्वास एक ऐसी वस्तु है जो कुछ देखने सुनने से नहीं बल्कि भगवान की कृपा सें प्राप्त होता है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''अपने साधन भजन की बात कहीं भी कह देने से अनिष्ट होता है। वह अवस्था नहीं रह जाती, अत: सावधान रहना। जिसका जैसा भजन है, वे निष्ठापूर्वक करते रहें। प्रत्येक साधक अपनी मर्यादा रक्षा करके चले। यही शिववाक्य है।''

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- शब्द तन्मात्रा का कृष्ण वर्ण में - स्पर्श का नीलवर्ण में - रूप का रक्तवर्ण में - रस का श्वेत वर्ण में - गंध तन्मात्रा का पीत वर्ण में, रूप ध्यान करना होता है।''

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- जो चक्र हमारे शरीर में हैं, उनके साथ आत्मा का कोई संबंध है या नहीं ?

श्री गोस्वामीजी :- ''शरीर में छ: चक्र हैं। उनके साथ बाहरी शक्ति का योग है। स्थूल शरीर में, सूक्ष्म शरीर में तथा कारण शरीर में और फिर आत्मा में । ग्रंथ पढ़कर या उपदेश सुनकर इनके यथार्थ तत्व नहीं समझे जा सकते।''

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- एकाग्र होकर नाम करते हुए मुझे तंद्रा सी आती है -

भीतर स्पष्ट ज्ञान रहता है। नाम कर रहा हूँ, यह भी समझता हूँ। यह कैसी अवस्था है ? ऐसा क्यों होता है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''ऐसी अवस्था हो तो तुम भग्यवान हो। इसे योगतंद्रा कहते हैं। यह साधारण निद्रा नहीं है। योगनिद्रा होने पर क्रमश: समाधि अवस्था प्राप्त होती है।''

प्रश्न :- योगनिद्रा के क्या लक्षण हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- ''पहले, नाम करते-करते सभी इन्द्रियाँ क्रिया रहित होकर, निद्रा की भाँति अवस्था होगी। दूसरे, निद्रा भाव आने पर भी बीच-बीच में एक प्रकार की भाषा में कुछ बातें सुनाई पड़ेंगी। तृतीय, भविष्य की अवस्था का स्वप्न की भाँति दर्शन होगा। शरीर का ज्ञान न रहने पर भी भीतर पूरा ज्ञान रहेगा।'' सारी रात न सोकर, यदि कोई चार बजे के बाद आधे घंटे के लिए सोया करे, तो जीवन की अनेक घटनाओं की जानकारी पा सकता है।''

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- ''जो लोग साधुसंतों के पास उपदेश सुनते हैं, परन्तु उपदेश के अनुसार कार्य नहीं करते, वे चकमक पत्थर की भाँति हैं। इस पत्थर को जल के भीतर रखो या हजार घड़े जल डालो, परन्तु जब भी रगड़ोगे, तो आग निकलेगी ही। जब तक मन की क्रिया रहती है, तब तक स्त्री-पुरुष या विषय में आकर्षण रहता है। मन लय हो जाने पर कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ रहें भी तो उनका कार्य दूसरी तरह का होता है। स्त्री पर आकर्षण नहीं रह जाता । मैं इस विषय पर शास्त्र की बात नहीं करता। पहले मैं भी कामी, क्रोधी था। ये दो रिपु बड़े ही प्रबल थे। ब्राह्म समाज में कितना यत्न किया, पर समाप्त न हो सका। साधन ग्रहण के बाद भी बहुत कष्ट पाया। उस बार जब सारी रात जागना शुरु किया। तब क्यों जागता था यह नहीं जानता, पर सोने की इच्छा ही नहीं होती थी। एक दिन वृन्दावन में भोर के समय सोया था, उठने पर देखा मेरे पूरे शरीर पर हजारों की संख्या में खटमल थे, पर मुझे कुछ बोध नहीं हो रहा था, तभी देखा मुझे काम, क्रोध आदि का भी बोध न रह गया। एक ही बेड़ा था, जिसके इस पार मैं और दूसरी ओर श्रीधर थे। श्रीधर की

ओर एक भी खटमल नहीं था। उसी समय शरीर के सारे परमाणु बदल रहे थे। पहले सुना था ऊर्ध्वरेता होने पर बड़ा ही लाभ होता है। यत्न करते हुए जब उसकी क्रिया प्रारंभ हुई, तब देखता हूँ, बड़ा कष्ट है। मेरुदण्ड की अस्थि मानो कोई आरे से काट रहा है, जब तक मार्ग प्रशस्त न हो जाय।''

※ ॐ–हरि ※

प्रश्न - महात्माओं की उपस्थिति किस प्रकार समझी जावेगी ?

उत्तर - कभी फूलों की सुगंध, कभी होम, कभी गांजा - इस प्रकार सुगंध से, महात्मा लोग अपनी आगमन वार्ता, साधकों को अनुभव कराते हैं। साधना के समय इस प्रकार की सुगंध का अनुभव करने पर समझना चाहिए कि किसी महात्मा का आगमन हुआ है। साधना के समय इस प्रकार की सुंगध का अनुभव क्या कभी नहीं हुआ है ?

※ ॐ–हरि ※

श्री गोस्वामीजी अकसर मग्न होकर कितना कुछ कहते हैं, वह न तो हिन्दी है, न फारसी , न संस्कृत है, न अंग्रेजी। परिचित कोई भाषा ही नहीं है, जो पहले सुना हो। कुछ तो संस्कृत से मिलता जुलता है। पर कौन सी भाषा है, कुछ समझ नहीं पाता? श्री गोस्वामीजी-ओह ! तुमने सुना है ? समझोगे कैसे ? वह पृथ्वी की भाषा नहीं है। गोलोक की श्याम भाषा है। उसी भाषा में वहाँ वार्तालाप होता है। संस्कृत देवभाषा है।

※ ॐ–हरि ※

सावधान ! प्रार्थना करते ही वह स्वीकृत हो जायेगी। किसमें भला बुरा है; जब तक नहीं समझते तब तक प्रार्थना करने में भी सावधान रहा करो।

※ ॐ–हरि ※

गोस्वामीजी निद्रा तो लेते ही नहीं थे, पूरा स्नान भी नहीं करते थे। साल में शारदीय पूजा के समय महाअष्टमी के समय स्नान करते थे । एक दिन गर्मी अधिक पड़ने पर शिष्य ने उनसे पूछा -

शिष्य - आप अच्छी तरह नहाते क्यों नहीं हैं ? स्नान करने से शरीर स्निग्ध होता है । मैं तो एक दिन भी बिना स्नान के रह नहीं पाता ।

गोस्वामीजी - मुझे स्नान की जरूरत नहीं पड़ती ।

शिष्य - ऐसा क्यो ?

गोस्वामीजी - रोज सुधा का क्षरण होता है, इसलिए स्नान की आवश्यकता नहीं होती, शरीर सर्वदा स्निग्ध रहता है ।

शिष्य - ''सुधा'' क्या वस्तु है ?

गोस्वामीजी - **भक्ति की अधिकता में मस्तिष्क से जिह्वा में एक प्रकार का रस टपकता है, उसे ''सुधा'' कहते हैं । इस सुधा (अमृत) की ऐसी मादक शक्ति है कि एक बूँद खाने से, चार - पाँच बोतल ब्रान्डी (शराब) से ज्यादा नशा सा होता है । इसे पान करने से शरीर अचल सा हो जाता है परन्तु पूर्ण ज्ञान रहता है। अनेक दिन तक अनाहार में भी रहा जा सकता है। तन्त्र शास्त्र में इसे ही ''सुरा'' कहा गया है ।**

शिष्य - यह सुधा मस्तिष्क से किस प्रकार जीभ में टपकता है ?

गोस्वामीजी - तालुदेश की अस्थियों के बीच अति क्षुद्र छिद्र हैं, उन छिद्रों में सुधा टपक कर जिह्वा में गिरता है ।

शिष्य - इस सुधा का स्वाद किस प्रकार का होता है ?

गोस्वामीजी - भक्ति के भाव के साथ इसका स्वाद बदलता है। कभी खारा, कभी खारा-मीठा, कभी कड़्वा, कभी केवल मीठा होता है ।

शिष्य - इस सुधा में यदि मादक-शक्ति है तो क्या इससे शरीर में कोई अनिष्ट नहीं होता ?

गोस्वामीजी - नहीं, इससे शरीर में अनिष्ट तो होता ही नहीं है बल्कि शरीर स्वस्थ रहता है । भूख भी नहीं लगती एवं शरीर गरम रहता है ।

शिष्य - इस ''सुधा पान'' करने का क्या उपाय है ?

गोस्वामीजी - केवल श्वॉस-प्रश्वाँस में नाम करना पड़ता है। इसे छोड़कर दूसरा कोई भी उपाय नहीं है।

उ
प
दे
श

*

श्री-विग्रह
और
देवी-देवता

श्री गोस्वामीजी - जब तक श्रीवृन्दावन में हो, प्रतिदिन मंदिर में जाकर ठाकुरजी के दर्शन कर आया करो, लाभ होगा।

शिष्य - ठाकुरजी तो पाषाण की प्रतिमा है, पाषाण प्रतिमा के दर्शन करने से भला क्या लाभ होगा? आपके साथ जाकर कई बार तो दर्शन कर आया हूँ। समझ में नहीं आया कि इससे क्या लाभ हुआ?

श्री गोस्वामीजी - हजारों मनुष्य जिन स्थानों में भगवद्बुद्धि से श्रद्धा-भक्ति अर्पण करते हैं वहाँ पर उन भावों का एक योग बना रहता है। उन स्थानों में जाने से ही भीतर के धर्मभाव जाग उठते हैं। यह क्या थोड़ा लाभ है?, और श्रीवृन्दावन के विग्रह तो साधारण पाषाण मूर्तियाँ नहीं हैं।

शिष्य- श्रीवृन्दावन के मन्दिरों के ठाकुरजी क्या बातचीत करते हैं? हाथ पैर हिलाते डुलाते हैं? सभी लोग कहते हैं कि यहाँ के ठाकुरजी जाग्रत हैं तो किस तरह के जाग्रत हैं?

श्री गोस्वामीजी :- जिनके उस तरह के कान और आँखें हैं, वे ठाकुरजी का हाथ पैर हिलाना भी देखते हैं और उनकी बातचीत भी सुन लेते हैं। यह सब कहने से भला साधारण आदमी विश्वास कर सकेंगे?

* ॐ-हरि *

शिष्य - ''श्रीरामचन्द्र तो स्वयं भगवान् हैं। वे सब कुछ जानते थे, सब कुछ कर सकते थे, फिर उन्होंने दुर्गापूजा क्यों की?''

श्री गोस्वामीजी :- नरलीला जो थी। यहाँ जानने-समझने और कर सकने या न कर सकने का कोई प्रश्न नहीं। वे यदि पूर्णब्रह्म की तरह सब कुछ करें तो फिर उन्होंने अवतार क्यों लिया? वहीं से तो सब कुछ कर सकते थे। उनके लिए असाध्य ही क्या है? जिनकी इच्छा से सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है वे पल भर में क्या नहीं कर सकते? वे जिस समय जिस उद्देश्य से अवतार लेते हैं, उस समय उसके अनुरूप ही आचरण करते हैं। लीला के समय वे अपनी माया शक्ति के द्वारा ही अपने को स्वयं आच्छन्न रखते हैं, जैसे कि रेशम का कीड़ा अपने तागे में आप ही आबद्ध हो जाता है। उनकी लीला को समझने की शक्ति किस में है? केवल उनकी कृपा होनी चाहिए।

✽ ॐ–हरि ✽

श्री गोस्वामीजी :- ''शालग्राम में चतुर्भुज विष्णु का ध्यान व पूजा किया करो अन्यथा शालग्राम पूजा छोड़ दो।''

✽ ॐ–हरि ✽

शिष्य - ''ब्रजगोपियों ने जो भगवती की पूजा की थी सो क्या कोई मूर्ति बनाकर की थी? गोपियों ने शक्ति पूजा क्यों की थी?''

श्री गोस्वामीजी :- शक्ति की पूजा किये बिना क्या कोई पार पा सकता है? शक्ति की कृपा हुए बिना कुछ भी तो नहीं होता। ब्रजगोपियों ने श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए ही कात्यायनी की पूजा की थी। इस समय भी उसी रीति से ब्रजमाइयाँ हर साल कार्तिक में प्रात: स्नान करके यमुनातट पर बालू की वेदी बनाती हैं और उस पर कात्यायनी की पूजा किया करती हैं। उस रीति में किसी प्रकार की मूर्ति स्थापित नहीं की जाती। मूर्तिपूजा करने की बहुत सी रीतियाँ हैं। वेदी में पूजा करना अथवा यन्त्र बना करके पूजा करना, मूर्तिपूजा का ही एक भेद है।

✽ ॐ–हरि ✽

शिष्य - ''दुर्गा और काली एक ही शक्ति तो है; फिर किसी की पूजा रात को और किसी की दिन को क्यों की जाती है?''

श्री गोस्वामीजी :- शक्तिपूजा तन्त्रमत से भी होती है और वैदिक रीति से भी। तन्त्र के मत से काली पूजा रात को की जाती है और वैदिक रीति से दुर्गापूजा दिन को की जाती है। हिमालय के घर पहले श्यामवर्णा द्विभुजा काली ने जन्म लिया था, इसके पश्चात् पार्वती ने।

✽ ॐ–हरि ✽

श्रीवृन्दावन में एक दिन श्री गोस्वामीजी ने कहा - ''तीर्थ में जाकर पहले ही तीर्थगुरु कर लेना चाहिए, उनसे अनुमति माँगकर पण्डा की सहायता से स्नान दर्शन आदि तीर्थ का कुल कार्य करना चाहिए, यही नियम है।''

✽ ॐ–हरि ✽

शिष्य - परमेश्वर को क्या सचमुच देखा जा सकता है ?

गोस्वामीजी - हाँ, उनको देखा जा सकता है। उनके साथ बातचीत हो सकती है। उनका सब प्रकार से रसास्वादन किया जा सकता है। परमेश्वर से भिन्न कोई भी सत्य वस्तु नहीं है ।

शिष्य - उनका क्या रूप है ?

गोस्वामीजी - हाँ, उनका रूप अप्राकृत है। उस रूप का दर्शन करने से आँख अन्य रूप नहीं देखना चाहती। उनके मुख की वाणी सुनने से अन्य वार्ता सुनने की इच्छा नहीं होती। उनकी अंग-गंध सूँघने से नासिका अन्य गंध सूंघना नहीं चाहती। उनका स्पर्श पाने से अन्य किसी के स्पर्श की आकांक्षा नहीं होती ।

✽ ॐ–हरि ✽

शिष्य :- मंदिर में जाकर श्री विग्रह के दर्शन कैसे करने चाहिये ?

श्री गोस्वामीजी - ''देवता के स्थान में जाने पर मूर्ति को टकटकी लगाकर देखते हुए एकाग्र मन से नाम का जप किया जाय तो असली देवता के दर्शन हो सकते हैं।''

✽ ॐ–हरि ✽

शिष्य - सुनता हूँ कि सभी देव-देवियाँ, विशेषत: ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि पञ्च देवताओं को संतुष्ट न किया जाय तो मुक्ति नहीं हो सकती; तो क्या उन सबकी पूजा करनी चाहिये ?

श्री गोस्वामीजी - सभी का खूब सम्मान करना; अनादर, अमर्यादा किसी की न करना। उनकी पूजा न की जाय तो भी चल सकता है। पूजा करने से सिर्फ उनके लोक प्राप्त हो जाते हैं, मुक्ति नहीं मिलती।

✽ ॐ–हरि ✽

शिष्य - यदि पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट न किया जाय तो वे रास्ते में किसी प्रकार का विघ्न तो नहीं करते ?

श्री गोस्वामीजी - एक मात्र भगवान की पूजा करने से ही सब की पूजा हो जाती है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में पानी देने से शाखा-प्रशाखा, पत्ते फूल सभी को पानी मिल जाता है, उसी प्रकार अकेले भगवान् की पूजा करने से ही सबको सन्तोष, आनन्द प्राप्त होता है।

ॐ–हरि

श्री गोस्वामीजी :- हरिद्वार के गङ्गागर्भ के पत्थर को गौरीशङ्कर कहते हैं। उसमें महादेव और पार्वती विराजते हैं। इस शिला को बिना पूजा किये नहीं रखना चाहिए।

ॐ–हरि

श्री गोस्वामीजी :- सर्वत्र मठ मन्दिर आदि में भगवान् की मूर्ति के दर्शन करके साष्टाङ्ग होकर प्रणाम करने से लाभ होता है। सत्य पर लक्ष्य रखकर सरल भाव से चलने से ही सब हो जाता है। गेरुवा पहनने पर वीर्य भी धारण करना पड़ता है, शास्त्र की ऐसी ही व्यवस्था है, ऐसा न करने से विशेष अनिष्ट होता है।

ॐ–हरि

प्रश्न :- 'ब्रह्मा, विष्णु और शिव की पूजा करने से क्या भगवान् की पूजा नहीं हो जाती?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, हो जाती है। भगवद्बुद्धि से करना चाहिए, इतनी ही बात है। भगवान् ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप से जिस प्रकार मायिक सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कर्ता हैं उसी प्रकार अप्राकृत बैकुण्ठ एवं शिवलोक आदि धाम में भी उनका वैसा सच्चिदानन्द रूप है। भगवान् ही एक-एक रूप से भक्त के समीप लीला करते हैं।

ॐ–हरि

श्री गोस्वामीजी :- श्रद्धा करके सेवा पूजा करने से विग्रह सजीव हो जाते हैं। तब वे सेवक से बातचीत करते हैं। मनुष्य की तरह खाने

को माँगते हैं। किसी प्रकार का अनाचार या ज्यादती होती है तो बतला देते हैं। इसमें कोई अचम्भे की बात नहीं है। अनेक स्थानों में ऐसा देखा जाता है। तुम्हारे दादा के शालग्राम भी बड़े विलक्षण हैं। खूब जाग्रत हैं। मैं जब तुम्हारे दादा के यहाँ फैजाबाद में टिका हुआ था, तब एक दिन अयोध्या से ठाकुरजी के दर्शन करके स्थान पर लौटने पर बरामदे में खड़े होते ही तुम्हारे दादा के शालग्राम ने मुझसे कहा 'अरे हमें कुछ खाने को दे। ये लोग हमारी पूजा तो करते हैं, पर खाने को नहीं देते।' मैं कुछ खाने के लिए लेता आया था, उसी का भोग मैंने उन वामनदेव को लगाया। तभी से तुम्हारे दादा ठाकुरजी को भोग लगाने लगे हैं।

❋ ॐ–हरि ❋

शिष्य :- काली, दुर्गा यह सब केवल कल्पना मात्र हैं या सचमुच कुछ है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''यह सब कुछ कल्पना नहीं है। साधन की अवस्था के साथ-साथ प्रकट होते हैं। प्रत्येक साधक को तीन अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है - पहला ब्रह्म, दूसरा आत्मा और तीसरा भगवान। प्रथम अवस्था में साधक सभी ब्रह्ममय देखता है, सर्वत्र ब्रह्म की स्फूर्ति होती है। द्वितीय अवस्था में वह देखता है कि किसी अनिवर्चनीय शक्ति द्वारा ही वह चालित हो रहा है। उसके सारे अंग-प्रत्यंग उसी शक्ति से व्याप्त और चलित हो रहे हैं। उसके बाद भगवत् दर्शन की अवस्था आती है। तब ब्रह्म की लीलाओं के दर्शन होने लगते हैं। काली, दुर्गा, देवी-देवता, राम-कृष्ण अवतार सभी दृष्टि गोचर होते हैं। सभी ऋषि, मुनि, बुद्ध देव तथा साधक गण इसका प्रमाण देते हैं। यह कोरी कल्पना नहीं है।''

❋ ॐ–हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- ''पहले पहल शालग्राम में ध्यान नहीं रख पाओगे। शालग्राम में ध्यान करने की अवस्था बाद में आती है। अभी यदि शालग्राम में ध्यान न कर सको तो भीतर ही ध्यान करो। फिर धीरे-

धीरे प्रयत्न करते-करते शालग्राम में ध्यान करने का यत्न करना, क्रमश: सब ठीक हो जायेगा।'' ''शालग्राम की पूजा बड़ी कठिन है। कारण मूलाधार चक्र में मन स्थिर करना सहज साध्य नहीं। साधक दृष्टि-साधन एवं योगाभ्यास के बाद ही शालग्राम चक्र भेद कर पाता है, तब इस छोटे शिला खंड से असीम ब्रह्माण्ड प्रकट होता है। तब उसके प्रत्येक परमाणु में विष्णु दर्शन होते हैं। इसी कारण प्राचीन काल से ब्राह्मणगण शालग्राम पूजा व ध्यान करते आ रहे हैं।''

''शालग्राम पूजा करके उच्च स्वर में स्तुति पाठ करना। प्रणाम मंत्र से नमस्कार करना, इसमें जरा भी संकोच न करना।''

❊ ॐ–हरि ❊

''रात को सोते समय, सुबह जागते ही, साधन में बैठते समय और साधन करके उठते समय भगवान को स्मरण करके यह मंत्र पढ़कर ही नमस्कार करना। भगवत् बुद्धि से जहाँ भी प्रणाम करो, इसी मंत्र से करना। भगवान के अन्तर्ध्यान के समय सारे ब्रह्माण्ड के ऋषि-मुनि, देवी-देवताओं ने इसी मंत्र से भगवान को नमस्कार किया था। ऐसा वरदान है कि इस मंत्र को पढ़कर नमस्कार करने पर वह भगवान के चरणों में पहुँचता है।'' वह मंत्र यह है -

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेश नाशाय गोविन्दाय नमो नम: ।।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य :- देवी-देवताओं की उपासना से क्या मुक्ति मिल सकती है? ईश्वरं के प्रति प्रेम किन उपायों से उत्पन्न होता है ? ईश्वर की उपासना कब करनी चाहिये ?

श्री गोस्वामीजी :- ''चन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन देवताओं की जो पूजा करते हैं, वे सकाम उपासना करते हैं। उन्हें इन देवताओं के सिवा और कुछ प्राप्त नहीं होता। ब्रह्म को भी देवता मान कर पूजा करो, तो देवता ही प्राप्त होंगे। 'ये यथामां प्रपद्यन्ते

तां स्तथैव भजाम्यहम्।' जो मुझे जिस रूप से भजन करे, मैं उसे उसी रूप में प्राप्त होता हूँ। उपनिषद में है - नेदं यदिदमुपासते - अर्थात् कर्मेन्द्रिय या मन द्वारा लोग जिन वस्तुओं की उपासना करते हैं अर्थात् इन्द्रिय व मन के जितने विषय हैं, वह मैं नहीं हूँ। मैं इन्द्रिय ग्राह्य या मन अर्थात् सृष्ट पदार्थों से सम्पूर्ण भिन्न हूँ। वाक्य, मन, चक्षु, कर्ण, प्राण इन सबके द्वारा जो उपासना की जाय- वह भी मैं नहीं हूँ। अतः मैं सृष्ट वस्तु नहीं हूँ। उपनिषद का उपदेश. -'नेदं यदिदमुपासते' उपदेश मात्र बोध होता है। जब तक आँख, कान, इंद्रियगण बाहरी वस्तुओं से आकर्षित होती रहें, तब तक भीतर प्रवेश करना कठिन है। शरीर को छोड़कर भीतर प्रवेश करने का एक ही उपाय है। किसी प्रकार एक बार भगवत् दर्शन हो जाय, तो शरीर की ओर ध्यान नहीं रहता। सहज ही शरीर का बोध भी नहीं रहता, किंतु यह अवस्था सबको तो मिल नहीं पाती। अतएव किसी एक व्यक्ति के प्रति अन्तःकरण से प्रेम करना होगा। इसके लिए पहले अहिंसा का अभ्यास करना पड़ेगा। मन, वचन, कर्म से किसी को भी कष्ट नहीं पहुँचाऊँगा। कोई मुझे मारे, गाली देवे, मेरा सर्वनाश भी कर दे, तो भी उसका अहित नहीं चाहूँगा। इस प्रकार द्वेष-हिंसा रहित होने पर हृदय में प्रेम का उदय हो सकेगा। वह प्रेम किसी को अर्पण करके केवल उसी का ध्यान, चिन्तन करते हुए सब कुछ विस्मृत हो जाएगा। ऐसी अवस्था हो, तो सहज ही भगवान को प्राप्त किया जा सकता है।''

❋ ॐ-हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- ''वह देवताओं की आकृति है। स्थिर दृष्टि से, विशेष रूप से देखने पर इसके भीतर उस देवी-देवता की मूर्ति भी दिखाई पड़ती है। खूब स्थिरता, एकाग्रता जरूरी है। साधना के समय विभिन्न खुशबू आती हैं। कोई महापुरुष आने पर ऐसी सुंगध आती है। यह महात्माओं की परीक्षा है, उसे प्रकट करना उचित नहीं। प्रकट कर देने पर कुछ दिनों के लिये बंद हो जाता है। फिर बाद में वैसा होता है। **महात्मा**ओं के अंग की सुंगध से मन प्रफुल्लित हो उठता है। क्रमशः वे **मन पर** आधिपत्य विस्तार करते हैं, अंत में उपकार करते हैं। जब घटना **हो, तभी** प्रकाश न करके, बाद में किया जाय तो हानि नहीं हाती।''

* ॐ–हरि *

शिष्य :- ''गुरु साथ में हैं, तब मंदिरों में जाकर विग्रहों के दर्शन की क्या आवश्यकता है? कबीरदासजी ने कहा है - गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोविन्द दियो बताय।'' गोस्वामीजी ने कहा - ''कबीरदास जी ने ठीक ही कहा है। उन्होंने गोविन्दजी के दर्शन करने से मना तो नहीं किया है। गुरु के निर्देश से, दर्शन करने को कहा है। **याद रखना! भगवत्तत्व, गुरु-तत्त्व, के अंतर्गत है। गुरु भक्ति लाभ होने से, भगवान एवं उनके विग्रहों के प्रति भक्ति की अवश्य वृद्धि होगी। कोई, यदि ऐसा कहे कि 'मुझे 'गुरु-भक्ति' प्राप्त हुई है और मैं 'विग्रह' को नहीं मानता हूं, तो समझना चाहिये कि उसे गुरु की भक्ति जरा भी प्राप्त नहीं हुई है।''**

* ॐ–हरि *

शिष्य - साधनप्राप्त व्यक्तिगणों में कोई अनेक प्रकार के देवी-देवताओं के दर्शन करता है, और कोई बिल्कुल नहीं करता, इसका क्या कारण है ?

गोस्वामीजी – पिछले जन्मों में जिसकी जैसी तपस्या है, जिसको देव-दर्शन की प्रबल इच्छा है, उन्हें देव-दर्शन होते हैं। जिसकी इच्छा नहीं होती, उन्हें नहीं होते । जो व्यक्ति जिस देवता को चाहता है, उसके सामने वही देवता प्रकाशित होता है। सबका पथ भी एक प्रकार का नहीं होता । कोई-कोई देवदर्शन के बदले जितेन्द्रिय होना ज्यादा आवश्यक समझते हैं ।

* ॐ–हरि *

शिष्य - हम लोगों के बीच कइयों को काफी देवदर्शन होते हैं, किन्तु उस दर्शन से उनकी ''हृदय ग्रन्थियों'' का छिन्न होना, प्रतीत नहीं होता। शास्त्र में लिखा हुआ है ''भिद्यते हृदय ग्रंथि छिद्यन्ते सर्व संशयाः। क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टिपरावरे'' जिनको देव दर्शन होते हैं उनकी आसक्ति या संशय तो दूर होता हुआ मालूम नहीं पड़ता, कर्मक्षय होना भी नहीं दिखता ।

गोस्वामीजी – देवदर्शन होने से संशय नाश या आसक्ति दूर नहीं होती, कर्म क्षय भी नहीं होता । जबतक उन सच्चिदानन्द विग्रह के दर्शन नहीं होते तब तक ये सब विद्यमान रहते हैं ।

शिष्य - किस समय सच्चिदानन्द विग्रह के दर्शन होते हैं ?

गोस्वामीजी – माया के रहते सच्चिदानन्द विग्रह के दर्शन नहीं होते।

शिष्य - यदि देवदर्शन से आसक्ति, संशय नाश या कर्मक्षय नहीं होता तो इस प्रकार के दर्शन से क्या लाभ होता है ?

गोस्वामीजी – देव–दर्शन से साधन भजन में निष्ठा आती है। नाम में रुचि होती है; और भी कई लाभ हैं, परन्तु यदि अहंकार हो जाये तो मुश्किल है ।

उ
प
दे
श

*

दान
सम्बन्धित

श्री गोस्वामीजी - जिस चीज के न रहने से बहुत क्लेश सहना पड़े ऐसी अत्यन्त आवश्यक वस्तु का दे डालना ठीक नहीं। उसके दे देने पर कष्ट होने से यदि एक बार भी दान के लिए पछतावा हो तो फिर सब व्यर्थ है। इसलिए हर एक काम को सोच -विचार करके ही करना चाहिए।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी - ''जरूरत के समय बिना माँगे जो मिल जाय उसी को, भगवान् का दान समझकर, श्रद्धा के साथ ले लेना चाहिए। भगवान का दान न लेने से बेढब अनर्थ हो जाता है। श्रद्धा के साथ दिये गये दान को शेखी में आकर वापस कर देने से अपराध होता है। एक दिन, मेले में भ्रमण करते समय एक साधू को ठंड से सिकुड़ते देखकर, गोस्वामीजी ने उन्हें प्रणाम कर एक कम्बल दी। कंबल साधारण थी, अत: साधू ने उसे फेंकते हुए लेने से इंकार किया। गोस्वामीजी ने हाथ जोड़कर बार-बार उसे लेने का आग्रह किया, पर उन्होंने कहा, ''मैं ऐसी कम्बली नहीं लेता। इसे फेंक दो।'' अंतत: गोस्वामीजी एक अन्य साधू को कंबल देकर लौट आए। उस दिन रात को अचानक आंधी चली और पानी बरसने लगा। यमुना किनारे, ठंड से साधू की अवस्था खराब हो गयी। ठंड से बचने कि लिये आखिरकार साधू ने एक लकड़ी के टाल से कई कण्डे चुरा लिए। टाल वाले को पता लगा तो उसने रिपोर्ट थाने में कर दी। पुलिस ने साधू को बंदी बनाकर जेल भेज दिया। इस घटना का उल्लेख करते हुए गोस्वामीजी ने कहा था, **''जरूरत के समय बिना मांगे जो मिल जाये, उसी को भगवान का दान समझकर, श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिये। भगवान का दान न लेने से बहुत अनिष्ट होता है। उस साधू ने जब कंबल उठाकर फेंकी, तभी मैं समझ गया था कि ये झंझट में पड़ गये। श्रद्धा के साथ दिये गये दान को घमंड में आकर वापस कर देने से अपराध होता है।''**

शिष्य :- सभी क्या दान के पात्र होते हैं? जो भी जो कुछ मांगे, वह देना चाहिये या नहीं। हम तो दान के पात्र अपात्र नहीं समझते।

श्री गोस्वामीजी :- ''जो सर्वदा याचना करे, वह दान का पात्र नहीं; जो खुशामद करे, वह दान का पात्र नहीं। भय, स्नेह, मान, लज्ञा, वंश मर्यादा, प्रत्युपकार, प्रत्याशा,. इन भावों से दान करना ही अपात्र को दान करना है। वह वास्तविक दान नहीं होता। स्वर्ग-कामना, पाप-मोचन, परलोक के लिये दान करना भी दान के अन्तर्गत नहीं आता। दान करके अगर अनुताप हो तो वह दान नहीं। जैसे प्यास लगने पर शीघ्र पानी पीकर प्यास बुझाते हैं, वैसे ही यथार्थ दाता दान के पात्र को देखकर, दान देने के लिए तत्पर हो उठते हैं। अपना सब कुछ देकर भी उनका दुख दूर करने में पीछे नहीं हटते। दान करने पर उनके आनंद की सीमा नहीं रह जाती।

उ
प
दे
श

*

स्वप्न सम्बन्धित

श्री गोस्वामीजी :- सभी स्वप्न झूठे नहीं होते। कई बार तो स्वप्न में अतीत जीवन का चित्र दिखाई दे जाता है। भविष्यत् जीवन की घटना का भी आभास कभी-कभी स्वप्न में मिल जाता है। मस्तक अथवा पेट के गरम होने पर भी कई बार उल्टे सीधे स्वप्न दीख पड़ते हैं। जिन सपनों को देखते हो उनमें से कुछ तो जीवन में परिणत हो जाते हैं और कुछ को भविष्य में समझोगे।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- स्वप्न में ही मनुष्य के चरित्र की परीक्षा होती है। जब स्वप्न में देखो कि अनेक प्रकार के प्रलोभनों में पड़ने पर भी चित्त स्थिर है, किसी ओर विचलित नहीं होता है, तभी ठीक समझो। स्वप्न में थोड़ी सी भी मानसिक चञ्चलता हो जाय तो समझ लेना कि भीतरी दुर्बलता दूर नहीं हुई है। गुरु सन्बन्धी या देवता सन्बन्धी जो स्वप्न दिखाई देते हैं उनको सच समझना। उनमें जो कुछ असंलग्न जान पड़ता है उसका भी कुछ तात्पर्य रहता है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- स्वप्न में गुरुगीता पढ़कर मंत्र पाठ करके नींद खुली और एक दिन भगवत् गीता पाठ करते-करते नींद खुली। कभी कभी नींद में प्राणायाम और कुम्भक आदि भी होते हैं।

श्री गोस्वामीजी :- ऐसा होना खूब अच्छा है। दिन के नित्य कृत्यादि जब रात के नींद में भी होते रहें तभी सब ठीक हुआ जानो। इससे कामना-वासना नष्ट हो जाती है। निद्रा में क्रमश: नाम होगा। यह सब प्रकट नहीं करना चाहिए, नष्ट हो जाते हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''सारी रात जागरण करके शेष रात्रि में जरा देर निद्रा लेने पर स्वप्न में समस्त विषय देखे जा सकते हैं। दिवानिद्रा विशेष अहितकारी है। इससे बुद्धिनाश एवं साधन की हानि होती है। रात को भी अधिक निद्रा अच्छी नहीं होती है। बैठकर साधन करने लगो तो कुछ ही देर में आलस्य और तंद्रा का आविर्भाव होने लगता है। उससे

कुछ हानि नहीं होती। इस प्रकार बैठे-बैठे योग निद्रा में भी हानि नहीं होती। इस समय बहुत से तत्त्व प्रकट होते हैं, दर्शनादि भी होते हैं। हाँ, जबरदस्ती ऐसा मत करना। यदि स्वप्न में कभी कोई तत्त्व प्रकट हो तो क्या वह प्रकट करना चाहिए ? कभी नहीं, ऐसा करने से जो कहता है और जो सुनता है, दोनों का ही अनिष्ट होता है। स्वप्न में कुछ आश्चर्य देखो या गुरु के विषय में कोई शक्ति का प्रकाश देखो तो कभी प्रक़ट मत करो। सभी ब़ातें क्या बाजार में ढोल बजाकर कहते फिरोगे? जितना विश्वास करोगे उतना ही फल पाओगे। भगवान स्वयं आकर भी कहें कि मैं भगवान हूँ तो संदिग्ध आत्मा इस बात को विश्वास नहीं कर पाती। स्वप्न की बातों पर विश्वास करते, तो अब तक सभी का उद्धार हो जाता। पहले बहुत से स्वप्न दिखाए जाते थे, देखता हूँ कोई कुछ विश्वास नहीं करता, इसलिए अब स्वप्न दिखाना ठीक नहीं समझता। विश्वास की कोई वस्तु किसी को प्राप्त हुई, उसे प्रक़ट कर देने पर अविश्वास आ जाएगा, फिर तो भोगना पड़ता है। स्वप्न की बात छोड़ो, प्रत्यक्ष देखकर भी कोई विश्वास नहीं करता। कहने पर भी विश्वास नहीं होता।''

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- स्वप्न से क्या जीवन की यथार्थ उन्नति हो सकती है?

श्री गोस्वामीजी :- ''अवश्य हो सकता है। एक दीर्घ जीवन, जन्म से मृत्यु तक दो पाँच मिनट के स्वप्न में कट जाता है। सभी स्वप्न अलीक नहीं होते।''

❊ ॐ-हरि ❊

1. स्वप्न में कोई तत्त्व लाभ या दर्शन प्राप्त हो तो किसी से मत कहो। इससे भविष्य में दर्शन बंद हो जाता है। कहने और सुनने वाले, दोनों की हानि हो सकती है। स्वप्न पर विश्वास करने वाले लोग मिलना दुर्लभ हैं। (इसलिए स्वप्न को लिखकर रखना साधकों के लिए हितकर है।)

2. स्वप्न में यदि ठीक से देवताओं का दर्शन हो तो विषयासक्ति नष्ट होगी। इस देव-दर्शन में कभी संदेह नहीं होगा। उनके वाक्यों के श्रवण तथा उनके स्पर्श से अविस्मरणीय आनंद मिलेगा एवं मन में यह विश्वास दृढ़ होगा कि मैं धन्य हो गया हूँ, मेरा उद्धार हो गया है। जो केवल साधारण स्वप्न होते हैं, उनसे मन में इस प्रकार के भाव कभी नहीं आयेंगे।

3. पूर्वजन्म के इष्ट देवता, जिस रूप में पूजित हुए हैं, साधना में सिद्धि प्राप्ति करने के पहले वे देवता स्वप्न में दर्शन देकर आकर्षित करते हैं। प्राचीन युगों में साक्षात् दर्शन मिलता था। कलियुग में स्वप्न में दर्शन मिलता है।

4. गुरु किंवा देवताओं के संबंध में देखे गए स्वप्नों को सत्य मानना चाहिए। उसके भीतर यदि कुछ असंलग्न भी देखा जाये तो उसका भी कुछ न कुछ तात्पर्य अवश्य रहता है। अच्छे स्वप्नों का दर्शन महती सौभाग्य का सूचक है। दीर्घकाल तक साधन भजन कर जो अवस्थाएं प्राप्त करना कठिन है, वह एक मिनट के स्वप्न द्वारा अनायास प्राप्त हो गई, ऐसा देखा गया है। मैं जब चिकित्सा कार्य करता था, कठिन रोगग्रस्त लोगों के लिए दवाई की जब चिंता करता था, तब परलोकगत डॉ. दुर्गाचरण स्वप्न में मुझे उस रोग की दवाई बतला देते थे। उन दवाओं के प्रयोग से रोगियों को सर्वदा लाभ हुआ।

उ
प
दे
श

*

जाति-प्रथा सम्बन्धित

श्री गोस्वामीजी :- ''सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं; ये तीनों ही वास्तव में जाति हैं। इन तीनों का परित्याग किये बिना जाति से पीछा नहीं छूट सकता। सौ बात की बात यह है कि अभिमान ही जाति है। इस अभिमान को छोड़े बिना जाति नहीं छूट सकती। चाहे जिसके हाथ का बना भोजन कर लेने से ही जाति भेद दूर नहीं होता। चाहे जिसके हाथ का खा लेना, जाति भेद मेटने का उपाय नहीं है। अभिमान को छोड़कर समदर्शी बनो, जाति भेद अपने आप मिट जायगा। जिनका जो सम्प्रदाय है, वे उसी सम्प्रदाय की आचार पद्धति का बर्ताव करें। अवस्था प्राप्त हुए बिना, सिर्फ देखा-देखी कुछ भी काम न करे। साधन के उद्देश्य से जीवन गठित होने पर जैसा जीवन होगा वही बाहर प्रकट होगा। भीतर और बाहर एक सा होना ही वास्तविक जीवन है। अतएव विपक्ष में न चलकर साधन के पक्ष में आगे बढ़ो''।

✻ ॐ-हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- जातिभेद की प्रथा न केवल हमारे ही देश में है, प्रत्युत सभी देशों में है। प्रकृतिगत जातिभेद केवल मनुष्य समाज में ही नहीं है; बल्कि पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, वृक्ष और लता-प्रभृति सभी में वह देख पड़ता है। यह जातिभेद तो समस्त ब्रह्माण्ड में भरा हुआ है। कहीं कोई इसको अतिक्रमण नहीं कर सकता। आजकल हमारे यहाँ जो जातिभेद प्रचलित है, यह समाजगत है। यह भेद किसी देश में व्यवसायगत है और किसी में मर्यादा या हैसियत के अनुसार है। किसी भी रुप में सही, जातिभेद है सभी देशों मे, मनुष्य समाज की सभी जातियों में, किन्तु ऋषि लोग जिस जातिभेद का उल्लेख कर रहे हैं; वह दूसरे प्रकार का है, वह गुणगत है। सत्व, रज और तमोगुण के भेद से जो जातिभेद है उसी को ऋषियों ने स्वीकार किया है, वही स्वाभाविक हैं। उस हिसाब से आजकल शूद्र जाति के भीतर ब्राह्मण और ब्राह्मण जाति के भीतर बहुत से शूद्र देखे जाते हैं। सामाजिक जाति एक प्रकार की होती है और प्रकृतिगत जाति दूसरे प्रकार की। परमहंस अवस्था की प्राप्ति जब तक नहीं होती तब तक कोई भी इस जाति बुद्धि का त्याग नहीं कर सकता। उत्कृष्ट निकृष्टबुद्धि रहेगी तो

जातिबुद्धि अवश्य रहेगी। हिंसा, लज्जा, मान, अपमान, भला और बुरा जब तक बुद्धि में है, तब तक मनुष्य किसी भी प्रकार जातिभेद को अतिक्रमण नहीं कर सकता। चाहे जिसके हाथ का खा पी लेने से जातिबुद्धि दूर नहीं हो जाती; बल्कि इससे तो और भी विषम अनिष्ट हो जाता है। जिसके हाथ की बनी रसोई खाने में आती है, उसके शारीरिक और मानसिक सभी भाव भोजन की वस्तु के साथ भोजन क़रने वाले के भीतर संक्रमित होते रहते हैं। साधारण दृष्टि से मनुष्य इसको नहीं देख पाता है, फिर भी है यह बिल्कुल सत्य। यह बड़ी विषम समस्या है।

ॐ–हरि

मिजाज गरम हो जाने पर साधन भजन का सब फल नष्ट हो जाता है। भोजन करते समय वहाँ पर कायस्थ पहुँच जाय तो इससे रसोई नष्ट हो जाती है, यह तुमको किसने बतलाया है? फिर कायस्थ और ब्राह्मण की पहचान भी तो बहुत आसान नहीं है। शूद्र, कायस्थों में भी बहुत से ब्राह्मण हैं। सत्वगुणी ही तो ब्राह्मण होते हैं। रजोगुणियों के स्पर्श से ही रसोई दूषित होती है। सत्वगुणी कायस्थों के प्रति तुम लोगों का इस ढंग का बर्ताव हो, तो यह ठीक नहीं। बिल्कुल संकीर्ण हो जाओगे। गुण के द्वारा ही जाति का विचार करना चाहिए, ऐसा विचार न करने से मनुष्य बड़े भ्रम में पड़ जाता है।

ॐ–हरि

श्री गोस्वामीजी :- ''ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर कोई शूद्र प्रकृति एवं शूद्र कुल में जन्म लेकर भी कोई ब्राह्मणोचित्त प्रकृति का होता है। किंतु यह भेद समझने की शक्ति सर्वदर्शी महापुरुषों को छोड़, दूसरों में नहीं रहती। इसलिए जीव के लिये समाजगत भेदभाव मान कर चलना ही कर्तव्य है। ब्राह्मण वंश में तीस प्रतिशत शूद्र जन्म ग्रहण कर सकते हैं, किंतु शूद्र वंश में ब्राह्मण बीस प्रतिशत भी नहीं कर पाते। अतएव धर्म रक्षार्थ, विशुद्धता रक्षार्थ जन्मगत प्रकृति को ही मान लेना निरापद है। संपूर्ण निरापद होना चाहो तो स्वपाक आहार उत्तम है।''

''जाति केवल ब्राह्मण, शूद्र ही नहीं। स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, क्षिति, अप, तेज, मरुत, व्योम ये सब भी जातियाँ हैं। यह जातिभेद जब चला जाएगा, तभी जाति भेद न रहा समझो। शुकदेव जी को जातिभेद न था, पर वेद व्यास जी को जातिभेद का बोध था। मात्र ब्राह्मसमाज जाने एवं उपवीत त्याग कर देने से यथार्थतः ब्राह्म समाज जाना नहीं होता। वस्तुतः धर्मार्थी होकर जाना चाहिये। जिसके तिसके पास खा लेने से ही जातिभेद चला गया, ऐसी बात नहीं है, समबुद्धि होना चाहिये, यही जातिभेद न रहने का अर्थ है।''

उ
प
दे
श

*

शास्त्र
सम्बन्धित

''वेद, स्मृति, पुराण, तंत्र आदि सभी शास्त्र सत्य हैं। साधना करते-करते शास्त्रों के अधिष्ठित देवता अपना स्वरूप प्रकाशित करते है। शास्त्रों में कल्पना, भ्रम आदि कुछ भी नहीं है। शास्त्रों में जो विभिन्नता दिखाई पड़ती है, वह विभिन्न अधिकारियों के लिए बतलाई गई है।

✻ ॐ-हरि ✻

शिष्य :- ''क्या भगवान् के ध्यान के अतिरिक्त भी समाधि लग सकती है?''

श्री गोस्वामीजी :– समाधि के दो भेद हैं। सगर्भ और विगर्भ। वायु को रोक कर शरीर को स्थिर रखने से जो समाधि लगती है वह विगर्भ समाधि है; उससे कुछ लाभ नहीं होता। बाजीगर भी कुम्भक करके ऐसी समाधि लगा लेते हैं। धर्म कर्म के साथ उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। योगवाशिष्ठ में इसका उदाहरण है। एक दिन वशिष्ठजी रामचन्द्र को लेकर एक निर्जन स्थान में गये। वहाँ मिट्टी को खोदा तो एक पक्की कोठरी मिली। उसके भीतर जाने पर रामचन्द्र को दिखलाया, एक मनुष्य अधर में ठहरा हुआ था। वशिष्ठजी ने ज्यों ही उसमें चैतन्य का संञ्चार किया त्यों ही उसने तीन चक्कर लगाकर ताना ना ना ना करके हाथ फैलाये और यह प्रार्थना की 'महाराज, रुपया दीजिए।' बहुत समय पहले वह धन की कामना से कुम्भक के द्वारा समाधि लगाकर यह दिखला रहा था कि अधर में किस प्रकार स्थिर हुआ जाता है। किसी प्रकार नियम में व्यतिक्रम हो जाने से फिर उसका कुम्भक नहीं टूटा। राजा का राज्य चला गया। मकान जङ्गल में परिणत हो गया किन्तु उसकी समाधि नहीं टूटी। वशिष्ठजी ने ज्यों ही उसमें ज्ञान का संञ्चार किया त्यों ही अपने पिछले संस्कार के अनुसार वह उसी राजा को अनुमान करके श्री रामचन्द्र से रुपया माँगने लगा। मुद्रा करके, कुम्भक करके, हठयोग की भिन्न-भिन्न रीतियों से जो समाधि लगाई जाती है उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। भगवच्चिंतन के साथ लगाई हुई समाधि ही असली समाधि है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''शास्त्र व सदाचार के अनुसार रहो तो धोखा नहीं खाना पड़ता। प्राचीन पथ लिये रहने पर लाभ ही होता है। मैं ब्राह्म समाज से अपनी इच्छा से ही नहीं लौटा। एक दिन सीतानाथ (अद्वैतप्रभु) महाप्रभु के साथ आए एवं उन्होंने कहा - अरे, ब्राह्म समाज का काम पूरा हो गया। अब महाप्रभु की शरण में आ जाओ। अब देखता हूँ, निर्भरता में ही एकमात्र शांति है। किंतु मनुष्य का ऐसा दुर्भाग्य है कि वह निर्भर नहीं हो पाता। घूम फिर कर, कई प्रकार कष्ट पाकर भी नहीं। चारों ओर के लोग निर्भर होने भी नहीं देते। अपने प्रयत्न से कुछ नहीं होता, यह विश्वास पक्का होने पर ही यथार्थ कल्याण होता है।''

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''शास्त्र में है कि वे साकार हैं एवं वे ही निराकार भी हैं। विश्व ब्रह्माण्ड कुछ भी न था। परमेश्वर ने अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि अपनी शक्ति द्वारा की। सृष्टि के पदार्थ जड़ एवं चेतन हैं। क्षिति, अप, तेज, मरुत, व्योम तथा उससे बने पदार्थ जड़ हैं। कीट, पतंग, पशु-पक्षी, मनुष्य ये चेतन हैं। सृष्टि कर्ता इन से अलग है, उसकी तुलना किसी से नहीं होती, इसीलिये वे निराकार हैं। निराकार का अर्थ शून्य नहीं। वे सच्चिदानंद हैं, उनका रूप है, वह रूप नित्य है। सच्चिदानन्द मय रूप है। ज्ञान-नेत्र, भक्ति-नेत्र प्रस्फुटित होने पर परमेश्वर के नित्य रूप का दर्शन किया जा सकता है। जब तक उनके नित्य रूप का दर्शन न कर लो, तब तक साकार या निराकार कुछ भी कहो, तुम्हारी कल्पना या सुनी हुई बातें होंगी। चिरकाल से भक्त साधक भगवान का दर्शन करके अपार आनंद भोग करते आ रहे हैं। उस मधुर रूप को जिसने एक बार भी देखा हो, वह भूल नहीं पाता। बगीचे का माली बगीचे के स्वामी के आने पर जैसे दूर खड़ा रहता है, उसी प्रकार हृदय उद्यान में दीनबंधु प्रभु के उपस्थित होने पर, अहं रुपी माली दूर जाकर हाथ जोड़े खड़ा रहता है। उसके मुख से निकलता है - प्रभो मैं दास हूँ। प्रभु के आगमन से माली वंदना करता है, तो उसके रोम रोम भक्तिभाव से रोमांचित हो प्रभु की स्तुति करते हैं, नयन उनके चरण धुलाते हैं।''

*** ॐ—हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''स्त्री जाति को जितना सम्मान दोगे, उतना ही अपने को पवित्र रख सकोगे। जिन्हें सम्मान करते हैं, उन पर कुत्सित दृष्टि या दूषित दृष्टि नहीं डाली जा सकती। बंगदेश में स्त्री जाति का सम्मान उपहास का विषय बनता जा रहा है। बंबई, महाराष्ट्र, उत्तर पश्चिम में स्त्री जाति का सम्मान अधिक है। इसी से ऐसे देशों में, वीर हुए हैं। अंग्रेज स्त्री जांति के सम्मान के कारण, विश्व के बीच एक प्रधांन जाति बन बैठे। जहाँ नारी का सम्मान होता है, लक्ष्मी नारायण वहाँ निवास करते हैं, ऐसा पुराणों में लिखा है। अंग्रेजों के बीच लक्ष्मी नारायण का निवास हो रहा है। अब यदि बाबू लोगों को कहें कि नारियों का सम्मान करो, तो खिल्ली उड़ाकर हँसेंगे। वृहदारण्यक उपनिषद में वर्णन है कि जनक की सभा में गार्गी के आते ही ऋषियों ने खड़े होकर उनका सम्मान पूर्वक स्वागत किया। गार्गी को पूर्ण ब्रह्मज्ञान था, वे वस्त्र परिधान रहित नग्न थी। तपस्विनी शाण्डिल्या को देख कर गरुड़ ने सोचा, रात बीतते ही इसे पीठ पर बैठाकर बैकुण्ठ ले जाऊँगा। उसका अभिप्राय शाण्डिल्या जान गई और तुरंत गरुड के दोनों पंख गिर गए। इन कथाओं के द्वारा नारी के सम्मान की शिक्षा व उपदेश दिए गए हैं। स्कूल, कॉलेज में आज केवल नौकरी के लिये शिक्षा देते हैं। चरित्र गठन के लिये कौन शिक्षा ग्रहण करता है?''

*** ॐ—हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''पहले वटलता में जो चैतन्य भागवत छापा जाता था उसमें लिखा है कि एक दिन चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानंद प्रभु को बुलाकर कहा-तुम्हें विवाह करना होगा। नित्यानंद प्रभु ने कहा- तुम देश विदेश में इस तरह घूमते फिरोगे और मैं विवाह करके घर बसाऊँगा। महाप्रभु ने कहा- इसका कारण है। तुम जितनी भी प्रेम भक्ति वितरित क्यों न करो, हम लोगों के अन्तर्ध्यान हो जाने पर इसकी महिमा नहीं रह जायगी। किंतु यदि तुम्हारे वंशज रहे तो अपने पूर्वजों का धर्म मानकर इसका विशेष आदर करते जाऐगे। तभी सब ठीक चलेगा। मैं संन्यासी हूँ, गृहस्थ नहीं बन सकता। तुम्हें एवं अद्वैत प्रभु को संतान

उत्पत्ति करना होगा। इसीलिए नित्यानंद प्रभु ने विवाह किया । यह आज कल छपे चैतन्य भागवत में नहीं मिलता। संक्षेप करने के लिए कई वृत्तांत छोड़कर, आज कल पुस्तकें छाप रहे हैं। नित्यानंद प्रभु ने सन्यास नहीं लिया था। वे इस वेश में घूमते फिरते थे।''

*** ॐ–हरि ***

शिष्य - ''प्राचीन काल में क्या योगी-ऋषि मोक्ष के साधक थे या अन्य भाव के भी थे?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, बहुतेरे मोक्ष के साधक थे और बहुत से त्रिवर्ग के भी साधक थे। सभी एक प्रकार के नहीं थे, न जाने कितने प्रकार के थे।

*** ॐ–हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ऋषिप्रणीत शास्त्रमार्ग पर सर्वदा चलना चाहिए। यदि कोई साधुवाक्य ऋषिवाक्य से अन्य प्रकार का हो तो ऋषिवाक्य को ही ग्रहण करना चाहिए। लोभ, मोह, इन्द्रियदमन प्रभृति नियमों पर सर्वदा ही दृष्टि रक्खे, नहीं तो साधन में बहुत अनिष्ट होगा। जिन नियमों की पद्धति पर मनुष्य समाज प्रतिष्ठित है, उनका तनिक सा भी व्यतिक्रम कभी करना उचित नहीं। किसी प्राणी के, यहाँ तक कि पेड़ पौधे के भी कष्ट का कारण न बनो। सब के साथ बैठकर भोजन करने का हरिदास से महाप्रभु ने बहुत अनुरोध किया था किन्तु उन्होंने इसे किसी तरह नहीं माना बल्कि अपने को अत्यन्त नीचा समझकर सदा दूर ही रहते थे। रूप और सनातन यद्यपि ब्राह्मण सन्तान थे तथापि समाज की और सब की मर्यादा की रक्षा करके चलते थे। कभी साधारण लोगों के साथ एकत्र बैठकर उन्होंने भोजन आदि नहीं किया। वास्तविक धार्मिक की पहचान उसके स्वभाव को परखने से होती है। धर्मात्मा लोग सर्वदा ही विनयी होते हैं।

दृष्टान्त के लिए श्री गोस्वामीजी ने कहानी सुनाई - एक दिन पोप ने देखा कि बहुत से मनुष्य एक स्त्री के पास जा रहे हैं। प्रसिद्ध था कि उस स्त्री पर ईसा मसीह का आविर्भाव हुआ है। पोप बड़ी

उलझन में पड़ गये। पोप से उनके कार्डिनल ने कहा - 'आप तनिक ठहरें, मैं जाकर एक बार देख आऊँ।' उस स्त्री के पास जाकर कार्डिनल ने कहा - 'अरी, हमारा जूता तो उतार दे।' कार्डिनल की यह अवज्ञासूचक बात सुनकर उस स्त्री ने तनिक भी परवा न की। दर्शक मण्डली भी ऐसा व्यवहार देखकर दङ्ग रह गई। उस स्त्री का ऐसा भाव देखकर कार्डिनल लौट गया। उसने पोप को सब हाल सुनाकर कहा - 'वह स्त्री पाखण्ड कर रही है, उस पर ईसा का आविर्भाव हर्गिज नहीं हुआ है। यदि उनका आविर्भाव हुआ होता तो वह अवश्य ही विनयी होती और मैंने जो काम करने को कहा था, कर देती...।'

*** ॐ-हरि ***

हरिवंश का मतलब मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आता। मैंने श्री गोस्वामीजी से पूछा-''ये बातें मेरी समझ में नहीं आतीं, सिर्फ पढ़ने से भला क्या लाभ है ?''

श्री गोस्वामीजी - अभी सिर्फ पढ़ते चलो। साधन के द्वारा जब ये तत्त्व प्रकट होंगे तब तुम्हारी समझ में सब आ जायगा। एक बार पढ़ रखना अच्छा है।

शिष्य - तत्त्वों के प्रकट होने पर ही तो सब जानूँगा। फिर अभी किस लिए पढ़ूँ ?

श्री गोस्वामीजी - नहीं, पढ़ रखना अच्छा है। प्रत्यक्ष हो जाने पर इन शास्त्र पुराणों की बातों को देखने से विश्वास और भी दृढ़ हो जायगा।

शिष्य - मान लीजिए कि बीस वर्ष के बाद एक विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ तो उस समय यह स्मरण क्योंकर होगा कि उक्त विषय का प्रमाण किस ग्रन्थ के अंश में है ?

श्री गोस्वामीजी - पढ़ा हुआ रहने से, बीस वर्ष के बाद भी स्मरण बना रहेगा कि प्रत्यक्ष विषय को अमुक स्थल में पढ़ा है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - ''श्रीरामचन्द्र ने जो बालि वध किया था उसके सम्बन्ध में बहुत लोग तरह-तरह की बातें करते हैं!''

श्री गोस्वामीजी :- उनकी बातें सुननी न चाहिए, सुनने से अनिष्ट होता है। जो लोग न तो शास्त्रों को आद्योपान्त पढ़ते हैं और न समझते ही हैं, वे ही वैसी बातें करते हैं। जो लोग शास्त्रों का कुछ अंश ग्रहण कर लेते हैं और कुछ अंश को छोड़ देते हैं, उन्हें शास्त्रों पर विश्वास नहीं है, वे अपने मन की बात ही चुन लेते हैं। फिर वे शास्त्र की चर्चा और आलोचना क्यों करते हैं? शास्त्रों पर विश्वास रखने के लिए आद्योपान्त समस्त शास्त्रों को मानना चाहिए। थोड़े पर विश्वास करने और थोड़े पर विश्वास न करने से कहीं काम होता है? शास्त्रकारों ने कोई भी बात छिपाई नहीं है। समस्त विषय की स्पष्ट मीमांसा कर दी है। दुर्दशाग्रस्त्त, विपन्न, बिल्कुल शरणागत भक्त सुग्रीव की रक्षा करने के लिए ही श्रीरामचन्द्र ने भाई की स्त्री छीन लेने वाले बालि का वध किया था, यह रामायण में साफ साफ लिखा हुआ है। किसी शास्त्रग्रन्थ के आद्योपान्त समस्त विषय को विश्वास किये बिना पढ़ने से ठीक अर्थ समझ में नहीं आता। जो लोग श्रद्धापूर्वक शास्त्र को नहीं पढ़ते, वे शास्त्र को न पढ़कर अंग्रेजी की पुस्तक में बाघ या कुत्ते की कहानियाँ ही पढ़ें। बिना श्रद्धा और विश्वास के पढ़ने, से शास्त्र को पढ़ना और न पढ़ना एक सा है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- महाभारत महासमुद्र है ! इसमें कहाँ क्या है, यह केवल पढ़ने मात्र से कोई याद नहीं रख सकता। पढ़ते समय इन ग्रन्थों से अच्छी बातें छाँट लेनी चाहिए। फिर मूल ग्रंथ से वे श्लोक याद कर लेने चाहिए।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- गीता का धर्म एवं भागवत् धर्म क्या एक ही है? इनसे क्या एक ही अवस्था प्राप्त होती है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''भगवद् गीता और श्रीमद्भागवत, ये दो ग्रंथ उपनिषद् के भाष्य स्वरुप हैं। गीता एवं भागवत् की प्रणाली के अनुसार साधन करने पर ऋषियों के हृदय की बात - 'सत्यं ज्ञानंमनतं ब्रह्म' आदि ऋषिवाक्यों की सत्यता प्रत्यक्ष होती है, इसमें संदेह नहीं। ब्रह्म के दो भाव हैं - नित्य एवं लीला। नित्य साधन गीता द्वारा एवं लीलासाधन भागवत् द्वारा होता है। 'ब्रह्मविद् परमाप्नोति शोकंतरति चात्मवित्। रसो ब्रह्म रसं लब्धा नन्दी भवति नान्यथा।' ब्रह्मविद परमपद् लाभ करते हैं। आत्मविद शोक से मुक्त होते हैं। रस स्वरुप ब्रह्म का रस लाभ करके आनंदित होते हैं। अन्य उपाय से आनंद नहीं प्राप्त होता। ब्रह्मज्ञान, योग और भगवत् तत्त्व, ये तीन प्रकार के साधन इसके अभ्यंतर में हैं।

❋ ॐ-हरि ❋

शिष्य :- शास्त्र पुराणों में धर्म के कितने लक्षण बताए गये हैं, वस्तुतः धर्म क्या है ? यह तो कुछ भी समझ नहीं आता।

श्री गोस्वामीजी :- ''रुपया, शरीर, धर्म - इनका उपयुक्त व्यवहार ही धर्म है। सभी विषयों का अपव्यवहार या अपव्यय ही पाप है। अब तो कोई कीर्तन में जरा नृत्य किया, जरा भाव आ गया, इसे ही धर्म कहते हैं, यह भी धर्म है-संदेह नहीं, लेकिन धर्म के प्रधान अंग हैं - सत्य, न्याय, जीवों पर दया, पितामाता व गुरुजनों पर भक्ति, सत्संग की स्पृहा, पर स्त्री दर्शन में सतर्कता, परधन में निर्लोभ। हरिनाम का फल लगने लगे तो ये लक्षण दिखने लगेंगे। यह सब न हुआ तो जीवन में धर्म का आरंभ ही नहीं हुआ जानो।''

❋ ॐ-हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- ''वेद, उपनिषद् का विशेष ज्ञान न रहने पर हिंदू शास्त्र समझ पाना बहुत कठिन है। अष्टादश पुराण, रामायण, महाभारत को खूब छानबीन कर बारीकी से न देखने पर जटिल प्रश्नों की मीमांसा नहीं हो पाती। आदि पर्व में एक विषय पर लिखा है, तो उसकी मीमांसा शांतिपर्व में है। ब्रह्माण्ड पुराण में एक विषय का उल्लेख है तो उसके समस्त अंश मार्कण्डेय पुराण में हैं। मनु संहिता में एक विषय की व्याख्या है, तो उसकी व्यवस्था वृद्ध गौतम संहिता में है। निर्वाण तंत्र

में एक विषय है, बाकी सारा भाग रुद्र यामल में है। यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता में एक आख्यायिका है, तो बाकी विष्णु पुराण एवं श्रीमद्भागवत में है। सभी शास्त्र ठीक तरह से न पढ़ने पर शास्त्रमत कहना विडम्बना व अज्ञानता मात्र है।''

ॐ-हरि

श्री गोस्वामीजी :- ''भगवान वामन अवतार लेकर मानव आत्मा रुप बलि नामक असुर के यज्ञ में गये। मनुष्य संसार में धर्म करते हुए अत्यन्त अभिमान प्रकट करता है। मैं दाता हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं भक्त हूँ, मैं सभी इन्द्रिय रुपी देवताओं का राजा हूँ। मानव के इस अहंकार को देख कर परमात्मा, आत्मा के आत्मा-वामन बनकर त्रिपाद भूमि की याचना करते हैं। त्रिपाद भूमि सुनने में तो साधारण है, किंतु यह जीवों का सर्वस्व है। सत्व, रज, तम इन तीनों पदों पर अधिकार होते ही भगवान विराट मूर्ति धारण करके जीवों का सर्वस्व अधिकार कर लेते हैं तथा सदा उसके साथ-साथ रहते हैं। वामन देव बलि राजा के द्वार के द्वारपाल बनकर पाताल में रहे। जो इस प्रकार भगवान को आत्म समर्पण करे, भगवान उसके लिये सदैव व्यग्र रहते हैं। जीव को चिंता नहीं करनी पड़ती।''

ॐ-हरि

शिष्य :- क्या इस युग में महाप्रभु और भी दो बार अवतीर्ण होंगे?

श्री गोस्वामीजी :- ''चैतन्य भागवत में वृन्दावन दासजी ने लिखा है, महाप्रभु और दो बार शचीमाता के गर्भ में जन्म ग्रहण करेंगे। इस समय के वैष्णव इसका अर्थ लगाते हैं कि और दो कलियुगों में वे शचीमाता की कोख से जन्म ग्रहण करेंगे। इसलिये जब श्रीनिवास आचार्य, रामचन्द्र कविराज एवं नरोत्तम गोस्वामीजी ने हरिनाम से सारे देश को प्लावित कर दिया था तो उन्हें तीन प्रभुओं का आवेश अवतार कहा गया। आवेश, आविर्भाव व प्रकाश - इसी कलियुग में हो रहे हैं, और भी होंगे। श्री वृन्दावन में गौर शिरोमणि महाशय ने एक दिन मुझे बुलाकर कहा - अब महाप्रभु के अवतार बताकर बहुत सी अफवाहें

फैलेंगी, इन सबसे सावधान रहिएगा। कुछ दिन पूर्व पाबना जिले में इस प्रकार सुना गया। कोई तो कहते हैं - यदा यदा हि धर्मस्य.......इत्यादि। जितने भी अवतार हुए हैं, वे उस युग में एक ही बार हुए हैं। मत्स्य, कूर्म, नृसिंह अवतार आदि द्वापर में कृष्ण, त्रेता में श्री रामचन्द्र केवल एक एक बार ही अवतीर्ण हुए। यह कलियुग जितने दिन वर्तमान रहेगा, उतने दिनों तक वे जीवों का उद्धार करते रहेंगे। उनकी क्या मृत्यु हुई है, जो फिर से जन्म ग्रहण करेंगे। जब भी जहाँ वे कृपा करेंगे-कहीं आवेश, आविर्भाव या प्रकाश-इन तीनो भावों से कार्य करेंगे एवं कर भी रहे हैं।''

*** ॐ-हरि ***

शिष्य :- महाप्रभु के क्या कोई शिष्य थे ?

श्री गोस्वामीजी :- हाँ उनके कुछ शिष्य थे। साढ़े तीन लोगों की बात कही जाती है। वे केवल उनके शिष्य ही नहीं थे, उन्हें महाप्रभु ने अन्तरंग साधन एवं सामान्य साधन से कुछ अलग साधन प्रणाली सिखाई थी।''

*** ॐ-हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''अभी के राजा कलि हैं। धर्म करने पर पुरस्कार नहीं देते हैं। राजा को अमान्य करने पर सजा मिलती है। अधर्म करो तो राजाज्ञा पालन होगी। तुम सत्य, त्रेता, द्वापर का अनुसरण कर रहे हो, कलि का आश्रय कहाँ ग्रहण कर रहे हो? जो भी कलि के मतानुसार चलेगा वह पुरस्कार पाएगा। कलि राजा है-सत्पथ पर चलने से मेल कैसे होगा ? जो दिन को रात और रात को दिन कर सके, उसे ही इस युग में लाभ हैं। ऐसे कितने ही दृष्टांत हैं। परंतु क्या इससे भगवान का राज्य समाप्त हो गया? महाभारत की एक आख्यायिका में है कि कलि का राज्य प्रारंभ होने पर धर्मात्मा क्लेश पाने लगे, अधार्मिक सुखी रहे। कलि को मानने वाले सुखी रहेंगे। किंतु कलि की प्रजा अत्यन्त पापाचार करे तो भगवान पहले तो सावधान करते हैं। उस पर न मानें तो नाना प्रकार दण्ड, दुर्भिक्ष, महामारी लाते हैं।

उस पर भी न मानें तब दुष्टों के संहार के लिए अवतीर्ण होंगे। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी, जलप्लावन, भूकम्प आदि से कलि की प्रजा नष्ट होगी। अंग्रेजी शिक्षा पाने वाले इस बात को सुनकर हंसेंगे, इसमे आश्चर्य नहीं, परंतु ब्राह्मण, पण्डित, अध्यापक भी कलि के ही पक्ष में होकर, शास्त्र वाक्य का उपहास करेंगे।'' ''पहले इस देश में बहुधा अकाल नहीं पड़ा करता था। अकाल या दुर्भिक्ष की रूपरेखा पिशाच के समान होती है - देखने पर लगता है भूत, प्रेत, पिशाच देश में व्याप्त है। महाभारत में है, एक बार दुर्भिक्ष पड़ने पर महात्माओं ने पानी की काई खाकर जीवन धारण किया था। विश्वामित्र भूख प्यास से व्याकुल होकर चाण्डाल का सड़ा मांस चुराकर, खाने के पूर्व निवेदन करने लगे, तब इन्द्र आदि देवताओं ने आकर निषेध किया और वर्षा हुई। तब मांसाहार का प्रचलन था। गेहूँ, धान, फलमूल आदि कई प्रकार के खाद्य पदार्थ थे। एक ही प्रकार के खाद्य के अभ्यास से शीघ्र अकाल पड़ता है। कलि में यही होगा। भूमि की उत्पादकता कम होगी, गाएँ दूध कम देंगीं। इसी से बार-बार अकाल पड़ेगा। इससे व्याकुल होकर भी यदि भगवान को पुकारो तो मंगल होगा।''

॥ ॐ-हरि ॥

''भूमैव सुखम् नाल्पे सुखमस्ति - भूमा अर्थात् जिसका जन्म मृत्यु न हो, उसी में सुख है। अंत होने वाली वस्तु में सुख नहीं है। ज़िसका अंत होगा, एक दिन वह नहीं रहेगा, उस पर आसक्त होने से निश्चय ही दुःख पाना पड़ेगा। भगवान स्वयं अवतीर्ण होकर धर्म का दृष्टान्त बन गए हैं। श्री रामचन्द्र जी सत्य निष्ठा के आदर्श बने। पितृआज्ञा पालन हेतु चौदह वर्ष वनवास में रहे। राजधर्म प्रजारंजन के लिए सीता का त्याग किया। सत्यरक्षा के लिए लक्ष्मण का भी परित्याग किया। यह सब क्या मानव के लिए संभव है? सीता पर उनका संपूर्ण अनुराग था। तब तो राजा सहस्त्रों विवाह कर सकता था, किंतु रामचन्द्र ने एक पत्नीव्रत लिया था। अतः यज्ञस्थल पर स्वर्ण सीता रखी गई। सीता जी सती हैं, इस पर रामचन्द्र जी को पूर्ण विश्वास था। सारे देवता साक्षी थे। सत्य जब जातीय धर्म हो - तभी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष घर-घर में विराजमान होते हैं।''

*** ॐ–हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''देवता और असुर दोनों एक ही पिता की सन्तान हैं। जो देवता हैं, वे भी असुर बन सकते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् मे है - 'देवासुरा प्रजापत्याः'। जो शास्त्र मान कर चलते हैं वे देवता हैं और जो स्वेच्छा से चलते हैं वे असुर हैं।''

*** ॐ–हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''ऋक्, यजुः, साम्, अथर्व सभी वेद एक हैं। शिक्षा के लिए उन्हें चार भागों में बाँटा गया है। पूरे चारों वेदों की शिक्षा के लिए पूरे छत्तीस वर्ष का समय लगता है। इससे भी संपूर्ण वेदों का अध्ययन नहीं हो पाता। एक या दो भाग ही ठीक से अध्ययन कर पाते हैं। जो जिस अंश का अध्ययन कर लें, वे उस अंश के आचार्य बन सकते हैं। इसीलिए कहा गया है - वेदा विभिन्ना। वस्तुतः भिन्न नहीं हैं, जैसे शरीर में हाथ पांव भिन्न रहकर भी शरीर के ही अंग हैं। जो सामवेद के आचार्य हैं, वे यजुर्वेद की शिक्षा नहीं देते। फिर यजुर्वेद में सामवेद के विषय नहीं हैं। यजुर्वेद की शिक्षा पाना चाहो तो, यजुर्वेदीय आचार्य के पास जाना पड़ेगा। सम्पूर्ण वेदवेत्ता यदि मिलें, तो उनके पास 'वेदा विभिन्ना' नहीं होगा। व्यास ने वक रूपी धर्म में लिखा है। धर्म का तत्त्व गुहा में निहित है। गुहा का तात्पर्य मनुष्य का हृदय है। यह उपनिषद के एक श्लोक की व्याख्या है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष-ये अपराविद्या हैं। जिससे परब्रह्म को प्रत्यक्ष कर सकें, वह पराविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या है। यह मनुष्य के अन्तःकरण में निहित है। एक-एक ऋषि एक-एक वेद की शिक्षा देंगे। विभिन्न स्थानों में शिक्षा लेनी पड़ेगी। जब कोई मानव आत्मा में प्रवेश कर ले, तो सभी ज्ञान लाभ प्राप्त हो जाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ध्यान, धारणा, समाधि इन अष्टांग योग द्वारा आत्मा में परमात्मा को लाभ किया जा सकता है। वेद शब्द में - ब्रह्म, परमात्मा, परब्रह्म निहित है।''

श्री गोस्वामीजी :- ''जीव समष्टि के बीच जो ईश्वर है, उसे ही हिरण्यगर्भ कहते हैं। जड़ उपासना पंचभूत की होती है। हिरण्यगर्भ उपासना जीव समष्टि, वासुदेव की उपासना है। ईश्वरोपासना अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उपासना। परब्रह्म उपासना-निर्गुण की है। इन चारों के अलावा और भी हैं, वे अवस्थाएँ मुक्ति के बाद की हैं। जड़ हिरण्यगर्भ, ईश्वर, निर्गुण आदि उपासना के करते हुए जन्मांतर बाद, पराधर्म का अधिकार आता है। पराधर्म लाभ होने पर भी पूर्व की चार उपासनाएँ नष्ट नहीं होती। प्रत्येक उपासना में वह पराधर्म देखता है। मुक्ति के बाद की अवस्था पराधर्म की है। यह सब ऋषियों के बीच था। इसी से उपनिषद, ऋग्वेद, पुराण, तंत्र, धर्मसंहिता में पराधर्म का उल्लेख है। सब उसके अधिकारी नहीं होते, इसलिये साधारण भाव से इसका उल्लेख नहीं किया जाता। विशेष रूप से शास्त्रज्ञान हो, तभी पराधर्म क्या है, समझा जा सकता है।''

श्री गोस्वामीजी :- ''लक्ष्य ठीक रखकर निष्काम भाव से कर्म करने पर हानि नहीं, फायदा ही हुआ करता है। अपने विवेक के अनुसार न चलकर किसी के मत या व्यक्ति की आज्ञा अनुसार चले या धर्म करे तो हृदय स्फूर्तिहीन होगा, तब हानि हो सकती है। ईश्वर की आज्ञा जानकर, स्वविवेक के अनुसार चलने पर लाभ मिलता है। धर्म के लिये जब जो अच्छा लगे, तभी करो। मनुष्य की ओर मत देखो। मनुष्य जब अधर्म करता है, तब नारायण पहले तो निवारण करते हैं, फिर भी न माने तब नारायण पलायन करते हैं। उनके पीछे लक्ष्मी जी भी चली जाती हैं। रह जाता है केवल-पूर्व का गौरव। गौरव ढोते-ढोते सिर पर घाव पड़ जाता है, लोग पास नहीं आते, विवाद बढ़ता है। लोग भगा देते हैं। तब गृहिणी से मारपीट करता है। नलराजा ने भी काफी भोगा है। सुरापान, व्यभिचार, जुआ दु:खों का मूल है। जितना नाम करोगे, उतना लाभ पाओगे। जब तक मनुष्य की क्षमता है, उसे श्रम करना ही पड़ेगा। अभी निर्भरता जैसी बात नहीं हो सकती।''

* ॐ–हरि *

शिष्य :- शास्त्र व सदाचार नहीं मानकर, महात्मा एवं महापुरुषों के अनुसार चलने पर क्या आत्मा की उन्नति नहीं होती ?

श्री गोस्वामीजी :- **''शास्त्र व सदाचार छोड़कर दूसरे पथ से कोई ब्रह्मलोक भी ले जाये, तो कभी मत जाना, क्योंकि कभी कभार कोई व्यक्ति पूर्वजन्म की सुकृति के फलस्वरूप अन्य पथ से भी सद्‌गति प्राप्त कर सकता है, किंतु जिनकी पहली शुरुआत है, वे घनघोर अंधकार में भटक जाएंगे। शास्त्र का अवलम्बन प्रयोजनीय है। शास्त्र पर विश्वास रहे तो कोई डर नहीं। ऋषि प्रणीत शास्त्र तथा उन्हीं के द्वारा प्रतिष्ठित सदाचार के अनुसरण से अवश्य लाभ मिलता है। शास्त्र पाठ से कई धोखाधड़ी से रक्षा पा सकते हो। शास्त्र न जानो तो सभी बातों पर अविश्वास होगा। जानकारी रहे तो सत्य-असत्य की पहचान कर सकते हो। किसी को ज्वर में कुनैन से फायदा मिला, पर मुझे यदि ज्वर नहीं है, तो बड़े लोगों से सुनने पर मैं कुनैन क्यों खा लूँ ? इसके लिये युक्ति और आत्म-प्रत्यय से प्रत्येक बात मिलाकर देख लेना और फिर ग्रहण करना चाहिये। जो शास्त्र पर विश्वास रखते हैं, उन्हें युक्ति व आत्मप्रत्यय के साथ शास्त्र का मेल हो रहा है या नहीं, यह भी देखना होगा। यह शास्त्रों का ही उपदेश है। हम तो शास्त्र व सदाचार के दासानुदास हैं।''**

* ॐ–हरि *

प्रश्न :- ''महापुरुषों की बात मानकर यदि कोई शास्त्रविरुद्ध कार्य करे तो?''

उत्तर :- महापुरुषों की बात शास्त्रविरुद्ध नहीं होती। हाँ, शास्त्र की साधारण व्यवस्था के साथ उसका मेल नहीं भी बैठे। इसी से वह कुछ शास्त्रविरुद्ध नहीं हो जायगी। 'विशेष विशेष अवस्थाओं के लिए व्यवस्था भी विशिष्ट होती है', यह शास्त्रों में लिखा है। शास्त्रविरुद्ध कार्य, धर्म विरुद्ध कार्य करने को महापुरुष तो क्या स्वयं भगवान ही कहें, तो अभिमान रहते, विचारने की बुद्धि रहते, यदि कोई वैसा करेगा

तो उसको तदनुसार दण्ड भी सहना पड़ेगा। भगवान की बात मानकर ही तो धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा हत: इति गज:' कहकर प्रकारान्तर से झूठ बात ही कही थीं; इससे उन्हें छुटकारा कब मिला? इसके लिए उन्हें भगवान ने ही तो नरक के दर्शन कराये थे। ऐसे-ऐसे बहुत से दृष्टान्त हैं। भगवान भी एक कम पात्र तो हैं नहीं! शास्त्रकारों ने सभी दिखलाया है।

श्री गोस्वामीजी :- ''जिसके द्वारा भगवत् लाभ हो वह सभी योग हैं। 'संयोग: योगमित्युक्त: जीवात्मा परमात्मन:।' जीवात्मा व परमात्मा का संयोग ही योग कहलाता है। इसे छोड़ कर जो योग है, वह हठयोग है। केवल नामजप, श्रवण, कीर्तन, मनन, स्मरण भक्ति योग के अंग हैं। केवल श्रीहरि नाम जप भी योग है। प्राणायाम योग का बहिर्अंग है, यह करने से भी चलता है, न करने से भी चलता है। वैष्णव स्मृति, हरि भक्तिविलास ग्रंथ में, गोस्वामी गणों के संबंध में जो लिखा है, वह देखिए। गुरुदेव के पास श्री हरि नाम की दीक्षा ग्रहण करोगे तभी वह फलदायक होगा। यह शास्त्र की विधि है। शास्त्र व सदाचार न मानने पर ऋषियों का पथ अनुसरण करना भी नहीं हो पाता।''

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- ''लोग कार्य करना नहीं चाहते, केवल शक्ति चाहते हैं। तुम सब एक वर्ष वीर्य रक्षा करके चलो, मिथ्या कथन या मिथ्या कल्पना मत करो, मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ, तुम्हें वाक्सिद्धि प्राप्त होगी। लोग शक्ति-शक्ति करते हैं, शक्ति लाभ तुच्छ बात है। जो ईश्वर प्राप्ति चाहते हैं, वे/शक्ति से घृणा करते हैं। इनकी ओर देखते तक नहीं। जिस दिन चौबीस घंटे में एक भी श्वास-प्रश्वास वृथा न जाय, नाम चलता रहे, उस दिन सिद्धि लाभ हुआ जानो। मेरा कहना तो ठीक नहीं, फिर भी कहता हूँ, साधन प्राप्ति के तीन वर्ष तक ठीक श्वास-प्रश्वास में नाम नहीं चलता था, एक दिन अचानक वह ठीक हो गया। हमारा साधन पथ सतयुग के ऋषियों का पथ है। इस पथ में धर्म संबंधी सभी सम्प्रदायों में हम मिलजुल सकते हैं। गृहस्थों को सामाजिक रीति-नीति मानकर चलना चाहिए। आत्म प्रशंसा न करना। किसी के स्थायी

विश्वास को नष्ट न करना। धर्म का प्रदर्शन न करना, ये साधु के लक्षण हैं। साधु वेशधारी को यह ध्यान रखना होगा। जिनके निकट आते ही हृदय में धर्म भाव प्रस्फुटित हो, अपने आप भगवान का नाम रसना से उच्चारित हो, सभी पाप लज्जित होकर दूर भाग जायें, वे ही साधु हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- बाहरी शरीर के लक्षणों द्वारा क्या महापुरुषों को पहचाना जा सकता है?

श्री गोस्वामीजी :- ''शास्त्र में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण दिए हैं, पंच दीर्घः पंच सूक्ष्मः सप्त रक्तम् षडुन्नतः। त्रिह्रस्व पृथु गंभीरो द्वात्रिंशत लक्षणों महान्। नेत्र, पाद, करतल, अधर, ओष्ठ, जिह्वा, नख ये सात रक्तिम। वक्ष, स्कन्ध, नख, नासिका, कोटी व मुख इन छः अंगो की तुंगता (उच्चता)-कोटी, वक्ष, ललाट ये तीन अंग विस्तृत। ग्रीवा, जंघा, शिश्न तीन अंगो की खर्वता - नाभि, स्वर, बुद्धि इन तीनों की प्रखरता। नासा, भुजा, नेत्र, हनु (जबड़े) एवं जानु इन पाँचों अंगो की दीर्घता। त्वचा, केश, लोम, दन्त, ऊंगली के पर्व इन पाँचों की सूक्ष्मता - ये बत्तीस महापुरुषों के लक्षण हैं।''

उ
प
दे
श

*

पाप-पुण्य सम्बन्धित

श्री गोस्वामीजी :- पाप की जड़ को मनुष्य आसानी से नहीं उखाड़ सकता। कहना चाहिए कि इस विषय में मनुष्य की बिल्कुल ही शक्ति नहीं है। प्रायश्चित और व्रत नियम आदि के द्वारा मनुष्य का छुटकारा पाप से हो तो जाता है, किन्तु वह सामयिक है, हाथी के स्नान की तरह। भीतर संस्कार रूप में पाप रह जाता है और तनिक सा कारण पाते ही फिर प्रकट हो जाता है। एकमात्र भगवान् के दर्शन होने से ही, उनकी कृपा से पाप की जड़ कट जाती है।

''भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टि परावरे॥''

शिष्य :- ''तो फिर हम लोग क्या करें? यों ही पड़े रहें, उनकी कृपा कभी होनी होगी तो हो जायगी।

श्री गोस्वामीजी :- यह कह देने से पूरा नहीं पड़ने का। जब तक चेष्टा है तब तक कार्य किये बिना नहीं चल सकता। कार्य तो करते ही रहना होगा। कई ओर से तरह-तरह की चेष्टा करके मनुष्य जब अपने को तुच्छ और निकम्मा समझ लेगा तभी वह ठीक स्थान पर जाकर पहुँचेगा। किन्तु जब तक यह भली भांति समझ में नहीं आता तब तक वह समझता है कि चेष्टा करने से ही कृतकार्य हो जाता है अतएव वह भगवान् की शक्ति के ऊपर ठीक-ठीक निर्भर नहीं होता। इसलिए बार-बार निष्फल होने पर भी बड़े धैर्य के साथ चेष्टा करते रहना चाहिए, नहीं तो कार्य सफल नहीं होता।

*** ॐ-हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- वास्तविक पाप-पुण्य, धर्म अधर्म की परख हमें है कहाँ? बचपन से देखते-सुनते रहने से एक भले बुरे का संस्कार मात्र बन गया है। वास्तविक तत्त्व को समझना बहुत ही कठिन है। लोगों की लज्जा से और डर से हम लोग कुछ कामों को नहीं करते हैं; उनको पाप समझते हैं किन्तु ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि वह **सचमुच** पाप हैं या नहीं। क्या पाप और क्या पुण्य, सभी का अपना-**अपना** रूप है, अब जिसे पाप-पुण्य समझते हो वह तो निरा संस्कार **है।**

*** ॐ-हरि ***

प्रश्न :- प्रत्येक कार्य पर विचार करने लगने से कहीं काम होना सम्भव है? विचार का तो अन्त है नहीं, क्या ऐसी दशा नहीं हो सकती कि विचार किये बिना ही भला या बुरा मालूम हो जाय?

श्री गोस्वामीजी :- हो क्यों नहीं सकती। हमारे अन्तर में पल पल पर प्रत्येक कार्य के सम्बन्ध में अपने आप ऐसा शब्द उठता है कि यह भला और यह बुरा है। जो लोग नियम से सदा श्वास प्रश्वास पर लक्ष्य रखकर नाम करते हैं, हर दम में कुम्भक करते हैं उनकी देह शुद्ध हो जाती है, ऐसे ही लोग उस ध्वनि को सुन सकते हैं। इस दशा की प्राप्ति हो जाने पर उन लोगों को फिर कभी विचार नहीं करना पड़ता। उन लोगों को फिर न तो कोई भय रह जाता है और न संशय ही। किन्तु जिनको यह दशा प्राप्त नहीं हुई है, उनका निर्वाह प्रत्येक कार्य पर विचार किये बिना कैसे होगा?

*** ॐ-हरि ***

शिष्य :- सत्य, मिथ्या क्या है ? पाप-पुण्य क्या है ? अनेक स्थलों पर समझा नहीं जा सकता।

श्री गोस्वामीजी :- ''मिथ्या वह है, जिसका लक्ष्य असत् है। सत्य वह है जिसका लक्ष्य सत् हो। पाप की बातें सीखी हुई बातें हैं। पाप बोध हुआ या नहीं, देखो। पाप चिंता जरा भी आने पर पश्चाताप से छटपटाना पड़ता है ? यह काम पाप है, यह काम पुण्य है - यह सबके लिए एक सा नहीं होता। जिस कार्य से मेरे धर्म भाव की स्फूर्ति बढ़े, वह पुण्य का है। जिस कार्य से मेरे धर्म भाव की स्फूर्ति नष्ट हो, वह पाप है। बाल्यावस्था से सुनते-सुनते, ग्रंथादि पढ़कर यह पाप है, यह पुण्य है, ऐसा संस्कार जन्म लेता है। वस्तुतः पाप और पुण्य क्या हैं? नरहत्या करने पर पाप होता है, किंतु चट्टग्राम में एक लड़की ने नरहत्या कर दी तब सभी लोगों ने कहा-अच्छा किया, उत्तम कार्य हुआ। यहाँ नरहत्या की गणना पाप में नहीं की गई। चोरी करना पाप है, पर कहीं वह पुण्य भी बन सकता है। बाहर के कार्य मनुष्य देखा करते हैं।

भगवान अन्त:करण का उद्देश्य देखते हैं। चोरी को लोग पाप कहते हैं, परंतु भगवान की आँखों मे वह पुण्य भी हो सकता है। यदि चोरी, डाका, बदमाशी बुरा जानकर भी कोई करे तो उसकी निन्दा करेंगे। इसी निन्दा के द्वारा उपयुक्त समय आने पर उसकी आत्मदृष्टि खुलेगी। यही भगवान की व्यवस्था है।''

❊ ॐ-हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- ''जब तक शरीर, मन, आत्मा का ऐक्य न हो जाय, तब तक स्वाभाविक नहीं होता। स्वभाव धर्म है। सभी मनुष्यों के स्वभाव में जहाँ एकता है, वहाँ स्वतंत्रता, पृथक्ता भी है। मैं कुछ विषयों में सबसे एक हूँ, तो कुछ में सबसे अलग या भिन्न भी हूँ। इसलिये मनुष्यों की रूचि भी भिन्न-भिन्न है। मेरे शरीर, मन व आत्मा का जब ऐक्य होगा, तभी वह मेरा स्वभाव होगा, उसी से मेरा कल्याण होगा। सारे जगत में जो वस्तुएँ स्वभाव में हैं, वे ही आनंद में भी हैं। चन्द्र, सूर्य, पर्वत, समुद्र, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, फल-फूल सब आनंदमय हैं। मनुष्य भी जितना स्वभाव में रहता है, उतना ही आनंद पाता है। उसका स्वभाव जितना विकसित होता है, आनंद भी उतना ही बढ़ता जाता है। जिन्होंने पाप कर्म, पाप चिंता द्वारा स्वभाव को विकृत किया है, वे निरानन्द ही भोगते हैं। पाप से शरीर रोगी व मन अपवित्र होता है। पुण्य लाभ करके स्वभाव लाभ न होने तक वह आनंद नहीं पाता। रोग व पाप की यातना में ही जीवन बीतता है।''

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- पाप क्या है ? इस विषय में स्पष्ट संस्कार हममें नहीं है। किस प्रकार पाप से रक्षा पायी जा सकती है ?

श्री गोस्वामीजी ने कहा - ''स्वभाव के विपरीत कार्य ही पाप है। आध्यात्मिक पाप, शारीरिक पाप, मानसिक पाप, सामाजिक पाप, प्रेमरहित, निष्ठुरता, नीचता आदि पाप हैं। सामाजिक पाप चोरी, व्यभिचार आदि है। सामाजिक पाप के निवारण के लिये राज्य शासन व समाज शासन है। आध्यात्मिक, **मानसिक, शारीरिक ये** तीनों पाप, लोग देख

नहीं पाते । इनसे रक्षा पाने के लिये ही परमेश्वर ने लज्जा, घृणा, भय, निन्दा एवं प्रशंसा, ये सब भाव आत्मा में दिये हैं। डाकू, लुटेरे भी दूसरों को अन्याय कर्म करते देखकर, उसका विरोध कर देते हैं। यह व्यवस्था है, तभी तो हम बच सकते हैं।''

* ॐ-हरि *

''जगाई-मधाई के साथ तुम अपनी तुलना कर रहे हो? जानते हो उनमें सरलता थी। उन्होंने अपने मान सम्मान की कभी परवाह नहीं की। वे दूसरों के आदर-अनादर के आकांक्षी नहीं थे। उनमें कपटता लेशमात्र भी नहीं थी। उन्हें अपने पाप कर्मों का केवल बोध नहीं था। महाप्रभु की कृपा से जब उनमें चेतना जागी तब अपने पाप कर्मों का उन्हें बोध हुआ। उस समय आन्तरिक पश्चाताप की ज्वाला से उनके पाप कर्म नष्ट हो गए। संसार के लोग इन्द्रियासक्त तथा विषयासक्त हैं। वे अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान के लिए अपने कुकर्मों को गुप्त रखते हैं। वे यह नहीं समझते कि जो अन्तर्यामी हैं उनके पास कुछ भी गुप्त नहीं रहता। आत्मविचार करके देखो। दीक्षा के पहले मन की क्या अवस्था थी और अब उसमें क्या परिवर्तन हो गया है?''

उ
प
दे
श

*

प्रत्यादेश

शिष्य :- आजकल कई लोग आदेश, प्रत्यादेश की दुहाई देते हैं। परमेश्वर का आदेश कैसे समझा जा सकता है ?

गोस्वामीजी **''प्रत्यादेश नाना प्रकार के होते हैं। परलोक की आत्मा द्वारा आदेश देने पर अथवा किसी महात्मा के सूक्ष्म शरीर में आकर उपदेश देने पर उसे भी प्रत्यादेश कहा जा सकता है। पर, वस्तुत: 'प्रत्यादेश' भगवत् आदेश होता है। विशेष रूप से चित्त शुद्धि न होने तक वह नहीं सुना जा सकता। 'भगवत् आदेश' विवेक या मन की भावनाएं नहीं हैं। इसे आत्मा में सुना जाता है। वह सत्य, पतितपावन, उत्साहपूर्ण, अविनाशी व निर्विरोध होता है।''**

''वास्तविक 'प्रत्यादेश' जीवन में दो एक बार ही होता है। 'अहिंसा परमो धर्म:' इस प्रत्यादेश को प्राप्त कर बुद्धदेव ने सारे विश्व को जागृत कर दिया। 'सब प्राणियों के प्रति दया तथा भगवन्नाम में रूचि' इस आदेश को प्राप्त कर श्री चैतन्यदेव ने जगत् को आलोड़ित किया। ईसा मसीह ने – ''भगवत सेवा से मनुष्य का उद्धार हो जाता है, एक व्यक्ति दोनों प्रभु '(संसार व ईश्वर) की सेवा नहीं कर सकता '– इस आदेश द्वारा पाश्चात्य जगत को मोहित कर दिया था। ऋषियों ने जो 'प्रत्यादेश' प्राप्त किया था, वह 'उपनिषद' में है। इस प्रकार, जिन्होंने जो भी प्रत्यादेश सुना, वह घर के कोने में छिपा नहीं रह सकता। वह जगत में व्याप्त हो जाता है।''

*** ॐ–हरि ***

''बाल्यावस्था में किसी से मित्रता हुई हो, फिर बीस वर्ष तक मुकालात न हुई हो, फिर एक दिन वह मित्र आकर नाम लेकर पुकारे, तो भी हम उसका स्वर कैसे पहचान लेते हैं - यह बात किसी से कहकर नहीं समझाई जा सकती। उसी प्रकार ईश्वरादेश कैसे जाना जा सकता है, यह कोई समझा नहीं सकता।''

होम

शिष्य :- किसी फूल से क्या होम नहीं हो सकता?''

श्री गोस्वामीजी :- शाक्त लोग अपराजिता पुष्प से होम करते हैं और वैष्णवों के लिए कुन्द तथा सफेद कनैर की व्यवस्था है।

श्री गोस्वामीजी :- उत्तरमुख या पूर्वमुख हो आसन पर बैठकर होम करना चाहिये। भगवत्प्रीति की इच्छा से अथवा निष्काम होकर जो कुछ करना हो वह उत्तरमुख होकर करना, और सकाम अथवा संकल्पित कार्य पूर्वमुख होकर करने की विधि है। होम करते समय होम का धुवाँ शरीर में लगने दें। नहीं तो देह में होम की क्रिया पूरी-पूरी नहीं होती।

शिष्य - होम से कौन सा लाभ होता है?''

श्री गोस्वामीजी :- होम के अनेक लाभ हैं, उनको इस समय जानने की आवश्यकता नहीं। रीति से होम करते जाओ। लाभ तो तुम्हारी समझ में अपने आप आ जायगा। होम कर चुकने पर होम का तिलक माथे में लगा लेना। होम की विभूति से त्रिपुण्ड लगाना चाहिए। ब्राह्मण के माथे के बीच में ऊर्ध्वपुण्ड भी लगाने की व्यवस्था है।

अंग भस्म

शिष्य :- साधु लोग अंग में भस्म क्यों लगाते हैं?

श्री गोस्वामीजी :- धूनी में साधुगण हवन करते हैं और प्रसाद के रूप में भस्म सारे अंग में लगाकर, इसी भाव से विभोर हो जाते हैं। अच्छे से भस्म लगाने से रोमछिद्र बन्द हो जाने के कारण शीत, ग्रीष्म, वर्षा में शरीर का ताप एक सा रहता है, कोई बीमारी नहीं होती। पर्वतों पर कुछ ऐसे वृक्ष हैं जिनका भस्म लगा लो तो तुम्हें दूसरे लोग देख नहीं पायेंगे। इस प्रकार हिंसक जीव जंतुओं के बीच निर्बाध आना जाना किया जा सकता है।

शिष्य :- मनुष्य पास रहने पर दिखाई नहीं देगा, ऐसा भी कभी हो सकता है ?

श्री गोस्वामीजी :- क्यों? अवश्य हो सकता है। वस्तु का जब प्रतिबिम्ब पड़ेगा तभी तो वह दिखाई देगा। उस भस्म के गुण से मनुष्य की आँखें प्रतिबिम्ब ग्रहण नहीं कर पातीं। सभी वस्तुओं का मानव आँख में प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। प्रेत का रूप क्या सब देख पाते हो ? परन्तु कुत्ते वह देख लेते हैं। कभी ध्यान दिया होगा, अन्धेरी रात को कुत्ता आकाश की तरफ मुँह करके कभी कूदता, कभी दौड़ता और चिल्लाता रहता है।

शिष्य :- हमारी दृष्टि शक्ति क्या वैसी नहीं हो सकती ?

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, क्यों नहीं ? छह माह शाम से भोर तक प्रकाश न देखकर, यदि जागते रह सको तो क्रमश: ऐसी दृष्टि शक्ति होगी कि सूक्ष्म देह भी अनायास ही देख पाओगे। विधिवत् दृष्टि साधन करने पर ऐसा हो सकता है।

शिष्य :- लकड़ी का ऐसा गुण है कि भस्म लगाने से दिखाई नहीं पड़ेगा। ऐसा तो कभी नहीं सुना।

श्री गोस्वामीजी :- सुनोगे कैसे ? दर्शन विज्ञान ने पाया ही कितना है ? यह देखो यह लकड़ी जब पुरानी होकर घुन लग जाएगी। इसमें एक प्रकार का कीट उत्पन्न होगा। जिससे लकड़ी में छेद छेद हो जाएंगे। जब यह आग में जले तो भीतर के कीट निकलकर आग को खाने लगते हैं। वैसी कोई लकड़ी मिले तो बताऊंगा। खुद ही परखकर देखना। अग्निभुक् जीव भी होते हैं। वर्तमान विज्ञान क्या वह मानेगा ?

माला

श्री गोस्वामीजी :-विधिवत् रुद्राक्ष धारण कर नियमानुसार चलने पर तम व रजोगुण नष्ट होकर साधक विशुद्ध सत्व गुण में स्थिति लाभ करता है। सर्वदा नाम जप से अन्त:करण शीतल न रख सको तो यह धारण नहीं करना चाहिए। रोग की उत्पत्ति होती है। अभी तुम कुछ दिन रुद्राक्ष उतार कर रख दो, तुलसी की माला धारण करो। ज्वाला कम होगी, उपकार पाओगे।

शिष्य :- प्रवाल माला धारण करने की क्या उपयोगिता है ?

श्री गोस्वामीजी :- शरीर ठन्डा रहता है। तुलसी माला से शरीर ठण्डा तथा मन सात्त्विक होता है। प्रवाल पित्त नष्ट कर शरीर को शीतल करता है और मन पर भी कुछ क्रिया करता है। पद्मबीज धारण करने पर मन प्रफुल्लित रहता है। स्फटिक तेज और शक्ति की वृद्धि करता है इसलिए शाक्तगण स्फटिक का उपयोग करते हैं। अच्छे फकीरों में भी इसका उपयोग देखा गया है। कई लोग स्फटिक माला से जप करते हैं। तुलसी से उग्रभाव नष्ट होता है तथा स्वभाव नम्र व विनयी होता है। रुद्राक्ष उत्साह, उद्यम और तेज की वृद्धि करता है और शरीर गर्म रखता है।

शिष्य :- महाशंख माला धारण करने का अधिकार कब होता है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''जब सर्वत्र समबुद्धि हो, तब यह माला धारण का अधिकार होता है।''

साधु भेष – गेरूवा

शिष्य - गेरुवा कपड़ा पहनने की क्या कोई विशेष अवस्था है अथवा धर्मार्थी लोग जब चाहे तब उसे पहन सकते हैं?

श्री गोस्वामीजी - गेरुवा कपड़ा, दण्ड कमण्डल और चिमटा प्रभृति धारण करने तथा भस्म रमाने की, इन सभी कामों की, एक-एक विशिष्ट अवस्था है। उन अवस्थाओं के आने पर ही उन चिन्हों के धारण करने का अधिकार होता है; उससे पहले तो विडम्बना है और अपराध लगता है। आजकल इन बातों का विचार न रहने से बहुत अनिष्ट होता है। तुम लोगों को उन चीजों की इस समय कुछ आवश्यकता नहीं है। जब वह समय आवेगा तब उन्हें ग्रहण कर सकोगे। शास्त्र में लिखा है- भगवती के रज से गेरुवे की उत्पत्ति है। गेरुवे कपड़े का नाम भगवां वस्त्र है। वह कपड़ा भगवान नारायण का है। देव-देवी, ऋषि-मुनि और योगी महापुरुषों के लिए वह बड़े ही आदर और सम्मान की चीज है। इसको ग्रहण करके यदि ठीक-ठीक इसकी मर्यादा की रक्षा न की जा सके तो बड़ा अपराध होता है। गेरुवे कपड़े में किसी का किसी तरह एक बिन्दु वीर्य गिर जाने से समस्त देव देवी, ऋषि-मुनि और सिद्ध महात्माओं का शाप लगता है। पहले इन बातों पर दृष्टि थी, शासन था, वस्तु की भी ठीक-ठीक मर्यादा थी। अब तो फेरी लगाने वाला भी गेरुवा कपड़ा पहन लेता है।

आसन

शिष्य - ''आसन कितने प्रकार के हैं?

श्री गोस्वामीजी :- चौरासी लाख जीव हैं और इतने ही आसन हैं। इनमें चौरासी मुख्य्य बतलाये गये हैं। उन चौरासी आसनों में भी पद्मासन और सिद्धासन श्रेष्ठ हैं। सिद्धासन सर्वश्रेष्ठ है, इससे असाधारण लाभ होता है। सभी आसनों की कुछ न कुछ आवश्यकता है।

शिष्य - ''साधु संन्यासी लोग जिस प्रकार का बैठने के लिए अलग आसन रखते हैं; उस प्रकार क्या हम लोग भी साधन भजन करने के लिए आसन रख सकते हैं?''

श्री गोस्वामीजी :- जिन्हें यह साधना प्राप्त हो गई है वे सभी चाहें तो अलग आसन रख सकते हैं। हाँ, यदि आसन की मर्यादा की रक्षा न की जा सके तो उसको न रक्खें।

शिष्य - ''आसन की रक्षा किस प्रकार करनी होती है?''

श्री गोस्वामीजी :- आसन को नियम के अनुसार एक स्थान पर बिछाये रहे और प्रतिदिन एक निर्दिष्ट समय पर थोड़ी बहुत देर तक उस पर बैठकर साधन भजन करना चाहिए। धर्मविषयक सभी कार्य उस आसन पर ही बैठ कर करे और किसी को उस पर बैठने न दे। यदि उस पर कोई दूसरा व्यक्ति बैठ जाता है तो आसन का गुण नष्ट हो जाता है। आसन की पवित्रता को बनी रहने देना ही आसन की मर्यादा की रक्षा है। आसन को एक निर्दिष्ट स्थान पर रखने में ही अधिक लाभ है। थोड़ी देर के लिए भी आसन उठाना हो तो कम से कम एक तिनका वहाँ पर पड़ा रहने दे, आसन के स्थान को कभी बिल्कुल खाली न रक्खे।

शिष्य :- आसन को धूप में फैलाने का विचार करके ज्योंही उसको लपेटने के लिए तनिक सामने की ओर खींचा, त्योंही ऐसा जान पड़ा मानों श्री गोस्वामीजी के शरीर पर भी खिंचाव पड़ा; कारण यह कि उन्होंने उसी दम पाखाने में से जोर से कहा-अरे ! आसन को मत हिलाना, ठहर जाओ ! फुफकार मारेगा !

सुनते ही मैं एकदम चौंक पड़ा। आसन के ऊपरी हिस्से को झाड़कर मैं हट आया। श्री गोस्वामीजी जब श्रीवृन्दावन में दाऊजी के मन्दिर में थे तब श्री गोस्वामीजी के आसन वाले कमरे में सदा साँप रहता था, यह मैं जानता हूँ। गेण्डारिया में भी श्री गोस्वामीजी के साधन कुटीर में, आसन के पास, सदा एक करैत्त साँप रहता है। पता नहीं इसका क्या रहस्य है। दो पक्की दीवालों की ओट में, टट्टी में रहने पर भी, आसन को खींचते ही श्री गोस्वामीजी ने मुझे उसी दम रोक दिया - इससे मैं भी चौंक पड़ा। श्री गोस्वामीजी के आने पर मैंने धीरे धीरे पूछा, ''कलकत्ता शहर में, तिमंजिले के ऊपर, आसन के नीचे साँप कहाँ से आ गया?''

श्री गोस्वामीजी :- क्या कलकत्ता और क्या अन्य स्थान, वास्तु साँप प्रायः सभी पुराने मकानों में रहते हैं। कुछ समय के लिए किसी निर्दिष्ट स्थान में आसन लगाकर बैठते ही समीपवर्ती वास्तुसाँप आसन के नीचे आकर आश्रय लेने की चेष्टा करता है।

शिष्य :- ''तो क्या आसन के नीचे सर्वदा साँप रहता है?''

श्री गोस्वामीजी :- ऐसे स्थानों में सदा रहने का सुभीता कैसे मिलेगा? आसन के नीचे बैठने का सुयोग न मिलने पर उस घर में किसी अन्य स्थान में रह सकता है। वे आस-पास ही रहना चाहते हैं।

शिष्य :- ''आसन को तो प्रायः धूप में फैलाना पड़ता है। डर लगता है, क्या जाने किस दिन कौन सी दुर्घटना हो जाय।''

श्री गोस्वामीजी :- दुर्घटना की रत्ती भर भी आशङ्का नहीं है। विशेष उपद्रव न हो तो वे कुछ भी अनिष्ट नहीं करते। हाँ, अकस्मात् चोट चपेट लग जाने से फुफकार मार सकते हैं।

शिष्य :- ''मैं कैसे समझूँगा कि आसन के नीचे कब साँप है और कब नहीं ?''

श्री गोस्वामीजी :- आसन को कभी हिलाना डुलाना न चाहिए। मैं जब कहूँ, तभी उठाकर धूप में फैलाना। नहीं तो ऊपर से ही साफ कर दिया करो।

श्री गोस्वामीजी :- ''तुलसी पैर पर न रखनी चाहिए, वह मेरे सिर पर रखिए''

गांजा

शिष्य :- ''साधु, फक़ीर और तान्त्रिक साधकों में से बहुतेरे शराब और गाँजा पीते हैं। इन चीजों के पीने से क्या उन लोगों को साधन में कोई विशेष प्रकार की सहायता मिलती है? गँजेड़ी साधु तो गुण्डे से जान पड़ते हैं।''

श्री गोस्वामीजी :- समय-समय पर गुण्डे भी तो साधु का वेश बना लेते हैं। जब मैं गयाजी में आकाश गङ्गा पहाड़ पर रहा करता था तब एक दिन गुफा के भीतर से देखा कि कई आदमी, बहुत सी सामग्री लिये हुए झन-झन करते पहाड़ पर चढ़ते चले आ रहे हैं। देखते ही मैंने उन लोगों को पहचान लिया। वे लोग पहाड़ के नीचे साधु का वेश बनाये हुए रहा करते थे। मैं रोज सबेरे उन लोगों को साष्टाङ्ग प्रणाम किया करता था। उस दिन सबेरे मैंने जाकर बाबाजी से कहा, 'बाबाजी, पहाड़ के नीचे जो लोग भस्म रमाये, तिलक लगाये और माला पहने साधु बने बैठे रहते हैं, वे साधु नहीं हैं। रात को मैंने उन लोगों को कुछ सामान लिये हुए पहाड़ के ऊपर जाते देखा है।' बाबाजी ने कहा, 'हाँ, वे साधु नहीं, गुण्डे हैं। दिन को साधु का वेश बनाये रहते हैं ओर रात को बस्ती में जाकर चोरी-डकैती करते हैं। चोरी के माल को पहाड़ पर ले जाकर एक गुफा में रख आते हैं। उन्हें किसी तरह यह न मालूम होने देना कि तुम उनका भेद जान गये हो, नहीं तो कठिनाई में पड़ जाओगे। अब तक जैसा उनके साथ व्यवहार करते रहे हो; ऐसा ही आगे करते रहो। बचपन से ही मैं किसी क़ो गाँजा पीता देखता था तो उस पर नाराज होता था। एक दिन बुद्ध गया जाते समय रास्ते में वटवृक्ष के नीचे एक तेजस्वी साधु को देखा जो भस्म रमाये हुए धूनी के पास बैठे थे। उनको बार-बार दम लगाते देखकर मैं चिढ़ गया। मैंने उनसे कहा ''इतनी दम लगाने से क्या चित्त स्थिर रखकर साधन भजन किया जा सकता है? आप इतना अधिक गाँजा क्यों पीते हो? साधू ने तनिक हंसकर उत्तर दिया- बैठो बचा, देखोगे कि गाँजा क्यों पीता हूँ। उन्होंने दस चिलमों में गाँजा अपने शिष्य से भरवाकर एक-एक दम में एक एक चिलम खींचने लगे, धूएं

को घोट जाते, देर तक कुम्भक लगाते और फिर धूआँ छोड़ते, प्रत्येक दम में धूएं से दस महाविद्याओं की एक एक आकृति बनते देखी। जाड़े, गर्मी, बरसात, खुली जगह में साधुओं को रहना पड़ता है। उनसे बचाव के लिये भी ऐसी नशीली वस्तुओं की जरुरत होती है। गाँजा आदि नशे की चीजों का एक स्वाभाविक गुण यह है कि उनके सेवन करने से वे स्वभाव की ठीक दशा को प्रकट कर देती हैं। कई अच्छे तान्त्रिक साधु भी आत्म परीक्षा करने के लिये, अपने स्वभाव पर ठीक-ठीक अधिकार हो पाया है या नहीं, इस की जाँच करने के लिये भी गाँजा आदि का सेवन करते हैं तथा बड़े प्रलोभन की वस्तु सामने रखकर उस समय नशे की हालत में बारीकी से मन को जाँचते है कि अन्दर की हालत कैसी है।

धूनी

श्री गोस्वामीजी :- धूनी का साधन है। अग्नि इष्टनाम है, यह ध्यान रखकर काम क्रोधादि ईंधन की आहूति देते हैं। धूनी की अग्नि की ओर दृष्टि रखकर साधुलोग खूब तेजी से नाम जप करते और इच्छा शक्ति द्वारा अग्नि की तेजी बढ़ाते रहते हैं। कुन्दों को वे काम क्रोध की कल्पना करके नाम की अग्नि में जलाने की कल्पना करते हैं। एक कुन्दा भस्म न हो जाए तब तक आसन नहीं त्यागते, अविराम नाम जप करते रहते हैं। एक-एक कुन्दों को जला डालने पर उनके आनंद की सीमा नहीं रह जाती। प्रतिस्पर्धा पूर्वक एक दूसरे को, हमने दो मन का कुन्दा फूँक दिया, हम तीन मन भस्म कर दिए, इस प्रकार कहते हैं। धूनी केवल आग तापने के लिए नहीं, धूनी की साधना बड़ी उत्कृष्ट है।

चिमटा-कमण्डल

शिष्य :- साधु जो चिमटा, कमण्डल, त्रिशूल आदि धारण करते हैं क्या उनकी भी साधना है ? धूनी को झाड़ने के लिए चिमटा, वन्य जन्तुओं को भगाने के लिए त्रिशूल और जल पीने के लिए कमण्डल रखते हैं - ऐसा हम सोचते हैं।

श्री गोस्वामीजी :- साधुओं को यह सब एक-एक परीक्षा उत्तीर्ण करके ग्रहण करना पड़ता है। चिमटा धारण करने से पूर्व वाक् संयम करना पड़ता है। जिह्वा संयत होने पर ही चिमटा धारण करने का अधिकार है। कमण्डल धारण करने का भी अधिकार है। उसमें निर्मल ठण्डा जल सामने रखकर साधक उसकी शीतलता, स्थिरता तथा साम्य भाव के साथ मन का योग रखकर भगवान का नाम करते हैं। उनका अन्त:करण सदा शीतल रहेगा, किसी प्रकार उग्र न होगा। चित्त सदा अविकृत तथा साम्य भाव पूर्ण रहेगा। सत्व, रज, तम ये तीनों गुण जिनके वश में हों, वे ही त्रिशूल धारण के यथार्थ अधिकारी हैं।

*

उ
प
दे
श

ऐश्वर्य, दीनता और धर्माभिमान

श्री गोस्वामीजी :- गया के रघुबरदास बाबाजी की अद्भुत शक्ति मैं अपनी आँखों देख चुका हूँ। रात को बड़े-बड़े बाघ आते और बाबाजी के चरणों पर माथा झुका कर पड़े रहते थे। बाबाजी आटे का टिक्कड़ बना रखते थे। रात को बाघ आता तो उसे वही टिक्कड़ खिलाते थे। गेहुँअन साँप बाबाजी के चारों ओर फिरता रहता था और बाबाजी निश्चल बैठे हुए नाम का जप किया करते थे। कभी-कभी आकाश की ओर देखकर पक्षियों से कहते, 'अरे तुम भी रामजी के जीव हो और मैं भी उन्ही का दास हूँ, यहाँ आकर मेरा कान तो साफ कर दो।' बाबाजी के यह कहते ही पक्षी आकर उनके कन्धों पर बैठे जाते और चोंच से उनके कान को साफ कर देते। कभी कभी बाबाजी के आश्रम में दो-दो, तीन-तीन सौ आदमी आ जाते थे; फिर भी बाबाजी आसन से बिना उठे हुए ही सबको पूरी, मिठाई आदि खिला दिया करते थे। पहाड़ पर पानी की कमी होने से कई बार बड़ी दिक्कत होती थी। बाबाजी महावीर हनुमान जी के यहाँ तीन दिन धरना दिये पड़े रहे, तब महावीरजी ने कृपा कर दी; पहाड़ के पश्चिम की ओर एक बड़ी सी चट्टान दिखलाकर उन्होंने कहा- 'एक लाठी से इस चट्टान पर मामूली ठोकर लगाओ, नीचे से झरना निकल आवेगा।' बाबाजी ने चटपट वहाँ जाकर एक लाठी से ज्योंही उस पर ठोकर मारी त्योंही लाख मन से भी भारी चट्टान खटाके के साथ टूट गई और वहाँ से कल कल शब्द करता हुआ झरना बहने लगा। बाबाजी ने उस झरने का नाम यमुना रक्खा था। वह झरना अब तक वहाँ उसी दशा में है। वहाँ कभी पानी की कमी नहीं होती।

बाबाजी के एक गुरुभाई थे। वे फल्गु के उस पार राम गया पहाड़ के नीचे एक गाँव में रहते थे। उनकी स्त्री और दो नाबालिग लड़के थे। गुरुभाई के बीमार पड़ने पर बाबाजी प्रतिदिन जाकर सेवा करते थे। मरते-मरते उन्होंने दोनो नाबालिग लड़कों और स्त्री को बाबाजी के सुपुर्द कर दिया। बाबाजी प्रतिदिन दोनों वक्त रसोई बनाते और दो कोस चलकर उन्हें भोजन दे आया करते। कुछ दिन तक इस तरह सेवा करते-करते वृद्ध बाबाजी हैरान हो गये। उन्होंने सोचा कि असहाय विधवा और उसके दोनों नाबालिक बच्चों को पास ही क्यों न

रख लूँ। इससे मुझे भजन करने के लिए काफी समय भी मिल जायगा और आने-जाने की मेहनत से भी बचूँगा; स्त्री की भी निगरानी होती रहेगी और बच्चे भी सयाने हो जायँगे। यह निश्चय करके बाबाजी ने उस स्त्री को और उसके बच्चों को आश्रम में लाकर रख लिया। पहाड़ पर आते ही एक बच्चे की मृत्यु हो गई। दूसरे बच्चे पर बाबाजी की ममता धीरे धीरे बढ़ने लगी। वे उस बच्चे के भविष्य की चिन्ता करने लगे। बाबाजी के पास अक्सर बड़े-बड़े आदमी आया करते थे; सैकड़ों रुपयों की भेंट चढ़ती थी। उसमें से बाबाजी अपने पास एक कौड़ी भी न रखकर सब दीन-दुखियों को दान कर दिया करते और भण्डारा भी कर देते थे किन्तु जिस दिन से वह स्त्री आश्रम में आई, उस दिन से दान और भण्डारा कम हो गया। लोग अनुमान करने लगे कि इस स्त्री और बच्चे के ऊपर ममता बढ़ जाने से बाबाजी रुपया जमा करने लगे हैं। उनका एक प्रिय शिष्य बार-बार उनसे कहने लगा, 'महाराजजी, स्त्री को और लड़के को पहाड़ पर मत रखिए। आप संकट में पड़ेंगे। इनको कहीं बस्ती में रख दीजिए।' बाबाजी ने पहले उसको समझाकर कहा, 'मृत्यु शय्या पर पड़े हुए गुरुभाई ने हम से जो प्रार्थना की थी उसको पूर्ण करने का वचन हम दे चुके हैं; अतएव इनको जहाँ तक सुरक्षित रखते बनेगा, रक्खेंगे। ये दोनों हमारे आश्रित हैं, इनको सदा साथ रखने से यदि हमारे ऊपर संङ्कट आवेगा तो भी हम इनको नहीं छोड़ेंगे। ये बड़ी दुखी हैं।' इसी शिष्य ने बाबाजी से एक दिन और कहा, 'महाराज, पहाड़ पर स्त्री के रहने से आपकी बदनामी होगी। लोग यह समझने लग जायँगे कि आप इन लोगों के लिए रूपया पैसा जमा कर रहे हैं। इस सुनसान पहाड़ पर गुण्डों का उपद्रव होगा।' तब बाबाजी ने अप्रसन्न होकर कहा 'कौन साला हमारा क्या कर सकता है! आने दो।' शिष्य बहुत ही नाराज होकर चला गया। सुना गया कि उसी शिष्य ने दो चार दिन में गुण्डों को लालच देकर बाबाजी का आश्रम लूटने की हिम्मत दिला दी। एक दिन गहरी रात के समय सत्रह गुण्डे बाबाजी के आश्रम में मारो-मारो कहते हुए आ धमके। बाबाजी एक लाठी लेकर बाहर आ गये। उन्होंने अकेले ही सत्रह गुण्डों को मार पीट कर खदेड़ दिया। दूसरी बार गुण्डों ने जब बाबाजी पर हमला

किया तब बाबाजी पहले की तरह लाठी भाँजते हुए लपककर गुण्डों को खदेड़ने लगे। दैवयोग की बात, लाठी एक पत्थर से टकराकर टूट गई। तब तो गुण्डों ने बाबाजी को पकड़ लिया और फिर लाठियाँ मार मार कर उन्हें बिल्कुल बेदम कर डाला। बाबाजी के बेहोश हो जाने पर भी गुण्डों ने दम न लिया। उन लोगों ने पत्थर मार-मारकर बाबाजी की खोपड़ी और अंजर पंजर सब तोड़ ताड़ डाला। हाथ पैरों की हड्डियाँ तक साबित न रहने दी। फिर अंगौछे से पैर बाँध कर चार पाँच आदमी उन्हें पहाड़ के ऊपर घसीट ले गये। वहाँ उनको एक जगह पटक दिया और उनकी छाती पर बड़ा सा पत्थर रखकर गुण्डे चले गये। जो लोग बड़े तड़के पहाड़ पर जाया करते थे उन्होंने उस दिन वहाँ पहुँच कर देखा कि आश्रम खाली पड़ा है, कहीं बाबाजी का पता नहीं है। जहाँ तहाँ रक्त के दाग दिखाई दिये। बाबाजी को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सब लोग पहाड़ के ऊपर पहुँचे तो देखा कि बाबाजी एक बड़े से पत्थर के नीचे दबे हुए हैं, बाबाजी को वहाँ से उठाकर लाकर महावीर जी के आगे ला रक्खा और पुलिस को इत्तिला दी। खबर पाकर पुलिस सुपरिटेंडेंट जा पहुँचे। बाबाजी की देह भर में घाव थे और श्वास भी बन्द थी। यह देखकर सभी हाय-हाय करने लगे। अकस्मात् बाबाजी का शरीर हिला। उन्होंने महावीर को साष्टाङ्ग प्रणाम करके माथा ठोकते हुए कहा, 'महावीरजी की जय, तुम्हारी जय हो, धन्य तुम्हारी दया ! हाय जैसा कसूर किया वैसा दण्ड दिया। तुम बड़े दयालु हो, बड़े दयालु हो !' सुपरिंटेंडेंट साहब ने बाबाजी से पूछा, 'जिन लोगों ने आपके ऊपर अत्याचार किया है उनमें से क्या किसी को आप पहचानते हैं ?' बाबाजी ने कहा, 'मैं पहचानता तो सभी को हूँ, किन्तु किसी का नाम न बतलाऊँगा। उनको तो भगवान् ही कठोर दण्ड देंगे। आप उनको सजा क्यों दें ?' पुलिस के साहब ने बहुत चेष्टा की, किन्तु बाबाजी ने किसी का भी नाम नहीं बतलाया। इस घटना के बाद बाबाजी को बुखार आ गया; उन्होंने पहाड़ छोड़ दिया; वे अब रात में पहाड़ पर नहीं रहते, ''चाँद चउरा'' में रहते है।

आकाशगङ्गा के रघुबरदास बाबाजी की आजकल की दशा देखने से उनकी पिछली दशा **स्वप्न सी लगती है। जिस** प्रकार आकाश से

तारा टूट पड़ता है उसी प्रकार तनिक सा अहङ्कार उत्पन्न **होते ही बड़े बड़े योगियों का भी पतन हो जाता है। अहङ्कार के हाथ से बचने का उपाय प्राणिमात्र की सेवा है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, वृक्ष और लता की भी सेवा करनी चाहिए। मैले के कीड़े से घृणा न करे। सभी को अपनी अपेक्षा बड़ा समझे। सब के चरणों में सच्चे दिल से माथा झुकाये रहने में ही बचाव है। सिर ऊँचा करने में निस्तार नहीं है।** परमहंस जी ने जब मेरे ऊपर कृपा की तब मैंने बाबाजी को सब बातें बतलाई। सुनकर बाबाजी को अभिमान हो आया। कहने लगे ''अरे एक जङ्गल में दो शेर नहीं रह सकते हैं, यहाँ और कोई नहीं है; तुम्हारा जो कुछ हुआ है, हमीं ने किया है। देखो, यहाँ यमुना को हम ही ले आये, दूसरा कोई नहीं।'' मुझे तभी खटका हो गया था कि बाबाजी का ऐसा अभिमान ही इनको जल्दी चौपट कर डालेगा। ऐसे शक्तिशाली पुरुष को भी पतित होना पड़ा। उनकी कौन सी दुर्दशा नहीं हुई? अब वे मुट्ठी भर अन्न के लिए दरवाजे दरवाजे पर घूमते है।

शिष्य - ''तो क्या अब बाबाजी को पुरानी दशा फिर प्राप्त हो सकती है?''

श्री गोस्वामीजी :- वे बड़े कठोर साधक हैं। स्थिर होकर बैठ जायँ तो थोड़े समय में ही सब सँभाल लेंगे, पुरानी अवस्था को प्राप्त कर लेंगे।

*** ॐ-हरि ***

शिष्य - ''महापुरुष लोग दया करके पल भर में हमारे सारे कुस्वभाव को दूर करके क्या अच्छा नहीं कर सकते?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, कर सकते हैं; किन्तु जो लोग प्रणाली के अनुसार न करके दूसरी प्रकार से दया करते हैं उन्हें बदला भोगना पड़ता है, पतित होना पड़ता है। जैसे कि गयाजी के बाबाजी चले थे दूसरे का उपकार करने किन्तु बुढापे में उनकी स्वयं दुर्गति हो गई। उनका वह असाधारण प्रभाव सर्वथा नष्ट हो गया है। अब देखो, वे इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं। उन्हें झमेले में पड़ने की क्या

आवश्यकता थी? सुख-दुख भोग मात्र है। सब कुछ भगवान् ही करते हैं; मुझमें क्षमता ही कितनी सी है? मैं कर ही क्या सकता हूँ? यह नहीं बतलाया जा सकता कि किस झमेले में पड़ने से किसका पतन हो जायगा। जब तक शरीर न छूट जाय तब तक कुछ विश्वास नहीं। शायद मरने से थोड़ी देर पहले किसी को एक वासना उत्पन्न हो जाय; इसी से अन्तिम साँस तक कुछ भी भरोसा नहीं।

* ॐ–हरि *

शिष्य - ''जिन्हें सद्गुरु से साधन प्राप्त हो जाता है उन पर क्या भगवान् दया न करेंगे?''

श्री गोस्वामीजी :- उन्हें उपयुक्त साधन प्राप्त हो गया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं किन्तु वे जब तक अपने को दीन हीन कङ्गाल न मानेंगे तब तक कुछ होने का नहीं। कङ्गाल पर दीनानाथ दया किया करते हैं। अभिमानी व्यक्ति दया का पात्र नहीं है।

* ॐ–हरि *

श्री गोस्वामीजी :- यदि तुम्हें अभी वह अवस्था दे दी जाय तो इसी से तुम्हारा अनिष्ट होगा। ऊर्ध्वरिता हो जाओगे तो तुम किसी को कुछ न समझोगे। उस दशा की प्राप्ति हो जाने से तुम शान्त न रह सकोगे। उस ऐश्वर्य से तुम सारे संसार को मिट्टी में मिला दोगे। अभिमान के नष्ट हो जाने पर ही उन ऐश्वर्यों का प्राप्त होना निरापद होता है। अभी तो काम किये जाओ। उस ओर मत देखो। सब ओर ठीक हो जाना कुछ एक दो दिन का काम नहीं है।

* ॐ–हरि *

शिष्य :- ''दूरदृष्टि, भविष्यदृष्टि और अणिमादि ऐश्वर्य, जो कि सिद्ध पुरुषों को प्राप्त रहता है, वह क्या उन्हें योग साधन से मिलता है?''

श्री गोस्वामीजी :- यह शर्त नहीं है कि योग साधन से ही ये ऐश्वर्य मिलें। किसी भी रीति से क्यों न हो, चित्त को एकाग्र होना चाहिए। तब सभी ऐश्वर्य अपने-आप आ जाते हैं, किन्तु ऐश्वर्य को

प्रकट करने में ही सत्यानाश हो जाता है। गुप्त रखने पर ही ये शक्तियाँ धीरे-धीरे बढ़ती रहती हैं। इन ऐश्वर्यों को प्राप्त करना तो सहज है, किन्तु इनकी रक्षा करना कठिन है। सैकड़ों योगियों के साधन की सम्पत्ति इस ऐश्वर्य के तूफान में पड़कर बिल्कुल डूब गई है। बहुत ही चौकन्ना रहना पड़ता है।

*** ॐ-हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- अभी से सावधानी न करोगे तो न जाने कितनी दुर्दशा होगी। धर्म कुछ तमाशे की चीज नहीं है। **सभी के पैरों के नीचे होकर धर्म का मार्ग है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़ा-मकोड़ा, सब के पैरों के नीचे होकर धर्म की सीढी पर चढ़ना पड़ता है। ऊँचा सिर करने से कभी धर्म प्राप्त नहीं होता। अभिमान बड़ी बुरी चीज है। जटा, माला, और तिलक आदि धर्म की वेश भूषा के धारण करने से यदि रत्ती भर भी प्रतिष्ठा का भाव मन में आ जावे तो उसी दम उसका त्याग कर देना चाहिए नहीं तो वही साँप बनकर डस लेता है;** सदा इन सब का विचार रखकर चलना चाहिए। जो वस्तु भगवान् के उद्देश्य से धारण नहीं की जाती और जिसके धारण करने से केवल प्रतिष्ठा का लोभ ही बढ़ता है उसे, वह कुछ भी क्यों न हो, काकविष्ठा की तरह त्याग दें। और जिसे उनके उद्देश्य से रक्खे उसमें, सारे ब्रह्माण्ड का ध्वंस हो जाने पर भी, टेढ़ी भौं न करे। इन कामों को बड़ी सावधानी से करना चाहिए। **धर्माभिमान बड़ा भयानक होता है। इतना अनिष्ट और किसी काम से नहीं होता जितना इससे होता है।** शराबी, वेश्यागामी और नितान्त दुराचारी भी यदि अपनी हालत को समझकर अपने को बिल्कुल तुच्छ जघन्य मानने लगता है तो वह किसी अच्छे कार्य करने वाले, सच्चरित्र, धर्माभिमानी से भी कई गुना श्रेष्ठ है। **अन्यान्य अपराधों का तो ओर-छोर है, किन्तु धर्माभिमानी का बेड़ा सहज में पार नहीं लगता।** साधन, भजन, तपस्या, कथावार्ता, वेशभूषा, चाहे जिस विषय में धर्म का अभिमान हो जाय, प्रतिष्ठा का भाव मन में आ जाय तो उसे बुरी बीमारी समझकर उसी दम छोड़ दें।

❋ ॐ–हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- तुम ही क्या ? बड़े बड़े कितने ही लोग प्रतिष्ठा का भाव नहीं छोड़ पाते। श्वास प्रश्वास में नाम जप करो। इसी से सारे दोष कट जाएंगे। प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा, प्रतिष्ठा का भाव एक रोग है। यह बात सदा याद रखना।

❋ ॐ–हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- सदा विचार करके चलोगे। जिसमें अभिमान हो ऐसा कुछ भी न करोगे। कभी किसी विषय में अनुकरण न करना। प्रत्येक वस्तु का ग्रहण, रक्षण तथा त्याग विचार पूर्वक करोगे। जिसका उद्देश्य भगवान नहीं है, वह चाहे कुछ भी हो, दूर हटा देना। जिससे प्रतिष्ठा बढ़े उसे त्याग दो। जो उनके उद्देश्य से हो, सारा विश्व ब्रह्माण्ड ध्वंस होने पर भी उसे मत छोड़ो। जटा, माला तिलक जो धर्मोद्देश्य से रखा जाता है यदि उससे भी अभिमान उत्पन्न हो, प्रतिष्ठा का कारण बने तो तुरंत दूर कर दो। इस विषय में नियत दृष्टि न रखो तो कोई पार नहीं। जितने भी प्रकार के अभिमान हैं उनमें धर्म का अभिमान सबसे गुरुतर पाप है। सावधान रहना। साधन, भजन, तपस्या, अध्ययन, बातचीत, वेषभूषा किसी विषय में अभिमान या प्रतिष्ठा का भाव आये तो भीषण रोग जानकर तुरंत वह त्याग दो।

❋ ॐ–हरि ❋

''कविराज गोस्वामी ने कहा है - प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा है। लोग उंगली दिखाएँ तो बड़ी हानि होती है। जैसे वृक्ष में फल लगने पर काली हंड़ी पर चूना लगाकर या पैरों के पुतले बनाकर रखवाली करते हैं, उसी प्रकार साधन की अवस्था प्राप्त होने पर बालक, उन्मत या पिशाचवत आचरण लेकर रहना चाहिये। बल्कि कोई गाली दे तो अधिक उपकार होता है। भाव आदि दबा कर रखना ही अच्छा है। खूब यत्न करना होगा। फिर भी न रोक सको , तो उपाय नहीं। यदि कुछ भी न हो पाये तो कोई बात नहीं, चुपचाप बैठे रहो, यह तो भी अच्छा है, किन्तु जरा कुछ हो और अहंकार आ जाय तो सर्वनाश है। कुत्ते या बंदरों को अधिक

छूट दे दी जाय तो कंधे पर आ चढ़ते हैं। आते ही अगर अनुशासित किया जाय तो दूर जाकर बैठते हैं, कुछ दो, तभी खाएंगे। प्रतिष्ठा भी ठीक उसी प्रकार है।''

* ॐ–हरि *

श्री गोस्वामीजी :- ''दीनहीन, विनीत होने से बढ़कर भगवान को पाने का और कोई सहज उपाय नहीं है। सेवा, वंदना और अधीनता ये तीन सभी प्रकार की साधना से श्रेष्ठ और सहज हैं। कई महात्माओं से पूछा गया पर इनसे बढ़कर कोई सहज भगवत प्राप्ति का उपाय किसी ने नहीं बताया। मेरा भी विश्वास है इससे बढ़कर कुछ नहीं। यही श्रेष्ठ व सहज साधन है। इसके द्वारा भगवान में महाभाव लाया जा सकता है।

* ॐ–हरि *

मन वचन कर्म से सभी मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, वृक्षा लता आदि की साध्यानुसार सेवा करनी होगी। दया व सहानुभूति के बिना यथार्थ सेवा नहीं होती। जैसे अपने प्रयोजन की पूर्ति करने की इच्छा होती है, वैसे ही दूसरों के प्रयोजन को हृदयंगम करके, पूरा करने की व्याकुलता उत्पन्न होती है। माँ शिशु की सेवा इसी प्रकार करती है, शिशु की किसी कमी को देख कर माँ अस्थिर हो उठती है। इसका नाम है सेवा। मन में अनुराग नहीं है, देखा-देखी कुछ खाने को दिया या कोई सहायता कर दी, उसे यथार्थ सेवा नहीं कहते। वृक्ष-सेवा, पतिसेवा, संतान सेवा, प्रभुसेवा, भृत्यसेवा, पत्नी सेवा, सभी में यदि यह भाव हो तो वह सेवा होगी अन्यथा उसे सेवा का नाम देना उचित नहीं होता है, इस तरह सेवा करने का कोई प्रयोजन नहीं। उससे हानि की संभावना है। वंदना - सभी की वंदना करना चाहिये। जहाँ जितनी मात्रा में सत्य की प्राप्ति हो, उतनी ही मात्रा में सत्य ग्रहण कर लो। जिनसे या जिस स्थान से जरा भी सत्य प्राप्त हो, उस स्थान या व्यक्ति की विशेष रूप से वंदना करनी चाहिये। ईश्वर से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि सत्य का पालन कर सको। व्याकुलता न आए तो व्याकुलता के लिये ही प्रार्थना करो। तभी सत्य हृदय में प्रकाशित होगा। अपनी शक्ति से किसी सत्य की प्राप्ति

नहीं हो सकती । जब अत्यन्त दीन भाव से इस सत्य प्राप्ति के लिये व्याकुल हो जाओ एवं आत्मा अत्यन्त दीन, विनीत भाव धारण कर ले, तब भगवान की असीम कृपा से सत्य का हृदय में प्रकट होना संभव होता है और जीवन धन्य हो जाता है। इस प्रकार न होने पर सत्यप्राप्ति या कोई यथार्थ परिवर्तन भी नहीं आता।''

❊ ॐ-हरि ❊

''वंदना तीन प्रकार की होती है - कायिक, वाचिक, मानसिक। कायिक वंदना - जैसे नत होकर प्रणाम, भूमि में प्रणाम, हाथ जोड़कर प्रणाम या नमस्कार आदि। वाचिक वंदना में उनकी स्तुति करना होता है। मानसिक वंदना में मन से वंदना का भाव उमड़ता है। जिनके पास से सत्य की प्राप्ति हो उनका अनादर, व्यंग्य या हँसी उड़ाना, आदि नहीं करना चाहिये। गुरु ज्ञान से उनके प्रति विनीत होओगे, तभी विशेष फल मिलेगा।

अधीनता - सभी गुरुजन हैं, सभी के अधीन होना चाहिए। सबके प्रति विनीत और अधीन रहना होगा, सभी को प्रभु मानो। उनके समक्ष लिहाज की भावना रखना। उनकी गुण महिमा गान करना। तुम्हें सभी अपना मान सकें। ऐसा करने पर सफलता पाने में देर नहीं लगती। इन सब विषयों को किसी से कहना नहीं चाहिए, ये भाव गोपनीय रखने पर विशेष फल की प्राप्ति होती है।''

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- मनुष्य की क्या कोई स्वाधीनता है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''हाँ कुछ स्वाधीनता है। जैसे गाय के गले में रस्सी बंधी हो, तो रस्सी जितनी लम्बी हो उतनी दूर तक गाय घूम फिर पाती है, इससे आगे नहीं जा पाती। ठीक उसी प्रकार मनुष्य अपनी प्रवृत्ति के विषय में, स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है। आँखों की दृष्टि, कानों का श्रवण एवं नासिका की घ्राणशक्ति आदि से जितनी दूर तक का दृश्य देख सकता या शब्द सुन सकता है, उसके आगे और ऊपर जाने की क्षमता उसकी नहीं रहती। अपने पुत्र को जैसा प्यार करते हैं, दूसरों

के पुत्र को उस प्रकार प्यार नहीं कर पाते, कोशिश करके भी ठीक वैसा भाव नहीं ला पाते। अतएव मनुष्य बंधी हुई गाय के समान स्वाधीन है, मोह और अज्ञानता जब तक है, तब तक अपने को कर्ता मानकर मनुष्य सुख-दु:ख का भोग करता है। प्रत्येक जीव के कुछ कार्य हैं। उस कार्य के सम्पादन के लिये जितनी मात्रा में स्वाधीनता की जरुरत है, उतनी स्वाधीनता उसे है। जैसी गाय उतनी लम्बी रस्सी गले में बांधी जा सकती है। सभी जीव उपाधि में आवृत हैं, अर्थात् अन्धे के समान हैं। जैसे-जैसे ये उपाधियाँ कटती हैं, वैसे वैसे देवत्व की प्राप्ति होती जाती है। इसीलिये जीव को चित्कण कहा गया है, वह जीवन मुक्त शिव है।''

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य :- संसार के संताप व यंत्रणा के बीच साधन भजन कुछ नहीं होता, अत: धर्म प्राप्ति के लिये संसार का त्याग करने में क्या दोष है?

श्री गोस्वामीजी :- ''मनुष्य कुछ दिन संसार में रहकर साधन करे, और ताप-दग्ध होता हुआ, अग्नि परीक्षित हो जाय, तब उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। वैराग्य आते ही, यदि चला जाय तो कई बार पतन की संभावना रहती है। उस समय सावधान न रहे तो सर्वनाश हो सकता है। धर्म-पथ पर चलो। इससे संसार रहे तो रहे, न रहे तो जाय। असत्य का अवलम्बन करके कभी कोई अर्थोपार्जन मत करना। उससे अच्छा तो भीख माँगकर जीवन यापन करना है। धर्म की रक्षा सती की भाँति, दाता की भाँति, भक्त की भाँति तथा वीर की भाँति करनी चाहिए। जहाँ धर्म है, वहाँ जय है। मनुष्य कर ही क्या सकता है? स्वयं भगवान ही धर्म की रक्षा किया करते हैं।''

❊ ॐ–हरि ❊

''अनेक लोगों में यह देखा गया है कि ऐश्वर्य लाभ होते ही उसे प्रयोग करने के कारण वे नष्ट हो गए हैं। ऐश्वर्य लाभ से विभिन्न प्रकार की संपदा वृद्धि, रोगारोग्य एवं इच्छानुसार अनेक अलौकिक कार्य करने

की क्षमता मिलती है, यह सत्य है, किन्तु धर्म लाभ के पथ में वह विघ्न एवं प्रलोभन का विषय है; ऐश्वर्य लाभ होते ही शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार चलने से धीरे-धीरे विभिन्न आश्चर्यजनक अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। शक्ति प्रयोग करने से अल्प समय में उसका सर्वनाश होता हैं, धर्म नष्ट होता है एवं शक्ति भी सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है। लेकिन वह ऐश्वर्य मनुष्य को इस प्रकार प्रलुब्ध करता है कि कुछ प्राप्त होते ही शक्ति प्रयोग की इच्छा बलवती होती है। इसलिए इस विषय में विशेष सावधानी रखनी आवश्यक हैं।''

*** ॐ–हरि ***

''किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, कोई भय नहीं है। समय होने पर सब विघ्न अपने-आप हट जाऐगे। कोई महिला जब प्रथम गर्भवती होती है, तब कैसे संतान प्रसव करेगी, यह सोचकर चिंतित होती है। किन्तु ईश्वर का विधान इस प्रकार है कि समय होने पर प्रसूता के शरीर को सभी अंग संतान प्रसव के उपयोगी हो जाते हैं एवं किसी प्रकार संतान प्रसव हुआ, यह उसको पता नहीं चलता। धर्म-जीवन में भी इस प्रकार होता है; मनुष्य अपनी दुर्बलता, अक्षमता एवं बाहर की प्रतिकूल अवस्था देखकर कैसे धर्मलाभ होगा, यह सोच भी नहीं सकता। किन्तु समय होने पर भगवत्कृपा से सब विघ्न अपने आप हट जाता है। अंदर बाहर सब सिद्धि लाभ के अनुकूल हो जाता है। तब कैसे उसको इष्टलाभ हुआ एवं उसकी आकांक्षा पूरी हुई, यह समझ भी नहीं सकता एव इस अघटन को होते हुए देखकर भगवान की अपार दया का निदर्शन पाकर भक्ति एवं कृतज्ञता से व्याकुल हो उठता है। भय नहीं है, कुछ मत सोचो, समय आने पर सब विघ्न अपने आप हट जाएंगे।''

*** ॐ–हरि ***

''परसेवा ही धर्म है। यहाँ जो रहेंगे, परस्पर दूसरों की सहायता करेगे। एक से ही काम लेने पर अपराध होता है। अभिमान सहज ही नहीं जाता। काम क्रोध छोडूंगा, लोग साधु कहेंगे, यह अभिमान सबसे बड़ा शत्रु है। परसेवा एवं परोपकार द्वारा अभिमान पर विजय प्राप्त करना चाहिये। संसार में जिन्हें अपने से छोटा समझते हो, उनकी सेवा करो।

मेरी सेवा करके कोई लाभ नहीं, भस्म में घी डालने जैसा है। सेवा करने में यदि असंतोष या खीज की भावना आए तो ऐसी सेवा से कोई फल नहीं मिलने का।''

*** ॐ-हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- दो घण्टे तो बहुत होते हैं, तुम दो मिनि़ट भी मन को स्थिर करके नाम का जप. नहीं करते। एक बार करके देखो तो सही, कैसे बात अन्यथा होती है केवल नाम जपने से न होगा, मन को स्थिर करके करना होगा। यह नाम अक्षर नहीं है, एक शब्द भी नहीं है, इस नाम में भगवान की अनन्त शक्ति निहित है। भगवान ही नाम है। नाम का जप करना और भगवान का साथ करना एक ही बात है। लक्ष्य वस्तु को छोड़कर नाम का जप करने से क्या होगा? जप करते समय मन इधर-उधर भटकता फिरता है। इससे जप ठीक-ठीक नहीं होता। अपने दोष नहीं देखते, समझते हो कि पराये दोष से तुम्हें कष्ट मिल रहा है। और अपनी भूल को बिना देखे दूसरे पर दोषारोपन नहीं करना चाहिए। इससे अपराध लगता है। दूसरों की अपेक्षा तुम आसन पर कुछ अधिक समय तक बैठे रहते हो, इसी से तुम्हें कितना अभिमान हो गया है ! देखो, कैसा भयानक है ! जो लोग तुम्हारी तरह आसन पर नहीं बैठते, नाम का जप नहीं करते सदा हँसी दिल्लगी करते हुए फिरते रहते हैं, तुम जिनको कुछ भी करते नहीं देख पाते उनके भीतर ऐसे-ऐसे सद्गुण हैं जो तुममें नहीं हैं। बिना कुछ भी किये, केवल विश्वास से ही किसी-किसी को ऐसी अवस्था प्राप्त हो जायेगी जिसकी प्राप्ति होना तुम्हें साधन-भजन करते रहकर बहुत समय के बाद भी कठिन होगा। अपने को औरों से सदा छोटा समझो, किसी विषय में अपने को किसी से भी श्रेष्ठ मत समझो। बहुतेरे बहुत साधन-भजन करके, कठोरता करके जिस अवस्था को बहुत समय में भी प्राप्त नहीं कर सकते; वही अवस्था एक लम्पट, बदमाश और डकैत की स्वाभाविक ही हो सकती है। अभिमान करने के लिए है ही क्या? थोड़ा सा साधन करते हो, इसी अभिमान से मार्ग नहीं देख रहे हो। इस अभिमान के रहते कोई अवस्था तुम्हें दे दी जाय तो तुम ऐश्वर्यमत्त होकर किसी को तिनके बराबर भी न समझोगे। प्रत्येक कार्य का विचार

करके व्यवहार करो। बिना विचारे कार्य करने से अनेक अनर्थ होते हैं। **जब तक अपने को छोटा न समझोगे, हजार साधन-भजन और तपस्या से भी कुछ न होगा।**

✻ ॐ-हरि ✻

श्री गोस्वामीजी - जिनको यह साधन मिला है उनमें से बहुतों का प्राय: यही हाल है। मैं सब बातों का करने वाला हूँ, अपनी उन्नति मैं स्वयं कर सकता हूँ, जब तक यह अभिमान रहता है तब तक मनुष्य भगवान की ओर नहीं देखता। इस अभिमान को नष्ट करने के लिए ही ऐसी दशा के आने की आवश्यकता होती है। मनुष्य कुछ नहीं है, वह कुछ भी नहीं कर सकता, यही भली भाँति समझना चाहिए। नहीं तो भगवान की ओर किसी की दृष्टि न जावेगी, उन्नति भी न होगी।

✻ ॐ-हरि ✻

यदि मैं ज्ञानी, धार्मिक, साधु, भक्त हूँ, ऐसा अभिमान आये और चारों ओर से लोग इस प्रकार सम्मान प्रदर्शित करते रहें, तब यदि मेरा अन्त:करण धर्महीन, असाधु, अज्ञान और अभक्त रहे तो पूर्ण सम्मान रक्षा करने की खातिर मनुष्य घोर पाप में डूब जाता है। अत: लोगों के सामने जितना हीन, मलीन रूप परिचित हो उतना ही मंगल जानो। इस विपत्ति से रक्षा हेतु ऋषियों ने चार उपाय बताये हैं - (1) स्वाध्याय (धर्मग्रन्थ पाठ एवं नाम जप) (2) सत्संग (3) विचार - (सर्वदा अपनी परीक्षा करनी होगी। आत्मप्रशंसा अच्छी लगे और परनिन्दा में सुख मिले तो अपने को नरकगामी या धर्मभ्रष्ट मानना पड़ेगा) (4) दान-दान शब्द का अर्थ दया बताया गया है। किसी के हृदय को कष्ट न देना। किसी के शरीर या मन में, वाक्य या व्यवहार से कोई क्लेश देने से दया नहीं रह जाती। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य सभी जीवों पर दया रखना कर्तव्य है। स्वाध्याय, सत्संग, विचार, तथा दान का साधन प्रतिदिन करना चाहिये। इसके साथ कर्मेन्द्रिय को भी अनुशासित करने का अभ्यास करना प्रयोजनीय कहा गया है। इन उपायों से सहज ही कामना-वासना निवृत होती है।

गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बार बार संग्रम करने के लिए कहा है। यह संग्राम सभी साधकों के जीवन में आवेगा। अनेक प्रकार की दुरवस्थाओं में पड़कर साधक को प्रलोभन का सामना करना पड़ेगा– युद्ध करना होगा। इस संग्राम में कभी तो साधक प्रलोभन को परास्त करेगा, कभी प्रलोभन साधक को पछाड़ देगा। इस विषम संग्राम में साधक को बहुत समय लगाना होगा। इस समय गुरु के दिये हुए नाम को ही अस्त्र बनाकर, बड़े धैर्य से, रिपुओं के साथ प्राणपण से युद्ध करना पड़ता है। संग्राम की दशा की भाँति भयानक दशा साधक जीवन में दूसरी नहीं है। बारबार प्राणपण से चेष्टा करने पर भी साधक जब अनेक प्रकार के भयंकर प्रलोभनों और रिपुओं द्वारा बार बार परास्त होने लगता है, तब उसका धैर्य छूट जाता है। 'साधन भजन करने से कुछ भी नहीं होता है। जो लोग दो चार धक्के खाते ही बिल्कुल हाथ–पैर ढीले कर देते हैं, सुस्त हो जाते हैं, उनका भोग नि:शेष होने में देर लगती है और जो लोग बार–बार गिर जाने पर भी बदन झाड़कर उठ बैठते हैं, संग्राम से मुँह नहीं मोड़ते उनका भोग जल्दी बेबाक हो जाता है। जिसका जैसा स्वभाव होता है वह वैसा ही संग्राम कर सकता है; कोई कम कोई ज्यादा। किन्तु अन्त में सभी को इस युद्ध में परास्त होना पड़ेगा। युद्ध में पग पग पर परास्त होते–होते जब बिलकुल बेदम हो जावेगा, हाड़–गोड़े टूट जावेंगे, बिल्कुल चूर–चूर होकर चारों ओर अन्धकार देखने लगेगा, तब साधक समझेगा कि मेरे बल–बूते पर कुछ होने जाने का नहीं; मैं तो बिलकुल निकम्मा हूँ; मैं तो एक मामूली काम भी नहीं कर सकता। तभी वह अपने को सचमुच हीन, पतित और अधम समझकर प्रबल शक्तिशाली की ओर देखेगा; हृदय से उनका आश्रय लेगा; सोलहों आने उन्हीं का भरोसा करके ठीक कृपा की प्रार्थना करेगा। अपनी कुछ भी क्षमता नहीं है, अपने को असार से भी असार समझकर हृदय से भगवान के शरणागत होते ही ''भक्ति योग'' आरम्भ होता है। उस दशा में फिर साधक की किसी प्रकार की इच्छा, चेष्टा या स्वाधीनता नहीं रह जाती। सब कुछ भगवान् ही

करते हैं, इसको साफ साफ जानकर वह बिलकुल उन्हीं की कृपा के भरोसे पर अपने को छोड़ देता है। भक्त जब अपने को भगवान के चरणों में सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग कर देता है तब भगवत्कृपा से उसके आगे अनेक तत्त्व प्रकाशित होने लगते हैं। इन तत्त्वों के प्रकट होने की दशा ही ''ज्ञानयोग'' है। गीता में जो कर्म योग, ज्ञान योग एवं भक्ति योग का विषय बताया गया है, उसका यही तात्पर्य है। तीव्र तपस्या, कठोर वैराग्य और प्राणपण से साधन भजन करने पर भी वास्तविक अवस्था की प्राप्ति नहीं होती, बिना उनकी कृपा के कुछ न होगा, उसको भली भाँति समझने के लिए ही साधन-भजन है। अपनी चेष्टा और साध्य सभी असार है। एकमात्र उनकी कृपा ही सार है।

श्री गोस्वामीजी :- डटकर संग्राम करो, जीवन में संग्राम के आने को भी सौभाग्य समझो। बहुतों के जीवन में यह संग्राम आता ही नहीं। संग्राम का आरम्भ होते ही समझना कि धर्म जीवन का सूत्रपात हो गया। जो लोग इस साधन के भीतर हैं उन सब को इस संग्राम में पड़ना होगा, सभी को हृदय से समस्त रिपुओं से हार माननी होगी। अपनी-अपनी यथार्थ भित्ति पर जाकर खड़ा होना होगा। एक बार अपनी जगह पर जाकर खड़े होते ही अपने को अत्यन्त हीन, पतित और कङ्गाल समझोगे। उस समय दीनबन्धु, पतितपावन, निर्धन के धन कहकर प्रभु को बुलाना साधारण सी बात या रटी हुई बात न होगी। अपनी दुरावस्था का अनुभव करके भगवान् को पुकारने से वह पुकार हृदय की पुकार होती है। उस समय भगवान् भी दया करेंगे। निराश होने के लिए कुछ भी नहीं है।

❊ ॐ-हरि ❊

प्रश्न :- 'भगवान् को प्राप्त करने के लिए क्या ऐसे कार्य करने चाहिए जो उनको प्रिय हों अथवा केवल जप-तप करने से ही काम बन जायगा ?'

श्री गोस्वामीजी :- भगवान् की प्राप्ति सहज में नहीं हो जाती। कोई सदा उनके प्रिय कार्य करते रहने से उनको प्राप्त कर लेता है

और कोई सदा ध्यान करते रहने से उनको प्राप्त हो जाता है; किसी किसी को सदा जप करते रहने से उनके दर्शन मिल जाते हैं। सभी के लिए एक बँधा हुआ मार्ग नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि कौन व्यक्ति कैसा आचरण करने से उनको प्राप्त कर लेगा? यह भी शर्त नहीं है कि सभी लोग ध्यान धारणा और जप-तप के द्वारा ही उनको प्राप्त कर लेंगे। उनकी कृपा से ही उनकी प्राप्ति होती है। कृपा ही सब की जड़ है।

❊ ॐ–हरि ❊

भगवान की कृपा ही सार है और बाकी कुछ भी नहीं। साधन भजन जागरुक रहने के लिए है ताकि उनकी कृपा आये तो धारण कर सको। साधन भजन करके उन्हें पा सके यह साध्य किसमें है? कुछ रुककर बोले - लोग अपनी तृप्ति के लिए साधन-भजन करते हैं। मनुष्य को जैसे भूख प्यास लगती है, तब अन्न न मिले तो कष्ट होता है। भगवान का नाम बिना लिये, उनकी पूजा अर्चना बिना किये नहीं रहा जा सकता। कर्म न समाप्त हो तो उन्हें नहीं पाया जा सकता। यह तो ठीक है। कर्म समाप्त होने में लगता ही क्या है? उनकी कृपा हो जाए तो मुहूर्त भर में सारे प्रारब्ध कट जाएँ। महारानी जब एम्प्रेस बनी तो उनकी एकमात्र आज्ञा से सैकड़ों लोगों की दीर्घकाल की कैद खत्म हो गई। वैसे ही भगवान की कृपा हो, वे चाहें तो सारे कर्म, सारे प्रारब्ध पल में कट जाएँ। उनकी कृपा ही सार है और बाकी सब कुछ भी नहीं। कातर होकर उनकी ओर देखते रहो, उनकी कृपा ही सार है।

❊ ॐ–हरि ❊

भगवान की कृपा अवतीर्ण हो तो कृतज्ञता सहित, कातरता पूर्ण उन्हीं की ओर ताकते रहना चाहिए। तभी वह टिक पाती है।

❊ ॐ–हरि ❊

अभी यदि तुम्हें योगैश्वर्य प्राप्त हो जाये तो संसार को तहस नहस कर बैठोगे।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- सबके पास विनयी होना चाहिए। सबको खूब श्रद्धा भक्ति किया करो। कोई गुरुप्रदत्त वस्तु पर या साधन भजन पर अवज्ञा करे, तिलक माला लेकर छेड़छाड़ करे, गुरूनिष्ठा नष्ट करना चाहे तो वज्र की तरह कठोर होकर उसका प्रतिविधान करना चाहिए। अन्यथा अपना आचरण फू ल जैसा कोमल रखो, यह ऋषि वाक्य है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- ''यदि प्रयोग ही न किया, उसका उपयोग ही न हुआ तो फिर इन शक्तियों से कौन सा लाभ है?''

श्री गोस्वामीजी :- सारी शक्तियाँ और समस्त ऐश्वर्य भगवान् के ही हैं। उन्हीं की कृपा से मनुष्य को इनकी प्राप्ति होती है। उन्हीं का इशारा पाकर इनका उपयोग करना चाहिए। अपनी मर्जी से कुछ करते ही गड़बड़ हो जाती है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- ''शास्त्र में जिन कार्यों को सत्कार्य कहा गया है, धर्म कार्य कहा गया है उसके सम्बन्ध में भी क्या योगैश्वर्य का प्रयोग न करना चाहिए?''

श्री गोस्वामीजी :- सत् और असत् को समझ लेना बिल्कुल सहज नहीं है। मुसलमानों के एक धर्मग्रन्थ में इस विषय पर बड़ी अच्छी एक कहानी है। एक दयालु फकीर ने शहर में दुःख, दरिद्र, रोग, शोक इत्यादि से लोगों को क्लेश पाते देखकर सोचा 'आह खुदा इनके लिये तो कुछ नहीं कर रहा है। फकीर ने खुदा से प्रार्थना की ''प्रभु यदि एक ही दिन के लिये शक्ति देकर मुझे इस शहर पर अपनी खुदाई करने दो तो मैं सब के सब प्रकार के क्लेश दूर कर परम शान्ति स्थापित कर दूँ।' खुदा ने 'यही सही' कहकर फकीर की प्रार्थना स्वीकार कर ली। अब फकीर शहर में सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हो गया। उसने तुरन्त ही सभी प्राणियों के दुःख, कष्ट, रोग और शोक

को बिल्कुल दूर करके बड़े आनन्द की तरङ्गें उठा दी। एक बड़ा भारी दुर्वृत्त घोर पाखण्डी उस शहर में एक सुन्दरी युवती पर अत्यन्त आसक्त था। बहुत चेष्टा करने पर भी वह युवती की जीवित अवस्था में उसे प्राप्त नहीं कर सका। अकस्मात् स्त्री का शरीर छूट गया। उसके घरवाले और रिश्तेदार उसे दफनाकर चले गये। थोड़ी देर में उस दुराचारी को इसकी खबर मिली तो वह सूनी जगह में उस कब्र के पास पहुँचा और युवती की लाश को कब्र में से निकाल कर उसी पर अपनी जघन्यवृति को चरितार्थ करने की तैयारी करने लगा। इस घटना पर ज्यों ही फक़ीर की नजर पड़ी, त्यों ही वह तलवार लेकर कूद पड़ा और पलभर में घटनास्थल पर पहुँच कर 'काफिर' 'काफिर' चिल्लाता हुआ गर्दन उड़ाने के लिए तलवार का वार करने लगा। खुदा ने उसी दम तलवार को पकड़कर फकीर से कहा' यह क्या कर रहे हो? जरा सी देर के लिए खुदाई पाकर यह मामला ! यह जिन्दगी भर ऐसे ऐसे न जाने कितने दुष्कर्म करता रहा है, उनको देखते रहकर भी मैं इसे क्षमा करता आया हूँ और जिस तरह औरों का पालन करता हूँ उसी तरह सभी दशाओं में इसका पालन भी किया है, इसे एक दिन भी भूखा नहीं रक्खा और तुम इसका एक ही दोष देखकर इसकी जान लेने को उतारू हो गये! जाओ, अब तुम्हें खुदाई करने की आवश्यकता नहीं।' फकीर ने कहा, 'प्रभो, मैंने कुछ बेजा नहीं किया है। कुरान का ही तो हुक्म है कि ऐसे अपराधी को कत्ल कर डालना चाहिए।' खुदा ने पूछा, 'कुरान का हुक्म तुम्हारे लिए है या मेरे लिए?' फकीर ने उत्तर दिया 'मनुष्य के लिए है, मेरे लिए है।' खुदा ने कहा, तो फिर? आज तो तुम पुराने तुम नहीं हो। आज तो तुम खुदा बन गये थे। खुदा के लिए कुरान का हुक्म नहीं है !' तब फकीर भगवान् के कार्य और असीम दया को देखकर तथा अपनी फैसला करने की हालत और हैसियत को समझकर बिल्कुल मुग्ध और लज्जित हो गये। **साधारण मनुष्य को असाधारण शक्ति मिल जाने पर उसके द्वारा संसार का विशेष अनिष्ट होता है।** इसी से रामचन्द्रजी ने शूद्र तपस्वी का वध किया था। शक्ति मिल जाने पर सम्पत्ति की अपेक्षा विपत्ति का ही सामना अधिक करना पड़ता है।

शिष्य - आत्मा में उस प्रकार की क्षमता उत्पन्न हो जाने पर भी तब किसी प्रकार का अलौकिक काम करने से क्या कुछ अनिष्ट होता है ?

श्री गोस्वामीजी - बहुतों को देखा गया है कि वैसा थोड़ा सा ऐश्वर्य लाभ होते न होते ही उसका प्रयोग करने से वे बिल्कुल चौपट हो गये हैं। उस ऐश्वर्य से अनेक प्रकार की सम्पत्ति की वृद्धि, रोग को हटाने तथा इच्छानुयायी और भी अनेक काम करने की क्षमता तो हो जाती है, किन्तु धर्म की प्राप्ति के मार्ग में वह विषम विघ्न और प्रलोभन है। उन ऐश्वर्यों की प्राप्ति होते ही शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। तभी क्रमश: अनेक अद्भुत अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं और शक्ति का प्रयोग करने पर थोड़े समय में उसका सत्यानाश हो जाता है; धर्म-कर्म तो चूल्हे में गया, वह शक्ति भी चली जाती है। किन्तु वह ऐसा प्रलोभन है कि थोड़ा सा कुछ होते न होते ही शक्ति का प्रयोग करने की इच्छा होती है। इस मामले में बहुत ही सावधान रहना चाहिए।

उ
प
दे
श

*

ब्रह्मचर्य सम्बन्धित

श्री गोस्वामीजी :- ''आजकल योग करना कठिन हो गया है। योग करना है तो वीर्य धारण करना ही पड़ेगा। वीर्य धारण-बिना योग साधन सहज साध्य नहीं होता। इसलिये प्राचीन काल में ऋषि-मुनिगण योगाभ्यास करने के लिये निर्जन वन, पर्वत पर जहाँ स्त्रियों का उत्पात न हो, जाकर पहले वीर्य धारण का अच्छी तरह अभ्यास कर लेते थे। योग करना चाहो, तो पहले वीर्य धारण करो, नहीं तो कुछ न होगा। वीर्य स्थिर होने पर, चित्त स्थिर होगा। वीर्य चंचल रहे, तो मन कैसे स्थिर होगा। मन स्थिर होने पर क्रमश: सब होने लगता है। प्रेम-भक्ति वीर्य धारण पर निर्भर नहीं, यह ठीक है, पर प्रेम भक्ति एक स्वतंत्र वस्तु है। वह भगवान की कृपा से ही लाभ हो सकती है। योग के लिए वीर्य धारण करने से सहायता मिलती है। वीर्यधारण करना सहज नहीं। यह हो जाय तो शरीर में कोई रोग न रहे। यदि पूर्व में कोई रोग रहा हो तो वह एकदम दूर नहीं हो पाता।'' ''वीर्य धारण करना उनके लिये अत्यन्त आवश्यक है जो गेरूआ वस्त्र धारण करते और जटा रखते है? वीर्य धारण न करके, यह सब धारण करना अपराध है। यह सब धारण करके यदि वीर्यपात हुआ तो चौदह पीढ़ी नरक में जाती हैं; ऋषियों ने ऐसा अभिशाप दिया है। केवल इतना ही नहीं, गेरुआ धारण करने वाले अपराधी को भी पशु-पक्षी की योनि में जन्म लेना होता है।'' ''जो वीर्य धारण करते हैं, उनकी सभी की एक सी अवस्था नहीं हाती। जो भक्तिमार्ग पर चल रहा है, उर्ध्वरेता होने पर उनकी अवस्था एक प्रकार की, जो ज्ञान मार्ग पर चल रहे हैं, उर्ध्वरेता होने पर उनकी एक अन्य अवस्था होगी। हठ योग से उर्ध्वरेता होने पर दूसरी तरह की अवस्था होगी।''

❊ ॐ–हरि ❊

प्रयत्न करते रहोगे तो क्यों न हो सकेगा? देखो, मेरे भी तो लड़के-लड़कियाँ हुई हैं। मै भी तो तुम्हीं लोगों की तरह था। स्त्रियों को देखने से मुझे भी कामभाव होता था, कई बार चञ्चल हो जाया करता था। अब तो कल्पना में नहीं ला सकता कि काम है क्या? ऊर्ध्वरेता हो जाने पर तुमको भी ऐसा ही हो जायेगा। सदा श्वास-

प्रश्वास में जप किया करो, स्वाभाविक कुम्भक का भी अभ्यास किया करो। प्रत्येक श्वास में कुम्भक के साथ नाम का जप करने लग जाओगे तो ऊर्ध्वरेता हो सकोगे। ऊर्ध्वरेता हो जाने पर शरीर खूब स्वस्थ रहेगा। बीमारी कुछ भी न होगी। थोड़ा या अधिक, अच्छा या बुरा भोजन किसी तरह शरीर का तनिक भी अनिष्ट न कर सकेगा।

*** ॐ–हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ''स्त्री-पुरुष सर्वदा अत्यन्त सावधान होकर चलें, ऐसे नहीं चलेगा। बाउल लोगों के समान व्यभिचार आरंभ हो जाने की आशंका है। अभी से सबको सावधान हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस विषय में शिथिलता का फल अनर्थ होता है। स्त्री-पुरुष कभी एक आसन पर न बैठें, यहाँ तक कि बहन व कन्या के साथ भी नहीं। वयस्का कन्या से व्यभिचार की घटनाएँ घट चुकी हैं। तुम्हारे चरित्र अच्छे हैं, सो तुमसे भूल नहीं होगी, ऐसा कभी मत सोचो। भले बहुत अच्छे हो, पर इस विषय में बड़ाई नहीं चलती। स्वयं ब्रह्मा, अपनी कन्या के पीछे कामोन्मत्त हो दौड़ पड़े थे। योगेश्वर महादेव भी इस चक्र में घूमे। यह केवल एक कल्पना मात्र नहीं है। सचमुच इस विषय में कोई अभिमान नहीं कर सकता। लोहा व चुम्बक जैसे एक दूसरे को आकर्षित करते हैं, वैसे ही कितने भी अच्छे पुरुष व स्त्री क्यों न हों, एक साथ हों तो एक दूसरे के देह को आकर्षित करें तो तुम कैसे बाधा दोगे। स्त्री पुरुष का देह ऐसे उपादानों से बना है कि एक का देह दूसरे को चाहेगा, आकर्षित करेगा। किसी स्त्री के पास, किसी भी पुरुष का रहना उचित नहीं। स्त्रियों का भी पुरुषों से मेलजोल ठीक नहीं। मैं यहाँ बैठा हूँ, स्त्रियों को पैर छूकर नमस्कार करने को कितनी बार मना करता हूँ, पर कोई मानता ही नहीं। क्या मैं जित-काम हूँ, मुझमें काम नहीं रह सकता ? मुझ पर ही क्या विश्वास है ? दूर से प्रणाम किया करो। स्त्रियाँ चिक की आड़ मे बैठेंगी। सर्वदा यहाँ बैठने का भी क्या प्रयोजन है ? संकीर्तन के समय भाव स्थिर रख नहीं पाते, सब स्त्री-पुरुष एकत्र हो जाते हैं। जो संकीर्तन में हैं, वे सभी अच्छे साधु हैं, ऐसी बात नहीं है। बाहर के कई बुरे लोग भी आते हैं। अत: इस विषय में पहले से ही सतर्क रहना नहीं हुआ तो गोलमाल होने में क्या देर लगती है ? कई जगह देखा गया है कि पहले

भाव के समय स्त्री-पुरुष एक दूसरे को पकड़ते हैं, फिर भाव छूट जाने पर नकली भाव लाकर व्यभिचार आरंभ करते हैं। सावधान ! सब खूब सतर्क हो जाओ, नहीं तो धर्म के नाम पर अधर्म, व्यभिचार होने से धर्म-कर्म सब नष्ट होगा। इस विषय में कड़ाई बरतनी चाहिये। यदि पाप भाव न भी रहा, तो भी मेलजोल का साहस नहीं करना चाहिये। कई लोग सामाजिक सम्मान एवं सुनाम नष्ट होने का भय न हो तो सहज ही व्यभिचार कर सकते हैं। जहाँ धर्मभय है, वहाँ आशंका कम है, आजकल धर्मभय नहीं के बराबर है।''

✻ ॐ-हरि ✻

शिष्य :- बाहर के किसी अनुष्ठान से वीर्य पात बंद करने का उपाय नहीं है ?

श्री गोस्वामीजी :- सदा योनी मुद्रा करके बैठा जाए तो वीर्यपात बन्द हो जाता है।

✻ ॐ-हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- मेरी दो ही बातें मानकर चलो तो सबकुछ लाभ हो जाएगा - सत्यरक्षा और वीर्यधारण। इनका प्रतिपालन करने पर भगवान की कृपा प्राप्त करोगे। सत्य बोलने पर वाक्संयम हो ही जाएगा। पैर के अंगूठे की ओर दृष्टि रखने पर अपने आप वीर्य स्थिर हो जाएगा।

✻ ॐ-हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- वीर्यधारण की ओर ध्यान देकर ही चलना पड़ेगा। एकदम बन्द उचित न होगा ? क्योंकि गृहस्थ के लिए भिन्न व्यवस्था है। जो विवाहित हैं उन्हें दो-तीन संतान हो जाने पर वीर्य रक्षा की चेष्टा करनी चाहिए। केवल पुरुष की ही इच्छा होने पर नहीं होगा, इस कार्य में स्त्री-पुरुष दोनों का सहयोग चाहिए। स्त्री की इच्छा न हो तो पुरुष समर्थ न होगा। वीर्य-रक्षा द्वारा शरीर निरोग तथा मन स्वस्थ रहता है। यदि किसी कारण वीर्य-रक्षा न हो पाए तो इससे मुक्ति की बाधा नहीं होती, किन्तु साधन-पथ में विघ्न उपस्थित होता है। अतः

वीर्यरक्षा नितान्त प्रयोजनीय है। प्राणायाम तथा वीर्य रक्षा से शरीर मन सबल तथा सुस्थिर होता है। वीर्यरक्षा का यत्न करो, किन्तु अपनी चेष्टा से न हो सके, तो बाहरी औषधि आदि उपायों से निवारण की कोशिश भी नहीं करनी चाहिए। पृथक् शयन की व्यवस्था है। वीर्य की गति को उर्ध्व करने के लिए एक प्रकार की साधना है। उसमें मेरुदण्ड के दोनों ओर आरे से काटने की तरह काटकर रास्ता बनता है। बड़ा कष्टकर है, अर्थात यह प्रणाली उतनी अच्छी नहीं। असह्य बज्रली वेदना होती है, सही नहीं जाती। एक बार वह प्रणाली अपनाने पर छोड़ते भी नहीं बनता। इसलिए अधिकांश साधक इस बज्रली प्रणाली के पक्षपाती नहीं हैं। सहज उपाय है - मूत्र त्यागने के समय एक साथ न छोड़कर धीरे धीरे खींचकर रखते हुए मूत्रत्याग करो। स्त्री सहवास के समय भी वीर्य एक साथ न छोड़कर धीरे धीरे खींचकर रखते हुए करो। गृहस्थों को ऋतु स्नान के बाद पंद्रह दिन तक प्रशस्त समय है, इनमें भी अष्टमी, नवमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी तथा पक्षांत की तिथियाँ छोड़ समय है। इन नियमों को मानकर चलना चाहिए। ऐसा करते हुए एक सूक्ष्म नाड़ी के भीतर से उभय रेत ऊपर की ओर गमन करता है। यह बड़े सावधानी पूर्वक करना चाहिए। इस ''सहजलि'' विधि से सहज ही सफल हुआ जा सकता है। वीर्यरक्षा तथा सत्यरक्षा सम्यक् रूप से छः माह करने पर कोई वाक सिद्ध अवश्य हो सकता है। प्रकृति में जो है, उसका बल-पूर्वक कोई नहीं निवारण कर सकता। कितने इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा तक परास्त हो गए हैं। केवल **भगवान के शरणापन्न होकर नाम-जप करते रहने पर सहज ही प्रकृति का दमन हो सकता है।** बाहरी उपाय कुछ नहीं। नाम जप करते-करते अपने आप सब चला जाएगा। वास्तविक साधना तो श्वास-प्रश्वास में नाम जप है। इसका अभ्यास हो जाय तो प्राणायाम भी स्वाभाविक हो जाता है। वीर्य भी स्थिर हो जाता है। प्राणायाम के तीन अंग पूरक, रेचक तथा कुंभक हैं। कुंभक सर्वश्रेष्ठ अंग है। प्रतिदिन नियमित रूप से कुंभक करने पर दीर्घ-जीवन प्राप्त किया जा सकता हैं। सभी शारीरिक व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। कुंभक के साथ वीर्यधारण होने पर देह, देव मंदिर बनकर रोग-शोक-शून्य हो जाता है। श्वास-प्रश्वास में नाम जप सर्वश्रेष्ठ साधन है। उसके साथ प्राणायामादि भी करना चाहिये। श्वास-प्रश्वास में नाम-साधन में पहले-पहले श्वास-

प्रश्वास में ध्यान रख कर ही नाम करना चाहिए। क्रमश: मेरुदण्ड से जो श्वास चलता है उससे परिचय होता है। फिर उसके साथ नाम जप करते हुए सहज ही सारी आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सोकर, खड़े होकर, चलते-चलते, कभी भी प्राणायाम नहीं करना चाहिये। प्राणायाम का निश्चित समय रखना चाहिये। रात्रि का शेष भाग प्राणायाम का उत्कृष्ट समय है। पहले आधे घंटे से अधिक प्राणायाम करने की आवश्यकता नहीं है। क्रमश: वृद्धि करनी चाहिये। लगातार आधे घंटे न कर सको तो रूक रूक कर करो। करते समय बाधा आये तो उपयुक्त विश्राम करके वह अवधि पूरी कर लेनी चाहिये। प्राणायाम मुँह खोले और बन्द किये भी कर सकते हो। प्राणायाम के साथ खूब नाम-जप करते रहो, नाम कभी बन्द न करो। प्राणायाम की ध्वनि थोड़ी कोई सुन ले तो हानि नहीं पर उच्च ध्वनि सुनने वाले को हानि हो सकती है। किसी का न सुन पाना ही अच्छा है। शिशु या बालक के पास भी प्राणायाम न करो। गुरु उपदेश के बिना किसी का देख या सुनकर, यह सब करना संकट का कारण बनता है। जन्म या मृत्यु के अशौच में प्राणायाम करने में कोई बाधा नहीं। खाली पेट, भूख लगने पर, पेट फूलने पर, सिर दर्द में या किसी रोग में प्राणायाम नहीं करना चाहिये, तब करने पर कष्ट हो तो प्राणायाम मत करो। कुंभक न हो तब तक योनिमुद्रा करने से हानि होती है। प्राणायाम से देह नीरोग होता है। इन्द्रिय-चंचलता दूर होती है, मन स्थिर होता है, अंतरिक्ष में विचरण की क्षमता आ जाती है, दिव्यज्ञान और परमार्थ शक्ति प्रबुद्ध होती है। ऋषियों ने कहा है - ''नास्ति प्राणायामात् बलम्'' पातंजल दर्शन व्यास भाष्य में लिखा है -''तथाचोक्तं तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति।'' शास्त्र में कहा है प्राणायाम से उत्कृष्ट तप नहीं है इससे चित्त की मलिनता धुलकर ज्ञान का प्रकाश बढ़ता है।

✻ ॐ–हरि ✻

जिनको स्वप्न दोष होता है, वे सोते समय ईश्वर के मातृवाचक शब्द, बेल या तुलसी पत्ते में **लिखकर सिरहाने रखकर सोवें। जब तक** नींद न आ जाए, जप करते रहें।

✻ ॐ–हरि ✻

परन्तु एक बार किसी अवसर पर किसी शिष्य को श्री गोस्वामीजी ने कहा था ''उर्ध्वरेता होने पर लाभ से हानि ही अधिक होती है। उर्ध्वरेता होने पर एक अपूर्व आनंद मिलता है, वह बड़ा असाधारण है, स्त्री संग के सुख से हजारों गुना अधिक। पर यह भी शारीरिक आनंद है, इसे लाभकर साधक लक्ष्य भूल सकता है। सोचता है, यही ब्रह्मानंद है। यहीं कई लोग बंध जाते हैं। दुर्वासा मुनि उर्ध्वरेता थे। उनकी अलौकिक शक्तियाँ भी थीं। वे किसी की परवाह नहीं करते थे। अन्त में अपराधी होकर नष्ट हो गये। उर्ध्वरेता न होना ही अच्छा है। इसके बिना भगवान नहीं मिलते, ऐसी बात नहीं है। कोई यदि दस बार स्त्री संग करे, पर उसमें श्रद्धा भक्ति है तो भगवान को लाभ कर सकता है, उसकी हानि न होगी परन्तु कोई उर्ध्वरेता यदि अहंकारी है तो उसका कुछ भी न होगा।

श्री गोस्वामीजी :- हैरान होकर भी कोशिश करते जाना होगा। यह एक-दो दिन का काम नहीं है। यह ब्रह्मचर्य पहले ऋषिकुमार गण छत्तीस वर्ष किया करते थे। कोई बारह वर्ष भी करते थे। किन्तु छह वर्ष पहले कभी ठीक नहीं होता। तुम भी प्रयत्न करो, एकाएक न होगा, क्रमश: सब होगा। काम, क्रोध, लोभ सब अपने आप छूटेंगे, यह तो ठीक है पर चुपचाप बैठने से काम नहीं चलेगा। अभ्यास करना होगा। खूब अभ्यास करो। जिस पथ पर चल रहे हो, आहार का नियम न रखकर चलोगे तो हानि होगी। आहार का परिमाण एक सा रहे और समय भी परिवर्तित न हो। इन दोनों का अनियम होने पर शरीर अस्वस्थ होगा ही। अपने नियम के आगे किसी का भी अनुरोध या विनती न सुनो। किसी भी प्रकार का मीठा तुम्हारे लिए अहितकारक है उसका विषवत् त्याग करो।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- यदि स्त्री संग काक विष्ठावत् सोच सको, स्त्री सहवास नितान्त अपवित्र, घृणित और जघन्य कर्म समझ सको, तभी बचाव है नहीं तो कोई उपाय नहीं है। भविष्य में अनेक परीक्षाएँ

आयेंगी उस समय ठीक रह सको तभी रक्षा पा सकोगे। विषय-वासना रहने पर उसी स्थान में बद्ध हो जाना पड़ता है। बिना वैराग्य आये क्या ठीक रहना सम्भव है ?

*** ॐ-हरि ***

ब्रह्मचारी को सर्वप्रथम वीर्य धारण तथा सत्य रक्षा इन दो बातों का अभ्यास करना चाहिए। साधकावस्था में कायमनोवाक्य से स्त्री संग त्याग न करने पर वीर्य धारण नहीं होता। अज्ञानवश भी स्त्री देह का सम्पर्क हो जाने पर देह स्थित वीर्य चंचल हो जाता है। इससे ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। वीर्यधारण न हो तो सत्य रक्षा भी सहज नहीं हो पाती। वीर्यधारण व सत्य रक्षा के साथ साथ धैर्य, एकाग्रता, प्रतिभा आदि गुण भी अपने आप साधक लाभ करता है। ये दो बातें एक बार हासिल कर लेने पर सारी सिद्धियाँ साधक के लिए सहज साध्य हो जाती हैं। सभी धर्म सम्प्रदायों में सर्वप्रथम संयम की व्यवस्था है। वीर्यधारण एवं सत्यरक्षा ही यथार्थ संयम है। ये दो बातें न प्राप्त हों तो वस्तुतः धर्म लाभ बहुत दूर समझो। धर्मार्थियों को सर्वप्रथम इन दो बातों पर विशेष ध्यान देकर चलना चाहिए। धर्म एक मामूली वस्तु नहीं है। आप्राण चेष्टा करनी पड़ती है, अन्यथा प्राप्त नहीं होता।

*** ॐ-हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- ब्रह्मचर्य आश्रम में स्त्रियों से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखना चाहिए। इस विषय में बहुत ही सावधान रहना पड़ता है। न उनकी ओर देखे, न उनके साथ बैठे-उठे और न उनसे किसी प्रकार की बातचीत ही करे। स्त्री कोई भी क्यों न हो, चाहे बिल्कुल बुढ़िया हो चाहे युवती अथवा बिल्कुल बच्ची ही हो, सदा उनसे दूर ही रहे। चुम्बक जिस प्रकार लोहे को खींचता है, उसी प्रकार स्त्रीजाति का शरीर कुछ ऐसे उपादानों से बना है कि वह पुरुष शरीर को आकृष्ट करता है। वह वस्तुगुण है, इसमें पात्र-अपात्र और साधु-असाधु का विचार नहीं है। इसी से शास्त्रकारों ने माता, भगिनी और दुहिता के सम्बन्ध में भी, सावधान रहने का अनुशासन करके कहा है-

"मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥"

माता, बहन और बेटी के साथ भी एकान्त में एक ही आसन पर न बैठे, बलवान इन्द्रियग्राम विद्वान् को भी घसीट लेता है। विद्वान का अर्थ है ब्रह्मविद्यावित, जिसे ब्रह्मज्ञान हो चुका है। यह मुक्त पुरुष को भी आकृष्ट करता है।

* ॐ–हरि *

श्री गोस्वामीजी :- प्रकृति में जो दोष छिपा बैठा है वह सब का सब प्रकट होकर बाहर निकलेगा। उसके प्रति तुमको बहुत दिनों से आसक्ति थी। उसके प्रति जब कल्पना में किसी प्रकार कामभाव को न आने दोगे तभी समझना कि तुम्हारी यह प्रवृति नष्ट हुई है। आठों प्रकार से मैथुन का त्याग करना होगा। स्त्रियों के स्पर्श से जिस प्रकार उत्तेजना हुआ करती है उसी प्रकार उनको देखने, उनका स्मरण करने और उनसे बातचीत आदि करने से भी होती है। अतएव वीर्यरक्षा करने के लिए इनमें से एक की भी अवहेलना न होनी चाहिए। किसी विषय की चेष्टा करने के लिए भीष्म की भाँति प्रतिज्ञा करके लग जाना पड़ता है। ऐसा किये बिना कुछ नहीं होता। नीचे माथा झुकाये रहकर कनखियों से इधर-उधर ताकने से व्रत की रक्षा नहीं होती। ऐसा करने से तो चोर का सा कपट व्यवहार ही होता है। किसी प्रकार की असत् कल्पना मन में आ जाय तो जोर-जोर से गाने लगो या पढ़ने लगो।

* ॐ–हरि *

श्री गोस्वामीजी :- घनी आधी रात में, एकान्त में, अपने भीतर प्रवेश करके खोजने से धीरे-धीरे यह मालूम हो जाता है कि हम कौन हैं। ब्रह्मचर्य ही सब साधनों का मूल है और अनुगत हुए बिना वह नहीं हो सकता। एक मात्र गुरू की कृपा से ही वास्तविक ब्रह्मचर्य प्राप्त होता हैं। उसकी प्राप्ति हो जाने पर फिर कुछ भी बाकी नहीं रहता। तब तो सभी दशाएँ हथेली में रक्खे आँवले की तरह सुलभ हो जाती हैं। अनुगत होना ही तो ब्रह्मचर्य है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- स्कूल कालेज के लड़कों के जीवन के ऊपर ही देश का सारा हित निर्भर है। हमारे देश में, ऋषियों के जमाने में ऋषि लोग बच्चों को शिक्षा देने के साथ-साथ वीर्यधारण और सत्य की रक्षा का अभ्यास करा देते थे। आजकल लड़कों को उस प्रणाली से शिक्षा नहीं दी जाती। इसलिए शिक्षित हो जाने पर भी वैसा फल नहीं मिलता। मैं जब ढाका में था, प्रायः स्कूल-कालेज के लड़के आकर यही प्रश्न किया करते थे, 'महाशय, अपनी कुटेव को हम किस तरह छोड़ पावेंगे? बचपन में हमारे माता, पिता, शिक्षक अथवा अभिभावकों में से किसी ने भी कभी यह नहीं समझाया कि वीर्य को नष्ट करना अनिष्टकर है; अतएव हमने उसके विषय में सावधान रहने की चेष्टा कभी की ही नहीं। अब समझ में आया है कि उसी से हमारा सत्यानाश हो रहा है। किन्तु करें क्या? मुद्दत की कुटेव को अब बड़ी चेष्टा करने पर भी नहीं छोड़ पाते।' सचमुच सभी जगह छोटे-छोटे लड़कों को इस विषय की थोड़ी बहुत शिक्षा न रहने से बहुत बड़ी हानि हो रही है। हमारे देश में जो लोग शिक्षक कार्य करते हैं वे यदि लड़कों के साथ मित्र-भाव से हिलमिलकर ऐसा वातावरण बना दें कि लड़के अपना सारा कच्चा हाल मास्टरों को बेधड़क बतला सकें और साथ ही बच्चों के मन में वे यह बात भी अच्छी तरह जमा दें कि ऐसी कुटेवों का परिणाम बहुत भयंकर होता है तो इससे लड़कों का और देश का सर्वाङ्गीण मङ्गल होगा। जो शिक्षा सब से पहले दी जानी चाहिए और जिसके ऊपर व्यक्तिगत जीवन का तथा सारे देश का मङ्गल अवलम्बित है, उसी शिक्षा का आजकल देश में अभाव है। बहुत दिन पूर्व की बात है, एक बार हिमालय में एक महापुरुष के दर्शन हुए थे; मैंने उनसे पूछा था 'इस देश का कल्याण कैसे होगा?' इस पर उन्होंने कहा था, 'एक मात्र सत्य की और वीर्य की रक्षा करने से ही देश का भला होगा।' ऐसा किए बिना देश का भला नहीं होने का।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ब्रह्मचर्य किये बिना कभी वैदिक सन्यास के ग्रहण करने का अधिकार नहीं होता।

* ॐ-हरि *

शिष्य - ''कितने समय तक इस ब्रह्मचर्य को करने से वैदिक सन्यास के ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त होता है? क्या सभी को निर्दिष्ट समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है?''

श्री गोस्वामीजी :- सभी के लिए एक सी व्यवस्था नहीं है। किसी के लिए छत्तीस वर्ष, किसी के लिए चौबीस वर्ष और किसी-किसी के लिए बारह वर्ष ब्रह्मचर्य में रहने की आवश्यकता होती है। फिर कोई तो नौ वर्ष में, कोई छः वर्ष में और कोई तीन वर्ष में सन्यास लेने का अधिकारी हो जाता है। मैंने तीन दिन ब्रह्मचर्य किया था।

* ॐ-हरि *

शिष्य :- वीर्य धारण बहुत चेष्टा करने पर भी नहीं हो रहा है, स्वप्न दोष क्यों नहीं रुक रहा है?

श्री गोस्वामीजी :- दस-पाँच दिन की थोड़ी सी चेष्टा से ही क्या सब कुछ बन जाता है? बचपन में कु-अभ्यास करके बहुत समय तक वीर्य नष्ट किया है। उसका स्रोत एक बार में ही बन्द हो जायगा? अब खूब नियम को मानकर कुछ समय तक चलने पर धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा। घबराने से क्या होगा ! उधर नजर न रखकर नियम पर ध्यान देकर चलो। चित्त की चञ्चलता से स्वप्न दोष होता है, क्रोध करने से स्वप्न दोष होता है, स्नायुतंत्र की दुर्बलता से होता है, पेट और मस्तिष्क के गरम होने से होता है, आहार के दोष से होता है और अधिक सोने से भी स्वप्न दोष हो जाया करता है। सन्ध्या के बाद थोड़ी देर तक सोकर रात को दस-ग्यारह बजे उठकर सारी रात बैठे-बैठे क्या नाम का जप नहीं कर सकते? सोना कम कर दो। बहुत सोने से स्वप्न दोष नहीं रूकने का। सोने से पहले कुहनियों तक दोनों हाथ और घुटनों तक पैर धो लिया करो। पश्चिम या उत्तर की ओर सिराहना करके सोना न चाहिए। सोते समय बिल्वपत्र पर गायत्री लिख कर सिर के नीचे रख सकते हो। तुलसीपत्र रखने से भी किसी-किसी को लाभ होता है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ऊर्ध्वरेता होना सब के लिए सहज नहीं है। फिर यह भी नहीं कहा जा सकता कि एक निर्दिष्ट समय के भीतर सभी ऊर्ध्वरेता हो सकते हैं। किसी को तीन महीने और किसी को तीन वर्ष लग जाते हैं। फिर बहुत समय तक चेष्टा करते रहने पर भी किसी-किसी को सम्भव नहीं होता। जो लोग अभ्यस्त हैं उनको भी थोड़ा समंय लगता ही है; झटपट नहीं हो जाता। जिसकां वीर्य अधिक परिमाण में नष्ट हो चुका है। उसे कुछ समय लगेगा।

✻ ॐ–हरि ✻

सदा पैर के अँगूठे पर दृष्टि को स्थिर रखने की चेष्टा करना। कभी दूसरी ओर न देखना। यदि पैर के अँगूठे पर दृष्टि न जमा सको तो नाक के अगले हिस्से पर दृष्टि रखने का प्रयास करना चाहिये किन्तु इसमें सिर तनिक गरम हो जाता है। पैर के अँगूठे पर दृष्टि जमाने से मस्तक खूब ठण्डा रहता है। अँधेरी रात में इधर-उधर न ताकना। सदा एक ही तरह से माथा नीचे किये रहना।

✻ ॐ–हरि ✻

पेशाब को एक धार में न करके तनिक रूक-रूक कर करना। दो चार सैकेण्ड तक पेशाब करके फिर दो चार सेकेण्ड के लिए रुक कर करना करना चाहिये। यों धीरे धीरे थोड़ा-थोड़ा धारण करके त्याग करने का अभ्यास करना चाहिये। धारण के समय खूब कुम्भक और साथ साथ नाम का जप करना। जब तक कुम्भक किये रह सको, तभी तक धारण की चेष्टा करना। थोड़ा-थोड़ा (मूत्र का) त्याग करते-करते कम से कम पाँच सात बार में कुल पेशाब क्रिया करने से; यह अभ्यास करते-करते पेशाब के रास्ते की माँसपेशियाँ खूब दृढ हो जायेंगी और धारण करने की क्षमता भी बढ़ जायगी।

शिष्य - '' क्या और भी किसी विषय का कोई नियम है ?''

श्री गोस्वामीजी :- है क्यों नहीं ? सोने का भी नियम है। जहाँ तहाँ नहीं सो जाना चाहिए। सोने का बिछौना सर्वत्र अलग रखना। दूसरे के बिछौने पर सोना या बैठना अथवा दूसरे के कपड़ों को उपयोग में लाना बिल्कुल बन्द कर देना। इन सभी नियमों का सदा पालन करना; नहीं तो बहुत हानि होती है। जिस प्रकार दूसरे के व्यवहार के वस्त्रों आदि को उपयोग में न लाना; उसी प्रकार अपने व्यवहार के वस्त्र आदि का उपयोग दूसरों को न करने देना। सब कुछ अलग रखना। इस साधन की अवस्था में दूसरे का स्पर्श हो जाने से भी हानि होती है।

उ
प
दे
श

*

शुष्कता

श्री गोस्वामीजी :- ''नाम करते-करते एक समय ऐसा आता है कि शरीर व मन में नाना प्रकार की जलन होती है। यह साधन की ही एक अवस्था है। इस समय शरीर आग में जलने की भाँति जलने लगता है। कभी-कभी मुँह, कान, आँख, हाथ, पैर व नाड़ियाँ खिंचने लगती हैं। यह क्लेश सहज नहीं। यंत्रणा के मारे लोग साधन-भजन छोड़ देते हैं। इसे योग संकट कहा जाता है। सावधानी पूर्वक यह समय अच्छी तरह बिता दिया जा सके तो ठीक है। इस समय मिश्री का शरबत, कच्चे नारियल का पानी, इस तरह के ठंडे पदार्थ लेने से राहत मिल सकती है। कभी शरीर ठंडा पड़े या अवसन्न हो जाय तो घी गर्म करके, सैंधा नमक सहित पान करना चाहिये। इस प्रकार यंत्रणा की शांति होती है। योग संक़ट की अवस्था एक बार कट जाने पर और कोई भय नहीं रह जाता। साधन करने पर यह एक बार सबको भोगना पड़ता है। पहले ऋषि मुनिगण शिष्यों के देह, मन की शुद्धि के लिये तुषानल की व्यवस्था करते थे। अब वह संभव नहीं, इसलिए नामाग्नि से ही दग्ध करके वह कार्य संपन्न करना पड़ता है।''

*** ॐ-हरि ***

शिष्य- यह शुष्कता व जलन कैसे पूरी होगी?

श्री गोस्वामीजी ने कहा - ''जिसके लिए जो वस्तु कल्याण देने वाली है उसे वही भगवान् देते हैं। मनुष्य के भीतर यह शुष्कता बड़े भाग्य से आती है। जाकर बैठो और शान्ति के साथ नाम का जप करो, और तरफ ध्यान मत दो; नाम का जप करते-करते वह अपने आप चली जायेगी।''

*** ॐ-हरि ***

श्री गोस्वामीजी :- देखो, यह वर्तमान ग्रीष्मऋतु कैसी भयानक है! ताल-तलैया, झील, सभी सूख गये हैं। सूर्य की कड़ी-गर्मी से सभी बेचैन हो रहे हैं, सभी प्राणी हाहाकार कर रहे हैं। पेड़-पत्तों की भी वही दशा है, देखते ही जान पड़ता **है** कि यह बड़ी विषम दशा है। वास्तविक प्रकृति के **पक्ष में ऐसी दारुण दशा** और कभी नहीं होती। किन्तु विचार कर देखो, **यदि यह गर्मी न पड़े** तो न तो पानी बरसे

और न प्रकृति दुबारा नवीन सौन्दर्य से परिपूर्ण हो। यह ग्रीष्म ऋतु ही प्रकृति के नवीन सौन्दर्य की जननी है। गर्मी पड़ने से ही हम लोग वर्षा के इतने सुख और सौन्दर्य का अनुभव कर सकते हैं। साधन की अवस्था भी ऐसी ही है। साधन के समय शुष्कता, नैराश्य और जलन इत्यादि अनेक प्रकार की दुःख की दशा भोगनी पड़ती है, इसी से तो धर्म का इतना सौन्दर्य है। नैराश्य और शुष्कता न आती तो धर्म में इतना आनन्द ही न रहता। इन दशाओं के भीतर से होता हुआ मनुष्य जब धर्म के सबसे ऊँचे शिखर पर पहुँचता है तभी उसको यथार्थ शान्ति प्राप्त होती है। जब तक उसकी प्राप्ति नहीं होती तब तक इन दशाओं से मनुष्य का पीछा किसी तरह नहीं छूट सकता। इस समय इन सब की आवश्यकता है। यदि शान्ति की दशा एक बार प्राप्त हो जाय तो फिर वह किसी तरह नष्ट नहीं होती।

ॐ–हरि

श्री गोस्वामीजी :- ''कई बार दीन दुखियों की सेवा करने से ही साधन की शुष्कता नष्ट हो जाती है। एकबार कलकत्ते ब्रह्मसमाज में उपासना के समय भाव एवं भक्ति की भावना नहीं आ रही थी। मन सूखी लकड़ी की तरह हुआ जा रहा था। क्या करूँ कुछ ठीक नहीं कर पाया, सो रास्ते पर निकल आया। राह पर एक कुली के चरणों में साष्टांग प्रणाम करने लगा। ऐसा करने के साथ ही हृदय सरस हो उठा। तब जाकर उपासना कर पाया। उपासना अच्छी रही। एक और भी दिन, शुष्कता से कुछ अच्छा नहीं लग रहा था, उपासना में भी मन न लगा। तुरंत दरबान को चिलम में तम्बाखू भर दिया तो मन सरस हो उठा और उपासना भी भली भाँति सम्पन्न हुई।''

शिष्य :- नाम करते-करते शुष्कता आए, खिन्नता का बोध हो तो भी क्या नाम करें या छोड़ दें।

श्री गोस्वामीजी :- ''प्रतिदिन नियमित रूप से थोड़े समय के लिये भी साधन करना कर्त्तव्य है। अच्छा न लगे तो भी दवा पीने के समान करते जाने से क्रमशः नाम में रुचि होती है। नाम में अरुचि की औषधि भी नाम ही है। जैसे पित्त रोग में मुँह कड़वा हो तो मिश्री भी कड़वी

लगती है, किंतु उस रोग की औषधि भी मिश्री है। खाते-खाते मिश्री मीठी लगने लगती है। आनंद न आए तो नाम नहीं करेगे, जब अच्छा लगे तभी करेंगे, ऐसा भाव रखना तो व्यवसाय-बुद्धि है। मुझे अच्छा लगे न लगे, आदेश अनुसार नाम करना ही होगा। नाम द्वारा क्रॉस बिद्ध करना होगा। तब जाकर पुनरुत्थान होता है।''

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य :- ''त्रिताप क्या है? कष्ट ही तो ताप है न?''

श्री गोस्वामीजी :- केवल कष्ट ही क्यों? विषय का सारा अनुभव ही तो ताप है। दुःख जैसा ताप है वैसा ही सुख, दुःख, आनन्द, निरानन्द, मान और अपमान जब तक चित्त को स्पर्श करते रहेंगे, तब तक समझना कि वास्तविक धर्म का अंकुर ही नहीं जमा।

शिष्य :- ''विषय का और ताप का ज्ञान न रहेगा तो लोग कोई भी कार्य किस तरह करेंगे?''

श्री गोस्वामीजी :- जब तक कर्तव्य का अभिमान है तब तक ताप भी रहेगा। कर्तव्य का अभिमान गये बिना मनुष्य मुक्त नहीं होता। मुक्त हो जाने पर भी मनुष्य कर्म करता तो देखा जाता है, किन्तु वह बालक के खेल और पागल के नृत्य की तरह होता है। किसी यन्त्र की तरह देह द्वारा उनके कार्य हुआ करते हैं, बस।

उपदेश

*

रिपु एवं वृत्ति

श्री गोस्वामीजी :- ''(1) लज्ञा (2) घृणा (3) भय (4) शोक (5) जुगुप्सा (6) कुल (7) शील (8) जाति, ये अष्टपाश योग साधन के विशेष बाधक हैं।

प्रश्न :- आपने जो कहा समझ नहीं पाया। लज्ञा भी क्या बाधक है ?''

श्री गोस्वामीजी :- ''लज्ञा का अतिक्रमण करना ही होगा। लज्ञा रहते तक किसी का कुछ न होगा। लज्जा के अंत होने पर ही, मेरे मनुष्यत्व का लोप हुआ है। मेरा पाप पुण्य कुछ नहीं है। मेरा बेटा, मेरा फलाना, इस प्रकार का संस्क़ार भी चला गया है।''

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - काम, क्रोधादि रिपुगणों का अत्याचार और सहन नहीं होता ।

गोस्वामीजी - ये ही फिर बाद में परममित्र बन जाते हैं। इनके द्वारा भगवत् सेवा होती है । रिपुगण के अव्यवहार से ही ये लोग शत्रु हो गये हैं । वास्तव में ये लोग मित्र हैं । **काम, प्रेम में बदल जाता है। क्रोध, तेज में परिवर्तित हो जाता है। आसक्ति भगवान में अर्पित हो जाती है । लोभ उनके प्रति बढ़ते जाता है इत्यादि । जगत की ओर रिपुगण जाने से शत्रु बन जाते हैं ।**

शिष्य - जीव क्या 'पंचकोष' में आबद्ध है ?

गोस्वामीजी - हाँ, साधन भजन के द्वारा 'पंचकोष' भेद करना पड़ता है ।

शिष्य - ये पंचकोष कौन-कौन से हैं ? इनके कार्य क्या हैं ?

गोस्वामीजी - 1) अन्नमय, 2) प्राणमय, 3) मनोमय, 4) विज्ञानमय, 5) आनन्दमय, ये पांच कोष है । अन्नमय कोष में आहार की परितृप्ति, प्राणमय कोष में इन्द्रिय चांचल्य, मनोमय कोष में वासना, कामना, संकल्प-विकल्प, विज्ञानमय कोष में, मैं कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? इन सब प्रश्नों का उदय होता है। आनन्दमय कोष में पार्थिव आनन्द भोग होता है। यहाँ तक जीव की बद्धावस्था कहलाती है। आत्मा जब तक पंचकोष में आबद्ध है तब तक जीवात्मा कहलाती है।

उस अवस्था तक उसे सुख या दुख का बोध होता है । पंचकोष भेद होने पर वह आत्मा कहलाती है। इसके बाद भी वासना रहती है। कोई स्थूल देह धारण कर वासना क्षय करता है , कोई सूक्ष्म देह धारण करके। कोई कारण देह धारण कर वासना क्षय करता है।

शिष्य - पंचकोष भेद होने के क्या-क्या लक्षण हैं ?

गोस्वामीजी - पार्थिव (जागतिक) भोगों में अनासक्ति होने से समझना होगा, अन्नमय कोष भेद हो गया है। इन्द्रिय चांचल्य समाप्त होने से प्राणमय कोष भेद, संकल्प विकल्प दूर होने से मनोमय कोष भेद, संशय नष्ट होने से विज्ञानमय कोष एवं जागतिक सब प्रकार के सुख में मन यदि सुखानुभव न करे तो आनन्दमय कोष भेद हो जाता है। अन्नमय कोष भेद होने पर पार्थिव वस्तुओं पर आकर्षण नहीं रह जाता। प्राणमय कोष भेद होने पर, शारीरिक उत्तेजना नहीं रहती। मनोमय कोष भेद होने पर, संकल्प-विकल्प चला जाता है। विज्ञानमय कोष भेद होने पर, संशय बुद्धि नहीं रह जाती। आनंदमय कोष भेद होने पर पार्थिव आनंद मुग्ध नहीं कर सकते।''

शिष्य - पंचकोष भेद होने से निरापद अवस्था प्राप्त हो जाती है ?

गोस्वामीजी - नहीं । तब भी वासना रहती है । स्थूल देह क्षय होने पर भी सूक्ष्म एवं कारण देह रहता है । सूक्ष्म देह जिस वासना से उत्पन्न होता है, उसके लय होने पर भी कारण देह रहता है। समस्त वासनाओं की आत्यन्तिक निवृत्ति न होने तक मनुष्य संपूर्ण निश्चिन्त अवस्था में नहीं पहुँच सकता । छोटी-छोटी वासना से भी धीरे-धीरे स्थूल देह जन्म ग्रहण कर सकता है । पूर्ण मुक्त होने से वह सर्वदा सच्चिदानन्द के आनन्द सागर में निमग्न रहता है । वहाँ उसे सर्वदा ही भगवान की लीला के दर्शन होते रहते हैं ।

शिष्य :- ''यथा साध्य सावधान रहकर नियम के अनुसार साधन किये जाने पर भी रिपु की उत्तेजना क्रमशः बढ़ती ही है। ऐसा क्यों होता है ?''

श्री गोस्वामीजी :- ऐसा होता है। जब जिस रिपु के बिल्कुल नष्ट हो जाने का उपक्रम होता है तब वह बहुत प्रबल हो उठता है, जिस

प्रकार बुझने से पहले दीपक तेज हो जाता है। उस समय रिपु की उत्तेजना यहाँ तक बढ़ जाती है कि बहुतों को साधन भजन पर भी अविश्वास होता है। ऐसा समय बड़ा विकट होता है। सर्वदा प्रायः उन्मत्तता सी बनी रहती है। उस समय साधक यदि गुरुप्रदत्त नाम को पकड़े रहता है तो साधक कुछ समय बीतने पर बेखटके पार लग जाता है। सर्वदा नाम का जप करते रहने से किसी प्रकार का डर नहीं रहता। न जाने कितनी अवस्थाओं को पार करना पड़ेगा, उस समय एकमात्र नाम का ही सहारा रहता है।

शिष्य - ''जब किसी प्रकार की मानसिक उत्तेजना ही नहीं रहती और मन में किसी प्रकार की कल्पना तक नहीं होती तब अकस्मात् इन्द्रिय विशेष रूप से उत्तेजित क्यों हो जाती है? ऐसी दशा में क्या किया जाय?''

श्री गोस्वामीजी :- स्नायुओं की दुर्बलता से अनेक अवसरों पर ऐसा हो जाता है। उस समय कभी एक स्थान पर बैठा न रहे, घूमने लगे या किसी के पास जाकर बातचीत करने लगे। जब मुझे ऐसा होता था तब मैं तुरन्त सिर पर कई घड़े पानी गिराता था; कभी-कभी दौड़ लगाता और थक जाने पर बैठ जाता था। ऐसी स्थिति में सभी साधकों को दौड़ लगाना अथवा नहाना सहन न होगा। आसन से उठकर टहलने से फिर कुछ भी हानि न हो सकेगी।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य - ''जब कि हम लोगों का लक्ष्य मोक्ष ही है, तब विधि मार्ग पर चलने की क्यों आवश्यकता है?''

श्री गोस्वामीजी :- जब तक इन्द्रियदमन नहीं होता तब तक विधिमार्ग पर चलना पड़ता है, किन्तु उस साधन का उद्देश्य एक मात्र मोक्ष ही रहेगा। इन्द्रियदमन के लिए ही विधिमार्ग पर चलने की आवश्यकता है। अवस्था की प्राप्ति होते ही फिर अपने लिए विधि की आवश्यकता नहीं रह जाती। जब तक यह नहीं होता, विधि को मानकर चलना ही होगा।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- क्रोध करने से शरीर का रक्त विकृत हो जाता है, उससे भी बहुत स्वप्न दोष होने लगता है। शरीर के रक्त को सर्वदा शीतल रखना चाहिए।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- हमारे शरीर और मन में काम अत्यन्त अभ्यस्त हो गया है। साधारण लोगों की अपेक्षा साधकों के लिए ये सब बहुत प्रबल रहते हैं क्योंकि ये सब आत्मा की ही वृत्तियाँ हैं। पानी और उत्ताप आदि मिलने से जिस प्रकार वृक्ष बढ़ते हैं उसी प्रकार साधन भजन द्वारा भी आत्मा की वृत्तियों की पुष्टि होती है। हाँ, जब तक ये वृत्तियाँ बहिर्मुख रहती हैं, तभी तक रिपु का सा कार्य करती हैं। अन्तर्मुख होते ही साधक समझ जाते हैं कि इनकी वृद्धि की कितनी आवश्यकता थी; इस वृद्धि से ही तब फिर बहुत आनन्द होता है। ये वृत्तियाँ जब तक बहिर्मुख दशा में रहती हैं तभी तक रिपु का सा कार्य करती हैं, अनिष्ट करने वाली जँचती हैं; किन्तु भगवत्कृपा से जहाँ एक बार इनका मुँह फिरा, वहाँ यही परम उपकारी हो जाती हैं। साधकों के जीवन की दशाएँ दूसरे ही ढंग की होती हैं। साधारण लोगों का सा इनका कुछ भी नहीं होता। एक मात्र उनके (भगवान् के) अनुगत होते ही सारी आपदाएँ दूर हो जाती हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- एक घर (खानदान) के दो मालिक, एक राज्य के दो राजा होने से कभी भला नहीं होता। स्वयं मरकर इष्ट देवता को देह मन का राजा बनाना चाहिए। नहीं तो कल्याण नहीं। वृक्ष का बीज जब सड़ जाता है तभी उसमें से अंकुर निकलता है। अभिमान के नष्ट होने पर ही चित्त में चैतन्य प्रकट होगा।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- ''असत् विषय के लोभ से ही न हानि होती है? ''

श्री गोस्वामीजी :- सभी विषय असत् हैं। लोभ किसी विषय का क्यों न हो, उसे अनिष्टकर समझना। रास्ते मे किसी स्त्री को देखकर उसका लोभ करने से जो हानि होती है, बाजार में हलवाई की दुकान पर एक रसगुल्ला को देखकर उसका लोभ करने से भी धर्म की प्राप्ति में उतनी ही हानि होती है। सामाजिक हानि-लाभ की बात अलग है।

शिष्य :- मैं लोभ रोक नहीं पाता। मेरा यह लोभ क्या नहीं जायेगा ?

श्री गोस्वामीजी :- काम, क्रोध, लोभ आदि रिपुओं से पूरी तरह रक्षा पाना बड़ा कठिन है। इसके लिए ऋषि-मुनि गण कितना कुछ कर गए हैं ? कठोर तप और साधन भजन द्वारा जरा सी उन्नति होते ही रिपुदल आकर साधक पर आक्रमण करते हैं। नाना प्रकार दुरावस्था और प्रलोभन में डालकर सर्वनाश करते हैं। विश्वामित्र मुनि तप द्वारा इतनी शाक्ते अर्जित कर के भी काम के हाथों निस्तार न पा सके। पतित होना पड़ा। बहुत प्रयत्न करके काम को दमन करते ही, क्रोध आकर आक्रमण करने लगा। सृष्टि, स्थिति, प्रलय का अधिकार पाकर भी विश्वामित्र दुर्जेय काम से परास्त होने लगे। उनका तपोबल नष्ट होने लगा। तब निरुपाय होकर वे लोकसंग त्याग कर मौन हुए। तीव्र तपस्या द्वारा पुन: पूर्वावस्था प्राप्त कर ली। इस समय लोभ का उत्पात आरंभ हुआ। विश्वामित्र ने आहार का त्याग किया। काम, क्रोध, लोभ नरक के द्वार स्वरुप हैं। एक मात्र भगवान के भजन द्वारा इनका मुख मोड़ दिया जा सके तभी निस्तार है। तब ये भजन के सहायक बन्धु हो जाते हैं। श्वास-प्रश्वास में नाम करने से क्रमश: इनके उत्पातों से रक्षा पाई जा सकती है। ऐसा सहज उपाय दूसरा नहीं है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ब्रंह्मचर्य जो दिया है वही करो। जो नियम बता दिया है, अब उत्साह पूर्वक वही पालन करो। ब्रह्मचर्य दीर्घकाल तक न करने से कुछ ठीक नहीं होता। बारह वर्ष पूर्व ब्रह्मचर्य पूर्ण नहीं होता।

ब्रह्मचर्य सभी साधनों की नींव है। ठीक ठीक हो जाए तो कोई उत्पात नहीं रह जाता। छहों रिपु संयत हो जाएं तो बस ! काम क्रोधादि रिपुओं को खूब वश में रखो। इन्द्रिय संयम ब्रह्मचर्य का साधन है। **किसी रिपु की उत्तेजना कम हो जाय तो किसी से मत कहो। फिर वह अवस्था नहीं रह जाती, नष्ट हो जाती है।** काम से क्रोध अधिक भयानक है। काम निर्जन-स्वजन, स्थानास्थान, पात्रापात्र, स्वस्थ-अस्वस्थ सोचकर कार्य करता है किन्तु क्रोध में विचार नहीं रहता । जहाँ-तहाँ क़िसी भी अवस्था में मूर्ति धारण कर लेता है। इसी से क्रोध को चाण्डाल कहा गया है। क्रोध उत्पन्न होते ही साधक पतित हो जाता है। क्रोध का एकदम दमन करने की कोशिश करो। लोभ की चिंता न करो वह ठीक हो जाएगा। एक साथ सब नहीं होने का। नियम मानकर चलो धीरे धीरे सब ठीक हो जाएगा। अब से अध्ययन कम कर दो। गुरुगीता और भगवत गीता का एक-एक अध्याय रोज पढ़ा करो। रोज गीता का एक श्लोक याद करना। सदा नाम जप करो, नाम में डूबे रहो। नाम में यदि अवसाद आये तो पाठ करो। **अधिक पाठ का निषेध है इससे शुष्कता आती है।** यह सब तुम्हें पहले बताऊँगा सोचा था। **नाम में रुचि उत्पन्न हो जाए तो और कुछ करने की आवश्यकता नहीं।** नाम लेकर पड़े रहने से ही चलता है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- जिन इन्द्रियों द्वारा हम सदा-सर्वदा पाप संचय करते आ रहे हैं, उन्हें किस प्रकार संयत रखा जा सकता है ?

श्री गोस्वामीजी :- (1) जो व्यक्ति अक्षक्रीड़ा, परस्वापहरण, नीची जातियों का याजन परित्याग कर दे एवं क्रोध के वशीभूत होकर किसी पर प्रहार न करे, उसका हस्त द्वार रक्षित हुआ समझना चाहिये।

(2) जो व्यक्ति सत्य-व्रती, मितभाषी एवं अप्रमन्त्त हो, क्रोध, मिथ्या- वाक्य, कुटिलता, एवं लोक-निंदा का परित्याग करते हो, उनका वाक्-द्वार सुरक्षित है।

(3) जो व्यक्ति अतिभोजन एवं लोभ का त्याग करके, केवल देह-धारण के लिये ही सामान्य आहार करते हैं तथा नित्य साधु-संग करते है, उनका जठर द्वार रक्षित होता है।

(4) जो व्यक्ति एक पत्नी के होते हुए संभोग के लिये दूसरी पत्नी का पाणिग्रहण न करें एवं परस्त्रीगमन न करें तथा अपनी पत्नी से भी ऋतुकाल के अलावा गमन न करे तो उनके द्वारा उपस्थ द्वार की रक्षा की जा सकती है। जो महात्मा इस प्रकार चार द्वारों की रक्षा करने में सक्षम होते हैं, उन्हें ब्रह्मविद् कहकर गणना की जाती है। जिनकी इन चार द्वारों की रक्षा न हो पाई, उनके सभी कार्य विफल होते हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''काम, क्रोध अधर्म नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो ये मनुष्य की आत्मा की प्रकृति में न रहते। काम, क्रोध का अवैध व्यवहार ही पाप है। जिसकी जैसी प्रकृति वह वैसा कार्य करता है। प्रकृति की तीन अवस्थाएँ हैं - सत्व, रज, तम। ये तीन अवस्थाएँ जब तक विद्यमान रहेंगी, उनमें संग्राम होगा। काम-क्रोधादि का उपयोग वैध तरीके से हो, तो उसे अधर्म नहीं कह सकते। क्षत्रिय युद्ध करता है, सैकड़ो व्यक्तियों की हत्या हो जाती है, लेकिन इसकी गणना अधर्म में नहीं होती। जब तक काम, क्रोध है, उनका कभी-कभी मन में उदय होते ही निवारण का यत्न करें तो पाप नहीं। उसमें इच्छापूर्वक, आनंद सहित बढ़ावा देना पाप है। इनमें संग्राम करते समय पराजित भी हो जाओ तो कोई अपराध नहीं। जब तक हम त्रिगुण के अधीन हैं, तब तक हमें बाध्य होकर उनके ही अनुसार चलना पड़ेगा। यदि भगवान के नाम का अवलम्बन रहे तो क्रमशः त्रिगुण नष्ट होकर, शुद्ध, आत्मतत्त्व प्रकट हो सकता है। धर्म-अधर्म तो मन के अभिप्राय के अनुसार होते हैं। मनुष्य-समाज ने पाप पुण्य की धारणा स्थिर की है। भगवान उसके अनुसार या उसे देखते हुए विचार नहीं करते। वे मनुष्य का हृदय या अन्तःकरण देखा करते हैं, फिर विचार करते हैं।

श्री गोस्वामीजी :- नीम की तीन कोमल पत्तियाँ चबाकर जरा जल पी लेने पर काम की उत्तेजना कम होती है। काम शारीरिक गुणों में शामिल है। बहिर्मुख हो तो काम एवं शरीर से विलग होकर अन्तर्मुख हो जाय, तो प्रेम है। तब वह आत्मा का ही अंग या आत्मा ही है। शारीरिक गुण सहज नहीं जाता। आहार-संयम एकमात्र व्यवस्था है। जो विषय-कर्म

में लिप्त हैं, वे इन नियमों का पालन नहीं कर पाते। किन्तु विषय-कर्म न भी हो तो भी वासना, कामना, पाप नहीं जाते।''

※ ॐ–हरि ※

''एकाग्रता का अभ्यास कई प्रकार से किया जाता है। जितने भी प्रकार हैं सभी सामयिक हैं। अर्थात् जब तक इन उपायों का अवलंबन करो, मन जरा सा स्थिर होगा। बाहरी उपाय सामयिक ही होते है। जब तक संकल्प-विकल्प नष्ट न हों, चित्त की एकाग्रता भी नहीं आ पाती। भगवान हैं, यह सर्वदा स्मरण रखना होगा। स्मरण, मनन एवं निदिध्यासन - ये तीन एकाग्रत्ता प्राप्ति के श्रेष्ठ उपाय हैं। पहले **स्मरण**- सभी स्थानों में, सभी घटनाओं में उनका ही स्मरण करना। **मनन**- अस्तित्व बोध होने पर मन अपने आप उधर जाता है, जैसे सर्प आलोक दर्शन करके आँख नहीं फेर पाता। फिर **निदिध्यासन** - गाय जैसे जुगाली करती है- स्मरण, मनन से जो आनंद या स्वाद पाया, बारंबार उसका ही भोग करना ? ये तीन एकाग्रता प्राप्त करने के श्रेष्ठ उपाय हैं।''

※ ॐ–हरि ※

प्रश्न :- मन पर हमारा नियंत्रण क्यों नहीं होता?

श्री गोस्वामीजी :- ''मन में संकल्प, विकल्प सर्वदा हो रहा है। इसी से मन अस्थिर हो जाता है और मन पर नियंत्रण नहीं हो पाता। इसके प्रधान दो कारण, दो प्रबल इन्द्रियाँ है - जिह्वा और उपस्थ। उपस्थ तो भी व्यक्ति अनायास ही दमन कर लेते हैं, किन्तु जिह्वा को सहज ही वश में नहीं किया जा सकता। कोई निंदा करे, कटुवाक्य कहे तो जिह्वा तुरन्त प्रतिवाद करती है। जिह्वा वशीभूत हो जाय तो निंदा-प्रशंसा हमें विचलित नहीं कर सकतीं।''

※ ॐ–हरि ※

श्री गोस्वामीजी :- ''साधु संग, सदा नित्य-अनित्य का विचार अर्थात् संसार की असारता की चिंता और मन ही मन सदैव भगवन्नाम

जप, इन उपायों से क्रमश: चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है, मन पर नियंत्रण हो पाता है।

※ ॐ-हरि ※

श्री गोस्वामीजी :- ''चित्त की एकाग्रता लाभ करना ही धर्मार्थी का प्रधान एवं प्रथम कर्तव्य है। उपासना, आराधना, ध्यान-धारणा, जप-तप सभी इस स्थिरता पर निर्भर हैं। साधुओं ने स्थिरता पाने के नानाविध उपाय बताए हैं। इसीलिये साधकों को सुबह-शाम नाम संकीर्तन व उच्च स्वर में स्तवन स्तुति पाठ का उपदेश दिया जाता है। चंचल बालक को जोर से पढ़कर, रट कर अपना पाठ याद करना पड़ता है। उसी प्रकार चंचल साधक को सजन या निर्जन में जोर से स्तुति पाठ, गान द्वारा भगवान की पूजा करनी पड़ती है। नाम साधन, प्राणायाम, चित्त स्थिर करने के सर्वोतम उपाय हैं - ऐसा वर्णित है।

उ
प
दे
श

*

अविश्वास सम्बन्धित

बहुत लोग हमसे अनेक विषयों के प्रश्न करते हैं; किन्तु उनका उत्तर देना हमको अच्छा नहीं लगता। सिर्फ श्वास प्रश्वास में नाम का जप कर सकने से ही क्रम से सब अवस्थाएँ प्रकट होती रहेंगी। उस समय उसके प्रमाण के लिए शास्त्र देख लेना चाहिए। शास्त्र ही वाास्तविक अवस्था की गवाही देगा। जो भी अनुभव हो उसको ठोक-बजाकर देख लेना। तुम लोग तो थोड़ा-बहुत कुछ अनुभव होते ही उस पर विश्वास कर लेते हो किन्तु हमारा तो दूसरा ही हाल है। हम तो जब तक दस इन्द्रियों की सहायता से तीन बार ठोक-बजाकर सचाई की जाँच नहीं कर लेते, तब तक उसे सत्य मानकर ग्रहण नहीं करते। असल बात यह है कि दस इन्द्रियों के द्वारा जिसे सचाई की जाँच करके ग्रहण किया जायेगा उसी पर विश्वास किया जायेगा। किसी विषय को सिर्फ देखकर, सुनकर अथवा छूकर ही, यों ही, सत्य मत मान लो; सारी इन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के द्वारा तीन बार उसकी सचाई की जाँच कर लेने पर फिर शास्त्र में देखो। यदि उसमें भी प्रमाण मिल जाय तो फिर बिल्कुल संदेह न रह जायगा। नहीं तो ठीक न होगा।

❊ ॐ–हरि ❊

शिष्य - मेरा अविश्वास तो किसी तरह दूर नहीं होता- क्या करूँ?

श्री गोस्वामीजी - जिन लोगों को साधन प्राप्त हो गया है। उनके हृदय को कुछ न कुछ विश्वास की वस्तु मिल गई है। अविश्वास के समय पर उसका स्मरण करने और उसको पकड़े रहने से विशेष लाभ होता है।

अविश्वास अथवा प्रलोभन के समय पर यदि 5-6 बार भी नाम स्मरण कर लिया जाय तो भी बचाव हो सकता है। किन्तु कैसा दुर्भाग्य है कि कोई यह भी नहीं कर पाता है।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- ज्ञान का सम्यक् व्यवहार करना। किसी पर **सहज में** विश्वास मत कर बैठना। फिर विश्वास कर लेने पर सहज में

उस पर अविश्वास न करने लग जाना। ज्ञान और भक्ति सब कुछ प्रकृतिगत हैं। देखो, रामकृष्ण परमहंस बिल्कुल निरक्षर थे। फिर भी बड़े-बड़े ज्ञानी लोग उनके पास बैठकर ज्ञान प्राप्त करते थे और महान् भक्त लोग भी उनके चरणों में बैठकर भक्ति का उपदेश सुनते थे। उन्हें ज्ञानी लोग तो महाज्ञानी और भक्त लोग महान् भक्त समझते थे।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - ''सङ्ग में रहने से तो देखता हूँ पग-पग पर सन्देह होता है। इसके लिए कौन सा उपाय है? विश्वास हुए बिना तो निस्तार है नहीं।''

श्री गोस्वामीजी :- संशय भी होता है फिर विश्वास भी होता है; सब उन्हीं की इच्छा से होता है। शाक्यसिंह जब संसार में आये; एक दिन बाहर निकलने पर जरा, मृत्यु और पीड़ा का दृश्य देखते ही उनको एकाएक विषम वैराग्य हो गया। उन्होंने घर द्वार का त्याग कर दिया। लगातार छः वर्ष तक एक सी कठोर तपस्या करते करते बिल्कुल स्थाणु की तरह हो गये किन्तु जिस वस्तु को चाहते थे वह न मिली। वे निराश होकर आसन से उठ बैठे; एक मुर्दे का वस्त्र मिल जाने पर उसे पहनने को उद्यत हो गये। देवताओं ने उस वस्त्र को धोकर ला दिया। बुद्धदेव भूखे थे, उन्हें भोजन करने की इच्छा हुई। उसी समय भूखे अतिथि को भोजन कराने के लिए सुजाता ने एक मनुष्य को भेजा। उसको ढूंढने पर कहीं भी मनुष्य नहीं मिला तो उसने एक मात्र बुद्ध को ही देखा। सुजाता ने शाक्यसिंह को एक सोने के कटोरे में मिष्ठान्न खाने के लिए दिया। निरञ्जना नदी में खड़े हुए शाक्यसिंह मिष्ठान्न खाने लगे। तब देवता लोग उनको चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। किन्तु शाक्यसिंह के साथ जो पाँच शिष्य सदा रहते थे वे उनको मिष्ठान्न खाते देख आपस में कहने लगे - 'देख लिया भाई? यह तो बड़ा भारी पाखण्डी है, इसी तरह मिठाई खाया करता है, किन्तु हम लोगों को नहीं बतलाया। चलो, इस पाखण्डी के साथ रहने में कुछ भी लाभ नहीं है।' बस, साधारण कारण से खटका पैदा होते ही वे लोग चले गये। भोजन करके शाक्यसिंह ने सुजाता से

कहा, 'बहन, मिठाई खा ली, अब इस कटोरे का क्या करूँ?' सुजाता ने कहा, 'मिठाई के साथ-साथ कटोरा भी तुम्हीं को दे दिया है।' तब शाक्यसिंह ने वह कटोरा नदी में फेंक दिया। अब देवता लोग उसमें से प्रसाद खाने लगे। भोजन कर चुकने पर शाक्यसिंह, अभीष्ट प्राप्ति के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा करके बोधिवृक्ष के नीचे बैठ गये। भीतर के सभी शत्रु परास्त हो गये, वासना-कामना का बिल्कुल लय हो गया। उनके भीतर बोधिसत्त्व ने प्रवेश किया, वे बुद्ध हो गये। बुद्धदेव थे तो अवतार; किन्तु अपने को भूले हुए थे। उन्होंने बोधिसत्त्व होकर सोचा, 'यह वस्तु किसको दूँ' तब उन्हें उन पाँच शिष्यों की याद आई। उन्हीं को यह वस्तु देने के लिए वे रवाना हुए। रास्ते में घाट के मल्लाह से नदी पार पहुँचाने को कहा तो उसने पैसे माँगे। पैसे तो थे नहीं, तब संकल्प मात्र से देखा और नदी पार पहुँच गये। काशी पहुँचने पर वे पाँच शिष्यों से मिले। वे लोग दूर से बुद्धदेव को देखकर कहने लगे, अरे भाई, वह देखो, वही पाखण्डी है ! वही इधर चला आ रहा है ! उससे हम लोग बोलेगें ही नहीं। किन्तु बुद्धदेव जब उन लोगों के पास पहुँचे तब उन लोगों ने बड़े आदर और भक्ति के साथ बुद्धदेव की अभ्यर्थना की, उनके प्रभाव को अमान्य करने की शक्ति अब किसमें थी? तब बुद्धदेव ने उन लोगों पर कृपा की और कहा,' 'तुम लोग इस वस्तु का प्रचार करो। उन लोगों ने उक्त आज्ञा को शिरोधार्य करके सब को सन्यासी बना लिया। भगवान जब जिस काम को करने के लिए आते हैं तब उसे बिना किये नहीं जाते। वे जिनको पकड़ लेते हैं उनको फिर कभी छोड़ते नहीं। यदि वे न पकड़ें तो मनुष्य की क्या साध्य कि उनको पकड़े रह सके? मनुष्य में तनिक भी क्षमता नहीं है, उनकी कृपा ही सार है।

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- अविश्वास व संदेह से तो सदा कष्ट पा रहा हूँ। भगवान के चरणों में चित्त समर्पण तथा अचला भक्ति किस प्रकार होगी ?

श्री गोस्वामीजी :-श्रीमद्भागवत, गीता, भक्तमाल आदि ग्रन्थ श्रद्धापूर्वक पाठ करने **से पूर्वजन्म की सुकृति** अनुसार शीघ्र विश्वास

उत्पन्न होता है। श्रद्धापूर्वक शास्त्र पाठ करने पर तथा साधु संग करने पर पूर्व जन्म की सुकृति से भगवत भजन में प्राणी को व्याकुलता आती है। इस समय सद्गुरु का आश्रय लेकर, उनके उपदेश मानकर, निष्कपट हो साधन भजन करने पर, भगवान कृपा करके साधक को अपना दास बना लेते हैं और दर्शन देते हैं। सारी सुन्दर वस्तुओं के जो सृष्टिकर्ता हैं उनके एक अंग के दर्शन पा लेने पर भी मनुष्य उन्हें छोड़ नहीं सकता। ऋषियों ने कहा है - प्रथमतः ब्रह्मज्ञान -सर्वत्र उनको प्रत्यक्ष अनुभव करना। द्वितीय अवस्था योग - आत्मा में परमात्मा की उपलब्धि। तृतीय अवस्था भगवत् सम्बन्ध - पूजा, अर्चना। इस अवस्था में उनके दर्शन होते हैं। एक बार दर्शन मिलने पर -

भिद्यते् हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे॥

❊ ॐ–हरि ❊

गोस्वामीजी - **संशय आत्मा की एक अवस्था है। जैसे काम, क्रोध इत्यादि भीतर रहने से किसी भी प्रकार उनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार संशय रहने से उसे नष्ट करना कठिन है; एक मात्र श्वाँस–प्रश्वाँस में नाम करने से संशयजनित पाप विनष्ट होंगे एवं अपने आप प्रेम, भक्ति, विश्वास, पवित्रता आयेगी । इसे छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है ।**

उपदेश

*

धैर्य

श्री गोस्वामीजी :- धैर्य के अभाव से मनुष्य को समस्त अशान्ति होती है। धैर्य ही मनुष्य का मनुष्यत्व है। चञ्चलता ही अशान्ति का एकमात्र कारण है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- मनुष्य का किसी विषय में चञ्चल होना ठीक नहीं। मनुष्य जब जो कुछ करे, स्थिरता से सोच विचार कर करे। एकाएक किसी भी काम को कर बैठना ठीक नहीं। सभी विषयों में खूब धैर्य से काम करना चाहिए। धैर्य ही धर्म है और धैर्य ही मनुष्य का मनुष्यत्व है।

शिष्य - ''हम लोगों का साधन क्या है? क्या नाम का जप करना ही साधन है?''

श्री गोस्वामीजी :- सद्गुरु के दिये हुए नाम का जप करना साधन नहीं कहलाता। सद्गुरु जिस नाम का उपदेश देते हैं वह (नाम) गुरुशक्ति के प्रभाव से अपने-आप अनन्त काल तक चलता रहेगा। सभी विषयों में चञ्चलता को छोड़कर अत्यन्त धैर्य के साथ विचार करके समस्त कार्यों को करते जाना ही वास्तविक साधन है। सब कार्यों में धैर्य का अवलम्बन करना ही साधन है।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- ''दूसरे के रोग, शोक और भूख-प्यास का कष्ट देखकर वैसी ही पीड़ा मुझे क्यों नहीं होती? मुँह से केवल हाय-हाय कर देता हूँ। सच्ची दया का उदय प्राणों में कब होगा?

श्री गोस्वामीजी :- यह कैसे बताया जाय? सभी के भीतर सारी सद्वृत्तियाँ हैं, समय आते ही वे प्रकट हो जाती हैं, जिस प्रकार कि समय आने पर वृक्ष में फल फूल आ जाते हैं। नियम से चलते हुए समय की प्रतीक्षा में पड़े रहो।

* ॐ–हरि *

शिष्य :- ''आप प्राय: कहा करते हैं कि 'समय आने पर होगा।' तो इस समय का अर्थ क्या कोई निर्दिष्ट अवधि हैं?''

श्री गोस्वामीजी :- केवल वही नहीं है। एक खास ऋतु में खास किस्म के पेड़ों में फल लगते हैं; किन्तु उस ऋतु में भी पेड़ की भी उम्र फल लगने लायक होनी चाहिए। जब तक चारा बढ़ नहीं जाता, उसकी रक्षा चौपायों से करनी पड़ती है, उसको बाड़ी में घेरना पड़ता है, पानी देना पड़ता है और धूप लगने देने का प्रबन्ध करना पड़ता है। जिस प्रकार ये कार्य आवश्यक हैं, वही हाल और बातों का है। नियम से न रहने पर समय भी नहीं आता।

* ॐ–हरि *

श्री गोस्वामीजी :- आजकल देखता हूँ कि सभी बहुत ही आसानी से धर्म को प्राप्त कर लेना चाहते हैं। कोई एक बार यह नहीं सोचता कि धर्म कितनी मूल्यवान वस्तु है ओर धर्म को प्राप्त करना कितना कठिन कार्य है? जब तक भीतर के सारे कुअभ्यास दूर नहीं हो जाते, धर्म की प्राप्ति किसी तरह नहीं हो सकती। बहुत पुराने कुअभ्यास को मनुष्य इच्छा करने से ही नहीं छोड़ सकता; यह काम दो एक दिन का है भी तो नहीं। इनको दूर करने में जितना समय लगता है उतनी देर तक भी कोई धैर्य धरकर ठहरना नहीं चाहता। झटपट कुछ पाने के लिए लोग आतुर हो जाते हैं; इससे कुछ भी नहीं होता। इसके अतिरिक्त सभी अपनी-अपनी रुचि का धर्म चाहते हैं। अपनी रुचि के साथ थोड़ा सा अन्तर होते ही कोई उसे धर्म नहीं मानता। इन दो कारणों से लोगों के लिए धर्म प्राप्त करना कठिन हो गया है। धर्म किसी पेड़ का फल तो है नहीं कि जिसे इच्छा करते ही कोई चट से गिरा लेगा।

उ
प
दे
श

*

विविध
उपदेश

साधक - घर जाकर मैं किस नियम का पालन करूँगा ?

श्री गोस्वामीजी- नियम और क्या ? जिस तरह रहते हो उसी तरह रहना। खूब पवित्रता से रहना। मन में किसी प्रकार के बुरे विचार को न आने देना, उससे बड़ी हानि होती है। मन को सदा पवित्र और प्रफुल्ल रखना। चित्त प्रफुल्ल नहीं रहता है तो फिर धर्म-कर्म कुछ भी नहीं होता। खूब कातर होकर भगवान् के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए और प्रार्थना के भाव को सदा स्मरण रखना चाहिए। क्या लिखते पढ़ते समय, क्या बातचीत करते समय और क्या घाट-बाट में चलते-फिरते, हमेशा पाँच-सात मिनट के बीच तनिक सुस्ताकर, दो-एक मिनट तक भगवान् का स्मरण करना चाहिए। 'वे सर्वदा ही साथ हैं, मुझे बहुत प्यार करते हैं, क्षण-क्षण में मुझपर न जाने कितने प्रकार से दया करते हैं' - यह सब याद करके बारम्बार उनको नमस्कार करना चाहिए। इस प्रकार हर एक काम में उनका स्मरण करते रहने से, थोड़े समय में ही, वे कृपा कर देते हैं।

ॐ-हरि

शिष्य- विरोधी शक्तियों से कैसे रक्षा की जाये ?

श्री गोस्वामीजी ने एक शक्तिसम्पन्न बाउलिनी द्वारा की गई कुचेष्टा के सम्बन्ध में कहा - मैं तनिक अनमना था। एक बाउलिनी ने आकर मुझे नमस्कार किया। उस समय मैंने देखा नहीं। एकाएक बाउलिनी मेरे पैर के अँगूठे को चूसने लगी। तब मुझे होश हुआ। एक भयानक शक्ति ने अकस्मात् मेरे शरीर में पहुँचकर मुझे बेचैन कर दिया। मैंने उसे एक ऊपरी शक्ति समझकर गुरुदेव को स्मरण किया और उनके चरणों में उस शक्ति को चटपट अर्पित करके मैं बेखटके हो गया। अब बाउलिनी नीचे गिरकर तड़पने लगी और चिल्लाकर रो रोकर कहने लगी - 'प्रभो, मेरी चीज़ मुझे लौटा दीजिए। अब मैं कभी वैसा नहीं करूँगी।' मैंने कहा - 'अब वह नहीं हो सकता; ज्योंही वह मेरे भीतर पहुँची, त्योंही मैंने उसे गुरुदेव के हवाले कर दिया। जो चीज दे चुका हूँ उसे वापस नहीं माँग सकता।' बाउलिनी समाज में दो दिन बहुत रोती-पीटती रही; फिर जब उसे मालूम हो गया कि गई वस्तु वापस नहीं मिलेगी तब अधमरी सी निस्तेज होकर यहाँ से चली गई।

शिष्य - ये किस रीति से शक्ति को चुराती हैं? क्या बिना ही अँगूठा चूसे यह काम हो सकता है?

गोस्वामी - अँगूठा चूसने से यह काम आसानी से हो जाता है; इसके सिवा चरण-रज लेते-लेते और देह से लिपटाकर भी शक्ति चुरा ली जाती है। कोई दृष्टि जमा करके भी यह काम कर लेता है। अपनी शक्ति और भाव को दूसरे के भीतर पहुँचाकर फिर अपनी शक्ति को खींचने पर साथ साथ दूसरे की शक्ति और सद्भाव खिंच आता है।

प्रश्न - इन उत्पातों से बचाव क्यों कर हो सकता है ?

गोस्वामीजी - अभिमान से बचे रहकर अपने को बहुत ही लघु समझना होता है। ऐसा होने पर दूसरे को लेने के लिए कुछ नहीं मिलता और अपने इष्टदेव के चरणों में ध्यान लगाये रहने से सारी आपदाएँ टल जाती हैं।

शिष्य - मालुम होने पर ही तो इन उपायों से काम लिया जा सकता है किन्तु यदि कोई शक्ति की चोरी इस तरह करे कि जिसकी चोरी की जा रही है उसे पता ही न लगे तो उस दशा में, बचाव किस तरह हो सकता है ?

श्री गोस्वामीजी - योगैश्वर्य प्राप्त हो जाने पर योगी लोग गुरु का दिया हुआ त्रिशूल लिये रहते हैं। उससे अपने तेज की रक्षा तो होती ही है, साथ ही दूसरे का कोई असद्भाव साधक के भीतर सञ्चरित नहीं हो सकता।

*** ॐ-हरि ***

शिष्य - सत्संग करने पर भी परिवर्तन नजर क्यों नहीं आता?

श्री गोस्वामीजी - उपदेश सुनने से क्या होगा ? सिर्फ सुनकर चल देने से कुछ नहीं होता। उसे जीवन में परिणत करना चाहिए। इच्छा करने से ही सभी उपदेशों के अनुसार नहीं चला जा सकता, यह सच है। भले बनने की इच्छा बहुतों को है, उसके लिए वे कोशिश भी करते हैं किन्तु उनको सफलता नहीं मिलती। यह बिल्कुल सच है कि सभी रिपुओं पर सब का एक सा आधिपत्य नहीं है, किन्तु लोग

कहना चाहें तो सच बात अवश्य कह सकते हैं; लेकिन यह कौन करता है; सच्ची बात, सच्चे बर्ताव और सत्य ही सोचने विचारने की सब को आवश्यकता है। इन तीनों का अभ्यास हो जाय तो फिर और बहुत उत्पात नहीं रहता। धर्मार्थियों को पहले इन्हीं तीनों का अभ्यास कर लेना चाहिए। फिर सब सरलता से आ जाता है। उल्लिखित तीनों बातों का अभ्यास सहज ही हो जाता है। इन तीनों का अभ्यास पहले कर लो तो सब उत्पातों की शांति हो जायगी।

✻ ॐ–हरि ✻

अल्प समय में सिद्धावस्था प्राप्त करने के उपाय के सम्बन्ध में श्री गोस्वामीजी ने निम्न नियम पालन करने का उपदेश दिया।

1. किसी का साथ न करे। विशेष रूप से स्त्रियों को देखना, छूना। उनके सम्बन्ध में कुछ सुनना और चिन्तन आदि सब तरह से छोड़ दे।

2. एकान्त में बहुत ही शुद्धतापूर्वक दिन को एक ही बार अपने हाथ से बनाकर अरवा चावल का भात खावे।

3. सोये नहीं। बहुत ही सुस्ती मालूम होने पर, जरूरत हो तो हाथ का ही तकिया बनाकर जमीन पर लेटे रहे।

इन बाहरी नियमों का पालन करने के साथ-साथ, निर्दिष्ट रीति से मुद्राबन्धन करे और दिन रात सिद्धासन में बैठकर प्राणायाम तथा रीति के अनुसार कुम्भक में नाम का साधन करना चाहिए।

इस प्रकार नियमों का अवलम्बन करके यदि कोई एक महीने तक साधना करता रहे तो उसे अवश्य सिद्धावस्था प्राप्त हो जायेगी। कम से कम तीन दिन भी यदि कोई कर लेगा तो ऐसी कोई विशिष्ट अवस्था प्राप्त हो जायेगी जो औरों को दुर्लभ होगी। इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं है।

ॐ–हरि

साधकों के दैनिक नियम

1. पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पञ्चभूतों में रीति के अनुसार दृष्टि साधन करने का अभ्यास करना।

2. शम-अन्तरिन्द्रिय का शमभाव। सदा चित्त की प्रसन्नता की रक्षा किये रहना।

3. तितिक्षा - सभी प्रकार के दु:ख की अवस्था में क्षमा, सहनशीलता को ग्रहण किये रहना।

5. उपरति-मृत्यु और परलोक का ख्याल रखना। प्रतिदिन सोचना कि देह, सम्पत्ति और गृहस्थी आदि सब अनित्य हैं, असार हैं।

6. द्वन्द्वसहिष्णुता- सुख-दु:ख, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, सभी विरुद्ध अवस्थाओं में चित्त की अवस्था को अविचलित, एक ही ढंग से स्थिर रखने की चेष्टा करना।

7. स्वाध्याय - ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का पठन-पाठन करते रहना। महाभारत के मोक्षपर्व और श्रीमद्भगवद्‌गीता आदि से कम से कम एक-दो श्लोक तो प्रतिदिन पढ़ना।

8. साधु सङ्ग - प्रतिदिन या तो साधु महात्मा के दर्शन करना या धर्म विषय की चर्चा करना।

9. दान - जिससे जो बन पड़े, कम से कम अच्छी बात का ही दान करना।

10. तपस्या - साधन जो कि किया करते हो।

प्रतिदिन इन नियमों की रक्षा करने की चेष्टा करना।

अयोध्या में हमुमानगढ़ी बड़ा ही जाग्रत स्थान है। वहाँ पर प्राय: महापुरुष आया करते हैं, किन्तु वे अपना परिचय आप न दें तो न तो कोई उन्हें छू सकता है और न पकड़ सकता है। गुप्तारघाट और हनुमानगढ़ी, यही दो स्थान अब तक ठीक बने हुए हैं। प्राचीन अयोध्या का और सब सरयू के पेट में चला गया है।

मन लगाकर साधन करते जाओ। अभी फलाफल पर दृष्टि मत रखो। समय पर फल मिलेगा। समय आये बिना कुछ नहीं होता। सभी कामों के लिए एक निर्दिष्ट समय रहता है। किसान लोग जो खेती करते हैं, उसका भी एक समय निर्धारित है। समय का उल्लंघन करके कोई कुछ नहीं करता। तुमने देखा नहीं है, किसान बीज बोने से पहले कितना परिश्रम करते हैं? समय पर जुताई-गोड़ाई करके, खेत से कूड़ा-कचरा हटा करके, उसे साफ कर डालते हैं; इसके बाद बीज बोते हैं। बीज में जब अंकुर फूटते हैं तब फिर भलीभाँति खेत को निरा देते हैं। इतना करने पर ही पौधे पनपते हैं और खासी फसल होती है। जो किसान खेत को जोड़-गोड़ कर साफ नहीं करते हैं, उनके खेत की फसल को, तरह तरह के झाड़-झंखाड़ पैदा होकर, मटियामेट करने लगते हैं। उस समय झाड़-झंखाड़ को उखाड़ते-उखाड़ते किसानों की नाक में दम आ जाता है और उन पौधों में फसल भी अच्छी नहीं आती। किसानों की दुर्दशा तो हो ही जाती है, फसल भी किसी काम की नहीं होती। सब बातों को इसी तरह समझो। ठीक समय पर ही किसान लोग सब कुछ कर लेते हैं; समय टल जाने पर कुछ करने से वैसा अच्छा नहीं होता। जैसा कहा जाता है, वैसा करते जाओ। कुछ भी कमी न होगी। समय पर सब कुछ होगा। खूब नाम का जप करो।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत के नियम–

(1) प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर साधन करना। फिर प्रातः-क्रिया करके, पवित्र और शुद्ध होकर आसन पर बैठना। गायत्री का जप करना। इसके बाद गीता का कम से कम एक अध्याय का पाठ करना। पाठ कर चुकने पर फिर साधन करना। नहा लेने पर गायत्री का जप करके तर्पण आदि करना।

(2) स्वयंपाक करके उसी भोजन को करना, अथवा अच्छे ब्राह्मण के हाथ की रसोई भी खा सकते हो। भोजन में किसी प्रकार का अनाचार न होना चाहिए। भोजन का

एक नियम बना लेना। परिमित आहार करना, न तो बहुत अधिक ही खाना और न कम ही, ऐसी चीज न खाना जिससे कामभाव उत्तेजित हो। अधिक मात्रा में चरपरा, खट्टा और मीठा भोजन न करना। शहद और घी के खाने से उत्तेजना बढ़ती है; अतएव इन चीजों को भी अधिक न खाना। खाने पीने के सम्बन्ध में सदा चौकन्ने बने रहना। भोजन को शुद्धता से करना।

(3) भोजन करने के बाद थोड़ी देर तक बैठकर विश्राम करना। फिर भागवत, महाभारत, रामायण आदि को कुछ देर तक पढ़ना। इसके बाद एकान्त में बैठकर ध्यान करना। जी चाहे तो तीसरे पहर के बाद तनिक टहल सकते हो।

(4) सन्ध्या समय गायत्री का जप करना। फिर जिस तरह साधन आदि किया करते हो उसी तरह करते रहना। यदि कड़ी भूख लगे तो थोड़ा सा 'जल-पान' कर लेना। दोनों वक्त दाल भात मत खाना।

(5) बहुत ही मामूली कपड़ा पहनना। साधारण बिछौने पर सोना। इन चीजों को अपने लिए निर्दिष्ट रखना। दिन को कभी न सोना। समय समय पर साधुओं का सत्सङ्ग करना, उनके उपदेश को श्रद्धां के साथ सुनना। अपने साधन में विशेष रूप से निष्ठा रखना।

(6) न तो किसी की निन्दा करना और न किसी की निन्दा सुनना; जहाँ पर निन्दा होती हो उस स्थान को विष की तरह छोड़ देना।

(7) किसी प्रकार का साम्प्रदायिक भाव न रखना। जो जिस रूप में साधन करें उन्हें उसी रूप में साधन करने को उत्साहित करना।

(8) किसी के दिल को चोट न पहुँचाना; सभी को सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करना। तुम से जहाँ तक बने वहाँ तक

दूसरे की सेवा करना। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-लता प्रभृति की यथासाध्य सेवा करना। दूसरे के आगे अपने को छोटा समझना। सभी को मर्यादा देना। प्रत्येक काम को विचारपूर्वक करना। सदा प्रत्येक काम को विचारपूर्वक करने से कुछ भी विघ्न नहीं होता।

(9) सदा सच बोलना, सच्चा व्यवहार करना। असत्य कल्पना को मन में भी न आने देना। बातचीत कम करना।

(10) युवती स्त्रियों को मत छूना। देव-दर्शन के समय, भीड़-भाड़ में, रास्ते में, घाट पर अथवा बिना जाने छू जाना, छू जाना नहीं माना जायेगा। बहुत ही गुप्त रूप से अपना काम किये जाना।

(11) सदा खूब साफ और पवित्र रहना। पवित्र स्थान में पवित्र आसन पर बैठना।

* ॐ-हरि *

शिष्य - 'देहतत्त्व की शिक्षा न मिलने से कैसे मालूम होता है कि देह में कहाँ पर कौन सा रोग है और क्यों है ! और निरोग होना किस प्रकार सम्भव है ?'

श्री गोस्वामीजी - ज्यों ही साफ-साफ यह ज्ञान हो जाता है कि इस शरीर से आत्मा अलग है, त्यों ही ठीक-ठीक जान पड़ता है कि स्थूल शरीर में कहाँ पर क्या है ? उस समय शरीर के भीतर और बाहर के सभी स्थानों की चमड़ी, मांस, हड्डी, मज्ञा, नाड़ी, नसें, धमनियाँ जो कुछ है, साफ दिख पड़ता है। तब मालूम किया जा सकता है कि शरीर के किस स्थान में किस चीज की कमी है और कहाँ पर कौनसी चीज अधिक है ? साफ-साफ समझ लिया जा सकता है कि पृथ्वी की किस वस्तु के साथ देह का क्या सम्बन्ध है ?

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी के आसन के पास से होकर चींटों की कतार जल्दी-जल्दी आवाजाही कर रही थी। श्री गोस्वामीजी ने तनिक उनकी

ओर देखकर, सिर झुकाकर मन्द-मन्द हँसते हुए, कान लगाया जैसे उनकी बातचीत सुनते हों और बीच-बीच में वे इस तरह सिर डुलाने लगे मानो उनकी बातों को समझ रहे हैं। **शिष्य**–तो क्या चींटे भी बातें करते हैं? क्या इनकी भी बातें सुनने में आ सकती हैं?

श्री गोस्वामीजी ने कहा- न सिर्फ चींटी-चींटें ही बल्कि वृक्ष और लताएँ तक बातें करती हैं। मन तनिक स्थिर हो तो क्या कीट पतङ्ग और क्या वृक्ष लताएँ, सभी की बातें सुनी जा सकती हैं।

चींटों का कोई काम उल्टा सीधा नहीं होता। सभी काम बड़े सिलसिले से किये जाते हैं। इनमें भी संचालन है, शासन है, मुकदमा सुना जाता और फैसला होता है। मनुष्य बड़े होने की शेखी किस बात में करता है? चींटी की तरह बालू में से इस प्रकार चीनी को अलग कर ले, तो समझें।

※ ॐ–हरि ※

शिष्य - ''परमेश्वर पर तो सभी को विश्वास है; तब वे जिस समय संसार में अवतार लेते हैं उस समय लोग उन्हें पहचान क्यों नहीं पाते?''

श्री गोस्वामीजी :- अनादि अनन्त चैतन्यरूप परमेश्वर सर्वत्र विद्यमान है, ऐसे ब्रह्मज्ञान से उसकी उपासना करना और ध्यान करना सहज है। साधक लोग पहले इस ब्रह्मज्ञान की ही उपासना करते हैं। अवतारतत्त्व, लीलातत्त्व पर विश्वास तो बहुत पीछे होता है। जो हम लोगों की ही तरह खाते-पीते हैं, चलते-फिरते, उठते-बैठते और बीमारी में दर्द के मारे कराहते हैं, मर गये, अब नहीं बचेंगे आदि जोर से कहते हैं, छटपटाते हैं; शोक से बैचेन होकर 'कहाँ गया, कहाँ जाने पर भेंट होगी। कहकर रोते-रोते देश देशान्तर में पागल की तरह भटकते हैं, कभी भूख से व्याकुल होते हैं, कभी प्यास के मारे तड़पते हैं, उन्हीं को सर्वशक्तिमान, सर्व-व्यापी, आनन्दमय, चैतन्यस्वरूप, परमेश्वर समझना और विश्वास करना हँसी खेल नहीं है। वे जिस पर दया करते हैं, वही महाभाग्यवान उनको पहचान सकता है और किसी की सामर्थ्य नहीं कि उनको पहचान ले। स्वयं ब्रह्मा तक को इसमें संशय हो गया

था। ब्रह्मा ने सोचा, 'क्या यह भी सम्भव है? जो जङ्गल मैदान में गौएँ चराता फिरता है, धूप के मारे बैचेन होकर पेड़ की छाँह में जाता है, पानी बरसने पर चट्टान की ओट में खड़ा होता है, खेल में हार जाने पर ग्वालों को कन्धे पर चढ़ा लेता है, उनके साथ उछलता कूदता और दौड़ता फिरता है, कभी कीचड़ में गिरता है, कभी ठोकर खाकर गिर पड़ता है, फिर चोरी करके डर के मारे सिकुड़ कर भागता है, यही क्या वह पूर्ण ब्रह्म सनातन, गोलोकबिहारी श्रीकृष्ण इस गोकुल में है? अच्छा, देखना चाहिए'। अब ब्रह्मा ने अकस्मात् बछड़ों, चरवाहों, मुरली, लाठी आदि सब को ले जाकर पर्वत की एक गुफा में छिपा दिया और उसके दरवाजे पर एक शिला रख दी। श्रीकृष्ण ने ताड़ लिया कि यह ब्रह्मा का काम है। वे उसी क्षण स्वयं बछड़े, चरवाहे, मुरली, लाठी, नरसिंगा, सिकहर और हाँड़ी आदि बन गये; किसी को इसका तनिक भी भेद मालूम नहीं हुआ। उस दिन बलराम गोष्ठ में नहीं गये थे; बछड़ों पर गौओं का, बच्चों पर गोपियों का पहले से भी अधिक स्नेह और चाह देखकर उन्होंने सोचा कि 'यह क्या है? ऐसा तो इससे पहले कभी नहीं देखा। यह तो सब का सब बड़ा ही विचित्र है।' जब कुछ समझ में न आया तो उन्होंने ध्यान लगाया; तब उनको सारा भेद मालुम हो गया। इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया; ब्रह्मा ने फिर आकर देखा कि श्रीकृष्ण सभी के साथ पहले की सी लीला कर रहे हैं। अब उन्होंने पर्वत की गुफा में जाकर देखा तो वहाँ सभी वस्तुएँ उसी रूप में मौजूद थीं जैसी कि वे वहाँ रख गये थे। अब ब्रह्मा कभी तो उस गुफा में जाते और कभी गोष्ठ में जाकर जाँच पड़ताल करते; अन्त में बहुत ही चकराकर श्रीकृष्ण के चरणों में गिरे और स्तुति करने लगे-प्रभो ! मेरे अपराध को क्षमा कीजिए। मैं अबोध हूँ। शिशु माता की गोद में रहकर कितने ही उपद्रव करता है, लातें मारता है। किन्तु क्या इससे माता क्रोध करती है? तुम धन्य हो! ब्रजवासी धन्य हैं। इस ब्रज के वृक्ष और लताएँ धन्य हैं! क्यों कि उन्हें तुम्हारे और ब्रजवासियों के चरणों की रज का स्पर्श प्राप्त होता है। दया करके मुझे अपने ब्रज में वृक्ष लता बना लो।' ग्रन्थ आदि में जैसा लिखा है, श्रीवृन्दावन में नियमानुसार निवास करने से धीरे-धीरे

वह सब प्रत्यक्ष हो जाता है। भगवान की नरलीला, उनकी कृपा हुए बिना, ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी समझ में नहीं आ सकती; फिर मनुष्य है ही किस लेखे !

✲ ॐ–हरि ✲

अनेक क्षेत्र में सन्तान को शिष्य होने पर भी साधन देने का अधिकार नहीं होता, उपयुक्त व्यक्ति को ही साधन देने का अधिकार मिलता है । इस साधन का अधिकारी केवल वह है जो सर्वदा ब्रह्म युक्त होकर नाम में मग्न रहता है ।

✲ ॐ–हरि ✲

सभी सम्प्रदायों में मूल वस्तु ढ़क गई है, अनुष्ठान अत्यन्त बढ़ गये हैं, बाह्य जगत में ज्यादा मन लगाने से भीतर कैसे डूबोगे ।

✲ ॐ–हरि ✲

जब भी अपरिचित स्थान, अनजाने लोगों के पास जाना पड़े तब सद्‌गुरुप्रदत्त नाम श्वास–प्रश्वास में जप करते रहने से उसकी कोई क्षति नहीं होती, कोई अनिष्ट नहीं कर सकता ।

✲ ॐ–हरि ✲

''बहुत से उच्चशिक्षित व्यक्ति दीक्षा ग्रहण करना आवश्यक नहीं मानते, इस जगह वे कितनी बड़ी भूल कर रहे हैं यह बात वे समझ नहीं पा रहे हैं । उपयुक्त गुरु का अभाव होने पर भी, यदि इच्छा या व्याकुलता रहे तो कोई न कोई उपाय से सद्‌गुरु प्राप्त होते हैं ।''

✲ ॐ–हरि ✲

असली बात यह है कि अपने समस्त प्राण ढ़ाल कर उन्हें पुकारना पड़ता है, बाहर की भागदौड़ से वे भुलावे में नहीं आते । भीतर से व्याकुल प्राणों से उन्हें पुकारना होगा, तब वे हृदय के भीतर दर्शन देंगे।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री श्री गोसाँई जी - लोग सत्यधर्म को भूलकर अपने कल्पित मनगढ़े धर्म के नाम पर अधर्म की सृष्टि कर रहे हैं, जिस प्रकार आग देखकर पतंगा उसमें जा पड़ता है और अन्त में प्राण खो बैठता है, वैसे ही इस कल्पित धर्म के स्रोत को धर्मप्रार्थी, धर्म मानकर झुंड के झुंड उसमें फँस रहे हैं और फिर अपने-अपने पृथक-पृथक दलों की सृष्टि कर रहे हैं । यह सच्चा पथ तो एकमात्र त्याग का पथ है, नाम ही जीवों की एकमात्र गति है ।

✻ ॐ–हरि ✻

बाहर की वस्तु होने पर भी धर्म अनुष्ठानों में योग देना चाहिये किन्तु सब समय बाहर के ही अनुष्ठानों को लेकर ही रहना कर्त्तव्य नहीं है उससे मन चंचल होता है।

✻ ॐ–हरि ✻

केवल किताब लिखने से कुछ नहीं होता, उसमें तपस्यालब्ध-शक्ति रहना जरूरी है, जिस ग्रन्थ में शक्ति नहीं है वह भीतर स्पर्श नहीं करेगा । वह तो गप्प पढने व गप्प सुनने जैसा काम होगा उससे असली वस्तु का सन्धान प्राप्त नहीं होता ।

✻ ॐ–हरि ✻

एक गुप्त बात सर्वदा स्मरण रखना कि इस सद्‌गुरुप्रदत्त नाम को जप करने के लिये बैठते ही वे नामी (भगवान) पास में उपस्थित होते हैं किन्तु कोई भी अपने प्राणों में उनके लिये सच्चा आसन नहीं बिछाता अपितु वह स्थान नानारूप वासना कामना द्वारा पूर्ण होने के कारण नामी वापस लौट जाते हैं और फिर इसकी व्यवस्था में लग जाते हैं कि कैसे इन सन्तानों का कल्याण हो, कैसे इनका मोह दूर हो ।

✻ ॐ–हरि ✻

निर्ज्जन स्थान, संग रहित, सात्विक आहार, मौन धारण करके

सर्वदा भगवद् प्रेम में मग्न रहने वाले वे भी सभी ऋषिगण अभी भी हैं किन्तु मनुष्य कलि के वश होकर उन्हें नहीं देख पा रहा है ।

※ ॐ–हरि ※

पाठ करने का मूल उद्देश्य क्या है बहुत से लोग यह जानते ही नहीं है, केवल पढना अच्छा लगता है इसीलिये पढते हैं किन्तु अपने जीवन में उसे कार्य में पर्णित करना होगा यह बात वे भूल जाते हैं । प्रत्येक उपदेश पढकर सुनकर उसके अनुसार चलने की चेष्टा करनी चाहिये इसीलिये पाठ को मुखस्त के समान बार-बार पढने की जरूरत है । कुछ-कुछ उपदेश पाठ करके उसी प्रकार चलने का अभ्यास करना चाहिये । इन सब उपदेशों में शक्ति निहित होने के कारण ये विश्वासी जनों के हृदय को स्पर्श करेंगे । जहाँ सत्यधर्म है वहाँ सर्वदा ही आनन्द रहता है ।

※ ॐ–हरि ※

जब तक कर्म बचे हैं और यदि कुछ दर्शन या अवस्था लाभ हो जाए तो वह व्यक्ति बद्ध हो जाता है आगे नहीं बढ़ता ।

※ ॐ–हरि ※

जहाँ भी भगवान की बात पर अपना निज स्वयं का मत थोपा जाता है वहाँ गुरुतर अपराध होता है ।

※ ॐ–हरि ※

आजकल चारों तरफ जो नए-नए सम्प्रदाय पैदा हो गए हैं वे अपने मनगढंत जो मत प्रचार कर रहे हैं वह सब भ्रान्त पथ हैं । ऐसे लोग व सम्प्रदायों का सर्वतो भाव से त्याग करना कर्तव्य है ।

※ ॐ–हरि ※

कल्पना का आश्रय लेकर वैष्णवमंडली में धमार्थियों को अत्यन्त क्षति हो रही है,

शिष्य - ''हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण जङ्गल, पहाड़ों में निरापद कैसे रह सकते हैं?''

श्री गोस्वामीजी :- महाभारत में तो बार बार पढ़ा करते हो! जिनके भीतर हिंसा नहीं है, उनकी हिंसा कोई भी नहीं कर सकता; उन लोगों को हिंसक जन्तु भी पौधों और पत्थरों जैसा समझते हैं। कुछ समय हुआ कि यहाँ के हाथीखेदा के एण्डरसन साहब, हाथी पर सवार होकर जयदेवपुर के जङ्गल में शिकार के लिए गये थे। वे घने जङ्गल में पहुँच कर बड़े सङ्कट में फँस गये। बाघ की बू पाकर हाथी, साहब को हौदे से पटक कर, भाग गया। साहब ने बाघ पर निशाना लगाकर दो-तीन बार बन्दूक चलाई; किन्तु निशाना न लगा। बड़ा भारी बाघ साहब की ओर लपका। अब साहब बहादुर जी-जान से जङ्गल में इधर उधर भागने लगे। बाघ इस तरह धीरे-धीरे साहब के पीछे-पीछे खिलवाड़ करता हुआ चलने लगा मानो शिकार पञ्जे में आकर फँस गया है, अब जाता कहाँ है। साहब ने थोड़ी देर तक इधर-उधर दौड़ने के बाद हैरान हो जङ्गल के झुरमुट में एक नङ्ग धडंग सन्यासी को देखा। बस वह उन्ही के पास पहुँच गया। सन्यासी ने साहब को धैर्य से बैठने को कहकर पूछा, 'तुम इतने क्यों घबरा गये हो?' साहब ने डरकर कहा,'हम को बाघ दबोच लेगा।' तब सन्यासी ने हाथ हिलाकर बाघ को, आगे न आने के लिए मना किया और कहा, 'बैठ जा बच्चे, अब नजदीक मत आ।' बाघ थोड़ी देर तक बैठा-बैठा पूँछ हिलाने डुलाने और गुर्राने लगा। फिर एक ओर चला गया। साहब से सन्यासी ने पूछा बाघ के डर से तुम इतने घबरा क्यों गये थे? साहब ने उत्तर दिया कि बाघ को मारने के लिए मैंने दो-तीन गोलियाँ चलाई थीं, किन्तु निशाना खाली गया। तब हमला करने के लिए बाघ पीछा करने लगा। सन्यासी ने पूछा, ''बाघ को तुमने गोली क्यों मारी? क्या तुम उसको खाते हो''?' साहब ने कहा, 'नहीं, बाघ को हम लोग खाते नहीं हैं, जी को खुश करने के लिए उसका शिकार करते हैं। आपके इशारे से बाघ शान्त हो गया, फिर चला गया। जङ्गल के बाघ को आपने किस उपाय से वश में कर लिया? दया करके मुझे बतला दीजिए।' सन्यासी ने कहा, 'किसी तन्त्र-मन्त्र से नहीं, सिर्फ मुहब्बत

से। पशु, पक्षी, और कीट, पतंग, मनुष्य, सभी को एक प्रेम से ही वश में कर लिया जाता है। तुम्हारे भीतर हिंसा का भाव रहने से ही दूसरे भी तुम्हारी हिंसा करते हैं। हिंसा छोड़ देने पर साँप या बाघ कुछ नहीं करता।' यह सुनकर साहब को बड़ा अचम्भा हुआ। साहब के मन में न जाने क्या बात आई कि उन्होंने बहुत ही कातर होकर सन्यासी से आश्रय की प्रार्थना की। सन्यासी ने साहब को दीक्षा दी और घर जाकर साधन भजन करने के लिए कहा। साहब ने अपने स्थान पर पहुँचकर बावर्ची को विदा कर दिया। तब से वे ब्राह्मण के हाथ का बना निरामिष भोजन करते हैं। साधु-सन्यासी की खूब श्रद्धा भक्ति करते हैं। ढाका के बहुत से कृतविद्य व्यक्ति उनसे मिलने को जाते हैं। उनकी दशा देखने से सभी को अचम्भा होता है। पता नहीं, आजकल वे कहाँ पर हैं?

जहाँ पर हिंसा नहीं है वहाँ पर साँप और बाघ भी हिंसा नहीं करते। खाद्य-खादक सम्बन्धी वध दूसरी बात है। उसको ठीक-ठीक हिंसा नहीं कहते। कामाख्या में एक दिन अचलानन्द स्वामी एक जलाशय के पास बैठे हुए थे। वहाँ पर ब्राह्मण लोग पूजा पाठ कर रहे थे। इसी समय एक बाघ पानी पीने को आ गया। ब्राह्मण लोग उसके डर से पूजा-पाठ छोड़-छाड़कर भागने लगे। अचलानन्द स्वामी ने सबसे शान्त रहने के लिए कह कर समझाया- 'आप लोग ही तो कहा करते हैं कि कामाख्या में हिंसा नहीं है, फिर इतने क्यों डर रहे हैं? आप लोग तनिक भी न डरें। बेखटके अपना काम करते रहें।' स्वामी जी की बातें सुनकर ब्राह्मण लोग सशङ्क होकर अपना अपना पूजा-पाठ करने लगे। बाघ भी पानी पीकर चला गया।

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी :- विवेक, वैराग्य, श्रद्धा ओर मुमुक्षुता, इन चार साधनों से सम्पन्न हुए बिना तत्त्वज्ञान सम्बन्धी प्रश्न करने का किसी को अधिकार ही नहीं होता। उक्त अवस्थाओं को प्राप्त करके प्रश्न करने पर उत्तर के साथ-साथ ज्ञान भी हो जाता है। बिना ऐसा हुए, यदि जो कुछ मन में आ जाय वही उड़न छू पूछ लेने से उत्तर भी

उसी ढंग का होता है; कुछ भी लाभ नहीं होता। हृदय में सच्ची व्याकुलता हुए बिना, वस्तु के अभाव का प्रकृत ज्ञान हुए बिना, प्रश्न करना वैसा ही है जैसा कि बच्चों का बिना पैसा लिये ही बाजार में अच्छी-अच्छी चीजें देखकर भाव-ताव करना। उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। कई बार तो प्रश्न का कुछ भी उत्तर देने की आचार्य लोग आवश्यकता ही न समझते थे; और की तो बात क्या, ब्रह्मा तक से कह दिया था कि 'तप! तप! तप!' तपस्या करो, तपस्या करो, तपस्या करने से ही सब समझ लोगे।

❊ ॐ-हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- पहले समझ लेंगे तब करेंगे, यह न तो हमारे देश का भाव है और न सनातन धर्म का। हमारे शास्त्रकारों का उपदेश है 'पहले करो, फिर समझो।' सभी विषयों में कुछ तो सभी को स्वीकार के योग्य मानना ही पड़ता है। जैसे कि क के बाद ख और उसके बाद ग पढ़ना पड़ता है। इसमें पहले से ही यह पूछ बैठने से कि' ऐसा क्यों होता है' ? कभी शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती।

श्री गोस्वामीजी :- स्वार्थ ओर अभिमान से जो सेवा की जाती है वह दूसरे ही प्रकार की होती है। किन्तु जो सेवा दिल से की जाती है, वही तो असली सेवा है। ऐसी सेवा न तो चेष्टा करने से बन सकती है और न प्रत्येक व्यक्ति उसको कर ही सकता है।

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- ''आपने जितने नियम मुझे दिये हैं, उनका पालन करते रहने से कितने समय में सिद्ध हो जाऊँगा ?''

श्री गोस्वामीजी :- सिद्धि है क्या ? कुछ शक्तियों की प्राप्ति को ही सिद्धि समझते हो ? षड़ैश्वर्य तो अत्यन्त तुच्छ वस्तु है। कभी उसमें आसक्ति मत रखना। जैसे अध्यवसाय से साधन, भजन और चेष्टा कर रहे हो वैसे यदि ऐश्वर्य पाने के लिए करते रहो, तो एक वर्ष में ही बहुत सा ऐश्वर्य पा जाओगे। यदि एक वर्ष तक ही वीर्यधारण करके सत्य बोलो, सत्य का ही चिन्तन करो और सत्य व्यवहार करते रहो

तो बहुत ऐश्वर्य शक्ति मिल जायगी, किन्तु वह प्राकृत सिद्धि नहीं है। जब देह की सारी इन्द्रियाँ और अङ्ग प्रत्यङ्ग आदि हर दम अपने आप भगवान के नाम का जप करेंगे तभी समझना कि ठीक-ठीक सिद्धि प्राप्त हुई है। किसी एक विषय में लोभ या आसक्ति बनी रहने पर उक्त अवस्था की प्राप्ति नहीं हो सकती। सभी विषयों में सोलहों आने निर्लोभ और अनासक्त होने से ही काम सिद्ध होता है। यह दशा हो जाने पर ही सचमुच भगवान के नाम का स्वाद मिलता है। यह नाम की सिद्धि ही असली सिद्धि है।

शिष्य :- 'आपने जैसा बतला दिया है उस पर जो लोग चलते हैं और जो नहीं चलते हैं, उनमें क्या अन्तर है?'

श्री गोस्वामीजी :- जो लोग उपदेश के अनुसार चलते हैं उनके साथ जो एक लगाव (सम्बन्ध) रहता है उसको वे साफ-साफ समझ सकते हैं और जो उपदेश के अनुसार नहीं चलते उनमें वह कुछ समय तक दबा पड़ा रहता है।

शिष्य :- 'साधन के समय जिसको जैसा करने के लिए आपने कह दिया है वह यदि तदनुसार न कर सके अथवा उसके विपरीत आचरण करे तो उसका क्या होगा? और इन कारणों से क्या किसी का त्याग भी कर दिया जाता है?''

श्री गोस्वामीजी :- किसी का भी बिल्कुल त्याग नहीं कर दिया जाता; जिनको यह वस्तु मिल चुकी है उनके पास से वह नष्ट नहीं होती। समय पर सभी का सब ठीक हो जाता है।

शिष्य :- 'जो लोग साधन ले गये हैं, किन्तु जीवन में उनसे फिर कभी भेंट नहीं हुई है उन सभी को क्या आप पहचानते हैं?'

श्री गोस्वामीजी :- सभी के साथ भीतरी एक लगाव बना रहता है।

शिष्य :- ''भीतरी लगाव की बात नहीं कहता हूँ, बाहरी रूप में आप उन्हें पहचानते हैं या नहीं?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, पहचानता हूँ।

शिष्य :- 'तो क्या आपको उन लोगों के विषय में मन लगाकर जानना पड़ता है ?' (अर्थात जिस प्रकार पहले ऋषि मुनि किसी बात

को जानना चाहते थे तो ध्यान लगाकर उसको अवगत कर लेते थे उसी प्रकार ?)

श्री गोस्वामीजी :- मन लगाकर नहीं जानना पड़ता। प्रत्येक के जीवन का भला बुरा जो कुछ हो रहा होता है वह दिखाई देता है।

❋ ॐ–हरि ❋

शिष्य :- ''आपके प्रति संकोच का भाव दूर क्यों नहीं होता ?''

श्री गोस्वामीजी :- अपने आपको जैसा पापी समझते हैं वैसा ही मुझे भी समझिए। नन्द और यशोदा गोपाल को जैसा देखते थे उसी रूप मे आप मुझे देखें।

❋ ॐ–हरि ❋

शिष्य :- ''धर्म को प्रांप्त करने के लिए पहले किस-किस कार्य की चेष्टा करनी चाहिए ?''

श्री गोस्वामीजी :- बतलाता तो बहुत हूँ, किन्तु करते कब हो ? धर्नार्थियों को पहले ही शौच, सत्य, क्षमा और शान्ति इन चारों का अभ्यास करना चाहिए।

प्रश्न :- ''तो शौच क्या शरीर को शुद्ध रखना है ?''

श्री गोस्वामीजी :- हाँ, यही बात है। गृहत्यागी सन्यासियों के लिए शारीरिक शौच, ऊर्ध्वरिता होना है और गृहस्थों के लिए शौच है केवल ऋतुकाल में गमन करना। आन्तरिक शौच है 'सरलता'। ठीक-ठीक सरल होने पर ही अन्तर शुद्ध होता है।

'सत्य'- सच बोले, सचा व्यवहार करे और ऐसा ही सोचे-विचारे। असत्य का किसी प्रकार से संसर्ग न रखे।

'क्षमा'-मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़ा-मकोड़ा, वृक्ष, लता किसी से भी उद्वेग ग्रस्त न हो। इसका खूब ध्यान रक्खे।

'शान्ति'-चित्त को सदा सब बातों में सन्तुष्ट रखे, एक ही प्रकार का रखे। न तो किसी बात की उपेक्षा करे और न अपेक्षा ही। इन नियमों का दृढ़ता से पालन करने की चेष्टा करे।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- धर्म बहुत ही सूक्ष्म वस्तु है। न तो बाहरी वेश भूषा धर्म है और न बाहरी काम काज। अभी तो स्वयं भले बनने और दूसरों का भला करने को ही धर्म समझो। एकान्त में, अंधेरे में अकेले बैठकर आत्मानुसन्धान करके देखो कि अपने भीतर दोष तो नहीं है। **अपने नजदीक स्वयं भला हो जाना ही उत्तम है।** झूठी बात, कुदृष्टिपात, हिंसा (डाह) और विद्वेष आदि जिन-जिन को दोष समझो, उनको पहले ही छोड़ दो। फिर त्रिताप से अतीत हो जाने पर समझ लोगे कि धर्म क्या चीज है? तापमुक्त हुए बिना वास्तविक धर्म का पता नहीं लग सकता। भगवान ही धर्म हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- ''मायिक विषय के सम्बन्ध से कब तक जलते-भुनते रहना पड़ता है?''

श्री गोस्वामीजी :- न जाने कितने ज्ञानी, योगी और बड़े-बड़े जानकार माया के चक्र में पड़कर बिल्कुल अस्थिर हो जाते हैं। नहीं कहा जा सकता कि किस समय, किसके भीतर, किस छिद्र में होकर, पाप प्रवेश कर लेता है? इसीलिए सदा भगवान को ही लिये रहना पड़ता है। सत्सङ्ग, सदालाप, सदनुष्ठान और सच्चिन्तन में प्रात:काल से लेकर सो रहने तक बिता देना पड़ता है; सदा मन ही मन प्रार्थना करनी पड़ती है-भगवान्! मुझे अपना लीजिए। मैं तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ भी न चाहूँ।' दिन रात इस प्रकार बिताया जा सके तो भगवान् की दया से धीरे-धीरे माया-मोह से छुटकारा मिल जाता है। बिना उनकी कृपा के हजार सिर पटकने पर भी कुछ नहीं हो सकता। उनकी तनिक भी कृपा होते ही पल भर में सब कुछ हो सकता है।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- प्रकृति को समझकर मनुष्य के साथ व्यवहार करना चाहिए। यदि कोई अपने स्वभाव के अनुसार चले और इसमें किसी दूसरे का कुछ नुकसान हो जाय किन्तु यदि उसका अभिप्राय

किसी की हानि करने का न हो तो शान्ति के साथ उसको समझा देना चाहिए। जहाँ तक बन सके, उसके भाव में हिलमिल कर उसका परिवर्तन करने की चेष्टा करनी चाहिए और यदि सचमुच ही किसी दुरभिसन्धि से, अपना मतलब गाँठने के लिए, कोई कुछ अत्याचार करे तब तो उसका शासन करना चाहिए। कई बार अच्छी नीयत से मनुष्य काम करता है किन्तु फिर भी किसी की हानि हो जाती है, तो इसके लिए वह दोषी नहीं हो सकता। भूल चूक तो मनुष्य से होती ही रहती है। समय आने पर वह उसको अपने आप समझ लेता है। सभी कामों को बड़े धैर्य से करना चाहिए। धैर्य न होने से ही तो सब प्रकार के विरोध होते हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- 'जिन नियमों का प्रतिपालन करते रहने के लिए आपने कहा है उनका प्रतिपालन ठीक-ठीक नहीं कर पाता हूँ।''

श्री गोस्वामीजी :- चेष्टा करते रहो। इसकी परवा मत करो कि पालन कर पाते हो कि नहीं कर पाते। ब्रह्मचर्य आश्रम की समस्त व्यवस्था को क्या लोग सहज में कर सकते हैं? इसी से तो बारह वर्ष का समय रक्खा गया है। बारह वर्ष की चेष्टा से धीरे-धीरे सब ठीक हो जाता है। दो-चार बार चेष्टा करने पर सफलता न हो तो हाथ पैर न फैला देना चाहिए। जब तक सफलता न मिले तब तक चेष्टा करते रहना चाहिए।

शिष्य :- ''जिन नियमों के प्रतिपालन और निषेध से बचने के लिए आपने बतला दिया है उनका प्रतिपालन न कर पाऊँ तो आप मुझे अपराधी तो न मानेंगे?''

श्री गोस्वामीजी :- बिल्कुल ठीक-ठीक चल सकोगे? तब तो फिर सिद्ध ही हो गये। जितना बने, उतना किये जाओ। चेष्टा करके भी न कर सको तो इसमें तनिक भी अपराध न होगा। बात यह है कि जान बूझकर कोई अनियम न होने पावे। अकस्मात् कुछ बन पड़े तो उसको अपना किया हुआ क्यों समझते हो? मैंने किया, यह समझना ही अपराध है। सब कुछ भगवान् के ऊपर छोड़ देना चाहिए। वे ही तो

सब कुछ करते हैं, वे ही सब करा लेते हैं, ऐसा समझने में ही शान्ति है।

श्री गोस्वामीजी :- मैं तो बाहरी काम-काज और नाम के जप को एकसा समझता हूँ। सभी तो कर्म ही हैं। लक्ष्य को स्थिर रखने में ही सब कुछ है। बात केवल कर्म करने को लेकर के ही है। किसे किस कर्म से किस वस्तु की प्राप्ति होती है, वह कौन बतला सकता है? लक्ष्य को स्थिर रखकर चाहे कथरी सियो; चाहे नाम का जप करो, एक ही बात है। जीवन की गति किस ओर है? जब तक यह ठीक नहीं हो जाता, तब तक ऐसा ही करना पड़ता है। अब तक तुम्हारे जीवन की दिशा ठीक नहीं हुई है। जब वह निश्चित हो जाय तब एक ढंग का कर्म करने लगना। नहीं कहा जा सकता है कि जीवन की गति ठीक होने के लिए यह जीवन किस ओर, किस मार्ग पर जावेगा? सभी के लिए एक ही बंधा मार्ग नहीं है। अनेक मार्गों पर चलने से मनुष्य को लक्ष्यवस्तु प्राप्त होती है। हाथ पर हाथ रक्खे न बैठा रहे; कर्म करते-करते अन्त में एक पर जा पहुँचोगे।

❊ ॐ-हरि ❊

मठ, आश्रमों में जो सब धर्म अनुष्ठान हो रहे है व संकीर्तन की व्यवस्था है, अधिकतर वह प्राणहीन है, सब बाह्य है, भीतर का आकर्षण या व्याकुलता नहीं है, करना है इसलिए करते हैं । इससे सामयिक एक अवस्था आती है, स्थायी अवस्था नहीं आती । प्राणों की व्याकुलता छोड़ कर कोई कार्य सफल नहीं होता ।

❊ ॐ-हरि ❊

जिस प्रकार गाय को यदि अन्यत्र ले जाना हो तो ग्वाला उसके बछड़े को गोद में लेकर चलता है, इससे गाय दूसरी ओर न देखते हुए, बछड़े के पीछे-पीछे चलने लगती है। यदि भगवान को पाने की इच्छा हो तो इसी प्रकार उनके चरणाश्रित भगवद्-भक्तों का आश्रय ग्रहण करो। जो इस तरह भक्तों का आश्रय लेकर आत्मसमर्पण करता है, भगवान गाय के समान उनके पीछे-पीछे रहते हैं।

भगवान् प्रत्येक जीव को समय विशेष पर उन्नति करने का सौभाग्य सुयोग देते हैं परन्तु कोई उस सुयोग को पकड़ नहीं पाता, अभी काल प्रतिकूल है, बिना सत्संग के मोह नहीं जाता है ।

* ॐ–हरि *

श्रीक्षेत्र जगन्नाथपुरी में उपवास नहीं होता है, यहाँ उपवास करने से अपराध होता है, क्षेत्र की मर्यादा भंग होती है ।

* ॐ–हरि *

साधारणत: तो कलियुग में प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते, केवल परोक्ष रूप से दर्शन होते हैं किन्तु सद्गुरु कृपा से असंभव भी संभव हो जाता है । महाप्रभु के समय में उनके भक्त भी इस प्रकार से नहीं देख पाते थे, केवल नित्यानन्द प्रभु ही महाप्रभु को प्रत्यक्ष देख पाते थे ।

* ॐ–हरि *

हिंसा, द्वेष रहते उनकी कृपा नहीं पाई जा सकती है। सरल विश्वासी लोग ही धर्म लाभ करने के अधिकारी हैं ।

* ॐ–हरि *

कलह, विवाद करना, धर्म स्थानों में निषेध है

* ॐ–हरि *

इस असार संसार में एकमात्र सार यह महाप्रभुप्रदत्त नाम ब्रह्म और सद्गुरुप्रदत्त शक्तिपूर्ण यह सब उपदेश वर्तमान में कलि जीव के मंगल हेतु दिये गए हैं । जिनकी सद्गुरु दीक्षा नहीं हुई है वे नामब्रह्म का जप करें जो निम्नानुसार है :-

''हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥''

✲ ॐ–हरि ✲

काल के प्रभाव से लोग सन्त साधकों पर विश्वासहीन होते जा रहे हैं वे सत्य को मिथ्या बोलकर त्याग कर रहे हैं और मिथ्या को सत्य बोलकर ग्रहण कर रहे हैं । अर्थ लालसा की तेजी से वृद्धि हो रही है, धर्म के स्थान पर अधर्म का खेल चल रहा है । **इसका प्रधान कारण अपव्यय, विलासिता और भोग लालसा है** । साधन भजन के अभाव में लोग षड़ रिपुओं के वशीभूत होकर अधर्म में पतित हो रहे हैं । महाप्रभु के अनुगत होकर सद्गुरुप्रदत्त नाम साधन करने से वहाँ कलि का अधिकार नहीं रहता, **किन्तु अधिकांश लोगों का अहं भाव इतना प्रबल है कि वे कोई सत् उपदेश सुनना ही नहीं चाहते** ।

✲ ॐ–हरि ✲

यदि एक व्यक्ति भी भगवद् प्राप्ति के लिये तैयार होता है तो महात्मागण आनन्दित होते हैं ।

✲ ॐ–हरि ✲

कलि के प्रभाव से सत्य धर्म को मनुष्य किसी भी प्रकार से ग्रहण नहीं कर पा रहा है । सनातन हिन्दू धर्म का लोप करने की तरह-तरह से चेष्टा करी जा रही है । जिस देश की सती नारियाँ पति की मृत्यु होने पर उसके साथ ही प्राण त्याग देती थीं, कोई-कोई आजीवन कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं, जिस देश की विधवाओं का आदर्श गौरव की वस्तु था, आज इसी देश के लोग पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से उनका (पश्चिम) अनुकरण कर रहे हैं । अब सतीत्व नाम की कोई वस्तु नहीं रहेगी। **कलि के अनुचरों के हाथ शासन की बागडोर है।** ऐसे कठिन समय में **जो धर्म की रक्षा करेगा केवल वह ही धर्म द्वारा रक्षित होगा** । किन्तु काल का प्रभाव ऐसा है कि लोग इसे समझ नहीं पा रहे हैं। **आजकल चारों तरफ जो तरह–तरह के धर्म सम्प्रदाय बन रहे हैं उनमें ज्यादातर स्वार्थ से भरे हैं और उनका उद्देश्य केवल अर्थ उपार्जन है** । इस संकट के समय में सिर्फ सनातन धर्म का आश्रय करके जो लोग महाप्रभु के निर्देशानुसार चल सकेंगे वे ही रक्षा पाएंगे ।

श्री गोस्वामीजी :- तीर्थ-पर्यटन से विशेष कल्याण होता है। दीक्षा लेकर तीर्थ-पर्यटन युवास्था में ही करना चाहिए। नहीं तो आगे नहीं हो पाता, बाधाएँ आती हैं। पर्यटन काल में निम्नदृष्टि होकर, प्रत्येक पग पर इष्टमंत्र स्मरण करते हुए चलना चाहिए। रोज तीन चार कोस या सुबह दस बजे तक चलकर किसी स्थान पर अड्डा बनाना चाहिए। वहाँ स्नान पूजा सम्पन्न करके सुविधा हो तो किसी देवालय में प्रसाद पा सकते हो या किसी ब्राह्मण का बनाया भोजन लिया जा सकता है, किन्तु भिक्षान्न स्वयं पकाकर खाना सर्वश्रेष्ठ है। वह कभी अपवित्र नहीं होता, परम पवित्र होता है। शास्त्रों ने इसे अमृत कहा है। आहार के बाद विश्राम करके रात साधन भजन में व्यतीत करना चाहिए। पर्यटन काल में पैसे कौड़ी साथ नहीं रखना चाहिए। कोई देना चाहे तो भी नहीं लेना चाहिए। कोई कहीं जाने की टिकिट दे, तो ले सकते हो। साथ में जल का पात्र रखो। लकड़ी का करंग हो तो निरापद है। पर्यटन में एक कम्बल,कौपीन, बहिर्वास, जलपात्र और एक गीता रखना यथेष्ट है। किसी दल मे न मिलकर, एक व्यक्ति के साथ या अकेले चलना ही सबसे अच्छा है। साधुओं की जमात के साथ चलने पर उनके नियमों से बंध जाना पड़ता है। इसमें असुविधा होती है।

❊ ॐ–हरि ❊

तीर्थ पर्यटन काल में राह में आने वाले मंदिर, देवालय आएँ तो दर्शन करते जाना चाहिए। कहीं बड़ा ही अच्छा लगे तो बैठ जाना चाहिए। कुछ समय वहीं साधन-भजन करना चाहिए। पर्यटन काल में एक रात से अधिक समय तक कहीं नहीं ठहरना चाहिए। तीर्थ-स्थान में पहुँचकर सर्वप्रथम तीर्थ गुरु बनाने की व्यवस्था है। पंडों से तीर्थ के कर्तव्य आदि जानकर तद्नुसार कार्य करना चाहिए। किसी तीर्थ स्थान में संयम से रहकर नियम निष्ठा पूर्वक साधन भजन करने पर वहाँ के तीर्थ-देवता की प्रसन्नता लाभ की जा सकती है। केवल नियम रक्षा के लिए तीन रात वास करने से तीर्थ महात्म्य नहीं समझा जा सकता। तीर्थ यात्रा के समय कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध के द्वारा साधक का साधनलब्ध पुण्य नष्ट हो जाता है। हिंसा, दम्भ, परनिन्दा का तीर्थ में विषवत् त्याग करना चाहिए। चित्त प्रसन्न रखकर सत्य का अवलम्बन कर

चलना चाहिए। तीर्थ यात्रा के समय इन नियमों का सावधानी पूर्वक पालन जरुरी है। इस प्रकार सारा भारतवर्ष परिभ्रमण कर आने में बारह वर्ष लगते हैं। इससे जीवन अच्छी तरह प्रस्तुत हो जाता है। विधिपूर्वक तीर्थ-पर्यटन करने पर संयम सहज ही अभ्यस्त हो जाता है और कई तरह से कल्याण होता है।

जब तीर्थ पर्यटन की प्रवृति न रह जाए, जब स्वयं का हृदय ही पवित्र तीर्थ सा लगे, तब तीर्थ पर्यटन का प्रयोजन नहीं रह जाता। तब किसी भी स्थान पर बैठ जाओ।

श्री गोस्वामीजी :- युवावस्था में तीर्थयात्रा न करो तो फिर नहीं होती। जो कुछ करना हो इसी समय करना चाहिए। पर्यटन करते समय सदा माथा झुकाकर, नीची दृष्टि करके चले। प्रतिदिन तीन चार कोस अथवा दस बजे तक चलकर किसी स्थान में ठहरकर विश्राम कर ले। वहाँ भिक्षा माँगकर अपने हाथ से रसोई बना लेना अच्छा है। पर्यटन करते समय धातु वस्तु साथ न रक्खे। धन तो बिल्कुल भी नहीं। कोई टिकट कटा दे तो दूसरी बात है। पानी पीने के लिए लकड़ी का पात्र या तूँवा अच्छा है। कौपीन, वहिर्वास, कम्बल और पढ़ने के लिए दो-एक पुस्तकें साथ रक्खे। बिना साथी के अकेले चलने से अधिक लाभ है। किसी मन्दिर में प्रसाद मिल जाय तो भिक्षा और रसोई बनाना अनावश्यक है।

* ॐ-हरि *

शिष्य :- कोई मुझे विद्वेष पूर्वक झूठा दोषारोपण करे तो मैं सह नहीं सकता।

श्री गोस्वामीजी :- जवाब देकर भी क्या लाभ ? झगड़ा बढ़ेगा इससे खुद की ही हानि होगी। यह सब विचार करके चलना चाहिए।

1. सर्वदा सत्य का प्रतिपालन करो। मन में जो यथार्थ प्रतीति होगी, उसे सत्य मानकर ग्रहण करना होगा। सत्य रक्षा करने के लिए मिथ्या कल्पना, वृथाचिन्ता का परित्याग करना होगा अन्यथा सत्य नहीं बोला जा सकता। बिना पूछे

जाने पर बात नहीं करना चाहिये। सदा मितभाषी बने रहो। किसी की निन्दा न करो। परनिन्दा महापाप है, नरहत्या से भी बड़ा पाप है।

2. वीर्य धारण करोगे। यद्यपि यह शारीरिक तप है तथापि इसका विशेष प्रयोजन है। वीर्य रक्षा बिना सत्य प्रतिपालन नहीं हो पाता। इससे साधन में विशेष सहायता मिलती है। गृहस्थगण शास्त्र अनुसार ऋतुकाल में स्त्री सहवास कर सकते हैं। बिना कारण वीर्य नष्ट करने वाले पितृ-मातृघाती, आत्मघाती तथा ब्रह्मघाती होते हैं। यह शरीर पिता माता के वीर्य शोणित से उत्पन्न है। केवल पितृऋण से उन्मुक्त होने के लिए ही वीर्य त्याग कर्तव्य है। सन्यासी गण किसी भी प्रकार वीर्य नष्ट न करें। वीर्य रक्षा द्वारा मन की एकाग्रता, शरीर की स्वस्थता प्राप्त होती है। वीर्य रक्षा बिना साधन में उत्साह नहीं रह जाता। साधन की उपकारिता भी अनुभव नहीं की जा सकती।

3. श्वास-प्रश्वास में नाम करने का प्रयत्न करो। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास जैसे लेते और छोड़ते हैं उस ओर ध्यान रखकर सदा नाम जप करो।

4. मांस, जूठा आहार (उच्छिष्ट), मादक द्रव्य पूर्णतः त्यागना होगा। कठिन रोग में सुचिकित्सक के कहने पर केवल औषध रुप में आमिष लिया जा सकता है। प्रयोजन पूर्ण होते ही पुनः छोड़ देना होगा। उच्छिष्ट सदा त्याज्य है। माता पिता का भुक्तावशिष्ट जूठा नहीं कहलाता। उसे प्रसाद के रुप में ग्रहण करो तो उपकार होगा। उच्छिष्ट ज्ञान हो तो वह त्याज्य है। पाँच वर्ष से अधिक आयु के बालक का झूठन भी उच्छिष्ट है। जिन शिशुओं को भले बुरे का ज्ञान ही नहीं हो पाया, उनके उच्छिष्ट से अनिष्ट नहीं होता।

5. किसी भी दल या सम्प्रदाय में बद्ध मत होना। जहाँ भी ईश्वर का नाम या धर्मानुष्ठान हो वहीं भक्ति पूर्वक नमन करना चाहिए। सभी धर्मार्थियों का आदर करो। किसी

सम्प्रदाय का अनादर मत करो। हमारा कोई सम्प्रदाय या दल नहीं है।

6. स्त्री जाति से सदा सावधान रहना चाहिए। उनके साथ एक कमरे में साधन मत करो। यदि स्थानाभाव हो तो एक पर्दे से आड़ कर लेना चाहिए। निर्जन में किसी स्त्री के साथ मत बैठना।

7. यथा साध्य परोपकार करो। गृहस्थ गण आदर सहित अतिथि सत्कार करें। गृहस्थ को पशु पक्षी, कीट पतंग, वृक्ष लता सभी को तृप्त करना चाहिए। किसी प्रकार हिंसा मत करो। एक पत्ता भी बिना प्रयोजन के मत तोड़ो। किसी के मन में अकारण दु:ख मत पहुँचाओ।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- अहिंसा, सत्य तथा इन्द्रिय निग्रह-ये तीन ही मानव के यथार्थ धर्म हैं। ये प्राप्त न हों तो किसी भी उच्च अवस्था का अधिकारी नहीं बना जा सकता।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- एक दिन में सब कुछ नही होता। प्रणाली से चलो, समय पर अवस्था प्राप्त होगी। राह चलते हुए गन्तव्य के लिए उद्विग्न होने से क्या लाभ? एक ही दिन में सत्यवादी नहीं बना जा सकता। यह क्या इतना सहज है? बात करते समय इसी प्रकार विचार आने पर ही सच बोला जा सकता है। यही विधि है। किसी अवस्था को प्राप्त करने के लिए व्यग्र मत हो। प्रणाली अनुसार चलो, तुम्हारा कर्तव्य यही है। अवस्था जब होने की होगी, होगी, उसके लिए उद्वेग निरर्थक है, काम करते जाओ बस।

❊ ॐ–हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- उपाय सभी ऋषि-मुनिगण बताकर गए हैं। रोज पंचयज्ञ व पंचसूना करने से, होने वाले पाप का दैनिक प्रायश्चित होता

है। देह पवित्र व चित्त निर्मल होता है। पंचसूना किसे कहते हैं ? चूल्हा, पानी का घड़ा, ओखली, झाड़ू तथा सिलबट्टा इन पाँचों से जीव हत्या अनिवार्य रूप से हो जाती है। अत: इन पाँचों की प्रतिदिन पूजा करनी चाहिए। चूल्हा लीपकर, ओखली-घड़े साफ कर, सिलबट्टा आदि धोकर उन्हें फूल, चंदन जल चढ़ाकर नमस्कार करना चाहिए। यह हर गृहस्थ का नित्य कर्तव्य है। उन्हें पंचयज्ञ भी रोज करना चाहिए। यह सब लुप्त हो जाने से ही सारे अनर्थ हो रहे हैं।

श्री गोस्वामीजी :- अपने भीतर के दोषों को जिस प्रकार देखते हो, उसी प्रकार अपनी उन्नति भी कितनी हुई, देखा करो। अपनी यथार्थ उन्नति न देखना भगवान के प्रति अकृतघ्नता होती है। इससे साधन भजन में भी उत्साह नहीं रह जाता और अविश्वास आ जाता है। सदा यह विचार करके चलना चाहिए।

शिष्य :- अपनी उन्नति देखना तो अनिष्टकारी होता है।

श्री गोस्वामीजी :- नहीं-नहीं, यह बिना देखे काम कैसे चलेगा ? अभिमान अनिष्टजनक है। रिपु के हाथ मनुष्य यदि एक ही दिन में मुक्ति पा भी लें तो क्या लाभ ? एक उत्तम वस्तु को न पाकर वह रहेगा क्या लेकर ? वह पागल हो जाएगा।

शिष्य :- न्यास करने से होता क्या है ?

श्री गोस्वामीजी :- करते-करते क्रमश: जान जाओगे। यह सब आजकल कोई नहीं जानता, न तो करता है। कोई श्रद्धापूर्वक करता नहीं। अत: जानने वाले भी शिक्षा नहीं देते। इन सबके करने की क्या उपयोगिता है, करके ही तो जाना जा सकता है। शिक्षा देने के तो कितने ही विषय हैं। सभी लुप्त होते जा रहे हैं। एक भी व्यक्ति यदि श्रद्धापूर्वक करता तो सिखाने की कितनी ही बातें हैं। बड़ा दु:ख होता है कि यह सब सिखाने के लिए कोई उपयुक्त पात्र न मिला।

*** ॐ-हरि ***

योग बड़ी कठिन बात है। हमारा यह पथ योग भी नहीं कहलाता, उससे भी श्रेष्ठ है। विष्णु के नाभिपद्म से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने जो

सर्वप्रथम साधन किया था, 'तप-तप' यह सुनकर उन्होंने जिस प्रकार तत्त्व ज्ञान के लिए यत्न किया था, हमारा भी साधन वैसा ही है। हमारे साधन में सब कुछ भीतर की ही क्रिया है, बाहर कुछ भी नहीं। सर्वदा शम, संतोष, विचार तथा सत्संग चाहिये।

*** ॐ-हरि ***

1 - मन की साम्य अवस्था शम कहलाती है। निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान, सुख-दु:ख, इष्ट-अनिष्ट सभी अवस्थाओं में मन एक ही प्रकार अचल, अटल रहेगा। बाहर यम-नियम के अभ्यास तथा वैराग्य से यह सफल होगा।

2 - सदा संतुष्ट चित्त रहो। किसी भी कारण से मन में उद्वेग या अशांति प्रवेश न करे। इसलिए सदा सावधान रहो। अशांति नरक है। चित्त प्रफुल्ल न रहे तो कोई भी काम नहीं बनता।

3 - सभी अवस्थाओं में सदा अच्छा-बुरा, सत-असत का विचार होना चाहिये। बातचीत कामकाज़ कुछ भी सत-उद्देश्य के बिना (प्रयोजन के बिना) नहीं करनी चाहिये। भगवान को लक्ष्य बनाकर जो भी करो, वह सत् तथा उन्हें छोड़कर जो भी करो, वह असत् है। प्रत्येक कार्य में ऐसा विचार करके चलने से चिन्ता ही नहीं रह जाती। इसी से सब मिल जाता है।

4 - प्रतिदिन कुछ समय के लिए सत्संग करना चाहिये। भगवान सत् हैं, भगवत् संग ही सत्संग है। भगवान के आश्रित साधु संत का संग भी सत्संग हैं। वे कैसे समय व्यतीत करते हैं, उनके कार्यकलाप, आचरण किस प्रकार हैं, यह सब श्रद्धा सहित देखना चाहिये। प्रयोजन हो तो उनसे सत्प्रसंग की बातें करो। रोज कुछ समय तक धर्मग्रन्थ का पाठ करो। ऋषि-प्रणीत शास्त्र-पुराण पाठ करना भी सत्संग है, इससे ऋषियों का संग करना होता है। इनके साथ और चार नियमों की रक्षा करना कर्तव्य है

- स्वाध्याय, तपस्या, शौच तथा दान।

1 - स्वाध्याय केवल अध्ययन नहीं है। गुरुप्रदत्त इष्टमंत्र का श्वास प्रश्वास में जप ही वस्तुत: स्वाध्याय है। नाम करते करते अवसाद आ जाये तो कुछ देर तक धर्म ग्रन्थ पाठ कर लिया करो।

2 - तप का अभ्यास भी अभी से खूब करो। शारीरिक, मानसिक तथा अध्यात्मिक जितने प्रकार के तप हैं, किसी से तुम्हारा चित्त विचलित न हो। त्रिताप की ज्वाला बड़ी ज्वाला है। शीत-उष्ण, सुख-दु:ख, मान अपमान, निन्दा-प्रशंसा आदि में मन की अवस्था एक जैसी रहे। धीरे-धीरे यही अभ्यास करो। सभी अवस्था में धैर्य ही तपस्या है।

3 - शुचि का अर्थ है, हर दशा में, भीतर व बाहर की पवित्रता। बाहर जैसे पवित्र रहोगे, मन को भी निर्मल रखने का यत्न करो। बाह्य पवित्रता विशेष प्रयोजनीय है, शरीर पवित्र न हो तो अन्त:करण शुद्ध नहीं होता। चित्त शुद्ध न हो तो ''नाम'' में यथार्थ रुचि,भगवान में श्रद्धा-भक्ति नहीं होती।

4 - प्रतिदिन कुछ दान करना चाहिये। दया, सहानुभूति से ही वास्तविक दान होता है। प्रतिदिन किसी न किसी के कष्ट दूर करने का यत्न करो। कुछ न कर सको तो दो मीठे-बोल बोलना, यह भी दान है। प्रतिदिन इन विषयों में ध्यान देकर चलो तो कोई चिंता की बात न रह जाएगी।

❊ ॐ-हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- अर्थ संचय न करो। कभी कोई अभाव नहीं रह जाएगा। भगवान ही सब चला लेंगे। ब्रह्मचर्य आश्रम में अर्थसंचय तो दूर, उसका स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। यदि इस प्रकार रहो तो अपने आप जो कुछ प्रयोजन हो, जुटता जाएगा। कोई अभाव न रहेगा। अर्थ संचय

करने पर धर्म नहीं होता। अर्थ ऐसा बांध देता है कि ध्यान धारणा के समय भी अर्थ चिंता ही आती है। इससे सब कुछ नष्ट हो जाता है। हाथ में जो भी आए तभी खर्च कर देना चाहिए। तो फिर ऊपरवाला फिर देगा। जो मिले, दोनों हाथों से खुलकर बाँट दो। देखना, अशेष आता जाएगा। अर्थ हाथ में रहते भगवान पर निर्भरता नहीं आ पाती।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- यदि कुछ पाना चाहो तो चरणों में दो और मुझे कुछ देना चाहो तो मेरे मस्तक पर दो।

✻ ॐ–हरि ✻

प्रश्न :- कितने समय तक हमें यंत्रणा भोगनी पड़ेगी ?

श्री गोस्वामीजी :- यह कहा नहीं जा सकता। मुझे तो अभी भी परीक्षा करने आते हैं। उस दिन अचानक देखा कमरे में चार स्त्रियाँ हैं, मेरी वे नाना प्रकार से परीक्षा करने लगी। जब किसी प्रकार से सफल न हो सकीं, तो दो कलशों में मोहरें रखकर बोलीं - आप यह ग्रहण कीजिए। मैंने कहा-इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। तब वे बोलीं - हमें शिष्या बना लो। मैंने कहा - तुम कौन हो ? वे बोलीं - हम पतिता नारियाँ हैं। हमारा उद्धार कीजिए। मैंने कहा - सिर के बाल मुड़वाकर, अलंकार त्याग कर, छिन्नवस्त्र पहनकर आओ। यह सुनकर वे हँसकर बोली - कितने समय तक हमारी चरण सेवा की, अब पहचान भी नहीं रहे हो ? अच्छी बात है, तुम्हारा कल्याण हो। हम माया की दासियाँ हैं। हमें आशीर्वाद दो। यह कहकर वे चली गई।

✻ ॐ–हरि ✻

वाणी, मन या चक्षु - इन्द्रियों द्वारा उस आत्मा की उपलब्धि नहीं की जा सकती। केवल मात्र आत्मनिष्ठ गुरु से ही इन्हें प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा अन्यत्र इन्हें पाया नहीं जा सकता। मनुष्य तुच्छ कीट है। उसका यह अहंकार कि वह भूमा ईश्वर को जानेगा ? कभी नहीं। मनुष्य के ज्ञान द्वारा ईश्वर को जानना तो दूर की बात, अपने शरीर को छोड़, आत्मा तक को नहीं जाना जा सकता।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- गुरु जो मंत्र दें, वह कहीं प्रकट नहीं करना चाहिये। प्रकट करने पर उसकी शक्ति का ह्रास हो जाता है। जमीन के नीचे जैसे बीज रहता है, इष्टमंत्र को वैसे ही हृदय में गोपनीय रखना चाहिये, दूसरे न जान पाएँ।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- वीर्य रक्षा न होने तक मौन होना ठीक नहीं, इस अवस्था में मौन होने पर दिमाग फिर जाता है। किसी किसी को पथरी रोग भी हो जाता है। मौन न होकर वाक्संयम करो। प्रतिष्ठा या अनुकरण करने में कई लोग मरते हैं।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य :- मैं तो कुछ भी नहीं कर सकता। धर्मलाभ कैसे होगा?

श्री गोस्वामीजी :- जीवन को एक निर्दिष्ट नियम में अभ्यस्त कर लेना चाहिये। प्रतिदिन थोड़े समय के लिए साधन करना अवश्य कर्तव्य है। अच्छा न लगे तो भी औषधि निगलने की भाँति करो, क्रमशः रुचि आयेगी। प्रातःकाल उठकर स्नान करके एक घंटा प्राणायाम, नाम जप आदि करो। फिर एक घंटा धर्मग्रन्थ पाठ एवं पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, कीट-पतंगों की सेवा। पास में दुःखी व्यक्ति हों तो उनकी देखरेख करो। आहार के बाद सोना ठीक नहीं, दिवा निद्रा से बुद्धि नाश और क्षीण होती है। थोड़ा विश्राम करके अध्ययन करना चाहिये। दोपहर के बाद जरा भ्रमण, संध्या को नाम गान, प्राणायाम तथा नामजप आदि। इसके बाद परिमित आहार करके शयन करो। यह अभ्यास हो जाए तो धर्म लाभ सहज ही होगा।

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- **मैं जो कहूँ वही यदि कर लो तब तो सिद्ध ही** हो गए। कितनी बार कहूँ - **जहाँ तक कर सको करते जाओ, जो न** कर सको उसके लिए दुःखी **मत होओ। मन में जानो ऐसी कोई शक्ति**

तुम्हें चालित कर रही है, जिसमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं, कोई अपराध भी नहीं।

✽ ॐ–हरि ✽

श्री गोस्वामीजी :- हमारे इस साधन में किसी प्रकार की कल्पना नहीं है। भगवान के रूप अनंत हैं। किसके सामने किस रूप में कब प्रकट होंगे, कौन कह सकता है ? भगवान का नाम जप करो। नाम करते-करते जिस रूप में वे प्रकट हों उसे पकड़कर चलो। पहले से किसी रूप की कल्पना नहीं करनी चाहिये। भगवान के रूपों का कोई अन्त नहीं। किसके सामने कब कौन से रूप में प्रकट होंगे, कोई नहीं बता सकता। जब जिस रूप में प्रकट हों, सदा भक्ति करो। किन्तु किसी भी रूप में बंध मत जाना। नाम जप करते हुए उनके अनंत रूप प्रकट होंगे। केवल एक ही रूप लेकर चलने से क्यों चलेगा ? भगवान को कौन देख पाता है ? गुरु ही भगवान है। नाम करते हुए गुरु के भीतर से ही भगवान के अनन्त रूप, अनन्त विभूतियाँ प्रकट होती रहती हैं।

✽ ॐ–हरि ✽

शिष्य :- ब्राह्मण के लिए संध्या का नितांत प्रयोजन है। संध्यादि करो उपकार पाओगे। संध्या करने पर इष्ट-नाम-जप का ही फल होगा।

✽ ॐ–हरि ✽

प्रश्न :- भक्ति किस प्रकार प्राप्त होती है, इसकी रक्षा किस प्रकार की जा सकती है ?

श्री गोस्वामीजी :- ''भक्ति साध्य-साधना से नहीं आती। जिसे भक्ति भाव आ जाय वही धन्य है। भक्ति में विचार नहीं रह जाता। पुत्र धूलसना हो या साफ सुथरा हो, पिता उसे देखते ही तुरंत गोद में उठा लेते हैं। पुत्र होने के पहले अपत्य स्नेह कैसा होता है, कोई समझ नहीं पाता। भक्ति अहैतुकी है, अच्छे बुरे का विचार नहीं करती। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य-ये तीनों वृद्ध थे। भक्ति देवी वृन्दावन जाकर युवती हो गई। भक्ति को कृपण के धन के समान गुप्त रखना चाहिये, शास्त्रकारों ने भी उसे युवती के स्तन के समान तुलना दी है। बालिका खुले बदन घूमती फिरती

है। युवती होने पर स्तन वस्त्र द्वारा आच्छादित रखती है। स्वामी के सिवा पिता-माता, गुरुजन भी उसे नहीं देख पाते। भक्ति को भी ठीक उसी प्रकार भगवान के सिवा अन्य सभी के पास गोपनीय एवं सावधानी पूर्वक रक्षणीया जानना चाहिये। पहले-पहल जब भाव का आरंभ हुआ, जरा आँखों से पानी गिरने लगा तो सोचा कि लोग देखें। बाद में देखता हूँ, इसे कैसे गोपनीय रखूँ। हृदय के एकांत कोने में इसे छुपाने की इच्छा होती है। भक्ति गोपनीयता है।''

* ॐ-हरि *

शिष्य :- क्या एकादशी व्रत करने से यथार्थ ही कोई फल मिलता है?

श्री गोस्वामीजी :- ''ठीक-ठीक एकादशी पालन कर सकने से फल मिलता है। जिसमें एकादशी के पहले दिन संयम रखना पड़ता है। फिर एकादशी के दिन निर्जला उपवास रहना पड़ता है। द्वादशी के दिन पारण करना पड़ता है। शुरुआत में इस प्रकार एकादशी करने में कष्ट बोध होता है। प्रथम तो बहुत दिनों के मलेरिया आदि ज्वरों में तथा कई अन्य रोगों में लाभ मिलता है। द्वितीयत: मन के साथ शरीर एवं शरीर के साथ तिथि नक्षत्रों का योग रहने से - एकादशी में नाम, साधन, भजन करने में मन लगाया जा सकता है। एकादशी के दिन कुछ लेना ही है, तो वृक्ष से फल नहीं तोड़ना चाहिये। कच्चा नारियल या अन्य फल नहीं लेना। बेल लेना भी अच्छा नहीं, बल्कि पहाड़ी खरबूजा, सिंघाड़ा लेना अच्छा है, ये अच्छे, हल्के एवं पेट साफ करने वाले होते हैं। पानी कम पीना चाहिये। स्मार्त व वैष्णव दोनों मतों में एकादशी की व्यवस्था है। गृहस्थों को दशमी संलग्न एकादशी अर्थात् स्मार्त मत से एकादशी करना चाहिये। वेशधारी वैष्णव गण द्वादशी युक्त एकादशी पालन करते हैं। शांतिपुर के गोस्वामी गण प्रथम अर्थात् स्मार्त मत का पालन करते हैं। नित्यानंद के वंश के गोस्वामी वैष्णव मत से करते हैं।''

* ॐ-हरि *

प्रश्न :- जिन्होंने भी साधन प्राप्त किया है, क्या सभी को लाभ मिल रहा है ? क्या इन सभी को मुक्ति मिलेगी ?

श्री गोस्वामीजी :- ''सभी ने उपयुक्त समय में यह साधन पाया है, इसमें संदेह नहीं। दीन, हीन, कंगाल हूँ ऐसा बोध होने पर, दीनबन्धु दया करते हैं। अभिमानी दया के पात्र नहीं होते। बाहर की उन्नति ही यथार्थ उन्नति नहीं है। प्रत्येक को इस साधन की उपकारिता का किसी न किसी समय अनुभव अवश्य होगा। जन्म जन्मान्तर की अवस्था पर यह निर्भर करता है। कार्य करो या न करो, भीतर जो बीज पड़ा है, उससे समय पर फल अवश्य प्राप्त करोगे। पहले जो पाप कार्य सहज ही कर लेते थे, अब करने में यदि भीतर से कोई बाधा दे रहा है, ऐसा महसूस हो तो समझना होगा, यह साधन की क्रिया है। उसी प्रकार पहले जो शुभ इच्छाएँ नहीं थी, अब यदि उनका उदय होने लगे तो भी समझना होगा- यह साधन का ही फल है। ऐसी कोई कुशलता या चमत्कार नहीं है, जिससे मुक्ति हाथों-हाथ मिल जाय।''

❊ ॐ-हरि ❊

शिष्य :- क्या तत्व लाभ होने पर मनुष्य सुखी होते हैं? तत्व ज्ञानी के क्या लक्षण हैं ?

श्री गोस्वामीजी :- '' एक भी तत्त्व प्रकट होने पर चरित्र में उसके लक्षण स्पष्ट होने लगते है। ऐसा व्यक्ति प्राण जाने पर भी परनिन्दा नहीं करता। अपनी प्रशंसा उसे विषतुल्य लगती है। वृक्ष-लता, कीट-पतंग, पशु-पक्षी सभी जीवों पर उसकी दया बनी रहती है। जिसमें जीवों पर दया नहीं, परनिंदा-आत्मप्रशंसा के भाव हैं, वे तत्त्वज्ञानी नहीं हैं। बाहर पूजा-अर्चना, जप-तप करके भी यदि हिंसा की भावना नहीं गई, तो वह धर्म नहीं हुआ। अहिंसा बिना धर्म नहीं होती।''

❊ ॐ-हरि ❊

''कभी विचारहीन मत होना। दया करने में भी विचार होना चाहिए। अतिरिक्त दया करने के फलस्वरुप बड़े-बड़े साधु भी मुसीबत में पड़ गए। दया करने में योगियों को खूब विचार करना चाहिए। अन्यथा वे भी बड़े संकट में पड़ सकते हैं। योगी जब देखते हैं कि इस व्यक्ति पर इतनी मात्रा में दया करने पर ही उसका वस्तुत: उपकार होगा, तभी वे दया करते हैं।''

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''मनुष्य की निद्रा देखकर ही जाना जा सकता है कि किसमें कौन-सा गुण प्रबल है। निद्रा जबरदस्ती त्यागनी पड़ती है। जबरदस्ती न त्यागने पर सहज ही नहीं जाती। मनुष्य का जीवन कितने से दिनों का है? पचास साठ वर्ष का जीवन है। आधा तो नौकरी चाकरी में निकल जाता है। शेष का अधिकांश भोजनादि की व्यवस्था में। अवशिष्ट समय अगर सोकर काट दोगे तो साधन भजन कब करोगे ? दिन भर पेट की चिंता, रात की नींद, ऐसे तो समय बीता जा रहा है, कब भगवान का नाम लोगे ? जिन्हें दिन में आहार की चिंता नहीं करनी पड़ती, वे भी सारा दिन सिर्फ गला फाड़ते और रात को पड़े पड़े सोते है। बाबू लोगों को प्राणायाम, साधन करने की बोलो तो कहते हैं - महाशय प्राणायाम करने से हाँफ जाते हैं, दम घुटता है, कष्ट होता है। नाम स्मरण नहीं होता, खीज छूटती है। यदि कहें कि चुपचाप आसन पर बैठे रहो तो कहेंगे - महाशय झपकी आती है। ऐसा है तो साधन लेने का क्या प्रयोजन ? साधन भजन करोगे नहीं, केवल परनिन्दा, आलोचना करोगे, फिर कहोगे मेरा काम, क्रोध क्यों नहीं जाता ? कैसे जाएगा ? काम-क्रोध दूर हो सके, ऐसा कुछ किया है तुमने ? एक घंटा भी स्थिर बैठकर नाम करने पर क्या कोई ऐसा कह सकता है ? नाम करने पर ही साधन की उपयोगिता मालूम पड़ने लगती है। वह करते कहाँ हो ? नींद-नींद में ही दिन बीते जा रहे हैं। जिनका जितना मोह, उन्हें उतनी नींद आती है। निद्रा त्याग के साथ-साथ मोह नष्ट होता जाता है।''

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''क्या कहा ? कुछ भी नहीं हुआ कहते हो, इतने कृतघ्न हो। एक बार सोचकर तो देखो विष्णुलोक, ब्रह्मलोक, चन्द्रलोक की सारी सुख-संपदा मिल भी गई तो उसे पाकर कितने दिन रह सकोगे? जो दुर्लभ वस्तु मिली है, वह जब प्रत्यक्ष होगी, तभी समझोगे क्या हुआ ? - कुछ अभाव नहीं रह गया। यह स्वयं प्रत्यक्ष न देखकर कहना ठीक नहीं। एकदम निर्भय हो गए। केवल तुम ही क्यों, जिन्होंने भी सद्गुरु का आश्रय पाया है, वे सभी निर्भय हो गए हैं। अब

यह जान लो यदि नरक भी जाओ, तो वहाँ भी सीने से लगाए रखने के लिये कोई है। मैं अपनी सारी शक्ति से तुम सबको रोक के रखे हूँ। यदि जरा भी ढील दूँ, तो सब नर-नारी, पलभर में ''जयराम जयराम' कहकर राह में निकल पड़ेंगे।'

❊ ॐ-हरि ❊

श्री गोस्वामीजी :- '' 'क ख' का अभ्यास करके पढ़ना सीखा, बाद में जो पुस्तक पढ़ता हूँ तो उन सबमें तो 'क ख' वर्ण है ही। इनका त्याग करके तो पढ़ नहीं पाते। धर्म के सम्बन्ध में भी उसी प्रकार है। एक प्रणाली लेकर चलना पड़ता है। पहले तो यह देह ही मैं हूँ, इस ज्ञान का भेद करके शरीर तत्त्व जानने के लिये प्राणायाम, न्यास, मुद्रा आदि करना पड़ता है। जो नहीं करते वे देह व आत्मा क्या है, इसका प्रत्यक्ष ज्ञान लाभ नहीं कर पाते। उसके बाद सृष्टि तत्त्व जानने के लिए,देवताओं के ज्ञान लाभ करने हेतु, देव उपासना करनी होती है। सृष्टि तत्त्व जानने पर ब्रह्मज्ञान आता है। तब -'यह सब कुछ भी नहीं' ऐसा बोध आता है। मैं और ब्रह्म एक ही है या भिन्न यह जानने के लिये योग है। योग का अर्थ प्राणायाम आदि नहीं है। योग है - आत्मा में परमात्मा का दर्शन। यथार्थ योग साधित होने पर भगवान किस तरह जगत में विराजमान हैं, यह प्रत्यक्ष दर्शन होता है, तब इहलोक और परलोक एक हो जाता है। पूर्वकाल के ऋषियों ने कठिन परिश्रम करके इस प्रकार के क्रम से साधन प्रणाली प्राप्त किया था। क्रम से न कर सकने पर जितना साधन करोगे, मात्र उतने का ही फल पाओगे। उसके आगे की अवस्था नहीं जान पाओगे, अब तो सब कुछ विश्रृंखलतापूर्ण हो गया है। कुछ भी स्वाभाविक रूप से नहीं होता। मिट्टी में बीज रोपने से अंकुरण होता है, यह कृषक का गुण नहीं है, सृष्टि कर्ता के नियम का गुण है। साधन क्रम भी उसी प्रकार है। मनुष्य की प्रकृति के भीतर जो भी धर्मभाव है, उन सबका पोषण इस साधन से होता है। इसलिये ईश्वरोपसना, पराधर्म सभी इनके अन्तर्गत हैं। इसी में सब कुछ है।''

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''प्रशंसा पाने की इच्छा से तुम्हारे भीतर के भाव सूख जा रहे हैं। सावधान रहना।''

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''ऐसी अवस्था आती है कि नाम भी छूट जाता है।''

शिष्य - साधन भजन चल रहा है। उससे धर्म प्राप्ति हो रही है; यह किस प्रकार समझा जा सकता है ?

गोस्वामीजी – धर्म प्राप्ति आरंभ होने से नित्य परिवर्तन एवं परिवर्धन परिलक्षित होगा । आज जो है वह कल नहीं रहेगा, यदि भजन साधन करके जीवन का कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ तो समझना होगा कि कहीं गलती हो रही है ।

✻ ॐ–हरि ✻

शिष्य - साधन पथ पर इतना क्लेश क्यों होता है ?

गोस्वामीजी – क्लेश (कष्ट) के बिना जीवन तैयार नहीं होता । भगवान् जिसे पर कृपा करते हैं, उसको रोग, शोक, अपमान, द्ररिद्रता, निर्यातन सहन करना पड़ता है। जीवन गठन के लिए इन सबकी जरूरत पड़ती है। यह सब न होने से जीवनमुक्त नहीं होता है । जीवनमुक्त न होने से कृपा का अनुभव नहीं होता है ।

श्री गोस्वामीजी :- ढाका की जन्माष्टमी, श्रीवृन्दावन की दोलयात्रा (होलिकोत्सव), अयोध्या के झूले और शान्तिपुर की रास यात्रा देखने योग्य होती है। इसकी तुलना और कहीं नहीं है। जिन्होंने इन उत्सवों को आँखों से नहीं देखा है, उन्हें किसी तरह नहीं समझाया जा सकता। जो लोग इन उत्सवों में सम्मिलित होते हैं, उनके भीतर की सारी अशान्ति और उद्वेग नष्ट होकर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है।

* ॐ-हरि *

श्री गोस्वामीजी :- ''अद्वैतवाद कोई मत नहीं है, आत्मा की एक प्रकार की अवस्था है। जीवात्मा और परमात्मा का मिलन होने पर, जीवात्मा अपने आप को भूल जाता है। जिधर देखो ब्रह्मसत्ता ही दीखती है। अनंत सागर में मानो एक जल का कण प्रविष्ट होकर, कभी डूबता तो कभी तैरता है। ऐसा न होता तो ऋषियों ने इतने परिश्रम पूर्वक साधन क्यों किया होता। यही परम गति, परम धन है।''

* ॐ-हरि *

''एक ने प्रार्थना की - प्रभो तुम ही मेरे सर्वस्व हो । मेरा जो कुछ भी है, सब तुम्हारा ही है, मेरा अपना कुछ भी नहीं। परमेश्वर सुनकर कहते हैं - मानव ऐसा मत कह, मुझे थोड़ा दे, बाकी तू ही अपने पास रख। तू नहीं जानता, तू क्या कह रहा है! मानव फिर कहता है - प्रभो, ऐसा नहीं हो सकता, मेरा क्या है, सब कुछ तुम्हारा ही है। तब भगवान उसके घर-बार, आत्मीय, बंधु एक-एक कर सब कुछ नाश करके, जब उसके पुत्र को भी ले जाते हैं, तब वह मानव रोकर कहता है - प्रभो यह क्या करते हो ? अब और नहीं सहा जाता। प्रभु उसे सब लौटाकर कहते हैं - यह लो, मैंने तो पहले ही कहा था, यह तुम्हारा काम नहीं है। इसलिये कृपाप्रार्थी होना, बड़ी परीक्षा का पथ है, यदि आसक्ति बद्ध न हुआ तो कष्ट नहीं होता।

* ॐ-हरि *

''अभी हमारा देश ठीक नियम से नहीं चल रहा। वेदशास्त्र में लिखा है - नारी चौदह से सोलह वर्ष एवं पुरुष पचीस से तीस वर्ष की उम्र में विवाह करें तो मंगलकारी होता है। जरा समय बीतने दो, विवाह करने की क्या अच्छाइयाँ हैं, समझ जाओगे। अभी शोक का समय है। शोक, मोह दैहिक संबंध जनित होते हैं। संबंध दो प्रकार के होते हैं, दैहिक व आत्मिक। आत्मिक संबंध सहज नहीं बनते। एक बार बने तो नष्ट नहीं होते, ये संबंध विरल हैं। जिन दो आत्माओं का एक ही लक्ष्य है, उनमें आत्मिक संबंध स्थापित हो जाता है। दैहिक संबंधजन्य शोक,

मोह अस्थायी और अनित्य होते हैं। इसीलिये अशौच काल कहा गया है। अशौच काल न बीत जाने तक दोनों पक्ष में स्थिरता नहीं आ पाती। अशौच काल बीतने पर क्रमश: संबंध का अनुभव होने लगता है। **आत्मीय संबंध में शोक नहीं होता, विरह होता है,** जो आशाजनक एवं नित्यकाल तक स्थायी होता है। इस प्रकार का आत्मिक संबंध हो तो मिलन होता है। दूर रहने पर भी दोनों के बीच एक सूत्र बंधन सा रहता है, उससे सदा ही मिलने का बोध होता है। यह सब देखने से भी भलाई होती है। संसार वस्तुत: असार है। भाई-बहन, सहोदर होकर भी अपने न हुए, तो इस संसार का आकर्षण क्या रहा ? वन्य पशु एवं मानव में अंतर ही क्या रहा ? पशु तो अपने पड़ौसी की सेवा, सहायता करना नहीं जानता पर मनुष्य तो पड़ौसी के दु:ख में दु:खी, व सुख में सुखी हो सकता है। जो निराश्रित की सेवा नहीं करे, वह मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं।''

✻ ॐ-हरि ✻

''भगवान ने मुझसे कहा - मेरी वस्तु, मैं जहाँ मेरी मर्जी रखूँगा, चाहे नरक में, चाहे स्वर्ग में। इस पर तू कुछ नहीं कह सकेगा।''

''स्वयं कुछ भी निश्चित नहीं करना चाहिये। भगवत् इच्छा पर निर्भर होकर ही रहना चाहिये। अपने ऊपर भार ग्रहण करने में ही कष्ट है। जो भी घटना भगवत् इच्छा से घट जाए, उसका विशेष प्रयोजन हुआ करता है।''

✻ ॐ-हरि ✻

''माया - वस्तुत: माया है क्या ? यदि कहो संसार में बड़े सुख से हूँ, इसे छोड़कर कहाँ जाऊँ। पर जरा विचार करके देखो, संसार में कौन तुम्हें चाहता है? अधिकांश स्थल में भीषण प्रतारणा एवं धोखा है। कहीं स्त्री पति से कृत्रिम प्रेम दिखाकर, दूसरे से प्रेम कर रही है। कहीं पति स्त्री को धोखा देकर, पर स्त्री पर आसक्त है। कहीं पुत्र पिता की हत्या करके, सम्पति हड़पता है, तो कहीं पिता ही पुत्र को इससे वंचित करके सुखी होते हैं। मध्यम परिवार के लोगों व कृषको में तो भी कुछ प्रेम व भक्ति की भावना दिखाई पड़ती है। जहाँ धन का संबंध है, वहाँ

वास्तविक प्रेम दुर्लभ है। वस्तुतः धनी व्यक्ति बंधुहीन होता है - सभी उसके धन के कारण उसे चाहते, हँसते और मुँह ताकते हैं। रोग में सेवा भी धन पाने के लिए करते हैं। इस प्रकार संसार में यदि घूम कर देखें तो कौन यहाँ वस्तुतः सुखी है, ढूँढ निकालना कठिन है। जिनके प्रेम में स्वार्थ लेश मात्र नहीं, यदि ऐसे व्यक्ति संसार में हैं, तो वे ही वस्तुतः सुखी हैं। उनका संसार फिर संसार नहीं रह जाता, वह स्वर्ग है। बाकी सब कुछ असार है। एक मात्र हरिनाम को छोड़, दूसरी सुखकारी वस्तु संसार में है ही नहीं।

❋ ॐ–हरि ❋

श्री गोस्वामीजी :- ''पति के प्रति अनुचित व्यवहार करने एवं कटु वाक्य बोलने से नारी को यंत्रणादायक रोग भोगना पड़ता है। यह शास्त्रकारों ने बारंबार लिखा है। इस रोग की एकमात्र औषधि है - पति के चरणों में शरण लेकर, किए गए अपराध के लिये क्षमा याचना करना। पतिदेव अत्यन्त दुःख, दरिद्रता मे पड़े हों, तो भी नारी के लिये पूजनीय होंगे। पति भी नारी को भगवत् शक्ति मानकर श्रद्धा सहित आचरण करे। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र में भी प्रायश्चित का विधान इसी प्रकार है। किंतु आधुनिक वैद्य उसे नहीं जानते। सुश्रुत, चरक, वाक्‌भट्ट ने भी ऐसी व्यवस्था दी है। स्त्री पुरुष का लक्ष्य भगवान हो तो सती व संत होते हैं। यथार्थ सती अत्यन्त दुर्लभ है। सती होने के बाद पतिव्रता। स्त्री यदि पति को निःस्वार्थ रूप से प्रेम करे तो स्वामी की मृत्यु के बाद अपने आप उसका शरीर भी मृत हो जाता है। साधुओं के बीच शांत, सेवक-सेव्य में दास्य, बंधु-बंधु में सख्य, पिता-माता में वात्सल्य, स्त्री-पुरुष में मधुर भाव होता है। अपना कर्म सभी कर रहें हैं। संबंध बोध 'मेरा है, मेरा है' यही मोह है।''

श्री गोस्वामीजी :- ''पुत्र से भी बंधु या मित्र श्रेष्ठ है। 'पुत्र पिण्ड प्रयोजनात्' -किंतु मित्र तो चिरकाल का मित्र है। मित्र का स्वार्थ या प्रयोजन नहीं रहता। वह मित्र के सुख में सुखी, मित्र के दुःख से दुःखी और उसी की तृप्ति से तृप्त हुआ करता है। ऐसा मित्र जिसके पास नहीं हैं, वह बंधुहीन है। पहले सभी के ऐसे एक दो मित्र हुआ करते थे परन्तु आजकल ऐसे मित्र पाना असंभव सा हो गया है। मतों का मेल ही मात्र

मित्रता नहीं। एक उद्देश्य, एक प्रयोजन या एक सा व्यवसाय, यह भी मित्रता नहीं। यथार्थ मित्र-लाभ दुर्लभ है। मित्र तो दूर की बात, कभी जी हल्का करने के लिए मन खोलकर बात कर सकें, ऐसे विश्वस्त व्यक्ति भी आज नहीं मिल पाते। विश्वास करके किसी से कुछ गोपनीय बात कहोगे तो सुन पाओगे - बीच बाजार में उसी बात को लेकर उपहास किया जा रहा है। यही काल की गति है। अपने मन की सुख-दुःख की बातें यदि कोई व्यक्त न कर पाये तो मन कुटिल हो जाता है। यह कुटिलता भी महापाप है। **साधन भजन न करके भी कोई यदि केवल सरल व सहज बना रहे तो इसी के प्रभाव से मुक्ति लाभ कर सकता है। सरल हृदय वाला ही सर्वदा सत्यवादी होता है। कपट हृदय से हजार यज्ञ, योग, साधन-भजन करो, नरकगामी होना पड़ता है। कपटी हृदय सदा असत्य चिंतन व असत्य भाषण करता है। बंधु विहीनता से यह दुर्गति हो सकती है।''**

*** ॐ-हरि ***

''प्रत्येक ग्राम चार सौ वर्षों में बदल जाता है। शहर जंगल बन जाता है। जंगल शहर बनता है। पर्वत थे वहाँ नदी बहने लगती है। दार्जिलिंग मे बैठे पर्वत देखते हुए ऐसा लगता है, जैसे पर्वत श्रेणियाँ समुद्र की लहरें हों।

जब नीचे था तो घर, वृक्ष, लता, नदी सब कुछ अलग-अलग दिखाई पड़ता था। ऊँचाई पर चढ़ा तो सभी एकाकार हो गए जैसे आसमान से घिरे हों। इसी प्रकार धर्म सोपानों पर चढ़ते हुए उस अनंत, भूमा पुरुष के वस्तुतः निकटवर्ती होने पर, उसी की सत्ता से सब आवृत हैं, ऐसा ही बोध होगा तब पृथक् कल्पना करना असाध्य हो जायगा।''
''हिमालय की बर्फों के बीच नीलकमल का वन है, कमल खिलकर अपूर्व शोभा बढ़ाते हैं। हिमालय के छोटे-छोटे तालों में ही कमल वन हैं। बर्फ पड़ने पर भी उसे भेदकर कमल खिलते हैं। हिमालय में एक प्रकार के झींगुर हैं - ऐसा शब्द निकालते हैं मानो किसी देवालय में घंटी बज रही हो। इसलिए इसे देवघंटी कहते हैं। प्रातः, मध्याह्न एवं शाम, ऐसे तीन बार ये आवाज निकालते हैं।

श्री गोस्वामीजी :- ''पशु-पक्षियों में मनुष्य की अपेक्षा कृतज्ञता की भावना अधिक होती है। इसलिये जिस व्यक्ति से उन्हें जरा भी अन्न मिले, उसे याद रखते हैं। मृत व्यक्ति के लिए जब तक उन्हें दु:ख हो, वे नीरव रहते हैं। यही उनका स्वाभाविक अशौच है। ये भी अशौच के बाद स्नान करते हैं। बड़े चूहे छोटे चूहों को खाद्यान्न लाकर देते हैं। मकड़ी खाद्य फँसाने के लिए जाल बुनती है, उसी में बचे कें खेलने की भी जगह है, खाद्य संग्रह करने का भी अन्य भाग है। ढाका के कुटीर में कुछ भी खाद्य पदार्थ लाते ही चूहे, चींटे, मकोड़े तथा अन्य कीट जान जाते थे। जब तक उन्हें खाने को न दूँ, बदन पर चढ़कर सताते थे। मकोड़ा जाल से झूलता, कुछ पाकर सन्तुष्ट होकर चला जाता था। मनुष्य व इनके बीच सद्भावना होती है। सर्प व बाघ से भी मनुष्य की सद्भावना होती है। सभी जीव जन्तुओं की अपने-अपने कार्यों में अपनी श्रेष्ठता होती है। मुझे मकड़ी की तरह जाल बुनना नहीं आता, और न तो बया पक्षी की तरह घोंसला बुनना ही आता है और न ही मैं धूल व चीनी मिला देने पर उन्हें अलग कर सकता हूँ, पर चींटी ऐसा कर सकती है।'' ''आम वृक्ष के नीचे तुलसी के पौधे पर बहुत दिनों से एक मकड़ी रहा करती थी। दो दिन पहले वह स्थान छोड़कर आम वृक्ष की आड़ में आ गयी। मैं समझा नहीं कि इसने अचानक स्थान परिवर्तन क्यों किया? दो दिन बाद जब तेज आँधी आयी, तब समझा कि पहले ही इसका अनुमान हो जाने पर, मकड़ी ने नया स्थान चुन लिया था, जहाँ आँधी से उसे हानि न पहुँचे। दो दिन पहले उसे आँधी का अनुमान हो गया। यह भी जानकारी मिल गई कि आँधी किधर से आएगी। अब कहो, मकड़ी मनुष्य से तुच्छ है, यह कैसे कहा जाय? भगवान के राज्य में कोई छोटा-बड़ा नहीं है। सभी एक ही शक्ति द्वारा परिचालित होते हैं। प्रत्येक जीव जन्तु को अपने अपने जीवन यापन की उपयोगिता प्रदत्त है। मनुष्य वृथा अहंकार करता है।''

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- ''भगवान् के कार्य देखकर मनुष्य इतना अभ्यस्त हो गया है कि उनकी प्रशंसा करने की इच्छा नहीं होती। रवींद्रनाथ ठाकुर ने स्तुति गान किया तो लोगों ने खूब प्रशंसा की। भगवान ने किस कुशलता से स्वर यंत्र की रचना की है। तुम्हारे मन के भाव जैसे होंगे, वाकयंत्र से वैसा ही शब्द निकलेगा। अनुकूल भाव मन में आते ही कंठ से वैसी ही राग रागिनियाँ झंकृत होंगी। निराकार भाव साकार रूप लेकर राग रागिनियों के रूप में परिणत होते हैं। इसकी प्रशंसा कोई नहीं करता। कंठ की कुछ शिराएँ इन सारे सुरों को प्रकट करती हैं। ऊँचे-नीचे, लघु-दीर्घ विविध प्रकार के शब्द इन्हीं शिराओं से बजते हैं।''

✻ ॐ–हरि ✻

श्री गोस्वामीजी :- बदला लेने में समर्थ होकर भी अत्याचार को सहकर जो लोग बिल्कुल भगवान् की मर्जी पर छोड़ देते हैं वे अत्याचारी का काम तमाम कर डालते हैं। जो अत्याचार करता है उसी के भले के लिए, मन में सोलहों आने क्षमा और शान्ति रखते हुए, ऊपर से तनिक कृत्रिम क्रोध दिखलाकर दो चार बातों में थोड़ा सा धमका देना चाहिए। इससे बदला भी ले लिया गया और अत्याचारी का विषम दण्ड से बचाव भी कर लिया। सोलहों आने क्षमा करके भगवान् के हाथ में बिल्कुल छोड़ देने से अत्याचारी को भारी दण्ड सहना पड़ता है। गयाजी में एक बार ऐसी ही एक घटना हो गई थी। वहाँ आकाशगङ्गा पहाड़ पर जिन दिनों मैं रहता था, उस समय हम लोगों के साथ कुछ दिन तक एक परमहंस भी थे। एक बार परमहंस के एक शिष्य ने एकादशी को निर्जलव्रत रखकर द्वादशी को प्रात: काल फल्गु में जाकर स्नान किया; फिर विष्णुपद दर्शन करने में उसे थोड़ा सा विलम्ब हुआ। वह अपने साथ छोटे से गोपालजी को सदा लिये रहता था। द्वादशी का पारण करने का समय व्यतीत होते देख वह आतुर हो गया और चटपट एक हलवाई की दुकान पर जाकर उसने दूकानदार से कहा - 'पारण करने का समय बीता जा रहा है, मुझे थोड़ी सी मिठाई दे दो, गोपालजी को

भोग लगाकर मैं तनिक पानी पीऊँगा।' दुकानदार ने उसकी बात अनसुनी कर दी। साधु ने तीन-चार बार अपनी बात दुहराई, किन्तु दुकानदार ने जब 'हाँ' 'ना' कुछ नहीं कहा तब जल्दी में एक बताशा उठाने के लिए ज्योंही साधु ने हाथ बढ़ाया त्यों ही दूकानदार और उसका बेटा दोनों ही दूकान से कूदकर रास्ते में आ गये और साधु को बुरी तरह पीटने लगे। एकादशी का निर्जल उवास करने से साधु यों ही कमजोर था, अब ऐसी मार पड़ने से वह नीचे गिर पड़ा। राह चलने वालों ने बीच-बचाव करके साधु को छुड़वा दिया। साधु ने दुकानवालों से भला-बुरा कुछ भी नहीं कहा, उसने आकाश की ओर देखा और तनिक मुस्कुरा कर हाथ जोड़कर कहा - ''भला जी, दयालु गुरुजी, तुम्हारी लीला है।'' इतना कहकर साधु पहाड़ की ओर चला गया। परमहंसजी पहाड़ पर चट्टान के ऊपर स्थिर बैठे हुए थे। वे एकाएक चौंक पड़े और चट्टान से कूदकर नीचे आ गये एवं गोदावरी नामक रास्ते की ओर दौड़ पड़े। रास्ते में शिष्य को देखकर परमहंसजी कहने लगे- ''क्यों रे बच्चे, तूने क्या कर डाला ?'' शिष्य ने कहा, ''मैंने तो कुछ नहीं किया गुरुजी ?' परमहंसजी ने कहा-'बहुत कर डाला है। बहुत बुरा काम किया है। रामजी के ऊपर बिल्कुल छोड़ दिया। चलकर देख, रामजी ने उसका कैसा हाल किया है।' यह कहकर शिष्य को साथ ले परमहंसजी हलवाई की दूकान के पास पहुँचे। देखा कि हलवाई का सत्यानाश हो गया है। साधु को पीट पाटकर हलवाई का लड़का भट्ठी में जलाने के लिए लकड़ियाँ निकालने को ज्यों ही ईंधन की कोठरी में घुसने लगा त्यों ही एक काले साँप ने उसे डस लिया। हलवाई घी को गरम कर रहा था। बेटे को साँप के डस लेने की खबर पाते ही भट्ठी के ऊपर घी की कड़ाही चढ़ी छोड़ कर उसने दौड़कर बेटे को पकड़ा और खींच कर उसे रास्ते पर रख दिया। इधर भट्ठी पर रक्खा घी इतना गरम हो गया कि उसमें से जो लौ निकली तो टाट में आग लग गई। परमहंसजी ने जाकर देखा कि हलवाई का लड़का रास्तें में मुर्दे की तरह पड़ा हुआ है, घर को आग जला रही है और लोग रास्ते में खड़े-खड़े हाय-हाय कर रहे हैं। बेढब मामला था। परमहंसजी शिष्य के साथ पहाड़ पर लौट आये और उसको बहुत गालियाँ देकर कहने लगे- 'बिना अपराध के कोई अत्याचार करे तो,

क्रोध न होने पर भी, कम से कम उसको एक आध गाली दे आना चाहिए। मनुष्य थोड़ा सा बदला ले लेता है तो अत्याचारी की रक्षा हो जाती है, रामजी के ऊपर सारा भार छोड़ देने से रामजी कठोर दण्ड देते हैं। भगवान् का दण्ड बड़ा विषम होता है'।''

शिष्य - ''परमहंस किसको कहते हैं?''

श्री गोस्वामीजी :- दूध में पानी मिला कर हंस के पास रखने से हंस पानी के अंश को छोड़कर केवल दूध के अंश को ग्रहण करता है। इसी प्रकार इस अनित्य मिथ्या संसार में जो लोग केवल सार सत्य को ही ग्रहण करते हैं वे ही परमहंस हैं। परमहंसगण केवल सार को ग्रहण करते हैं, गुण को ही देखते हैं; वे दोष को देखते ही नहीं। परमहंस सर्वदा गुणग्राही होते हैं।

परमहंसों का दृष्टान्त देने के लिए श्री गोस्वामीजी ने वृन्दावन के गौर शिरोमणी जी का उदारहरण दिया - श्रीवृन्दावन में संसार के रगड़ों-झगड़ों से दूर एक वैष्णव संन्यासी बहुत दिनों से एकान्त में भजन साधन करके परमानन्द से निवास कर रहा था। माया का चक्र जो ठहरा! एक बार उस साधु को स्त्री सङ्ग हो गया। वैष्णव समाज में इसकी चर्चा फैल जाने से सर्वत्र उस की निन्दा-आलोचना होने लगी। पतित हो जाने से वैष्णव समाज ने घृणा के साथ उसका संसर्ग छोड़ दिया। इसकी खबर गौर शिरोमणी को भी मिली। एक दिन उनके कुञ्ज में महोत्सव था। सभी वैष्णवों को निमंत्रण दिया। उस समय उन्होंने उस वैष्णव साधु को भी निमन्त्रण दिया। भोजन के समय अन्यान्य वैष्णवों के साथ एक पंक्ति में बैठने का अनुरोध उन्होंने उस साधु से भी किया। तब सभी वैष्णवों ने शिरोमणि जी से कहा, ''प्रभो ! आप जो कहेंगे या करेंगे वही हम लोगों को शिरोधार्य होगा। फिर भी हम लोगों की यह प्रार्थना है कि हमें इनके साथ एक पंक्ति में बैठने की आज्ञा न दीजिए। विषम कुकर्म करने से ये पतित हो चुके हैं।'' शिरोमणी जी ने हाथ जोड़कर सभी को नमस्कार किया और रोते-रोते कहा, ''आप लोग अब यह बात न कहिएगा। ये तो महात्मा हैं। हम लोगों पर इनकी बड़ी दया है। ऐसा महात्मा पुरुष भी यदि कोई गर्हित आचरण कर बैठता है तो समाज में उसे कैसी लाञ्छना,

निन्दा, अपमान और घृणा का पात्र बनना पड़ता है, यही दिखाने के लिए हम लोगों पर दया करके ही इन्होंने इस विषम भोग को स्वीकार किया है।'' यह कहकर उन्होंने साष्टाङ्ग हो उस दीनभावापन्न कातर विरक्त साधु को नमस्कार किया और फिर सभी वैष्णवों से कहा, ''आप लोग मेरा भी त्याग कर दीजिए; सच-सच कहता हूँ, मैंने तो इनसे भी बढ़कर अपराध के काम किये हैं।' अब वे अपने जीवन की पिछली घटनाओं का ब्योरा सुनाने लगे। तब तो सभी वैष्णव कानों में उँगलियाँ लगाकर बोले ''प्रभो, रहने दीजिए, बस कीजिए।'' उन लोगों ने उस साधु को अपनी पंक्ति में भोजन करने के लिए बैठा लिया। **कोई तो गुण में भी दोष देखते हैं, कोई गुण को गुण और दोष को दोष देखते हैं; फिर किसी को दोष दिखाई ही नहीं देता, वे दोष में भी गुण ही देखते हैं। सब कुछ दशा की प्राप्ति के अनुसार होता है।**

*

गुरू-शिष्य संवाद

(श्री जगद्‌बंधु मैत्र)

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री श्रीसद्गुरुवे नमः ॥

गुरु शिष्य संवाद

शास्त्र भ्रमरहित हैं।

शिष्य - (गुरुदेव को विधिपूर्वक प्रणाम करके) -- गुरुदेव ! मेरे मन में धर्म के सम्बन्ध में कुछ संदेह हो रहे हैं। आप कृपाकर उनकी विवेचना कर मेरे संशयों का निवारण कर दीजिये।

गुरु - वत्स ! तुम्हारे मन में क्या संदेह उत्पन्न हो रहे हैं ? तुम अपने संदेहों को निःसंकोच प्रकट करो।

शिष्य - क्या हमारे शास्त्र सब भ्रमरहित हैं ?

गुरु - शास्त्र कहने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?

शिष्य - शास्त्र से मेरा अभिप्राय हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों से है।

गुरु - अन्यान्य जातियों के शास्त्रों को तुम शास्त्र क्यों नहीं मानते? ईसाईयों की बाईबल, मुसलमानों का कुरान क्या शास्त्र नहीं हैं ?

शिष्य - हाँ, वे सब भी शास्त्र हैं, तो भी उनको लेकर विचार करने का हमें कोई प्रयोजन नहीं। वे शास्त्र जिन-जिन जातियों के हैं, वे लोग उन पर विचार करें। हम हिन्दू हैं, अतः हिन्दू धर्मशास्त्रों से ही हमारा प्रयोजन है। क्योंकि धर्म के सम्बन्ध में हमारा जो कुछ है, वह हिन्दू शास्त्रों पर ही आधारित है, अन्यान्य जातियों के शास्त्रों पर नहीं।

गुरु - बहुत ठीक कहा। हम बंगाली हैं, बंगाल में उत्पन्न उपयोगी खाद्यपदार्थों को हम खाते हैं, उन्हीं से हमारे शरीर भलीभाँति पुष्ट होते हैं। हमारे देश के खाद्य हमारे शरीरों के लिए जैसे उपयुक्त हैं, दूसरे देशों के अन्न वैसे पुष्टिकारक नहीं। अपितु अनेक स्थलों में अनिष्टकारक होते हैं। इसी तरह हिन्दू धर्मशास्त्र हमारे लिये जैसे उपयोगी हैं, अन्य जातियों के शास्त्र वैसे नहीं। अतः अन्य जातियों के शास्त्रों को लेकर विचार करने का हमें कोई प्रयोजन नहीं। अच्छा, हिन्दू शास्त्र क्या हैं? हिन्दूशास्त्र कहने से तुम क्या समझते हो ?

शिष्य - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः और ज्योतिष, ये छः अंग और आयुर्वेद, धनुर्वेद गान्धर्ववेद और स्थापत्यवेद, इन चार उपवेदों के साथ ऋक्, यजुः साम और अथर्व चार वेद; मनुसंहिता, पाराशरसंहिता आदि स्मृति ग्रन्थ; सनत्कुमार संहिता, नारदपञ्चरात्र आदि उपासना ग्रन्थ; नारदसूत्र, शाडिल्य सूत्र आदि भक्ति ग्रन्थ; अष्टावक्रसंहिता आदि ब्रह्मज्ञान विधायक ग्रन्थ; श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण, साम्बपुराण, कालिकापुराण आदि पुराण और उपपुराण; रामायण, महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थ; महादेव द्वारा कथित आगमशास्त्र और भगवती द्वारा कथित निगम शास्त्र-हिन्दू शास्त्र कहने से मैं इन्हीं को समझता हूँ।

गुरु - ये सब तो ठीक ही शास्त्रग्रन्थ हैं। इनके अलावा ऋषियों द्वारा विरचित सांख्य, वेदान्त आदि दर्शनशास्त्र भी शास्त्रों में गिने जाते हैं।

शिष्य - क्या ये सब शास्त्र भ्रमरहित हैं, सत्य हैं ?

गुरु - ये सभी शास्त्र सत्य हैं, भ्रमरहित हैं। एक के साथ एक का योग करने से योगफल दो होगा, यह कथन जैसे भ्रमरहित और सत्य है, वैसे ही सब शास्त्र भ्रमरहित हैं। शास्त्रों की सत्यता और भ्रमशून्यता के संबंध में तुम्हारे मन में सन्देह उत्पन्न होने का कारण क्या है ?

शिष्य - आजकल धर्म के संबंध में, शास्त्रों के संबंध में, ईश्वर के विषय में चारों ओर अनेक प्रकार के तर्कों, वाद-विवादों का जोर देखकर मेरे मन में संदेह उत्पन्न हुआ है। इसीलिये आपके सामने अपने मन की बात कह दी है। अपने संदेह को मन ही मन में छिपाकर रखना अच्छा नहीं होता- ऐसा मेरा विश्वास है।

गुरु - वर्तमान काल में हमारे देश में अविश्वास, संदेह और नास्तिकता अत्यन्त बढ़ रही है। देश में विद्वान् और पण्डित कह कर जिनकी ख्याति है और प्रामाण्यता है, धर्म के प्रति, शास्त्रों के विषय में उन्हीं लोगों के अविश्वासों और अनास्था को देखकर अनेकों के मन में संदेह उत्पन्न होने लगे हैं। तुम्हारे मन में संदेहों का होना कुछ विचित्र बात नहीं। विशेषकर आजकल कलियुग जो है। कलि चारों दिशाओं में अपना पूर्ण आधिपत्य विस्तार कर रहा है। धर्म को संकीर्ण, निर्बल एवं

निस्तेज करना और अधर्म को प्रबल और विस्तीर्ण करना ही कलियुग का काम है। सत्य, सदाचार, संयम, दया, श्रद्धा, विश्वास, आस्तिकता आदि धार्मिक भाव प्रतिदिन निस्तेज और परिम्लान हो रहे हैं। उनके स्थान पर झूठ, जुआ, चोरी, भ्रष्टाचार, दुराचार, स्वार्थपरता, खान-पान में स्वेच्छाचार, अविश्वास, नास्तिकता आदि अपने क्षेत्रों को बढ़ा रहे हैं। वर्तमान काल की शिक्षाप्रणाली भी कलि के इन सब कामों में खूब हाथ बँटा रही है। एक तो करेला उस पर नीम चढ़ा! देश में ठीक ऐसी ही अवस्था है।

पाश्चात्य शिक्षा के अवश्यम्भावी और निश्चित फल हैं - संशयग्रस्तता, नास्तिकता, अविश्वास और अहंलीनता। जो लोग पाश्चात्य विद्याओं में पारंगत हैं, वे अधिकांश ही धर्म में विश्वास और आस्था नहीं रखते। उनके लिये शास्त्र कल्पनाप्रसूत कहानी हैं। जिस वेद को समझने में 'सूरयः मुह्यन्ति',-पण्डितों के दिमाग चक्कर खाने लगते हैं- वे किसानों के गान कहे जाते हैं। उनके और उनके पश्चिमी गुरुओं की बुद्धि के वश की जो चीज है वही सत्य है। जो उनके ज्ञान से बाहर है, जिसको उनकी समझ पकड़ नहीं पाती, जिसे समझने में वे लोग समर्थ नहीं, जो उनकी धारणा के प्रतिकूल है, वे सब सारहीन, काल्पनिक और भ्रमपूर्ण हैं ! बेटा ! जिसको तुम समझ नहीं पाते हो, जिसको तुम ग्रहण नहीं कर सकते हो, वह कुछ महत्त्व की नहीं, यह बात तुम किस बल-बूते पर कहते हो ? क्या तुम सब कुछ जानते हो ? तुम्हारे छोटे-से मस्तिष्क में क्या संसार के समस्त ज्ञान-विज्ञान ने अपना निवास बना रखा है ? पचास वर्ष पहले जापानी लोग वर्तमान युग की वैज्ञानिक युद्धविद्या को जानते नहीं थे। जापानियों को यह युद्धविद्या अज्ञात थी, इस कारण से क्या संसार में वैज्ञानिक युद्धविद्या विद्यमान नहीं थी। तुम समझ नहीं सकते, तुम्हारा छोटा सा मस्तिष्क और मोटी बुद्धि किसी विचार को ग्रहण नहीं कर पाती, इस कारण से शास्त्रों के वचन सारहीन, काल्पनिक और भ्रमपूर्ण नहीं है।

मनुष्य की जितने प्रकार की भी दुर्गति अथवा दुरवस्थायें होती हैं, उनमें संशय और नास्तिकता अधमाधम है। अन्य प्रकार की दुर्गति तो अल्पकाल व्यापी और इसी जन्म तक सीमित रहती है। परन्तु संशय,

अविश्वास और नास्तिकता का दुष्प्रभाव इस जन्म में क्या, आगामी जन्मों में भी चलता है। अत: धर्म के विषय में तनिक भी संदेह मन में उदित होने पर सरलतापूर्वक गुरु के आगे निवेदन कर उसका समाधान करा लेना चाहिये, किसी विषय में विवेचना करते समय गुरु के साथ कुतर्क करना उचित नहीं। केवल गुरु के साथ ही नहीं कुतर्क सभी स्थानों में सर्वदा त्याज्य है। कुतर्क करने पर किसी विषय की मीमांसा (विवेचना) नहीं हो पाती। कुतर्क जैसा मीमांसा का दूसरा भयानक शत्रु नहीं। मन में कोई संदेह उठने पर, संदेह के समाधान के लिये जिज्ञासु होकर सरलभाव से गुरु के पास जाकर संदेह की बात कहो। संदेह निवारण के लिए गुरु जो युक्ति वा तर्क प्रतिपादित करें, उन पर कुतर्क न कर के, जब तक संदेह दूर न हो, तब तक अपने संशयों की विवेचना करवाओ। मीमांसा हो जाने पर, संदेह निवारण हो जाने पर, आगे अनुचित तर्क मत करो। अनुचित तर्क के द्वारा किसी विषय की मीमांसा नहीं होती। तर्क करने का अभिप्राय होता है अपने मत को स्थिर रखना। तर्क करने वाला सदा ही अपने मत वा अपनी बात को रखने का यत्न करता है। मीमांसा अथवा विवेचना की ओर उस का ध्यान नहीं होता। इसी कारण से तर्क द्वारा किसी विषय की मीमांसा नहीं हो पाती। अब तुम अपने संदेहों की बात कहो।

शिष्य - शास्त्रों के वचन भ्रम रहित हैं, यह क्यों कर ?

गुरु - जो सत्य हैं, जिन में भ्रम नहीं, प्रमाद नहीं, मनगढ़न्त बात नहीं, ऐसे ही तथ्य शास्त्रों में निविष्ट किये गये हैं, इस लिये समस्त शास्त्र सत्य हैं।

शिष्य - शास्त्र सत्य हैं इस का अर्थ क्या ?

गुरु - शास्त्रों की सत्यता का अर्थ है - उनके वचनों में भूल चूक नहीं, अत्युक्ति नहीं, अतिरंजन नहीं, उनके सभी कथन सत्य हैं !

शिष्य - कोई उदारहण देकर समझाइये ।

गुरु - क्षत्रिय सम्मुख होकर युद्ध करने पर प्राण दे तो स्वर्ग को जाता है- यह शास्त्र का वचन है। सम्मुख युद्ध में जिसकी मृत्यु हो जाती है वह वास्तव में स्वर्ग गमन करता है। राजा दुर्योधन बड़ा दुराचारी था।

पाण्डवों के साथ उसने जीवन भर कितने अन्याय किये। परन्तु सम्मुख युद्ध में हत होने पर वह भी स्वर्ग को गया था। दुर्योधन के स्वर्ग गमन से ही यह प्रमाणित होता है कि सम्मुख समर में हत होने पर वीर योद्धा स्वर्ग को जाता है, शास्त्र का यह वचन पूर्णरूप से सत्य है। इसी प्रकार प्रत्येक शास्त्र वचन सत्य है, भ्रम रहित है।

शिष्य - दुर्योधन की स्वर्गप्राप्ति से मेरे मन में दो संदेह उत्पन्न हो गये हैं। पहिला, दुर्योधन जो स्वर्ग गया था, महाभारतकार ने यह कैसे जाना ? दूसरा, सम्मुख समर में हत होने से ही क्या उनके जीवन भर में किये हुए पापों के पुँज नष्ट हो गये थे ?

गुरु - तुम्हारे पहिले प्रश्न के उत्तर में यह कहना है कि महाभारतकार भगवान् वेदव्यास दिव्यज्ञान द्वारा जान कर ही दुर्योधन के स्वर्गगमन की बात लिख गये हैं। तपस्या द्वारा ऐसी शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। जिनके द्वारा मनुष्य त्रिकालज्ञ हो सकता है। भूत में जो हो चुका है, वर्तमान में जो घटित हो रहा है और भविष्य में जो घटित होगा, तपस्वीजन अपने तपोबल से उन घटनाओं को अपने हाथ के नख, अथवा हथेली पर धरे आमलक (आँवला) की भाँति देख सकते हैं। काल और देश की दूरी उनके लिये पूर्णतया लुप्त हो जाती है। विभिन्न देशों या कालों में जो कुछ हो चुका है, हो रहा है अथवा होने को है, वह सब उन के लिये गुप्त अथवा अज्ञात नहीं रहता है। कलकत्ता नगर के राजपंथ में कोई-कोई ऐसे विदेशी विद्वान समय-समय पर देखने में आते हैं, जो लोगों के अतीत को पूर्ण विवरण के साथ अनायास ही बता देते हैं। वे साधारण जन होते हैं। जब उन में ऐसी क्षमता देखी जाती है, तब जो लोग विधि पूर्वक तपस्या करके शक्ति प्राप्त कर लेते हैं, अन्तर्दृष्टि पा लेते हैं, ऐसे मनुष्यों में भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान को जान लेने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है - इस में संदेह क्या होगा ? हमारे शास्त्रों में जो भविष्यवाणियाँ पाई जाती हैं, शास्त्रकार अपने तपोबल के प्रभाव से ही उन्हें शास्त्रों में लिख गये हैं। यह सुन कर तुम अत्यन्त विस्मित होगे कि भविष्य पुराण में भगवान् वेदव्यास इस शक्ति के प्रभाव से ही विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त, शिवाजी आदि हिन्दू राजा, बाबर, हुमायूं, अकबर आदि मुसलमान सम्राट भारतवर्ष में उत्पन्न होकर राज करेंगे; मानसिंह,

बीरबल, तानसेन आदि अकबर के सभासद होंगे; शंकराचार्य, रामानुज, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य प्रभृति महापुरुष उत्तरकाल में इस देश में प्रादुर्भूत होकर धर्म का प्रचार करेंगे, यह सब कुछ लिख गये हैं। यहां तक कि भारत में अंग्रेजों के शासन की बात भी लिखी है।

अब तुम्हारे दूसरे प्रश्न की बात। सम्मुख युद्ध में प्राण त्यागने से दुर्योधन स्वर्ग गया था, इस से उस के जीवन भर में किये हुए पाप नष्ट नहीं हुए थे। पाप पुण्यों का हिसाब जमा खर्च के तरीके से नहीं होता। मनुष्य अपने किये हुए पापों और पुण्यों दोनों का फल भोगता है। जिनके पुण्य अधिक होते हैं, पाप कम संख्या में अल्प होते हैं, उन्हें पाप का भोग पहिले और बाद में पुण्य का भोग मिलता है। जिन के पुण्य अल्प और पाप अधिक होते हैं, उन्हें पुण्य का भोग-भोग चुकने पर पाप का भोग मिलता है। दुर्योधन के पुण्य अल्प और पाप अधिक थे, इसलिये उसे पुण्य का भोग पहिले मिला था। पुण्य भोगने के बाद उसे पापों का भोग भोगना पड़ा था। जिन कर्मों का परिणाम अल्प होता है, उनका फल भोग पहिले, जिनका परिणाम अधिक होता है उनका भोग पीछे मिलता है। महाभारत में स्वर्गारोहण पर्व में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि द्वारा नरक-दर्शन का विवरण पढ़ने से यह भली प्रकार ज्ञात हो सकता है।

शास्त्रों में भूल नहीं, इस संबंध में तुम्हें और भी कुछ कहता हूं, ध्यान देकर सुनो। आजकल जो ग्रन्थ लिखे जाते हैं, वे किसी विषय पर विचार-विमर्श करके अथवा उस विषय को किसी दूसरे से सुन कर लिखे जाते हैं। अतः वे भ्रांति रहित नहीं हो सकते। कारण, मनुष्य मात्र ही अपूर्ण है, भ्रम-प्रमाद से युक्त है। अतः सभी मनुष्यों के विचार, उनकी युक्तियाँ, मीमांसा पद्धति भ्रान्त, अपूर्ण और सीमित होती हैं। जो ग्रन्थ भ्रमपूर्ण, अपूर्ण और सीमित ज्ञान से ही उत्पन्न हों, वे भला भ्रांति रहित कैसे होंगे ? अतः आज जिनको सत्य मानकर प्रमाणित किया जाता है, कुछ भी दिन बीत नहीं पाते और वे भ्रांत व अप्रमाणित कर छोड़ दिये जाते हैं। जो सत्य कह कर प्रचार में लाये गये थे, आज के समय में उन्हीं को भ्रमपूर्ण कहा जाता है। शास्त्रों के ग्रंथ इस प्रणाली से नहीं रचे गये। हमारे कोई-कोई शास्त्र तो सर्व शक्तिमान सर्वज्ञ भगवान् से ही उत्पन्न हुए हैं, जैसे वेद। कोई कोई शास्त्र तपोबल से प्राप्त दिव्यज्ञान युक्त

ऋषियों द्वारा समाधि से प्राप्त प्रत्यक्ष दिव्यज्ञान से उत्पन्न हुए हैं। उदाहरण के लिये दो शास्त्र ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है। एक रामायण, दूसरा श्रीमद्‌भागवत। आदि कवि बाल्मीकि ने देवर्षि नारद के मुख से रामायण की मूल कथा को जान कर नारदजी के उपदेश से समाधि लगाई। तब रामायण की समस्त घटनावली महर्षि बाल्मीकि की दिव्य-दृष्टि के आगे प्रत्यक्ष की भाँति ही प्रकट हो गयी। दिव्य-दृष्टि द्वारा समस्त रामायण की घटनाओं का प्रत्यक्ष दर्शन करने के बाद ही महर्षि ने ग्रंथ में उनका वर्णन किया है। अत: उसमें भूल-चूक का होना अत्यन्त असंभव है। श्रीमद्‌भागवत की उत्पत्ति भी इसी प्रकार से हुई थी। देवर्षि नारद के उपदेश से भगवान वेदव्यासजी ने समाधि लगाई, तब समस्त तत्त्व उनके दिव्य चक्षुओं के आगे प्रकट हुए। वे ही तत्त्व उन्होंने ग्रन्थ में लिपिबद्ध कर दिये। इस रीति से श्रीमद्‌भागवत की रचना हुई थी।

शिष्य - आप ऋषियों को सर्वज्ञ और दिव्यज्ञान युक्त कहते हैं। क्या भगवान को छोड़ कर दूसरा कोई सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो सकता है ?

गुरु - हाँ, हो सकता है। श्रुति का वचन है -

''स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति॥''

मुण्डक उपनिषद 3/2/9

जो ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।

जरा विचार करो, गंगा का एक बिन्दु जल जब सागर के जल के साथ मिल जाता है, तब वह गंगा का जल-बिन्दु सागर का जल ही हो जाता है। सागर जल के समस्त गुण-धर्म गंगा जल में संक्रमण कर गंगा जल को सागर जल में परिणत कर देते हैं। इसी प्रकार जब कोई साधक तपोबल से माया के बन्धनों से छूट कर, ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है, ब्रह्म को जान लेता है, तो वह भी ब्रह्म के निखिल गुणों को, समस्त धर्मों को पा लेता है। तब वह ब्रह्म में मिलकर ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। उसका ज्ञान, उसकी इच्छा ब्रह्म के ज्ञान एवं इच्छा से मिलकर एक हो जाती है। तब जगत की कोई भी घटना उससे अज्ञात अथवा अदृष्ट नहीं रहती है। वह जब भी जो कुछ जानना चाहता है तभी उसे जान लेता है।

लोहे का एक टुकडा आग में डाल कर रखने पर जब अग्नि जैसा ही हो जाता है, तब अग्नि में तपाने-जलाने के जो गुण हैं, वे सभी उस लौह-दण्ड में संक्रान्त हो जाते हैं। अग्नि तुल्य वह टुकड़ा तब समस्त पदार्थों को दग्ध कर सकता है। इसी प्रकार, साधक जब ब्रह्मीभूत हो जाता है तब ब्रह्म में जो सर्वज्ञता सर्वदर्शिता आदि गुण और धर्म हैं, वे साधक में भी संक्रमित हो जाते हैं। इस प्रकार वह ब्रह्म की भाँति सब कुछ जान सकता है, सब कुछ देख सकता है। स्थान और काल उसके ज्ञान में प्रतिबंधक नहीं होते। प्रत्यक्ष में हो रही घटनाओं की भाँति, भूत और भविष्य की घटनायें भी उसे पूर्णतया परिज्ञात होती रहती हैं। हम लोगों के चर्म-चक्षुओं द्वारा दृष्ट घटनाओं के ज्ञान में भूल-चूक भले ही हो जाये, परन्तु ब्रह्मज्ञानी साधक अपने दिव्यज्ञान से जिन घटनाओं को प्रत्यक्ष कर पाता है अथवा जिनका बोध कर पाता है, उनमें कोई भ्रम या प्रमाद नहीं हो सकता। ब्रह्म का ज्ञान पूर्णरूप से भ्रान्ति रहित है। अत: उस अभ्रान्त ज्ञान के साथ मिलकर जिसका ज्ञान एक ओर अद्वैत हो गया है, उसके ज्ञान में भूल-चूक का होना नितान्त असंभव है। इस प्रकार के ज्ञान से जो शास्त्र उद्‌भूत होते हैं, वे निश्चित रूप से सत्य, संपूर्ण और अभ्रान्त ही होंगे। ये सब बातें शायद तुम्हें विश्वास के योग्य नहीं जान पड़ेंगी, परन्तु वास्तव में ये विश्वास के अयोग्य नहीं। हम लोग जो कुछ समझ नहीं पाते अथवा अपने मन में जिसकी कल्पना नहीं कर सकते, वैसी अलौकिक घटनायें अथवा कार्य घटित नहीं हुए, अथवा घटित नहीं हो सकते, ऐसी बातें मत सोचो। इस जड़ जगत के अलावा ऐसे अनेक तत्त्व हैं जिनका परिचय पाने के लिये कठोर तपस्या की आवश्यकता होती है। पुस्तकों के पाठ से अथवा गम्भीर विचार-विमर्श द्वारा उन सब तत्त्वों का ज्ञान पाना अथवा इन्द्रियातीत विषयों का बोध प्राप्त करना सम्भव नहीं। हमारे पूजनीय ऋषियों ने अपनी साधना के बल से, तप के प्रभाव से ही, उन इन्द्रियातीत विषयों का ज्ञान प्राप्त किया था। इन्द्रियों से अगोचर वे सब तत्त्व उनके निकट प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हुए थे। वे लोग तपस्या-लब्ध शक्ति द्वारा ही अतीत और भविष्य की घटनाओं को वर्तमान की तरह प्रत्यक्ष देख कर ही लिख गये हैं। उनके द्वारा आविष्कृत घटनायें अथवा तत्त्व हमारे ज्ञान में कैसे ही अलौकिक

अथवा असम्भव क्यों न लगें, वे सब वस्तुत: सत्य हैं। तपस्या के लिये असाध्य कुछ नहीं। आजकल के विद्वान और लेखक केवल मात्र चिन्तन, विमर्श और बुद्धि द्वारा ही सब तत्त्वों को अवगत करने का यत्न करते हैं। ये लोग पहिले तो जानते ही नहीं कि इन्द्रियातीत तत्त्वों को जानने का एक मात्र उपाय है-तपस्या और कहने पर भी विश्वास नहीं करते। पाश्चात्य देशों के विद्वान् तो तपस्या आदि जो सत्त्वगुण के कार्य हैं, उनकी कल्पना अथवा विश्वास करने में भी बिल्कुल असमर्थ हैं। अत: अध्यात्म जगत् के किसी तत्त्व को समझने में असमर्थ होकर, ऋषिगण अपने तपोबल से जिन इन्द्रियातीत तत्त्वों को प्रकाशित कर गये हैं, वे लोग उन अमूल्य सत्य तत्त्वों को काल्पनिक, सारहीन एवं भ्रांतिपूर्ण कह कर उड़ा देते हैं। जो कोई विशेष कृपा-दृष्टि करते हैं, वे कहते हैं, कि ये सब रूपकमात्र हैं। परन्तु वे कल्पना नहीं, भ्रम नहीं, रूपक भी नहीं; वे हैं - वास्तविक सत्य।

एक पुस्तक में मैंने पढ़ा था, ग्रीष्म प्रधान देश का कोई निवासी किसी ठंडे देश में भ्रमण करने गया। वहाँ उसने बर्फ देखी और वहाँ से लौटकर अपने देश के राजा के आगे उसने उसका बखान किया। राजा ने बर्फ कभी देखी नहीं थी। अत: उसने उसके कथन में विश्वास नहीं किया। बात यहाँ तक बढ़ी कि राजा ने उस पुरुष को मिथ्यावादी मान कर प्राणदण्ड दे दिया। राजा ने कभी बर्फ देखी नहीं थी और बर्फ नामक पदार्थ के अस्तित्व का भी उसे ज्ञान नहीं था, इससे क्या यह मान लिया जाये कि बर्फ नामक वस्तु की सत्ता ही नहीं। आजकल के लोग शास्त्रोक्त तथ्यों से अनभिज्ञ हैं, इसी कारण से क्या उन्हें अस्वीकार करना होगा ? तामसी प्रकृति के पुरुषों की विशेषता यही है कि वे लोग अपने मन में जिस वस्तु की धारणा नहीं कर पाते, उसे असत्य कह कर उड़ा देते हैं। वे लोग जहाँ तक जानते हैं, उससे आगे इस जगत में और भी कुछ है, अथवा हो भी सकता है, यह विश्वास नहीं कर पाते। उनकी तामसी प्रकृति उन्हें ऐसा विश्वास नहीं करने देती।

तुम हरिदास साधु के वृत्तान्त को जानते हो ? नहीं जानते तो 'हरिदास साधु' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसे पढ़ कर जान सकते हो। जब महाराजा **रणजीतसिंह पंजाब में** राज्य करते थे तब

हरिदास साधु पंजाब गया था। वह समाधि लगा कर अनेक दिनों तक भूमि के नीचे वास कर सकता था। महाराजा रणजीतसिंह ने यह बात सुन कर साधु को इस कार्य के लिये सम्मत कर, उसे एक बक्स के भीतर बन्द कर दिया। बक्स को अपने सामने ताला लगा कर, उस पर अपनी मोहर लगाई और मिट्टी के नीचे गाड़ दिया। बक्स की चाबी अपने पास रख ली। जिस स्थान पर बक्स को भू-गर्भ किया था वहाँ संत्रियों के पहरे का प्रबन्ध कर दिया था। इस प्रकार से चालीस दिन बीत जाने पर साधु को बाहर निकालने पर देखा तो साधु मरा जैसा था। वहाँ अनेक अंग्रेज उपस्थित थे। उनमें एक दो डाक्टर भी थे। उन्होंने साधु की परीक्षा कर कहा - ''यह मृत हो चुका है, कुछ भी करो, यह पुनः जीवित नहीं हो सकता।'' इसके अनन्तर साधु के शिष्यों द्वारा अनेक प्रक्रियायें करने पर साधु चैतन्य हो गये। उपस्थित जन, और विशेष कर अंग्रेज लोग अत्यन्त विस्मित हुये। यह जो ऐतिहासिक यथार्थ घटना लिपिबद्ध की गयी है, क्या इसे अलौकिक कह कर अस्वीकार किया जा सकता है? ऐसी अवस्था में यही विचार करना उचित है कि इस जगत में कुछ भी विलक्षण अथवा अलौकिक नहीं। हम अपनी क्षुद्र बुद्धि से अलौकिक घटनाओं को अवगत नहीं कर पाते। पूर्णतया अनुसंधान करने पर हरिदास साधु की घटना की भाँति अनेक आश्चर्य समझ में आ जायेंगे।

कल्प और मन्वन्तर

शिष्य - यदि शास्त्र सब भ्रम - रहित हैं, तो उनमें अनेकता क्यों? रामायण के अनेक वृतान्त , शकुन्तला के उपाख्यान की अनेक घटनायें जो भिन्न भिन्न पुराणों में विभिन्न रूप से मिलती हैं, इसका कारण क्या है ? गुरु - इसका कारण यह है कि शास्त्रों के रचयिता विभिन्न कल्पों की घटनाओं को दिव्य दृष्टि द्वारा देखकर भिन्न भिन्न शास्त्रों में लिख गये हैं। घटनाओं में विभिन्नता का हेतु यही है। देखो, दुर्गासप्तशती में जिन घटनाओं का वर्णन है वे स्वारोचिष मन्वन्तर में घटित हुई थीं। आजकल वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। वैवस्वत मन्वन्तर के व्यासदेव ने वह वृत्तान्त लिखा है। देखो, ब्रह्माण्ड और पद्म

दोनों पुराणों में रामावतार की कथा है। जब यह देखें कि दोनों पुराणों में वर्णन की हुई रामावतार की कथाओं में कुछ कुछ भिन्नता है, तो यह समझना चाहिए कि व्यासदेवजी दो विभिन्न कल्पों के रामावतारों के वृत्तान्तों को दिव्य दृष्टि से साक्षात्कार कर उन पुराणों में भिन्न रूप से लिख गये हैं। जहाँ भी घटनावृत्तों में विभिन्नता और वैषम्य दीखे, वहां वे विभिन्न विवरण भिन्न-भिन्न कल्पों के हैं, ऐसा विचारना चाहिए। इस सम्बन्ध में लघुभागवत् ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है।

शास्त्रों में कोई-कोई विषय किसी-किसी अंश में विभिन्न रूपों में है। जब किसी पुराणादि का दूसरे ग्रन्थ से वैषम्य दीखे तो वे सब पृथक पृथक कल्पों की कथाऐं हैं, यह कह कर विरोध का परिहार करना होगा। इस सिद्वान्त का आश्रय लेने से फिर किसी शास्त्र में परस्पर विरोध नहीं रहेगा।

शिष्य - कल्प की बात जो आपने कही है, उसे मैं अच्छी तरह से नहीं समझा। कल्प क्या चीज है ?

गुरु - कल्प समय का मान है। ऋषियों ने जिस प्रकार से काल के परिमाण निश्चित किये हैं, वह तुम्हें कहता हूँ। ऋषियों ने काल का विभाग इस प्रकार किया है:

एक बार में आँख के झपकने का नाम है--निमेष।

15 निमेष में	1 काष्ठा
30 काष्ठा में	1 कला
30 कला में	1 क्षण
12 क्षण में	1 मुहूर्त
30 मुहूर्त्त में	1 अहोरात्र
30 दिन में	1 मास
12 मास में	1 वर्ष
1728000 वर्ष में	सत्ययुग
1296000 वर्ष में	त्रेतायुग

864000 वर्ष में	द्वापर युग
432000 वर्ष में	कलियुग
4 मानवयुगों में	1 दैवयुग वा महायुग
71 3/7 महायुगों में	1 मन्वन्तर
1000 या 14 मन्वन्तरों में	1 कल्प वा ब्रह्मा का एक दिन
30 कल्पो में	ब्रह्मा का एक मास

ब्रह्मा के 360 दिनों अथवा कल्पों में ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। एसे 100 वर्ष ब्रह्मा की पूर्ण आयु होती है। ब्रह्मा के ऐसे100 वर्ष व्यतीत होने पर ब्रह्मा का लय होता है। उसी समय में प्रलय होती है। इसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। तदनन्तर नूतन ब्रह्मा प्रकट होकर फिर से सृष्टि रचते हैं। ब्रह्मा के 50 वर्षों को एक परार्ध कहते हैं। दो परार्ध ब्रह्मा की परमायु होती है। एक परार्ध का समय अर्थात ब्रह्मा के 50 वर्ष महाविष्णु का एक दिन होता है। दूसरा परार्ध रात्रि। एक मन्वन्तर काल तक एक इन्द्र का आधिपत्य रहता है। चौदह मन्वन्तरों में एक कल्प अथवा ब्रह्मा का दिन। अत: ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्रों का परिवर्तन हो जाता है।

मनुष्यों के एक वर्ष में देवताओं का एक दिन होता है। उत्तरायण देवाताओं का दिन और दक्षिणायन रात्रि होती है।

मनुष्यों के एक मास में पितृलोक का एक दिन बीतता है। कृष्णपक्ष रात्रि होती है।

चौदह मन्वन्तरों के नाम स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्ष-सावर्णि, ब्रह्म-सावर्णि, धर्म-सावर्णि, रूद्र-सावर्णि, देव-सावर्णि और इन्द्र-सावर्णि।

ब्रह्मा के एक मास में तीस कल्प होते हैं। उनके नाम-श्वेतवराह, नीललोहित, वामदेव, गाथान्तर, रौरव, प्राण, वृहत्, कंदर्प, सव्य, ईशान, ध्यान, सारस्वत, उदान, गारूड़, कौर्म, वारसिह, समाधि, आग्नेय, विष्णुज, वंश, सोमवंश, भावन, वैकुण्ठ, आर्चिष, वल्लीकल्प, रथान्तर, वैराज, गौरी, महेश्वर और पितृकल्प। इन तीस कल्पों में कौर्म कल्प ब्रह्मा की पूर्णिमा और पितृकल्प अमावस्या होती है।

छः ऋतु, बारह मास, सात बार, जैसै पुनः पुनः आवर्त्तित होते रहते हैं, वैसै ही चतुर्दश मन्वन्तर और तीस कल्प पुनः पुनः आवर्तन करते रहते हैं।

शास्त्र में कहा है-

युगान्तेऽन्तर्हिंतान् वेदान् सेतिहासान् मह्र्षय :।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥

प्रलय काल में इतिहास के सहित सम्पूर्ण वेद अन्तर्हित हो रहे थे। महर्षियों ने स्वयंभू के प्रसाद से और अपने तपोवल से उन्हें प्राप्त किया।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मार्कण्डेय के प्रति वज्र का प्रश्न-

य एते भगवता प्रोक्ता मनवश्च चतुर्दश ।
नित्यं ब्रह्म दिने प्राप्ते त एव क्रमाद्द्विज ॥

इस पर मार्कण्डेय जी का उत्तर

एत एव महाराज मनवश्च चतुर्दश ।
कल्पे कल्पे त्वया ज्ञेया नात्र कार्या विचारणा ।
एकरूपास्तथा प्रोक्ता ज्ञातव्याः सर्व एव हि ॥

वज्र का प्रश्न-हे द्विज ! आपने जो चौदह मनुओं के नाम कहे हैं, क्या ये प्रतिकल्प में पुनः पुनः उत्पन्न होते हैं अथवा अन्य कोई महात्मा मनु का पद ग्रहण करते हैं? मेरे इस संशय को निवृत कीजिये।

मार्कण्डेय जी का उत्तर :- ये ही चौदह मनु प्रत्येक कल्प में आविर्भूत होते हैं। इस विषय में तुम कुछ सन्देह मत करो। सब कल्पों में ऐसा ही होता है, यह जानो। जिस प्रकार वार, पक्ष, मास पुनः पुनः आवर्त्तन करते हैं, वैसे ही सब युग बारम्बार पुनरावर्त्तन करते हैं।

पद्मपुराण भूमिखण्ड अध्याय 23 में कहा है कि योगेश्वर विष्णु कल्प के अन्त में पूर्व की भांति समुदाय सृष्टि करते हैं। वेद, देवता और राजागण अपने पूर्व चरित्रों को लेकर पुनः प्रादुर्भूत होते हैं।

वेदान्त दर्शन में भगवान् वेदव्यास ने सृष्टि के सम्बन्ध में कहा है:

जैसै कपड़ा पहिले तन्तुरूप में सम्बेष्टित रहता है, वयन होने पर प्रसारित होता है, सृष्टि का भी इसी प्रकार प्रादुर्भाव होता है।

पहले जो कल्प और मन्वन्तर कहे हैं, उन प्रत्येक कल्प में शास्त्रों के प्रणेता ऋषिगण पृथ्वी में अवतार लेकर शास्त्रों को रचते हैं। इस रीति से प्रत्येक कल्प में पुराण आदि समस्त शास्त्र प्रणीत होते हैं। शास्त्रों में वर्णन की हुई घटनाओं में जो भेद पाये जाते हैं, उन का हेतु यही है कि भिन्न भिन्न कल्पों की घटनावलियों के विवरण जैसै थे वैसे वहां दिये गये हैं। पाश्चात्य देशों के विद्वान और हमारे देशी भाई जो उन के शिष्य हैं, इस सिद्धान्त को न जान कर बहुत गड़बड़ करते हैं। महर्षि वेदव्यास ने विभिन्न कल्पों की घटनाओं को विभिन्न पुराणों में वर्णन किया है। इस सिद्धांत को ध्यान में रख कर यदि ये लोग देखें तो शास्त्रों के विषय में किसी प्रकार भी भ्रान्ति में न पड़ कर एक निश्चित सिद्धान्त पर पहुँच जायें। शास्त्रों में भी इस सिद्धान्त का उल्लेख है परन्तु तमोगुणी पाश्चात्य विधा उन विद्वानों को यह बात समझने ही नहीं देती।

विभिन्न कल्पों की घटनायें पृथक्-पृथक् शास्त्रों में लिखी जाने पर घटना विवरणों में कुछ कुछ भिन्नता हो जाती है इस तथ्य को गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में विशद्रूप से दर्शाया है। प्रतिकल्प वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें त्रेता युग में भगवान राम अवतार ग्रहण करते हैं। श्रीरामचन्द्र का वनवास, रावण द्वारा सीता का अपहरण, रावण वध, सीता वनवास, ये सभी घटनायें घटित होती हैं। सभी त्रेतायुगों की इन घटनाओं में एकरूपता होने पर भी व्यष्टि रूप में कुछ-कुछ पृथकता हो जाती है।

एक त्रेता युग में बैकुण्ठ के द्वारपाल जय और विजय सनक ऋषि के श्राप से रावण और कुम्भकर्ण होकर जन्म ग्रहण करते हैं। दूसरे त्रेता युग में जलन्धर दैत्य रावण होकर जन्म लेता है। जलन्धर की पत्नी के शाप को अंगीकार कर भगवान रामावतार लेते हैं और रावण रूपी जलन्धर दैत्य के साथ युद्ध कर उसका वध करते हैं। अन्य त्रेता युग में रुद्र के दो गणों ने देवर्षि नारद के शाप से रावण और कुम्भकर्ण के रूप में जन्म लिया। उसी युग में देवर्षि नारद द्वारा भगवान को 'तुम मानुष जन्म पाओ'' यह शाप देने से भगवान ने रामावतार लिया। अन्य एक त्रेता में स्वायम्भुव मनु और उन की पत्नी शतरूपा की प्रार्थना पर उन के घर में पुत्र जन्म स्वीकार कर रामावतार ग्रहण किया था। इस प्रकार

तुलसीदास जी ने और भी रामावतार के वृत्तांत और रावण कुम्भकर्ण के अनेक जन्मों के वर्णन अपनी रामायण में दिये हैं। उन सब का उल्लेख यहां नही किया जाता है। इतने से ही तुम समझ सकते हो।

महाप्रभु चैतन्यदेव के सम्बन्ध में भी हम यही देखते हैं। श्री चैतन्य-भागवत् ग्रन्थ में उस का उल्लेख है। सन्यास ग्रहण करते समय उन्होंने अपनी माता शची देवी को कहा था।

''आगामी दो जन्मों में भी इस संकीर्तन धर्म के प्रचार के लिये मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा निकट भविष्य में।''

मध्य खण्ड अध्याय 26

परम पूजनीय श्रीमद्विजयकृष्ण गोस्वामी और वृन्दावन-वासी परलोकगत महापुरुष श्रीमत् गौरकिशोरदास (पूर्व नाम गौरचन्द्र- शिरोमणि) ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार से की है कि आगामी दो कलियुगों के आने पर श्रीमान् महाप्रभु फिर शची देवी के गर्भ में जन्म ग्रहण कर संकीर्तन धर्म का प्रचार करेंगे। इस प्रकार शास्त्रों में अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि प्रत्येक कल्प में, मन्वन्तर में और प्रत्येक युग में जो कार्य होते हैं वे समष्टिरूप में समान होते हुए भी व्यष्टिरूप में कुछ कुछ भिन्नता लिये होते हैं।

शिष्य - आपने समय के सम्बन्ध में जो कहा है उसे मैं हृदयंगम नहीं कर पाता। और क्या इस प्रकार होना सम्भव है ?

गुरु - असम्भव कौन सी बात है ? भगवान अनन्त हैं। अनन्त का अर्थ यह नहीं कि भगवान केवल भविष्य की ओर ही अनन्त हैं, अतीत की ओर अनन्त नहीं, ऐसी बात नहीं। वे भगवान जैसे भविष्य की ओर अनन्त हैं अतीत की ओर भी वैसे ही अनन्त हैं। ऐसी स्थिति में काल भी तो अनन्त है, वह भविष्यत् और अतीत दोनों दिशाओं में अनन्त है। अतः यह स्वीकार करना होगा कि अनन्त काल व्यतीत हो गया है। असंख्य सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि बीत चुके हैं। नहीं तो भगवान और काल अतीत की ओर शान्त ओर सीमित हो जायेंगे। पाश्चात्य पण्डित इस विषय में बहुत गड़बड़ करते हैं। उनमें अनेक तो बाईबल को मानते नहीं परन्तु वे अतीत के विषय में बाईबल के मत को अनुसरण कर समस्त

घटनाओ को छः हजार वर्षों के अन्दर ही डालना चाहते हैं। बाईबल के मत से कुछ कम छः हजार वर्ष पहले पृथ्वी रची गयी थी। उनकी सब मिलाकर पूंजी छः हजार वर्ष हैं।

विल्सन साहिब ने हमारे पुराणों का जो समय बताया है उसको पढकर हँसी रोके नहीं रुकती। उनके मत से श्रीमद्भागवत ईसा की तेरहवीं शताब्दी में रचा गया था। अन्य पुराणों और भागवत के सम्बन्ध में उन्होंने जो समय बताया है वह पूर्णतया भ्रान्त है। अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक महाकवि कालिदास द्वारा रचित है, यह सभी जानते हैं। कालिदास ने पद्मपुराणोक्त शकुन्तला उपाख्यान के आधार पर अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक रचना की थी। महाभारत में भी शकुन्तला उपाख्यान है जरूर, परन्तु पद्मपुराणोक्त शकुन्तला उपाख्यान में दुर्वासा का शाप, अभिज्ञान द्वारा शाप का अन्त, अप्सरा तीर्थ में अंगूठी का गिरना ये सब वृत्तान्त हैं। महाभारत के शकुन्तला उपाख्यान में ये सब नहीं। कालिदास ने पद्मपुराण से ही सब वृतान्त लिये हैं और उन्होने अपने रघुवंश नामक प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ की घटनावली भी पद्मपुराण से ली है। विल्सन साहिब ने तेरहवीं से सोलहवीं शताब्दी पद्मपुराण का समय कहा है, परन्तु कालिदास त्रयोदश शताब्दी से बहुत पहिले के हैं। जर्मन पण्डित लासन साहिब के मत से वे दूसरी शताब्दी के, वेबर साहिब के मत से चौथी शताब्दी के कर्न, मैक्समूलर, डाक्टर रामदास और डाक्टर भाऊ दास जी के मत से छठी शताब्दी के हैं। द्वितीय, चतुर्थ अथवा षष्ठ शताब्दी के आदमी होकर उन्होंने त्रयोदश शताब्दी अथवा उससे परवर्ती समय में विरचित पद्मपुराण से अपने अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक और रघुवंश के उपाख्यान कैसे संग्रहित किये, यह समझ में नहीं आता। इस प्रकार पश्चिम देशों के विद्वान् हमारे शास्त्रों के विषय में जिसको जो अच्छा लगता है, बिना विचारे कह देते हैं। इस देश के विद्वानों की ऐसी घोर दुर्दशा है और ऐसा अध:पतन हो गया है कि वे बिना विचार किये उन लोगों के वचनों को स्वीकार कर लेते हैं। हमारे देश के एक विद्वान महाशय ने मनुसंहिता ईसा की बारहवीं वा तेरहवीं शताब्दी में लिखी गयी थी यह कहने में कुछ भी संकोच अनुभव नहीं किया। सब को ज्ञात है कि मनुसंहिता सत्ययुग की स्मृति है।

कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः ।
द्वापरे शंखलिखितौ कलौ पाराशरः स्मृतः ॥

पराशर संहिता ।

मनुसंहिता की व्यवस्था अनुसार सत्ययुग में सभी धर्म कार्यों का निर्वाह होता था। मनुसंहिता सत्ययुग की, गौतमसंहिता त्रेतायुग की, शंखलिखित स्मृति द्वापरयुग की और पराशर संहिता कलियुग की स्मृति है- यह बात हमारे शास्त्रो में लिखी है। मनु के अनुशासन के अनुसार सत्ययुग, गौतम संहिता के अनुशासन के अनुसार त्रेतायुग, शंख संहिता के अनुशासन के अनुसार द्वापर और पराशर संहिता के अनुसार कलियुग में सब राज कार्य और समाज कार्य चलते थे। सत्य,त्रेता आदि चारों युगों में धर्म, समाज आदि के जितने भी कार्य होते थे वे उल्लिखित चारों स्मृतियों के मतानुसार ही सम्पन्न होते थे और हो रहे हैं। अब विचार कर देखिए, मनु संहिता यदि सत्ययुग की स्मृति और धर्म शास्त्र था तो कलियुग के तीन-चार हजार वर्ष बीतने पर वह कैसे रची गयी ? पहले ही कहा है कि मनुसंहिता सत्ययुग की स्मृति है। यह शास्त्र में भी उल्लिखित है। शास्त्र के ये वचन क्या मिथ्या हैं ? क्या शास्त्रकार ऐसी बातें लिख गये हैं जिसका सिर पैर नहीं ? क्या उनकी बातों को हमारे देश के विद्वान नहीं समझते ? समझते हैं केवल पश्चिमी विद्वान ? तुम्हें पहले ही कहा है कि हमारे शास्त्रों को, हमारे धर्म को समझने की क्षमता पाश्चात्य जाति में बिल्कुल ही नहीं। जिनका जन्म, आहार और विहार सब कुछ ही तामसिक है, वे ब्रह्मज्ञानयुक्त ऋषियों के वाक्यों को, स्मृतिपुराण आदि को, वेदों को समझ सकें; यह किसी भी अवस्था में सम्भव नहीं। हमारा यह मत पढ़कर, संभव है, अनेक जन असन्तुष्ट हों। परन्तु जिन लोगों के शरीरों में ऋषियों का पावन रक्त प्रवाहित हो रहा है, जो हिन्दू-धर्म और हिन्दू-शास्त्रों की अलौकिकता से परिचित हैं, जो सात्विक प्रकृति के हैं, वे मेरे इस मत से प्रसन्न नहीं तो, असंतुष्ट कभी नहीं होंगे। ऋषिगण शास्त्रों में मिथ्या अथवा काल्पनिक बातें लिख गये हैं- यह बात कोई भी हिन्दू सन्तान स्वीकार नहीं कर सकता है, न कह सकता है।

सृष्टि के विषय में

शिष्य - शास्त्रों में प्रतिपादित तत्त्व मैं भली प्रकार समझ नहीं पाता। आप कृपा कर उन्हें समझा दीजिए।

गुरु - तुम एक-एक करके पूछो।

शिष्य- सृष्टि किस प्रकार से उत्पन्न हुई थी ? कृपा कर यह समझाईये ।

गुरु - सृष्टि की उत्पत्ति का विषय नितान्त जटिल है। अच्छी तरह से इसको समझाना भी अतिशय कठिन है। तो भी सृष्टि के सम्बन्ध में शास्त्रों में जो कुछ है, संक्षेप में तुम्हें बताता हूं । सृष्टि के विषय में सांख्य दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल ने जो कुछ प्रतिपादित किया है, सभी शास्त्रों ने उसका समर्थन किया है। सृष्टि के विषय में उन्हीं का मत प्रमाण माना जाता है। भगवान ने गीता में सांख्य मत की प्रधानता स्वीकार की है।

भगवान् कपिल के मत में सृष्टि के पहिले एकमात्र परमेश्वर और उनकी मूल प्रकृति वर्तमान थी। सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की अनन्त शक्तियों में एक शक्ति है - प्रकृति अथवा माया । ऋषियों ने प्रकृति को अनिर्वचनीय कहा है। वे कहते हैं प्रकृति के विषय में बहुत कुछ जाना नहीं जा सकता। केवल इतना ही ज्ञात हो सकता है कि सत्व, रजः और तमः ये तीन गुण प्रकृति में विद्यमान हैं। प्रकृति के अलावा परमेश्वर की और एक शक्ति है, उसे क्षेत्रज्ञ शक्ति कहते हैं। गीता में इस शक्ति को जीवशक्ति कहा है। यह जीवशक्ति ही सांख्यदर्शन का पुरुष है।

सत्वरजस्तमः इत्येवैषा प्रकृति् ः सदा।

सत्व रजः और तमः इन तीनों पदार्थों के सम्मिलन का नाम प्रकृति है।

''सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।''

सत्व, रज और तमो गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।

प्रकृति जब क्रियाशून्यावस्था में रहती है, कार्य रहित स्थिति में होती है, तब सत्व, रजः और तमः ये तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं

- एक ही परिमाण में होते हैं।

सत्व, रजः और तमः इन तीनों गुणो में सत्व गुण लघु, हल्का (ऊपर उठने वाला) प्रकाश स्वभाव का और सुखरूप है। रजोगुण उपष्टम्भक (अर्थात उत्तेजक, प्रेरक, कार्योन्मुख करने के स्वभाव का) गतिशील और दुःखात्मक है। तमोगुण आच्छन्न करने वाला और मोह में डालने वाला है। निद्रा, आलस्य और मूढता तमोगुण के फल हैं। सत्व गुण का वर्ण श्वेत, रजो गुण लाल और तमः कृष्ण वर्ण होता है।

परमेश्वर की सृष्टि रचना की ईच्छा होने पर वे अपनी माया शक्ति में चैतन्यरूप वीर्य का आधान कर उसे क्षुभित करते हैं। परमेश्वर द्वारा प्रकृति को क्षुब्ध करने पर, उसमें वीर्याधान करने पर, प्रकृति में विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है। तब वह सृष्टि के कार्य में लग जाती है।

''दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ।
आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥''

जीवों के अदृष्टों के हेतु से प्रकृतिगत गुणों में क्षोभ होने पर परम पुरुष ने उस प्रकृति में अपने वीर्य अर्थात् चित् शक्ति को निवेशित किया। उससे हिरण्मय महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई।

भगवान की प्रेरणा से प्रकृति जब सृष्टि रचना में प्रवृत होती है तब उसमें एक प्रकार का परिणाम, विकार और परिवर्तन होने लगता है। प्रकृति में परिवर्तन होने से, उससे विकार होने से सत्व आदि तीनों गुण जो प्रकृति की निष्क्रिय अवस्था में, कार्यशून्य अवस्था में साम्य भाव में थे, उनमें विषमता होने लगती है। तीनों गुणों में विषमता होने पर, एक गुण दूसरे को अभिभूत कर लेता हैं। तब सृष्टि का कार्य होने लगता है। प्रकृति में परिणाम होने से उसमें विकृति होती है। प्रकृति के प्रथम परिणाम अथवा विकृति का नाम है महत्तत्त्व। महत्तत्त्व का दूसरा नाम है बुद्धितत्व।

यह बुद्धितत्व अथवा महत्तत्त्व समष्टि और व्यष्टि भेद से दो प्रकार का है। ब्रह्माण्ड के समस्त अखण्ड बुद्धितत्व को समष्टि बुद्धितत्व और प्रत्येक पुरुष अथवा जीव में जो बुद्धितत्व है उसे व्यष्टि बुद्धितत्व कहते हैं। इसका दृष्टान्त सरोवर के जल से दिया जा सकता है। बिन्दु-बिन्दु

जल की समष्टि को एकत्रित करने से सरोवर की समष्टि जल राशि बनती हैं। सरोवर का समस्त जल वा जलराशि समष्टि जल और वही बिन्दु-बिन्दु जल हुआ व्यष्टि जल। इसी प्रकार जगत का समस्त बुद्धितत्व, एक अखण्ड बुद्धितत्व हुआ समष्टि बुद्धितत्व, इसी प्रकार प्रत्येक जीव का बुद्धितत्व हुआ व्यष्टि बुद्धितत्व। इन समष्टि और व्यष्टि बुद्धितत्वों के अलग-अलग अधिष्ठाता देवता हैं। प्रकृति जड़ स्वभाव की और चेतनाशून्य है, भगवान जब उसमें चैतन्य निवेशित कर उसे क्षुभित करते हैं तब वह प्रकृति सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होती है। भगवान प्रकृति में चैतन्य निवेशित करते हैं इसका अर्थ यह है कि भगवान स्वयं प्रकृति पर अधिष्ठित हो कर, प्रकृति के अन्तर में निविष्टि होकर उसे चैतन्यमयी करते हैं। जैसे रथ का सारथी रथ पर चढ़कर अपनी इच्छा अनुसार रथ को चलाता है, उसे नियन्त्रित करता है, भगवान भी उसी भांति प्रकृति पर अधिष्ठित होकर, प्रकृति के नियन्ता सम्पन्न होकर, उसके द्वारा सृष्टि कार्य कराते हैं। यदि भगवान प्रकृति पर अधिष्ठित होकर न रहें, सारथी की भांति उसे परिचालित और नियन्त्रित न करें, तो ऐसी स्थिति में उनका सृष्टि कार्य नियमित और श्रृंखलाबद्ध नहीं होगा। सृष्टि के कार्यों को ध्यान से देखने पर प्रत्येक कार्य में सुज्ञान का परिचय पाया जाता हैं। उसमें जो चैतन्य का विकास देखा जाता है, ज्ञानमय भगवान् की चैतन्यशक्ति का उस प्रकृति में निहित होना ही इसका एकमात्र हेतु है। भगवान की जो चैतन्यशक्ति प्रकृति में विनिष्ट होकर उसे नियन्त्रित कर रही है- सृष्टि रचना में प्रेरित कर रही है, वही भगवान की चैतन्यशक्ति उसकी अधिष्ठात्री देवता है। जगत् के प्रत्येक पदार्थ के अन्तर में भगवान की चैतन्यशक्ति स्थित होकर, उस पदार्थ को परिचालित और नियन्त्रित करती है। प्रत्येक पदार्थ के अन्तर में स्थित वह चैतन्यशक्ति उन पदार्थों की अधिष्ठात्री देवता होती है। इन समस्त देवताओं के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् ध्यान, विग्रह और प्रतीक हैं। जीवित शंख तो तुमने देखा है? ऊपर कठोर खोल होता है, उसके अन्दर सजीव प्राणी अन्दर में बैठा होता है। यह प्राणी अपने ऊपर के खोल को इच्छानुसार चलाता है। पदार्थों के अन्तर में स्थित चैतन्य शक्ति (अधिष्ठात्री देवता) भी वैसे ही कार्य करती है।

गङ्गा नदी है। उसकी जल राशि प्रवाहित हो कर समुद्र में पहुँचती है। यह जलराशि अचेतन पदार्थ है। परन्तु उस अचेतन जलराशि के अन्तर में सचेतन देवता का वास है। उस देवता का ध्यान, प्रतीक और मूर्ति है। हमारे देश में गङ्गादशहरा के दिन जो गङ्गाकी पूजा की जाती है, वह अचेतन जड़ की पूजा नहीं, गंगा में बहते हुए जड़- पदार्थ जल की कोई पूजा नहीं करता। जल के अन्तर में जो चैतन्यमयी देवता विद्यमान है उसी की पूजा करते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ के भीतर उसका अधिदैवत अंश रहता है। समस्त जड़ पदार्थों के दो अंश हैं-अधिभूत अंश और अधिदैव अंश। हम लोग केवल अधिभूत अंश को देख पाते हैं, अधिदैव हमारी दृष्टि में नहीं आता।

पूर्व में जो समष्टि और व्यष्टि बुद्धितत्वों की बात कही है, उन दोनों प्रकार के बुद्धितत्वों में उनकी अधिश्ठात्री शक्ति वर्तमान रहती है, वे दोनो प्रकार के बुद्धितत्वों के अन्तर में स्थित हो कर उन्हें परिचालित, नियन्त्रित एवं श्रृंखलाबद्ध करती है। उन दोनों देवताओं के नाम हैं-ईश्वर और प्राज्ञ। समष्टि बुद्धितत्व की अधिष्ठात्री देवता का नाम है ईश्वर, और व्यष्टि बुद्धितत्व देवता का नाम है - प्राज्ञ।

महत्तत्व में परिणाम होने पर अहंत्तत्व ,अहंत्तत्व में विकृति होने पर पञ्चतन्मात्रा अथवा परमाणु, पञ्चतन्मात्राओं में परिवर्तन होने पर सूक्ष्मभूत, सूक्ष्मभूतों में परिवर्तन होने पर स्थूल पञ्चभूत उत्पन्न होते हैं। स्थूलभूत ही यह दृश्यमान जगत् है। ये स्थूलभूत भी समष्टि और व्यष्टि भेद से दो प्रकार के होते हैं, इनके भी पृथक्-पृथक् अधिष्ठात्री देवता हैं। उन के नाम हैं-हिरण्यगर्भ, वैश्वानर और विश्व। यह जो ईश्वर प्राज्ञ, हिरण्यगर्भ आदि सब देवताओं के नाम कहे हैं, उन में ईश्वर और प्राज्ञ कारण शरीर अथवा आनन्दमय कोष के देवता हैं, हिरण्यगर्भ अथवा तैजस लिंग वा सूक्ष्म शरीर के, वैश्वानर वा विश्व स्थूल देह अथवा अन्नमय कोष के अधिष्ठाता देवता हैं। विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमय इन तीन कोषों से सूक्ष्म शरीर बनता है, पाँचों ज्ञानेन्द्रिय, पाँचों कर्मेन्द्रिय, पाँचों प्राण और मन तथा बुद्धि इन सत्रह के समवाय को सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

बुद्वि पाँचों ज्ञानन्द्रियों से सम्मलित होने पर उसे विज्ञानमय कोष कहते हैं। मन पाँचों कर्मेन्द्रियों के साथ मिलने पर उसे मनोमय कोष कहते हैं और पाँचों प्राणों (प्राण,अपान, समान, उदान व व्यान शरीर में विद्यमान इन पाँचों प्रकार की वायु) और पाँचों कर्मेन्द्रिय के साथ मिलने पर उसे प्राणमय कोष कहते हैं।

यह सब तुम्हें सांख्य और वेदान्त शास्त्रों में प्रतिपादित सृष्टितत्व संक्षेप में सुना दिया है। पहले ही कहा था कि सृष्टितत्व अतीव जटिल है। पुस्तक में पढने से, अथवा किसी दूसरे से श्रवण करने पर हृदयंगम नहीं किया जा सकता। दिव्यज्ञान के उदय होने पर, अन्तर्दृष्टि के फूटने पर यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। ऋषि अन्तर्दृष्टि द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन कर के इसको शास्त्रों में लिख गये हैं।

स्वर्ग और नरक

शिष्य - शास्त्रों में जो स्वर्ग और नरक के वर्णन हैं उन का क्या अर्थ है ?

गुरु - तुम्हारी बात को मै अच्छी तरह से समझ नहीं सका। खोल कर कहो।

शिष्य - मेरे प्रश्न का तात्पर्य यह है कि मनुष्य पाप और पुण्य कर्मों द्वारा नरक और स्वर्ग भोगता है, वह स्वर्ग और नरक क्या हैं?

गुरु - वे स्वर्ग और नरक लोक हैं - स्थान विशेष हैं। मनुष्य पाप और पुण्य कर्मों के करने से भिन्न भिन्न लोकों में रह कर स्वर्ग का सुख और नरक की यातनाएँ भोगते हैं।

शिष्य - परन्तु आज के समय में बहुत से लोग कहते हैं- स्वर्ग और नरक नाम के कोई स्थान नहीं। ये मन की अवस्था मात्र हैं। पाप कर्म से उत्पन्न आत्मग्लानि ही नरक और पुण्य कर्मों के करने से उत्पन्न मन की प्रसन्नता ही स्वर्ग है। शरीर से रहित निराकार आत्मा के लिये स्वर्ग और नरक किस तरह से साकार होगें ? अतः स्वर्ग और नरक नामक कोई स्थान नहीं है।

गुरु - निश्चय ही हैं। जो लोग ऐसा कहते हैं, वे परलोक के विषय में और मृत्यु के अनन्तर प्राणी की अवस्था कैसी होती है, इस विषय में कुछ भी जानते नहीं। उन की सब बातें अनुमान मूलक हैं। दूसरी बात, आजकल सभी विषयों की आध्यात्मिक व्याख्या करने की प्रथा चल पड़ी है। हमारे शास्त्रों में कहे हुए तत्वों की किसी प्रकार भी आध्यात्मिक अथवा अलंकारिक व्याख्या नहीं हो सकती । स्वर्ग और नरक के सम्बन्ध में हमारे शास्त्रकारों का जो अभिप्राय है, उसे बताता हूं।

आजकल के लोग हमारी उस पृथ्वी को छोड़ कर दूसरे लोकों में जीवों का वास है, इस बात पर विश्वास नहीं करते। विश्वपति की अनन्त सृष्टियों में एक पृथ्वी के अलावा अन्यत्र कहीं भी प्राणी नहीं हैं, वे सब सृष्टियां व्यर्थ ही रची गयी हैं, लोगों की इस बात पर विश्वास करना किसी भी बुद्धिमान के लिये युक्तियुक्त नहीं होगा। हमारी पृथ्वी जैसे एक लोक है और जैसे यहां प्राणियों का वास है, उसी प्रकार से इस विश्वपति के विश्वराज्य में असंख्य लोक हैं और वे सभी लोक प्राणियों से परिपूर्ण हैं। इन सब लोकों में कितने तो स्थूल अर्थात् हमारे चक्षुओं के गोचर में हैं और कितने सूक्ष्म अर्थात हमारी आंखों के गोचर में नहीं। चक्षुओं से प्रत्यक्ष न होते हुए भी, स्थूल इन्द्रियों द्वारा अनुभूत नहीं होने पर भी वे जड़ पञ्चभूतों से बने हैं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश इन्हीं पञ्चभूतों की समष्टि से इस दृश्यमान अनन्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं पञ्चमहाभूतों के पञ्चीकरण अर्थात् मिश्रण द्वारा सभी स्थूल लोक बने हैं। पञ्चीकरण के तारतम्य के कारण विभिन्न लोकों में विभिन्न अवस्थाएँ हो गयी हैं। जिस रीति से पृथ्वी का पञ्चीकरण हुआ है, सूर्य अथवा चन्द्रलोक का पञ्चीकरण उस रीति से नहीं हुआ। पंञ्चीकरण की विभिन्नता के हेतु पृथ्वी के प्राणी सूर्य, चन्द्र अथवा अन्य किसी ग्रह नक्षत्र में निवास कर नहीं पाते। परन्तु उन लोकों में उन लोकों के निवास योग्य प्राणी हैं।

पञ्चीकरण किसे कहते हैं, यह तुम्हें बताता हूं-

''पञ्चीकरणं तु आकाशादि पञ्चस्वेकैकं द्विधा समं विभज्य तेषु दशषु भागेषु मध्ये प्राथमिकान् पञ्च भागान् प्रत्येकं चतुर्द्धा समं विभज्य

तेषां चतुर्णां भागानां स्वस्वद्वितीयार्धं भागं परित्यज्य भागान्तरेषु प्रयोजनम्।''
वेदान्तसार

आकाशादि पञ्चभूतों में प्रत्येक को दो समान भागों में विभाग कर उन दो अंशों के एक अंश को समान चार भागों में विभाग करना होता है। अनन्तर चारों भूतों के आधे भाग के चार भागों के एक एक भाग को दूसरे भूत के आधे अंश के साथ मिलाने पर पंञ्चीकरण हो जायेगा । उदाहरणः-

सूक्ष्म आकाश	॥)	सूक्ष्म वायु	॥)
,, वायु	=)	,, आकाश	=)
,, अग्नि	=)	,, अग्नि	=)
,, जल	=)	,,जल	=)
,, पृथ्वी	=)	,, पृथ्वी	=)
यह हुआ स्थूल आकाश	1)	यह हुआ स्थूल वायु	1)

पहिले जिन लोकों का उल्लेख किया है, उनके अलावा और भी अनेक सूक्ष्म लोक हैं। उन सब लोकों को हम लोग अपनी आँखों से देख नहीं सकते। जनः लोक, तपःलोक, सत्य लोक, आदि सूक्ष्म लोकों में गिने जाते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति कहते हुए तुम्हें सूक्ष्म भूत नाम के एक तत्व की बात कही है। हम लोग सभी पदार्थों के स्थूल रूप को देख पाते हैं। सब स्थूल पदार्थों के अन्तर में उनका सूक्ष्म रूप है। दर्पण में जैसे पदार्थ का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है, पदार्थों का सूक्ष्म रूप उसी प्रकार हमारी स्थूल इन्द्रियों द्वारा किसी भी प्रकार ग्रहण नहीं किया जाता। परन्तु इन्द्रियातीत होने पर भी इन सूक्ष्म रूपों की वास्तविक सत्ता है। जो लोग तपस्या से दिव्य दृष्टि प्राप्त करते हैं, वे उन सब सूक्ष्म लोकों को देख सकते हैं। मनुष्य जब स्थूल शरीर को परित्याग करता है, तब दर्पणगत प्रतिबिम्ब की भाँति उसका सूक्ष्म शरीर अथवा लिंगदेह स्थूल शरीर से बाहर निकल जाता है।

''देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुब्रजन् ।
भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥ ''

श्रीमद्भागवत 3।31।43

मनुष्य सूक्ष्म देह से एक लोक से दूसरे लोक में जाकर कर्मों के फल भोगता है।

सूक्ष्म शरीर में भी स्थूल शरीर के समान ही हाथ-पैर आदि सभीअंग विद्यमान रहते हैं। शास्त्रों में जो स्वर्ग के भोगों का वर्णन है, वे भोग जीव के सूक्ष्म शरीर द्वारा ही भोगे जाते हैं। स्वर्ग एवं नरक भी सूक्ष्म भूतों से निर्मित हैं। जीवों के सूक्ष्म देह और सूक्ष्म लोकों की बात जो तुम्हें कही है, वे सब जड़ हैं। सृष्टि की उत्पत्ति के प्रकरण में सांख्य शास्त्र में प्रतिपादित तन्मात्रा, सूक्ष्मभूत, अहंत्तत्व और वेदान्त-शास्त्र जिनको प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों के नाम से उल्लिखित करते हैं, वे समस्त कोष जड़ हैं परन्तु हैं वे सूक्ष्म जड़। जीव जड़निर्मित सूक्ष्म देह में सूक्ष्म लोकों में स्वर्ग और नरक के भोग भोगता है। तपस्यासे दिव्य दृष्टि लाभ करने पर, अन्तर्दृष्टि का विकास होने पर यह सब देखा जा सकता है। ऊपर कहे स्थूल और सूक्ष्म जड़मय स्थूल एवं सूक्ष्म लोकों के अलावा गोलोक, वैकुण्ठ, कैलाश, अयोध्या आदि अन्य लोक भी हैं। वे प्रकृति द्वारा गठित और जड़स्वरूप नहीं। वे हैं चिन्मय - माया की परिधि से पार, विरजा से भी परले पार वे अवस्थित हैं। जब जीव सब प्रकार की वासनाओं से मुक्त होकर माया की परिधि से दूर हो जाता है तब वह उन सब चिन्मय लोकों में निवास करने का अधिकार प्राप्त करता है। भगवान की कृपा से जो महापुरुष उन लोकों में गमन और - निवास करने का अधिकार पाते हैं, उनकी इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती। गीता में भगवान ने कहा है :

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

अध्याय 15 श्लोक 6 ।

जिस स्थान में पहुँचने पर पुनरावृत्ति नहीं होती, जिस लोक को सूर्य, चन्द्र, अग्नि प्रकाशित नहीं कर पाते, वही लोक मेरा परम धाम है।

मनुष्य के इस स्थूल देह को छोड़ने पर अर्थात् मृत्यु हो जाने पर यम के दूत उसे यमलोक **ले जाते हैं। पहिले जिन सब सूक्ष्म लोकों** का उल्लेख किया गया **है, यमलोक उनमें से** एक सूक्ष्म लोक है।

यमलोक का दूसरा नाम है पितृलोक। शास्त्रों में जो नरकों का वर्णन मिलता है, यमलोक में वे सब नरक विद्यमान हैं। मृत्यु के अनन्तर जीव के यमलोक में पहुंचाये जाने पर उसके द्वारा पृथ्वी पर किये हुए पाप और पुण्य कर्मों का विचार कर धर्मराज उसके स्वर्ग और नरक के भोगों की व्यवस्था देते हैं। पृथ्वी से यमलोक निन्नानवे हजार योजन दूर है। परलोक को जाता हुआ प्राणी उस लम्बे मार्ग को दो वा तीन मुहूर्तों में पार करता है। पापीजन ब्रड़े क्लेश से और पुण्यात्मा परम सुख और आनन्द के साथ सुखद दिव्य यानों पर चढकर जाते हैं। मृत्यु के अनन्तर पापी जनों की जैसी अवस्था होती है और जिस तरह से वे लोग यमलोक को जाते हैं यह विषय श्रीमद्भागवत से पढ़ता हूं, सुनो।

एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेन्द्रियः।
म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः॥
यम दूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ।
स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति॥
यातानादेह आवृत्य पाशैर्बद्धवा गले बलात्।
नयतो दीर्घमध्वानं दण्यडं राज्य भटौ यथा॥
तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः।
पथि श्वभिर्भक्ष्यमानआर्त्तोऽयं स्वमनुस्मरन्॥
क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदावानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तबालुके।
कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताड़ितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रयोदके॥
तत्र तत्र पतन् श्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः।
पथा पापीयसा नीतस्तरसा यमसादनम्॥
योजनानां सहस्त्राणि नवतिं नव चाध्वनः।
त्रिभिर्मुहूर्त्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातानाः॥

स्कंध 3, अध्याय 30, श्लोक 18-24।

कुटुम्ब के पालन में ही जीवन बिताने वाला इन्द्रिय्परायण मनुष्य मृत्युकाल की असहाय पीड़ा से बेचैन होकर रोते विलखते अपने बन्धुओं के देखते-देखते प्राण त्याग देता है। तब क्रोध से भरी आँखो वाले बड़े भयानक दो यमदूत उसके पास आकर राजा के सिपाही जैसे किसी अपराधी को बांधकर ले जाते हैं, उसी प्रकार उसके गले में फांसी लगाकर, उसे प्रेतयोनी के यातना-देह में डालकर ले जाते हैं। वह प्राणी उन दोनों य़म दूतों के भय से डरता-डरता मलमूत्र त्याग़ देता है। यमदूतों के डाँट से उसका दिल बैठने लगता है। बहुत ही दुःख होता है। उसे मार्ग में कुत्ते काटने को आते हैं। वह अपने पापों को स्मरण कर अत्यन्त दुःख पाता है। भूख - प्यास से व्याकुल सूर्य की तेज धूप, दावानल और गरम वायु के ताप से तड़फता हुआ, उन रेतीले मार्ग में जहाँ छाया नहीं, पीने को पानी नहीं, वह प्राणी यमदूतों की चाबुकों को खाता हुआ, गिरता पड़ता, उस रास्ते को पार करता है। थक कर मूर्छित हो गिर पड़ता है, फिर उठकर उस दुःखों से भरे रास्ते से यमलोक को जाता है। यमपुरी का रास्ता निन्नानवे हजार योजन दूरी पर है। यमदूतों द्वारा शीघ्रता से ले जाया हुआ वह प्राणी दो अथवा तीन मुहूर्तों में इस मार्ग को अतिक्रमण करता है और ऊपर कही यातनायें भोगता है। यमपुरी में नरक के भोग भोगने होते हैं। यमपुरी को छोड़ और कहीं नरक नहीं हैं यमपुरी में जो नरक हैं उनकी संख्या है अट्ठाईस। पापी जन इन अट्ठाईस नरकों में नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं। नरकों के नाम और उनकी संख्या शास्त्रों में दी है, उन्हें बताता हूंः-

श्रीराजोवाच

नरका नाम भगवान् किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्त्रिदन्तराल इति। ऋषिरुवाच -

अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणास्यामधस्ताद् भूमेरुपरिष्टाच्च जलात्। यस्यामाग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेन समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति।

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषै र्जन्तुषु सम्परेतेषु कर्मावद्यं दोषमेवानुल्लाङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति।

तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति। अथ तास्ते राजन् नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामः । तामिस्त्रोऽन्धतामिस्त्रो-रौरबो- महारौरवः - कुम्भीपाकः -कालसुत्र - मसिपत्रवनं - सूकरमुख - मन्धकूप - कृमिभोजन - स्तप्तशूर्मिर्वज्त्रकण्टकशाल्मली - वैतरणी - पूयोदः - प्राणरोधो - विशसनं - लालाभक्षः - सारमेयादन - मवीचि - रयःपानमिति। किञ्च क्षारकर्दमो - रक्षोगण भोजनः - शूल प्रोतो - ऽवटनिरोधनः-पर्यावर्तनः-सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः।

श्रीमद्भागवत स्कधं 5 अध्याय 26 श्लोक 4-7।

राजा परीक्षितमे प्रश्न किया - भगवन्। नरक क्या पृथ्वी के कोई देश हैं अथवा ब्रह्माण्ड के बाहर वा भीतर में स्थित कोई देश हैं।

शुकदेव जी ने कहा - राजन्। इस त्रिलोकी में ही दक्षिण दिशा में भूमि के नीचे और जल से ऊपर जिस स्थान में अग्निष्वात्तादि पितर निवास करते हुए परम समाधि में स्थित होकर अपने अपने वर्णों के व्यक्तियों की मंगल कामना करते हैं, उस स्थान में पितरों के पति यमराज अपने गणों के साथ निवास कर अपने दूतों द्वारा अपने लोक में लाये मृतकों के कर्मानुसार पाप पुण्यों का विचार कर दण्ड की व्यवस्था करते हैं-- वे इस विषय में किसी अंश में भगवान के शासन का उल्लंघन नहीं करते -इसी स्थान में सब नरक हैं। कइयों के मत में नरक इक्कीस हैं। हे राजन्। तुम्हारे आगे इन सब नरकों के नाम और रूपों का विवरण कहता हूँ। इक्कीस नरकों के नाम हैं - तामिस्त्र, अंधतामिस्त्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अंधकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान। इनके अलावा क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत,दंदशूक, अवरनिरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख ये सात नरक हैं। इस लिये कुल अट्ठाईस नरक होते हैं। ये सब नरक नाना प्रकार की यातनाओं के स्थान हैं।

किस पाप के करने से कौन नरक भोगना पड़ता है, यह भी भागवत में वर्णन किया हुआ है। विस्तार के भय से वह पाठ नहीं पढा। इच्छा हो तो पांचवे स्कन्ध के छब्बीसवें अध्याय को पढकर देख लो।

यम, इन्द्र, वरुण, अग्नि, आदि के लोकों में जीव को स्वर्ग के भोग मिलते हैं, इन लोकों का विस्तार पूर्वक वर्णन पद्म पुराण के काशीखण्ड में है।

शिव शर्मा नामक एक धार्मिक ब्राह्मण तीर्थ यात्रा करता हुआ मायापुरी (हरिद्वार) में जाकर बीमार होने से मर गया। मायापुरी मोक्ष देने वाली सात पुरियों में एक है। मोक्ष देने वाली मायापुरी में मृत होने से उस स्थान के महात्म्य से उसने विष्णुलोक में जाने का अधिकार पा लिया। उसे ले जाने के लिये विष्णु के दूत दिव्य रथ लेकर उसके पास आये और उसे रथ पर चढाकर उन्होने विष्णुलोक की ओर रथ चला दिया। शिव शर्मा ने रास्ते में गन्धर्व, गुह्यक, अग्नि, वायु आदि नानालोकों को देखकर विष्णु दूतों से उन लोकों का विवरण जानना चाहा। दूतों ने शिव शर्मा के प्रश्नों के उत्तर में उन लोकों के वृत्तान्तों को एक-एक कर के कहा। काशीखण्ड में विष्णुदूत और शिव शर्मा के संवाद में पिशाच, गुह्यक, गन्धर्व, विद्याधर, यम, अप्सरा, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, चन्द्र, नक्षत्र, बुध, शुक्र, मंगल, वृहस्पति, शनि, सप्तर्षि, ध्रुव, महः, जनः, तपः, सत्य और भूलोक व भुवर्लोक आदि अनेक लोकों के विवरण विस्तार में दिये हैं। काशीखण्ड के पूर्वखण्डमें सभी लोकों के विस्तृत विवरण हैं, इच्छा हो तो पढ़कर देख सकते हो।

जीव जब किसी लोक में भोग भोगने के लिये जाता है, तब उसका सूक्ष्म देह उस लोक के प्राणियों का जैसा शरीर होता है,उस प्रकार के देह में बदल जाता है। उसी शरीर से जीव स्वर्ग और नरक के भोग भोगता है। कल्पना करो एक मनुष्य ने पृथ्वी पर पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कर्म किये हैं। अटूट पाप अथवा अटूट पुण्य कोई भी मनुष्य नहीं करता। वहीं पाप और पुण्य कर्म करने वाला मनुष्य मरने पर पितृलोक में पहुचा। यहां उसे पितृलोक में पाप और पुण्य के भोग भोगने होंगे। अतः उसके लिये पितृलोक के भोगों के लायक शरीर पाना आवश्यक है। नहीं तो वहां के भोग कैसे भोग सकेगा? इसलिये पितृलोक में गया हुआ जीव पितृलोक के उपयोगी शरीर को पाकर उस लोक के भोगों को भोगता है। पितृलोक के भोग जब समाप्त हो जाते हैं तब उसे

दूसरे लोकों के भोग भोगने के लिये अन्यान्य लोकों में जाना पड़ता है। उन लोकों में जाने पर वहाँ के भोग भोगने के लिये उसका देह उन लोकों के योग्य हो जाता है। जिस तरह के शरीर से उन लोकों के निवासी प्राणी वहाँ के भोग भोगते हैं, उस आगन्तुक प्राणी का सूक्ष्म देह भी बदल कर वैसे ही शरीर में परिणत हो जाता है, और इस तरह से उन उन लोकों के लायक उसका देह हो जाता है। उन देहों से वह जीव उन लोकों के भोगों को भोगता है। जीव का सूक्ष्म शरीर जो मरने के समय स्थूल शरीर से बाहिर निकल कर पितृलोक को जाता है, वह सूक्ष्म देह में परिवर्तित जीव जब भी जिस किसी लोक के भोग भोगता है, तब उस लोक के योग्य देह धारण कर के ही सब भोग भोगता है।

जीव इस प्रकार अपने किये कर्मों के फल भोग कर, पापों के लिये नरक और पुण्यों के लिये स्वर्ग भोगकर अपनी वासनाओं के अनुसार फिर जन्म ग्रहण करता है। शुभ और सत् वासनाओं से जीव उच्च योनि में और उच्च कुल में, अशुभ और असत् वासनाओं से नीच योनि में जन्म लेता है।

यामीस्ता यातना: प्राप्य स जीवों वीतकल्मष:।
तान्येव पञ्चभूतानि पुनरप्येति भागश:।।
एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गती: स्वेनैव चेतसा।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात् सदा मन:।।

मनुस्मृति अध्याय 12 श्लोक 22-23

जीव ऊपर कहे देह द्वारा यमलोक की यातनाओं को भोगकर पापरहित होकर अपने कर्मों के अनुसार पृथ्वी आदि पञ्चभूतों से बने मनुष्य पशु आदि देह धारण करता है। पापों और पुण्यों के कारण जीव की गतियों को देखकर मनुष्य को चाहिए कि वह धर्म में चित्त को लगाये।

मनुष्य मर गया, यमपुरी में पहुँच गया, यमलोक के देह को पाकर वहाँ के भोग भोग लिये। उसके अनन्तर अन्य लोकों के भोग जो भोगने थे वे सब भी उसने भोग लिए, परन्तु फिर भी उसके मन में वासनायें रह गयीं। उन वासनाओं को अनुशय कहते हैं। यह अनुशय ही पुन: देह पाने का हेतु होता है।

अनुशयो हि उपभुक्तशिष्टंकर्मं। रामानुज स्वामी।

भोग के बचे हुए कर्म को अनुशय कहते हैं। जब तक मनुष्य मुक्त नहीं होता, तब तक उसके मन में वासनायें रहती हैं। उन वासनाओं को पूर्ण करने के लिये उसे फिर से पृथ्वी में जन्म लेकर देह धारण करना होता है। देह नहीं होने पर भोग हो नहीं सकता। पृथ्वी के भोग भोगने के लिये उसे पार्थिव भूतों से बने देह को धारण करना आवश्यक होता है।

अनेक जन्मों में किये हुये कर्मों से वासनाओं की उत्पत्ति होती है। जो लोग अच्छे कर्म करते हैं उनकी वासनायें शुभ और जो बुरे कर्म करते हैं उनकी वासनायें अशुभ होती हैं। शुभ वासनाओं से उन्नत योनि में और अशुभ वासनाओं से नीच योनि में जन्म मिलता है। जीव के जन्म पाने के हेतुरूप जो वासना है, वह अदृष्ट (अर्थात् पूर्वजन्म के कर्मों के संस्कार) से उत्पन्न होती है।

कर्म

शिष्य - कर्म क्या है ? वे कितने प्रकार के होते हैं ?

गुरु - जिसके द्वारा मनुष्य बंध जाता है, उसे कर्म कहते हैं। शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव का आत्मा कर्म के द्वारा ही बँधकर पाप पुण्यों के वश में होता है। ये पाप पुण्य ही मनुष्य के सुख और दु:ख, जन्म और मृत्यु के हेतु होते हैं। कर्म को माया अविद्या भी कहते हैं।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं - संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। अनेक जन्मों में किए हुए शुभाशुभ कर्मों के संस्कार, जो अज्ञात-रूप से, निष्क्रिय भाव से मनुष्य के अन्तर में संचित हो रहे हैं, उन्हें संचित कर्म कहते हैं। उस कर्म समूह में से जो कर्म फलित होने लगते हैं, जिसके कारण मनुष्य को नया शरीर धारण कर सुख दु:ख भोगने पड़ते हैं, उनका नाम होता है प्रारब्ध-कर्म। वर्त्तमान जन्म में जो सब नये अच्छे और बुरे कर्म किये जाते हैं उन्हें क्रियामाण कर्म कहा जाता है। सद्गुरु की कृपा होने पर संचित कर्म नष्ट होते हैं। क्रियमाण कर्म भी संचित नहीं होने से नये अदृष्ट की उत्पत्ति नहीं होती। परन्तु प्रारब्ध कर्म भोग के बिना किसी तरह भी नष्ट नहीं होते। इस प्रारब्ध कर्म के सम्बन्ध में ही शास्त्र में कहा गया है-

'' नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।''

भोग बिना कर्म का क्षय नहीं होता, करोड़ों कल्प क्यों न बीत जायें।

अदृष्ट

शिष्य- आपने जो अदृष्ट की बात कही है, वह अदृष्ट क्या है ? उससे जीव में वासना की उत्पत्ति कैसे होती है ?

गुरु - जन्म जन्मान्तरों में किए हुए हमारे कर्मों के संस्कार ही अदृष्ट कहलाते हैं। हम लोगों ने अनेक जन्मों में शुभाशुभ कर्म किये हैं, उन्हीं सब कर्मों के संस्कार हमारे मनों में जमा होते रहते हैं। भले कर्मो से शुभ संस्कारों और बुरे कर्मों से अशुभ संस्कारों की उत्पत्ति होती है। उन संस्कारों को अदृष्ट कहते हैं।

एक उदाहरण लो। कल्पना करो, किसी व्यक्ति ने कभी पर्वत देखा नहीं। उसको किसी ने पर्वत के निकट ले जाकर अंगुली से पर्वत दिखा दिया। पर्वत को दिखाते ही उस व्यक्ति के मन पर पर्वत की छाप पड़ गई। पर्वत की शक्ल उसके मन पर मुद्रित हो गई। वह छाप उसके मन पर हमेशा के लिये रह गयी। अब उसके सामने पर्वत रहे वा न रहे, परन्तु जब ही उसके मन में पर्वत की बात आयेगी, अथवा कोई उसके सामने पर्वत का नाम लेगा तो पर्वत की शकल जो उसके मन में बैठ रही है, उसके द्वारा वह मन ही मन पर्वत के आकार को याद कर पर्वत कैसा होता है यह भलीभांति जान लेगा। यदि वह अन्य किसी पर्वत के निकट जाता है और उसे देखता है, तब उसके मन पर पर्वत की जो छाप पड़ी हुई है, उस छाप के साथ वर्त्तमान पर्वत की आकार-प्रकार में समानता होने से यह भी पर्वत है इस प्रकार का ज्ञान उसे होता है। इसी को कहते हैं संस्कार। उस व्यक्ति के मन में यदि पर्वत की छाप पहिले से नहीं होती, पहिले उसने जो पर्वत देखा था, उसकी छाप यदि उसके मन में नहीं रहती, तो बाद में पर्वत को देखने पर भी यह पर्वत है ऐसा ज्ञान उसे कभी नहीं होता। तो यह जो पर्वत को देखते ही उसकी छाप देखने वाले के मन पर पड़ जाती है और बाद में पर्वत को देखते ही अपने मन में लगी छाप के द्वारा यह पर्वत है यह जाना जा सकता है,

स्मृति से उत्पन्न ऐसी मनोवृत्ति का यह जो गुण है इसी का नाम है संस्कार। संस्कार का ही दूसरा नाम है अदृष्ट। इसी मनोवृत्ति के प्रभाव से ही साधु और पुण्यात्मा लोग जो जो कर्म करते हैं, उनके मन में उन कार्यों की छाप दृढ़रूप से रह जाती है। पापी लोगों के पापकर्मों की छाप वा मुद्रण जो मनुष्य के मन पर अमिट रूप से छपे रहते हैं, उन्हें संस्कार वा अदृष्ट कहते हैं। जब तक मनुष्य का मन नष्ट नहीं होता, तब तक ये संस्कार अथवा अदृष्ट लुप्त नहीं होते। मृत्यु के पश्चात् जब मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों के भोगों को समाप्त कर लेता है, तब अपने मन पर लग रहे संस्कारों से वह नियंत्रित और प्रेरित होता है जिसे अनुशय कहते हैं। उसकी बुद्धि उसके संस्कारों अथवा अदृष्ट के अनुरूप बन जाती है। अनेक जन्मों में मनुष्य ने जीवन भर जो जो कार्य किये होते हैं, जिस प्रकार से ध्यान किया होता है, जैसे विचार किये होते हैं, जिस प्रकार के भावों में डूबकर समय बिताया होता है, उन समस्त भावों और भावनाओं के अनुरूप एक नूतन परिवर्त्तन, एक नयी कामना उसके मन में उदित हो जाती है। इस कामना के अनुसार अब उस मनुष्य को पशु पक्षियों की योनि में अथवा मानुष योनि में जन्म प्राप्त होता है। कोई एक व्यक्ति जीवन भर जो काम करता रहा है, मान लो उसने हिंसा के काम ही अधिक किये हैं। उसने जो सब हिंसा के काम किये हैं, पर-लोक में उनके लिये दण्ड भोगने के पश्चात्, उसके उन हिंसा कार्यों से उत्पादित संस्कारों के प्रभाव से उसे किसी हिंसक योनि में जन्म लेना होगा। क्योंकि, हिंसा के कार्यों में वह इतना अभ्यस्त हो चुका है कि संस्कारों के प्रभाव से विवश होकर उसे अपनी हिंसा वृत्ति को चरितार्थ करना होगा। हिंसा वृत्ति को पूर्ण करने के लिये उसका शरीर ऐसा होना चाहिए जिससे वह हिंसा कार्य आसानी से कर सके। शेर, चीते आदि के शरीर हिंसा वृत्ति के चरितार्थ करने के लिये अनुकूल होते है। वैसा शरीर धारण करने पर इसकी हिंसा वृत्ति आसानी से पूर्ण हो सकती है। ऐसी स्थिति में उसे शेर, चीते आदि का शरीर ही मिलेगा। तब पूर्वकृत कर्मों के संस्कार अथवा अदृष्ट उसके अन्य प्रकार के ज्ञान को विस्मृति के गर्भ में डुबाकर उसके समस्त ज्ञान को व्याघ्रादि पशुओं के अनुरूप ज्ञान में परिणत कर देंगे। तब उसकी भावना होगी कि मैं व्याघ्र वा वैसा ही

कोई पशु हूँ। दूसरी बात यह है कि मृत्यु के समय मनुष्य के मन में जैसी भावना का उदय होता है मृत्यु के पश्चात् उसे वैसा ही देह प्राप्त होता है। मरणकाल के चिन्तन से तन्मय हुआ जीव विवश होकर चिन्तन के अनुरूप ही नया शरीर प्राप्त करता है। पद्मपुराण में जो धर्मशर्मा को पक्षी देह की प्राप्ति और भागवत में भरत की मृग शरीर पाने की कथा है वह मृत्युकाल में पक्षी और मृग सम्बन्धी चिन्ता के कारण ही हुई थी।

मरते हुए व्यक्ति की चिन्तनधारा को भगवान् की ओर कराने के लिये ही मरण समय में हरिनाम सुनाने की प्रथा हमारे देश में प्रचलित है। शास्त्रों में कहा है -

मरणे या मतिः सा गतिः।

मरणकाल में जैसी बुद्धि अथवा चिन्तनधारा होती है, वैसी ही गति अर्थात् आगामी जन्म हो जाता है।

इसी प्रकार भावना अथवा चिन्ता करने के समय उस व्यक्ति का सूक्ष्म देह उसकी भावना वा चिन्ता के अनुरूप बदल कर एक नया शरीर प्राप्त करता है। शास्त्र में ऐसे देह को भावनामय देह कहते हैं। कर्म जनित संस्कारों के कारण जीव के मन में जिस प्रकार की भावना उदित होती है, उसका सूक्ष्म शरीर एक भावनामय देह में परिणत हो जाता है। जिस योनि में उसे आगे जन्म लेना होता है; यह भावनामय देह उस योनि की प्राप्ति के अनुकूल होता है। जिसे व्याघ्र का देह पाना है, उसके सूक्ष्म देह में परिवर्तन के पश्चात् जो भावनामय देह उत्पन्न होगा, वह व्याघ्र के शरीर के अनुरूप ही होगा। उसका वह भावनामय देह व्याघ्र के शुक्रशोणित के मेल से व्याघ्र होकर जन्म ग्रहण करेगा। यह एक उदाहरण दिया गया है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि योनियों में जन्म होने के सम्बन्ध में यही नियम है। जीव की इस प्रकार की भावना अथवा चिन्ता जिसके द्वारा वह जीव भिन्न-भिन्न योनियों में जन्मग्रहण करता है, उसी को वासना कहते हैं। अदृष्ट अथवा जीव के संस्कारों से इस वासना की उत्पत्ति होती है इस विचार से अदृष्ट को वासनाओं का उत्पादक कहा गया है।

मन

शिष्य - आपने कहा है कि जब तक मन नष्ट नहीं होता, अदृष्ट नष्ट नहीं होता है ? आत्मा और मन क्या दो वस्तु हैं ?

गुरु - हाँ, मन नष्ट हो जाता है और मन और आत्मा भिन्न पदार्थ हैं। हमारे अन्तः करण की जो वृत्ति संकल्प और विकल्प रूप की है, उसे मन कहा जाता है। सर्वदा ही हमारे अन्तर में किसी न किसी विषय का संकल्प उठता रहता है। अन्त: करण में जिस वृत्ति से संकल्प-विकल्पों का उदय होता है, उसी का नाम है - मन। हम लोगों के सुख और दुःख आदि जो जो अनुभव हैं वे मन से उत्पन्न होते हैं। मन हमारे आत्मा की एक उपाधि - बंधन - है। तप के बल से जब कोई मनुष्य मुक्ति पा लेता है, तब उसकी अवस्था उपाधि रहित होती है, और उस काल में उसकी संकल्प-विकल्प रूपी वृत्ति अर्थात मन नष्ट हो जाता है। मन नष्ट होने पर उसके अन्तर में कोई संकल्प-विकल्प नहीं रहता परन्तु आत्मा तब भी विद्यमान रहता है। कारण आत्मा नित्य है - अविनाशी है। मन के अतिरिक्त अन्तःकरण की अन्य तीन वृत्तियां है- बुद्दि, चित्त और अंहकार। जिस वृत्ति से समस्त पदार्थों का निश्चयात्मक ज्ञान होता है, उस निश्चयात्मक वृत्ति को बुद्धि कहते हैं। अन्त: कारण की जिस वृत्ति द्वारा समस्त विषयों का स्मरण होता है, जिसके द्वारा अनुसंधान और ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है उस स्मरणरूपी अनुसंधानरूपी वृत्ति को चित्त कहते हैं। जिस वृत्ति द्वारा किसी पदार्थ अथवा व्यक्ति पर ममता-बुद्धि उत्पन्न होती है, उसे अहंकार कहा जाता है।

जन्म कैसै होता है ?

शिष्य - जीव कैसै उत्पन्न होता है ?

गुरु - जीव मृत्यु के अनन्तर परलोक में जाकर भिन्न-भिन्न लोकों में अपने किये पाप पुण्यों के फल भोगने के पश्चात् अदृष्ट के द्वारा अपनी वासनाओं के अनुरूप शरीर धारण करता है। पहिले तुम्हें जो भावनामय देह की बात कही है, पाप और पुण्यों के फल भोगने के बाद, जीव उसी भावनामयदेह को लेकर आकाश, वायु, मेघ, विद्युत् आदि अनेक स्थानों

में भ्रमणकर, अन्त में जल के साथ मिलकर पृथ्वी पर आता है। इसके अनन्तर पृथ्वी के रस में घुलमिल कर अन्नादि में प्रवेश करता है। तदनन्तर खाद्यपदार्थ के साथ मनुष्य अथवा अन्य जीवों के शरीर में प्रवेश करता है। फिर खाद्यप्रदार्थ के परिवर्तन रूप, रस रक्तादि धातुओं में से होता हुआ शुक्र धातु में स्थित होता है। अन्त में मैथुन के समय शुक्र द्वारा स्त्री के शोणित में मिश्रित होकर जन्म ग्रहण करता है। खाद्यपदार्थों में मिलकर जीव जब किसी शरीर में प्रवेश करता है। तब उसी शरीर के अनुरूप उसके नये संस्कार हो जाते हैं। जो आत्मा पहिले मनुष्य शरीर में था, कर्मजन्य अदृष्ट के प्ररेणा से वही आत्मा अब यदि बन्दर के शरीर में प्रवेश करता है तो प्रवेश करते ही उसके मानव सम्बन्धी संस्कार दब जाते हैं और बन्दर के शरीर सम्बन्धी संस्कारों का उदय हो जाता है। अतः जन्म होते ही उसके सब काम बन्दर जैसे होने लगते हैं।

स्त्री पुरुषों के संगम के समय स्त्री के गर्भ में जो पुरुष का शुक्र प्रवेश करता है, वही शुक्र स्त्री के जरायुगत शोणित में मिश्रित हो जाने से धीरे-धीरे जीव के शरीर में गठित होता है।

''पितुरेतोऽतिरेकात् पुरुषो मातुः रेतोऽतिरेकात्स्त्रियो भवन्त्युभयोर्बीज तुल्यत्वान्नपुंसको भवति। व्याकुलितमनसोरन्धाः खञ्जाः कुब्जा वामना भवन्ति। अन्योग्यवायुपरिपीड़ितशुक्रद्वैविध्याद्द्विधा तनुः स्यात्ततो युग्माः प्रजायन्ते।''

गर्भोपनिषद्।

पिता का शुक्र अधिक होने पर पुत्र, माता का रेत अधिक हो तो कन्या और दोनों के वीर्य की मात्रा समान होने पर नपुंसक उत्पन्न होता है। दोनों स्त्री पुरुषों के मन व्याकुल हों तो आधे अंग विहीन, कुब्ज अथवा वामन संतान की उत्पत्ति होती है। वायु द्वारा यदि दोनों के रेत दो भोगों में विभक्त हो जायें तो यमल सन्तान उत्पन्न होते हैं।

''मातृरक्तोत्तरा नारी पितुः शुक्रोत्तरो नरः।
उभयो वीर्यसामान्ये जायते वै नपुंसकः ॥''

''रक्ताधिक्ये मातृरूपं रेतोऽधिक्ये तु पैतृकम्।
शुक्र–शोणित–संघाते वयुना च द्विधा कृते यमौ स्याताम् ॥''

गर्भ में यदि स्त्री का रक्त अधिक हो तो कन्या और शुक्र की अधिकता हो तो पुत्र उत्पन्न होता है। वायु द्वारा शुक्र यदि दो भोगों में बँट जाये तो यमल उत्पन्न होते हैं।

वेदान्त दर्शन में यह विषय विशेषकर स्पष्ट किया गया है। यदि अच्छी तरह जानना चांहो तो वेदान्त दर्शन के तीसरे अध्याय के प्रथम पाठ को पढ़ कर देख लो। अनेक स्थानों में जो संतानों के स्वभावों में विलक्षणता पायी जाती है, वह स्त्री पुरुषों के संगमकालीन दोषों से उत्पन्न होती है। कहीं कहीं ऐसा देखा जाता है कि बालक का स्वभाव बालिका जैसा, और बालिका का बालक के समान है। इसका कारण है संगम काल में स्त्री पुरुषों के भावों में परस्पर विनिमय। उस काल में स्त्री ने पुरुष जैसा अनुकरण किया होगा और पुरुष ने स्त्री के समान। दोनों के शरीर भी व्यतिक्रम अवस्था में होगे। ऐसी स्थिति में जो संतानें उत्पन्न होती हैं, उनके स्वभाव भी विपरीत होते हैं, पुत्र कन्या के स्वभाव का, और कन्या पुत्र के स्वभाव का। अतएव हमारे शास्त्रकारों ने यह व्यवस्था दी है कि संगम काल में अति सावधान रहना चाहिये। यही नहीं उस काल में उठते-बैठते चलते-फिरते माता पिता के मन में जिस प्रकार के भाव होते हैं, अनेक स्थलों में संतानें उन भावों को प्राप्त कर लेती हैं। गर्भ में आने के समय जीव जिन प्रबल संस्कारों द्वारा प्रेरित होता है, यदि वे संस्कार माता-पिता के दैनिक जीवन के भावों तथा संस्कारों के अनुरूप हों, तो जीव के संस्कारों को पुष्टि मिलती है। संगम काल में भी यदि माता-पिता के मन सात्विक हों तो गर्भ में प्रविष्ट हुए जीव के संस्कार निकृष्ट कोटि के होने पर भी, कुछ न कुछ सत्व गुण उनमें संक्रमित हो जाते हैं, और जीव के भावी जीवन को सदाचरण की ओर प्रेरित करने में सहायता कर सकते हैं। इस लिये संगम से पूर्व संयम के साथ देव पूजा आदि करने से माता पिता के मन में यदि धर्मभाव जागृत हो, सत्व गुण का उदय हो, तो ऐसी अवस्था में भावी सन्तान धार्मिक और सात्विक होगी। यदि इससे विपरीत किया जायेगा तो विपरीत भावों से सम्पन्न सन्तान की उत्पत्ति होगी। अतः यह परम कर्तव्य है कि संगम

काल में खूब सावधानी की जाये। एक ही माता पिता के सन्तान जो विभिन्न प्रकृति के होते हैं, उसका मुख्य हेतु है माता पिता के तात्कालीन साधारण जीवन में मन की विभिन्न अवस्थायें। दुराचारी स्त्री पुरुष केवल कामान्ध होकर संगम करते हैं, अतः उनसे उत्पन्न सन्तान प्रायः अत्यन्त कामुक होती है। इस विषय का विस्तृत विवरण आयुर्वेदशास्त्र में दिया हुआ है।

पाप-पुण्य के फल भोग के अनन्तर जीव आकाश, वायु, मेघ, विद्युत् आदि में घूमता हुआ अन्न फलादि में घुल-मिलकर अन्त में शुक्र में स्थित होता है। अनन्तर शोणित के मेलसे जीव का जन्म होता है। वेदशास्त्रों का यही मत है। चार्वाक आदि नास्तिक जो देह को ही आत्मा कहते हैं, वे इस मत को नहीं मानते। उनका कथन है कि चैतन्य नामक कोई पदार्थ अथवा जीव नाम की कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं। अतः वह न तो कहीं से आती है, न कहीं जाती है। गर्भगत शुक्र और शोणित में उदर के ताप द्वारा परिपाक होता है, अनन्तर धीरे-धीरे हस्त -पद आदि अंग प्रत्यंग प्रकट होते हैं और चैतन्य नाम का एक नया पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। यह चैतन्य पदार्थ परिपाक का ही गुण है, जैसे गुड़ और तण्डुलादि वस्तुओं के दीर्घ कालीन परिपाक से उनके रस में मादकता उत्पन्न हो जाती है।

वेद शास्त्रों के मानने वाले इस मत का प्रतिवाद करते हैं। उनका कथन है कि गुण जो व्यष्टि अर्थात प्रत्येक वस्तु में विद्यमान नहीं, समष्टि अर्थात वस्तु समुदाय में उसकी स्थिति असम्भव है। सुरा के उपादानभूत गुड़ तण्डुलादि में मादक गुण का यदि अत्यन्त अभाव हो, तो उन से उत्पन्न सुरा में मादक गुण की उत्पत्ति सम्भव नहीं, कारण जिस पदार्थ का व्यष्टि में अत्यन्त अभाव है, वह समष्टि में किसी तरह उत्पन्न हो नहीं सकता। यह स्वत: सिद्ध सत्य है। सुरा के उपादानभूत गुड़-तण्डुलादि पदार्थो में मादक गुण रहता है, चाहे अतीव अल्प मात्रा में ही रहे। रसायनिक क्रिया द्वारा सुरा में उसी सूक्ष्म मादक गुण की अभिव्यक्ति- मात्र होती है।

जिन उपादानों से जीव की देह गठित होती है, उनमें से किसी में भी चैतन्य पदार्थ विद्यमान नहीं। हजारों चेष्टाओं और परीक्षणों से भी

उनमें से चैतन्य पदार्थ अलग नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि व्यष्टि में चैतन्य पदार्थ का अत्यन्ताभाव होने पर समष्टि वा समुदाय में उसकी विद्यमानता अथवा प्रकाश किसी रीति से नहीं हो सकता।

और भी। गर्भ में मिले हुए शुक्र -शोणित में यदि तत्काल ही चैतन्यमय जीव का सक्रमंण नहीं हो, चैतन्य पदार्थ यदि उसमें प्रवेश नहीं करे, तो वह शुक्र शोणित विकृत हो जाता है, अथवा मल-मूत्र की तरह गर्भच्युत हो जाता है। चैतन्यमय जीव का प्रवेश होने के कारण से ही उनमें कोई परिपाक अथवा विकार उत्पन्न नहीं होता। और भी बात है, यदि चैतन्य देहोत्पादक रेतः और रक्त का ही गुण होता तो प्रति ऋतु में गर्भसंचार और सन्तानोत्पत्ति हो जाती। तब तो पुरुष जब ही ऋतुमती स्त्री से संगम द्वारा वीर्य-आधान करता, तब ही स्त्री गर्भवती हो जाती। परन्तु ऐसा होता क्यों नहीं ? इसी से यह सिद्ध है कि जब जब पुरुष के शुक्र में चैतन्य जीवात्मा का अधिष्ठान होता है तब ही गर्भ में जीव का संचार होने से सन्तान की उत्पत्ति होती है। जिस समय शुक्र में जीवात्मा का प्रवेश नहीं होता उस बार के संगम में गर्भ स्थित नहीं होता। अब गर्भ में स्थित जीव की देह जैसे धीरे-धीरे गठित होती है और बढती है वह तुम्हें बताते हैं।

प्रथम मास के गर्भ को कलल कहते हैं। यह कलल सधारण शुक्र शोणित की अपेक्षा कुछ घना होता है। दूसरे मास के गर्भ का नाम है अर्बुद। कुछ कठिन मांसपिण्ड को अर्बुद कहा जाता है। यह पुरुष, स्त्री और नपुँसक भेद से कुछ विभिन्नता लिये होता है। तृतीय मास में हाथ पैर और सिर के सूक्ष्मचिह्न प्रकाश में आ जाते हैं। चौथे महिने में हाथ पैर आदि स्पष्ट हो जाते हैं, और अन्तःकरण की उत्पत्ति भी हो जाती है। अतएव चतुर्थ मास में भ्रूण का चलने फिरने का अनुभव होने लगता है। पाँचवें महीने में मन में अनुभवशक्ति का संचार होता है। ज्ञानवहा नाड़ियों की रचना होती है। छठे महीने में अस्थि, स्नायु, नख, रोमादि उत्पन्न होते हैं। सप्तम मास में अंग-प्रत्यंगों का निर्माण पूरा हो जाता है। अष्टम मास में स्पर्श और श्रवण की ज्ञापकवक् और श्रवणेन्द्रियों की उत्पत्ति हो जाती है। स्मरण शक्ति प्रबल होती है। तेजः धातु पैदा होती है। तेजः धातु पीले रंग का चमकदार और लाला के तुल्य पतला होता है। यह हृदय में रहता है।

''हृदि तिष्ठति यत् शुद्धमीषदुष्णं सुपीतकम्।
तेजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्नाशमृच्छतिं।।''

जो कुछ उष्ण पीले रंग का उज्ज्वल पदार्थ हृदय में रहता है उसे तेजः कहते हैं। उसके नाश होने से मनुष्य की मृत्यु होती है। तेजः पदार्थ जब नष्ट हो जाता है तभी जीव मृत हो जाता है। नवम और दशम मास में अंग प्रत्यंग पुष्ट हो जाते हैं। इसके अनन्तर धनुष से निकले हुए बाण की भांति प्रबल प्रसव वायु से प्रेरित हो कर गर्भ भूमि पर आ गिरता है। प्रसव काल की चरम अवधि है - बारह वर्ष।

योगशास्त्र में योगी जनों का कथन है कि गर्भस्थ जीव में जब मन उत्पन्न होता है उसके बाद जब तक वह भूमिष्ट नहीं होता उसे पूर्व जन्मों की स्मृति और गर्भवास की कठोर यंत्रणा का अनुभव होने लगता है। परन्तु जैसे ही वह भूमिष्ठ होता है बाहर की वायु लगते ही सब भूल जाता है। बाहर की वायु जीव की गर्भ में उत्पन्न पूर्व जन्मों की स्मृति को भुला देती है।

''अथ नवमे मासि सर्वलक्षणज्ञानकरणसंपूर्णो भवति, पूर्वजाति-स्मृति शुभाशुमं कर्म च वेत्ति।

नाना योनिसहस्त्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।।
जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनः पुनः।
यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्।।
एकाकी तेन दह्यामि गतास्ते फलभोगिनः।
अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम्।।
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तंप्रपद्ये महेश्वरम्।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्।।

गर्भोपनिषद्।

अर्थ नवम मास में समस्त शरीर, अन्तःकरण सहित संपूर्ण हो जाता है और पूर्व जन्मों के भले बुरे कमों की स्मृति मन में उदय होती

है। मैंने नाना प्रकार के अन्न खाये हैं, अनेक प्रकार के स्तन पिये हैं, बारबार जन्म-मृत्यु भोगी है, बन्धुओं के हेतु अनेक भले-बुरे कर्म करता रहा हूं। अब उन सब का फल मुझे ही भोगना पड़ा है। यदि एक इस योनि से मुक्ति हो जाए तो पापनाशक मुक्तिदाता परमेश्वर की शरण में अवश्य पड़ूंगा।

'अथ योनिद्वारसंप्राप्तो यन्त्रेणापीड्यमानो महता दुःखेन, जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृष्टस्तदा न स्मरति जन्म मरणानि न च कर्म शुभाशुभं वेत्ति।

योनि से बाहिर होते ही वैष्णव (प्रसव) वायु उसकी स्मृति को भुला देती है।

मैंने तुम्हे संक्षेप में जीव के जन्म का विवरण कह दिया है। आयुर्वेद में शरीरस्थान अध्याय को पढ़ने से इसका विशेष वृतान्त जान सकते हो। अब आगे तुम्हारी क्या जिज्ञासा है ?

पुनर्जन्म

शिष्य-पुनर्जन्म होता है कि नहीं ?

गुरु- पुनर्जन्म अवश्यमेव होता है। हमारे शास्त्रकारों ने पुनर्जन्म को माना है। गीता में कहा है:-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

अध्याय 2 शलोक 22

जैसे मनुष्य फटे हुए वस्त्रों को छोड़ कर नये वस्त्र पहिन लेता है, उसी तरह जीव जीर्ण शरीर को छोड़ कर नये शरीरों को प्राप्त होता है।

''जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

अध्याय 2 श्लोक 27।।

उत्पन्न हुए व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है और मृत व्यक्ति का जन्म भी निश्चित है। इसलिये इस विषय में जो किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता, उसके लिए शोक करना उचित नहीं।

जीवात्मा वृक्षलता, कीटपतंग, पशुपक्षी और मनुष्य होकर बार बार जन्मग्रहण करता है। नीच योनि से उच्चतर योनियों में जाते जाते सब मिला कर जीव चौरासी लाख योनियों में जन्मग्रहण करता है। उनमें कितने जन्मों में वृक्षलता, कितने जन्मों में कीटादि, कितने जन्मों में पतंग, कितने जन्मों में पशु, कितने जन्मों में पक्षी एवं कितने जन्मों में मनुष्य होकर उत्पन्न होता है, यह शास्त्र में लिखा है। जीव अनेक शरीर ग्रहण करता है यह बताने के लिये ही भगवान् ने गीता में 'शरीराणि' यह बहुवचन पद दिया है। वेद से लगा कर स्मृति, पुराण, तन्त्र आदि हमारे सब शास्त्रों में जीव बार बार जन्म ग्रहण करता है, यह कहा है। मनु स्मृति के द्वादश अध्याय में भगवान् मनु ने विस्तार पूर्वक यह लिखा है कि किस प्रकार का कर्म करने से कौन सी योनि मिलती है?

मृत मनुष्य के परलोक जाने के लिये दो मार्ग हैं। एक का नाम है देवयान व दूसरे का पितृयान। जो सद्गुरु की कृपा पाकर ब्रह्म की उपासना से मुक्ति पा लेते हैं वे देवयान मार्ग से परलोक को जाते हैं। उनको फिर जन्मग्रहण नहीं करना होता। कौषीतकी उपनिषद् में पाठ है:-

''स एतं देवयानं पन्थानमापद्य अग्निलोकमागच्छति, स वायुलोकं, स वरुणलोकं, स आदित्यलोकं, स इन्द्रलोकं, स प्रजापतिलोकं, स ब्रह्मलोकं्।''

वह जीव इस देवयान मार्ग में आकर अग्निलोक में आता है फिर वह वायुलोक, वरुणलोक, आदित्यलोक, इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक और अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।

इसी प्रकार छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में भी देवयान पथ का उल्लेख है। इस देवयान पथ को ब्रह्मा पथ और अर्चिमार्ग भी कहते हैं। दूसरा मार्ग है पितृयान। जो प्रवृत्ति मार्ग में सकाम रीति से

कर्मकाण्ड की क्रियायें करते हैं, वे पितृ - यान मार्ग से प्रलोक में जाकर अपने कर्मो के फल भोगते हैं। भोग के अन्त में उन्हें अपने कर्मो के अनुसार शरीर धारण करना होता है। शुभ कर्मो के करने वाले उत्तम और अशुभ कर्म कर्ता निकृष्ट देह प्राप्त करते हैं।

छान्दोग्य उपनिषत् में पाठ है-

''तस्मिन् यावत् संपातमुषित्वाऽथैतमध्वानं पुनर्निवर्तन्ते। यथैतमाकाशमाकाशाद् वायुं, वायु भूर्त्वा धूमो भवति, धुमो भूत्वाऽभ्रं भवति। अभ्रं भुत्वा मेघा भवति, मेघो भूत्वा प्रवर्षति, त इह ब्रीहियवा औषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते, अतो वै खलु दुनिष्पपतरम् यो यो ह्यन्न मति यो रेत: सिञ्चति तद्भूय एव भवति।''

छन्दोग्य 5।10।5-6

जब तक पुण्यों का क्षय नहीं होता तब तक पुण्य कर्म करने वाले जीवों को चन्द्रलोक में रहकर, जिस मार्ग से वे परलोक में पहुँचते हैं उसी मार्ग से लौट कर पुन: जन्मग्रहण करना होता है। वे लोग पहिले आकाश में आते है, आकाश से वायु में, पश्चात् धुम्र होकर वाष्प का रुप धारण करते हैं। तदनन्तर मेघ के रुप में वृष्टि के साथ पृथ्वी पर गिरकर, धान, जौ, औषधि व वनस्पति, तिल, माष इत्यादि में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार उस जीवात्मा का महान् पतन होता है। इन सब पदार्थों को खाने से जो वीर्य बनता है, जीव उस वीर्य में प्रविष्ट होता है। अन्त में जब वह जीव स्त्रीगर्भ में प्रविष्ट होता है, तब जीव का नवीन देह गठित होता है।

''तद य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनि मापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्यवोनिं वाऽथ, य इह कपूय-चरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकर योनिं वा चाण्डाल योनिं वा।'' छान्दोग्य उप 5।10।7

जो लोग रमणीय कार्यों को करते हैं, वे रमणीय अर्थात् आनन्दयुक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य योनि को पाते हैं और जो लोग बुरे काम करते हैं, वे कुत्ते, सुअर, चाण्डाल आदि निकृष्ट योनियों को प्राप्त होते हैं।

जो जीव कोई धर्मकार्य नहीं करते, पाप कर्मों को करते-करते ही जीवन व्यतीत करते हैं, वे इन दोनों में से किसी मार्ग द्वारा नहीं जा पाते। वे लोग मृत्यु के पश्चात् यम के शासन से नरक भोगते है, और अन्त में कीड़े, मच्छर आदि निकृष्ट योनियों में जन्मते हैं। इस प्रकार से बार बार निकृष्ट योनियों में जन्म तथा मृत्यु के द्वारा उन्हे दुःख भोगना पड़ता है। शास्त्र इस प्रकार पापियों की दुर्गति दर्शाकर समस्त जीवों क़ो धर्म में प्रवृत्त होने का उपदेश देता है।

''अथ य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतंगा यदिदं दन्दशूकम्।'' वृहदारण्यक उप. 6।2।16

और जो जीव इन देवयान और पितृयानों को नहीं जानते (अर्थात वहाँ नहीं जाते) वे कीड़े पतंग और डसने वाले बिच्छू आदि बनते हैं। अथैतयोः पथो र्न कतरेण च तानीमानि क्षुद्रान्यसकृदा-बर्त्तीनि भूतानि भवन्ति, जायस्व म्रियस्वेति।

वृहदारण्यक उप. 6।2।16

और जो इन दोनों मार्गों में से किसी में भी नहीं जाते, वे बार-बार जन्म मृत्यु पाने वाले क्षुद्र जीव होते हैं जिन्हें - जायस्व म्रियस्व - जन्मो और मरो ऐसा कहा जाता है।

शिष्य- यदि ऐसी बात है जो आजकल के विद्वान पुनर्जन्म को क्यों नहीं मानते ?

गुरु - यह बात नहीं कि सभी पुनर्जन्म को मानते नहीं। अवश्य बहुत से लोग नहीं मानते। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य देशों के विद्वान पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं करते, इसीलिये हमारे देश के विद्वान् भी नहीं मानते। यूरोप देश के निवासियों के धर्म-ग्रन्थ बाईबल में पुनर्जन्म के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है। ईसाई-धर्म के प्रवर्त्तक महात्मा ईसा ने जीव के जन्मान्तर के विषय में कोई बात नहीं कही। यूरोपीय विद्वान् जो पुनर्जन्म स्वीकार नहीं करते, इसका हेतु एक ही है, और वह है परलोक संबंधी प्रत्यक्ष ज्ञान का अभाव। वे लोग तर्क और युक्ति द्वारा ही परलोकतत्व, आत्मतत्व और परमात्मा के तत्वों को निर्धारित करना चाहते हैं। इन्द्रियाऽतीत विषयों का निर्णय और ज्ञान

केवल चिन्तन द्वारा, तर्क और युक्ति द्वारा करना असम्भव है। इन परमार्थ तत्वों के ज्ञान का एकमात्र उपाय है-तपस्या। यूरोप में तपस्या नाम की कोई वस्तु है नहीं। यूरोपीय उसकी आवश्यकता को भी अनुभव नहीं करते। ऋषियों ने तो तपोबल से लब्ध ज्ञान द्वारा ही अतीन्द्रिय विषयों को जाना था। परलोक तत्व को भी उन्होंने दिव्य ज्ञान द्वारा जाना, फिर प्रत्यक्ष देख कर उन्हें शास्त्रों में लिख गये हैं। मनुष्य साधना की शक्ति से इस स्थूल शरीर को छोड़ कर सूक्ष्म शरीर लेकर बाहर जा सकता है। सूक्ष्म शरीर लेकर स्थूल शरीर से बाहर निकलने की सामर्थ्य जब किसी मनुष्य में एक बार आ जाती है, तब वह सूक्ष्म शरीर में स्थित होकर लोक-लोकान्तरों में जा सकता है। चन्द्र, सूर्य्य, ग्रह नक्षत्र, आदि अदृश्यमान लोकों में और पितृलोक, इन्द्रलोक, आदि अप्रत्यक्षलोकों में वह भ्रमण कर सकता है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनि और परवर्ती काल के शङ्कराचार्य, गुरुनानक आदि महापुरुष अपने सूक्ष्म देहों को लेकर स्थूल शरीरों से बाहर निकल कर प्रत्यक्ष ग्रहनक्षत्रादि लोकों में तथा अप्रत्यक्षपितृलोकादि में जा सकते थे। सूक्ष्म देह से सूक्ष्म लोकों में अनायास गमन सम्भव है। सूक्ष्म देह में स्थूल देह सम्बन्धी शीताताप की अनुभूति नहीं होती। इस लिये सूर्य का ताप और वायु का शीत सूक्ष्म देह की गति में कुछ भी प्रतिबन्ध नहीं लगा पाते। यह सूक्ष्म शरीर वायुशून्य स्थान में भी गमन कर सकता है। ऋषिगण एवं परवर्ती महापुरुष इसी उपाय द्वारा लोकलोकान्तरों का विवरण, परलोक का वृत्तान्त और जीव के पुनर्जन्म का वृत्तान्त जान पाऐ थे।

जब मनुष्य में दिव्य दृष्टि आ जाती है, तब उसके लिये वर्त्तमान और भूतकाल एक हो जाते हैं। इहलोक और परलोक के मध्य में जो परदा है, वह भी दूर हो जाता है, जैसे तुम और मैं अथवा अन्य मनुष्य जिस तरह इस दृश्यमान जगत् को देखते है : जहाँ चाहे, जा सकते हैं जिन महापुरूषों की दिव्य दृष्टि खुल जाती है और जो लोग सूक्ष्म शरीर को लेकर इस स्थूल शरीर से बाहर निकलने में समर्थ हो जाते हैं, वे महानुभाव इस प्रत्यक्ष जगत् के स्थूल पदार्थों की भांति ही उन पदार्थों का दर्शन करते हैं जो हमारी इन्द्रियों से अतीत हैं व

हमारी दृष्टि वा ज्ञान के गोचर में नहीं, और वैसे ही लोकों में गमन कर पाते हैं, तुम्हें मन में मेरी ये बातें शायद असंभव ज्ञात हो रही हैं परन्तु वस्तुतः ये सत्य हैं। तपस्या से ऐसी शक्तियाँ, और ये ही क्यों, अन्य भी अनेक क्षमतायें प्राप्त हो जाती हैं। अष्ट सिद्धियों की बात तो तुमने सुनी होगी। वे भी कुछ तो शक्तियाँ और कुछ सामर्थ्य हैं; साधक को वे भी तपस्या द्वारा प्राप्त हो जाती हैं। यहाँ मैं एक सच्ची घटना का वर्णन करता हूं। परमपूज्य मेरे गुरुदेव श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभु पूर्व में अनेक दिन ब्रह्मसमाज में थे पश्चात् जब उन्होंने निश्चय रूप से जान लिया कि ब्रह्मसमाज की प्रचलित उपासनापद्धति द्वारा मुक्ति लाभ अथवा भगवत् प्राप्ति की सम्भावना नहीं, तब वे योग्य गुरु की खोज करने लगे। कुछ दिनों में उन्होंने गुरु को पाकर उनसे दीक्षा ली। दीक्षा लेने के पश्चात् वे गुरु की अनेक बातों में एक मत नहीं हो पाते थे। गुरु की बातों में उन्हें विश्वास नहीं होता था। अनेक बार वे गुरु के साथ तर्क करते। एक दिन अष्टसिद्धियों की प्राप्ति, स्थूल देह से सूक्ष्म देह को लेकर बहिगर्मन, सूक्ष्म शरीर से अन्य के स्थूल देह में प्रवेश करना, ये सब विषय लेकर उनको चर्चा गुरु के साथ हुई। परन्तु उन्होंने गुरुदेव की बातों में विश्वास नहीं किया। तब उनके गुरुदेव ने कहा- ''तुम मेरे कथन पर विश्वास नहीं करते हो, अपनी आँखों से देखकर भी विश्वास करोगे या नहीं ?'' हमारे गुरुदेव ने उत्तर दिया- ''अपनी आंखों से देखकर कैसे अविश्वास करूँगा ?''तब उनके गुरु ने एक निर्जन स्थान में जाकर सब सिद्धयों की क्रियायें करके दिखाईं। कभी तो वे वायु से भी हल्के होकर पक्षियों की तरह वायु की लहरियो में तैरने लगते, कभी अतीव सूक्ष्म रुप वस्तुओं को भेदकर एक ओर से दूसरी ओर चले जाते। इस प्रकार अष्टसिद्धियों को दर्शाकर उन्होने परकाया प्रवेश भी दिखाया। उस समय वहां एक परित्यक्त मृतपुरुष का शरीर पड़ा था। गुरु ने कहा- 'देखो, मैं इस शव देह में प्रवेश करता हूं।'' यह कहकर वे बैठ गये, कुछ क्षण पश्चात् उनका शरीर चेतना शून्य हो गया और शव देह सचेतन होकर उठ बैठा। अब उनके गुरुजी ने उनकी ओर देखकर कहा-''क्या अब विश्वास हुआ?'' तब गोस्वामी प्रभु ने कहा-''अविश्वास नष्ट करने के लिए आपने क्या कुछ

कसर रक्खी है?'' इसके पश्चात् उनके गुरुजी मृत देह से फिर अपने शरीर में आ गये। गोस्वामी प्रभु के मुख से मैंने यह कथा सुनी है। अब भी तुम्हें विश्वास हुआ या नहीं ?

शिष्य - आपने जो कहा उससे मुझे परम आश्चर्य तो हुआ है परन्तु अविश्वास नहीं। ऐसी अवस्था को प्राप्त करने के लिये मेरे मन में तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हो रही है।

गुरु -इसी समय तुम्हें इस के बारे में सावधान कर देता हूं। यदि तुम में यह शक्ति आ जाये, तुम ऐसी सामर्थ्य प्राप्त कर लो, तो ऐसी स्थिति में तुम उस में आसक्त मत होना। ऐसी शक्तियों को पाकर उनमें आसक्ति होने पर भगवद्भक्ति नहीं मिलती। उस शक्ति का उपयोग करने की ही इच्छा होगी। अद्भुत कार्य दिखाकर लोगों में मान पाने की इच्छा बहुत प्रबल होगी। उससे मन में अहंकार और अभिमान का उदय होगा। नतीजा यह होगा कि भगवान् से दूर जा पड़ोगे। शक्ति-लाभ करने पर अनेक विघ्न आ घेरते हैं। अनेक साधक ऐसी स्थित में पड़कर आगे उन्नति नहीं कर पाते। इसी कारण से भक्ति मार्ग के आचार्यों ने इसको भक्ति मार्ग में विघ्नरूप कहा है। एक बात सदा ध्यान में रखना कि धर्म के मार्ग में मान-प्रतिष्ठा के समान अन्य शत्रु नहीं है।

शिष्य - पुनर्जन्म का सिद्धांत क्या विचार विमर्श तथा युक्ति द्वारा ज्ञात नहीं हो सकता? और पूर्व जन्मों की स्मृति क्यों नहीं रहती?•

गुरुजी - पुनर्जन्म नहीं मानने पर मानव समाज में व्यक्तिगत परिस्थितियों में जो विषमतायें देखी जाती हैं उनके हेतु की मीमांसा नहीं की जा सकती। इस पृथ्वी पर कोई धनी, कोई दरिद्र, कोई स्वस्थ, कोई रागी, कोई धार्मिक और कोई पापी है, इसका कारण क्या? मानव समाज में जिधर देखो विषमतायें ही दृष्टिगोचर होती हैं। भगवान् के राज्य में ऐसा क्यों ? इसका कारण क्या है? एक तो परिश्रम बिना, कुछ कष्ट भोगे बिना, अनेक प्रकार के स्वादु भोजन खाता है, दूसरा प्रातः से सायं तक परिश्रम कर के, पसीना बहा कर भी पेट भरने योग्य अन्न का जुगाड़ नहीं कर पाता। कोई अपने निरोग

शरीर से स्वास्थ्य के सुख को भोगता है; कोई जीवन भर रोगों की पीड़ा से मरणतुल्य कष्ट भोगता है, कोई उच्च कुल में सदाचारी माता-पिता के घर में उत्पन्न होकर संसार में सब प्रकार के सुख और मान भोग कर धर्म और मुक्ति का अधिकार पाता है, कोई वेश्या के गृह में जन्म पाकर सदाचारी जीवन बिताने की चाह मन में होने पर भी सामाजिक परिस्थिति के कारण सदाचारी होने में अनेकानेक बाधायें पाता है, कोई जन्म से ही अन्धा, कोई मूक, कोई बधिर, कोई कुष्ठ रोगी है। वह जीवित भी मृत-समान अपनी देह को भार-तुल्य वहन करता है। कोई सदाचार से साधु वृति में जीवन व्यतीत करता है, कोई चोरी डकैती कर के, जगत् में अशान्ति फैलाता, अपने जीवन को कलंकित करता है। कोई अत्याचार करता है, कोई अत्याचार के प्रतिरोध में असमर्थ होकर उसे चुपचाप सहन करता है। परम न्यायी परमेश्वर के राज्य में ऐसा क्यों होता है? क्या वह पक्षपाती है? किसी पर अनुग्रह और किसी का निग्रह? किसी को स्नेह की दृष्टि से देखता है और किसी को द्वेष दृष्टि से? ऐसा बिल्कुल नहीं। परमेश्वर में पक्षपात नहीं। तब ऐसा क्यों होता है? संसार में इतनी विषमतायें, इतना ऊँच-नीच क्यों है? इस का एक मात्र कारण है- पूर्व जन्मों के कर्मों के फल। अनेक पूर्व जन्मो में जो पाप-पुण्य कर्म किये हैं उनसे उत्पन्न अदृष्ट ही इन सब विषमताओं अैर अवस्थागत भेदों के एक मात्र हेतु हैं। इनके अलावा इनका अन्य कोई कारण नहीं, नाही उनके लिए अन्य कोई उत्तर देना संभव है। अन्य प्रकार से उनकी हेतु मीमांसा भी सम्भव नहीं। भगवान् वेदव्यास ने उस विषय की मीमांसा उसी प्रकार से की है। ब्रह्मसूत्र में उन्होंने इस विषय में जो सूत्र रचा है सुनो -

''वैषम्यनैर्घृण्ये न, सापेक्षत्वात् तथाहि दर्शयति।' ब्रह्मसूत्रं 2।1। 34

अर्थ - वैषम्यनैर्घृण्ये (विषमता और निर्दयता) न (नहीं हैं) सापेक्ष्यत्वात् (क्योंकि इनमें जीव के कर्म सापेक्ष हेतु हैं) तथा हि (वेद वचन से ही) दर्शयति (दिखाते हैं)।

इस सृष्टि की रचना में विषमता और निर्दयता नहीं है संसार में जो वैषम्य दीखता है उसमें हेतु है, जीव के अपने शुभाशुभ कर्म। वेद में भी यह बात कही है-

''साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापी भवति, पुण्यः पुण्येन कर्मणी भवति पापः पापेन।'' वृहदारण्यक उप. 4।4।5

भले कर्म करने वाला भला मनुष्य होता है, पाप कर्म करने वाला पापी होता है। पुण्य कर्मो से पुण्यात्मा व पाप कर्मों से पापी होता है।

अब इस के बाद - पूर्वजन्म की स्मृति मन में नहीं रहती, ऐसा क्यों? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मृत्यु और पुनर्जन्मरूपी अति उत्कट अवस्थागत परिवर्तनों से मनुष्य को पूर्वजन्म की स्मृति नहीं रहती। कई बार, कितने ही स्थलों में ऐसा देखा गया कि किसी बड़े उग्र रोग से आरोग्य लाभ करने पर रोगी अपने अतीत जीवन की घटनाओं को भूल जाता है। जब एक उग्र रोग की पीड़ा से ही अतीत की स्मृति जाती रहती है, तब मृत्यु और पुनर्जन्म जैसी महान् परिवर्तनकारी घटनाओं के घटित होने पर पूर्वजन्म की स्मृति यदि लुप्त हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं। एक और बात है। मनुष्य के पूर्वजन्म की स्मृति मन में रहे, यह भगवान् की इच्छा नहीं। पूर्वजन्मों की बात स्मरण रहने पर संसार में बहुत गड़बड़, बड़ी विश्रृंखलता हो जाएगी। कल्पना करो, किसी व्यक्ति के पूर्वजन्म के स्त्री पुत्र सभी जीवित हैं। पुनः जन्मग्रहण के पश्चात् यदि उन सब स्त्री पुत्रों की स्मृति उसके मन में रहे, तो ऐसा होने पर उन लोगों के साथ मिलने की इच्छा स्वभावतः उसके मन में उदित होगी। परन्तु तब उनके साथ मिलने की कोई संभावना नहीं होगी। क्योंकि पूर्वजन्म के स्त्री पुत्रों के साथ तो अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं। एक मनुष्य पूर्वजन्म में राजा था अथवा धनी मनुष्य था, परन्तु कर्मों के कारण दूसरे जन्म में उसने दरिद्र होकर जन्म लिया। वह पूर्वजन्म में राजा अथवा धनवान था, वह ज्ञान यदि उसके मन में रहे, तो उसे बहुत ही दुःख होगा। ऐसी स्थिति में उन लोगों को कष्ट और असुविधा के सिवाय और कुछ नहीं मिलेगा। पूर्वजन्म की स्मृति रहने पर संसार में सुख के स्थान में क्लेश, शांति के स्थान में निबिड़ अशांति और गड़बड़ एवं सुख-सुविधा के स्थान पर ऐसी असुविधायें होंगी जिसका अन्त नहीं होगा। इसी लिये परमेश्वर ने ही पूर्वजन्मविस्मृति की व्यवस्था की है।

फिर भी ऐसा होता है कि सचरित्र महापुरुषों को पूर्वजन्मों की स्मृति हो जाती है। तपस्या के द्वारा, साधना के द्वारा भी मनुष्य पूर्वजन्म का विषय जान पाता है। ऐसे व्यक्ति हमने देखे हैं जिन्होंने अपनी तपस्या के बल से पूर्वजन्म के समस्त वृत्तान्त जान लिये थे। पूर्वजन्म की पूर्व स्मृति उनके मन में उत्पन्न हो गई थी।

पूर्वजन्म में जिन्होंने साधना द्वारा उच्च अवस्था प्राप्त की है, उनमें से किसी किसी के मन में भी पूर्वजन्म की बात याद रहती है। जिन्हें पूर्वजन्म की स्मृति रहती है, उन्हें ''जातिस्मर'' कहते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्ति बिरले ही होते हैं। दुर्योधन की माता गाँधारी को अपने पूर्व के एकशत जन्मों का पूरा विवरण स्मृति में था।

श्राद्ध

शिष्य- शास्त्र में परलोकगत व्यक्ति के उद्देश्य से श्राद्ध करने की व्यवस्था है। श्राद्ध करने से मृत मनुष्य का क्या उपकार होता है? नहीं करें तो क्या कुछ हानि होती है?

गुरु - परलोकगत मनुष्यों के उद्देश्य से श्राद्ध-तर्पण नहीं करने से, जल और पिण्ड नहीं देने से, उन लोगों को असीम दु:ख होता है। इससे पूर्व तुम्हें बताया है कि मरने पर स्थूल देह पृथ्वी पर पड़ी रह जाती है, सूक्ष्म देह परलोक को जाता है। यमदूत मनुष्य के सूक्ष्म देह को यमलोक ले जाते हैं। यमलोक का ही दूसरा नाम है पितृलोक। सूक्ष्म शरीर धारी जीव जब यमलोक में बारह दिन-मनुष्यों के एक वर्ष का समय-व्यतीत कर लेता है, तब उसके पश्चात् पृथ्वी में उसने जो पाप पुण्य किये होते हैं, उनका विचार किया जाता है। धर्मराज परलोकगत जीव के पाप-पुण्यों के अनुसार उसको नरक और स्वर्ग भोगने की आज्ञा देते हैं। पहिले तुम्हें बताया है कि जीव का सूक्ष्म शरीर जड़मय है। सूक्ष्म जड़-भूतों से वह गठित है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्चभूतों के सूक्ष्म अंशों द्वारा सूक्ष्म शरीर का निर्माण होता है। जब तक मनुष्य माया के क्षेत्र में रहता है, वासनाओं के वश में रहता है, जड़मय बना रहता है, तब तक उसकी भूख और प्यास भी रहती है और वह सर्दी-गर्मी से दु:ख पाता है।

स्थूल शरीर मे रहते हुए जैसे क्षुधा-तृष्णा, शीतातप से दु:ख अनुभूत होते हैं और उन्हे निवारण करने के लिये स्थूल अन्न-जल तथा वस्त्रादि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सूक्ष्म एवं कारण शरीरों में भी भूख-प्यास और सर्दी-गर्मी के कष्टों की अनुभूति होती है तथा उनके निवारणार्थ सूक्ष्म अन्न, जल तथा वस्त्रादि की आवश्यकता होती है। सूक्ष्म जड़भूतों के मेल से सूक्ष्म शरीर गठित होता है, अत: सूक्ष्म देह की भूख-प्यास और सर्दी मिटाने के लिये सूक्ष्म अन्न वस्त्र ही चाहिये। जीव के स्थूल शरीर में जैसे सूक्ष्म अंग हैं जिन्हें हम सूक्ष्म शरीर कहते हैं, वैसे ही प्रत्येक स्थूल पदार्थ में उसका एक अंग अथवा अंश होता है। अन्न, जल वस्त्रादि सब पदार्थों मे सूक्ष्म अंश होते हैं। अन्न, जल आदि पदार्थों के सूक्ष्म अंशों द्वारा सूक्ष्म शरीर की क्षुधा-तृष्णा निवारण की जाती है। वस्त्रों के सूक्ष्म अंशों द्वारा शीत का निवारण होता है। इसी प्रकार छत्र, चामर, जूता, पंखा आदि पदार्थों के सूक्ष्मांशों द्वारा परलोक वासी जीव के सूक्ष्म शरीर को सुविधा और सुख दिया जाता है। ये सब बातें तुम्हे अफीमचियों जैसी प्रतीत होंगीं। परन्तु ये सब वस्तुत:सत्य हैं। परलोक की घटनायें हमारी इन्द्रियों के गोचर में नहीं। अत: वे युक्ति-तर्क द्वारा समझायी नहीं जा सकती। परन्तु परलोक में जीव को ये सब दु:ख वास्तव में होते हैं। पदार्थों के सूक्ष्माँशों द्वारा उन क्लेशों की निवृति भी वास्तविक है।

श्राद्ध का उद्देश्य है परलोकगत व्यक्तियों के परलोक वास में ऊपर कहे शारीरिक कष्टों को दूरकर उनको संतुष्ट करना। जिससे परलोकगत अपने बंधु किसी प्रकार का दु:ख नहीं पावें, अन्नादि के अभाव से उन्हें कष्ट न हो, वस्त्रादि के अभाव से उन्हे कष्ट नहीं भोगना पड़े, इसी उद्देश्य से श्राद्ध करने की व्यवस्था है। अत: श्राद्ध क्रिया में जो वस्तु दान करने की व्यवस्था शास्त्र में है, पिण्डादि दान करने का जो आदेश है, उसे अवश्य पालन करना चाहये। हमारे परलोकगत माता-पिता एवं अन्य संबंधियों के प्रति यदि हम में कुछ भी ममता है, उनके प्रति कुछ भी कृतज्ञता है, तो उनके पारलौकिक कष्ट दूर करने के लिये, उनके उद्देश्य से तर्पण, पिण्ड़ प्रदान, अन्न दस्त्रादि पदार्थों के दान करने की जो व्यवस्था है, उन पदार्थों को

अवश्य दान करना चाहिये। परलोकगत मृत मनुष्य के पुत्र, पौत्र आदि संबंधी श्राद्ध के दिन में मृत व्यक्ति के उद्देश्य से जो पिण्डदान करते हैं अथवा अन्न पानादि दान में देते हैं, मृत व्यक्ति उन सब पदार्थों के सूक्ष्म अंशों का उपभोग कर अपनी क्षुधा-तृषा तथा अन्य प्रकार के कष्टों का निवारण करता है। पृथ्वी पर परलोकगत व्यक्ति के उद्देश्य से जो पिण्ड तथा अन्न पानादि दिये जाते हैं, उनसे उसकी क्षुधा-तृषा तथा अन्य अभाव दूर होते हैं। मृत व्यक्ति नवीन देह धारण कर श्राद्ध में दिये गये अन्न का भोजन करके ही जीता है। श्राद्धकर्ता प्रतिमास अथवा वर्ष के अन्त में जो श्राद्ध करते हैं, उन्हीं श्राद्धों के अन्न उसे भोजन के रूप में मिलते हैं। मृत व्यक्ति यदि मनुष्य होकर पुनः जन्म लेता है, तो श्राद्ध में दिया अन्न उसे अन्न रूप में, पशुपक्षियों का देह पाने पर उन पशुओं के उपयोगी खाद्य बनकर उनके उपभोग में आता है। जिनकी संतान जिस प्रकार के पदार्थों से श्राद्ध क्रिया करते हैं, मृत्यु के पश्चात् परलोक का देह धारण कर वे उन पदार्थो का ही उपभोग करते हैं। श्राद्ध में दिये हुए अन्न को ही खाकर सब परलोकगत प्राणी जीते हैं। पुत्र पौत्रादि श्राद्ध में जिन पदार्थों द्वारा श्राद्ध करते हैं, वे पदार्थ अन्न पान बन जाते हैं। इस सम्बन्ध में एक सत्य घटना तुम्हें बताता हूं, जिससे इस विषय की सत्यता में पुष्टि होगी।

एक बंगाली ब्राह्मण नवयुवक उत्तर पश्चिम देश में रेलवे स्टेशन मास्टर के पद पर काम करता था। वह बड़ा शराबी और लंपट था। जो कुछ कमाता उसका अधिकांश शराब और वेश्या सेवन में खर्च कर देता। किसी भले काम में अथवा दान पुण्य में एक कौड़ी भी व्यय नहीं करता था। इस प्रकार से कुछ समय बीत गया तो उसे एकाएक एक संघातिक रोग हो गया। धीरे धीरे रोग ने भीषण रूप धारण कर लिया और उसकी मृत्यु हो गयी। लोगों ने जब देखा कि वह मर गया है, तो उसके दाह संस्कार के लिये प्रबंध किया जाने लगा। शव पड़ा था, एक व्यक्ति उसके पास में बैठा था। छोटे शहरों में संस्कार का प्रबन्ध करने में कुछ देरी हो जाती है और वह स्थान बंगाल से बाहर था। उत्तर-पश्चिम प्रान्त में बंगाली बहुत कम रहते है। अतः संस्कार का प्रबन्ध करने में अधिक ही देर हो रही थी। इसी बीच में जो व्यक्ति शव के

निकट बैठा था उसने देखा कि शव की आँखे झपकने लगी हैं। धीरे धीरे शव ने आँखें खोल दीं- बातें करने लगा। समय बीतने पर व पूर्ण निरोग हो जाने पर उसने बताया; जब मेरी मृत्यु हुई तो मैंने देखा कि दो काले रंग के कुरूप मनुष्य जिनके हाथों में एक-एक पाश और दण्ड था, मुझे इस शरीर से बाहर निकल कर आकाश मार्ग से ले चले। कुछ दूर जाने पर मैने एक नदी देखी। उस नदी के पार मैं एक लोक में पहुंच गया। वहाँ वृक्ष, लता-पर्वत आदि सब कुछ हैं। महलों जैसे बड़े बड़े भवन भी वहाँ पर हैं। वहाँ मैने अपने दादा-परदादा आदि पुरूखों को देखा। उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा- 'तुम्हारी मृत्यु हो गई, अब तुम पितृलोक में आ गये हो।'' यमराज को दिखाते हुए उन्होंने कहा-ये पितृलोक के अधिपति यमराज हैं।' मैने यमराज का दर्शन किया। फिर मेरे पुरुखों ने मुझ से पुछा- 'तुम यहाँ रहना चाहते हो अथवा पृथ्वी पर अपने पहिले शरीर में जाने की इच्छा करते हो? तुम्हारी देह पृथ्वी पर अभी भी है। इच्छा हो तो उस शरीर में तुम पुनः जा सकते हो।' तब मैने कहा - 'मैं पृथ्वी पर अपने शरीर में वापिस चला जाऊँगा। इस पर धर्मराज ने उन दूतों को आज्ञा दी कि इसे पृथ्वी पर छोड़ आओ। वे दोनों दूत मुझे अपने साथ पृथ्वी पर लाये और मुझे इस देह में छोड़कर चले गये। पितृलोक से लौटते समय पितृलोक से बाहिर मैंने एक स्त्री और पुरुष को अति दीन दशा में देखा। मैने उनसे पूछा - 'आप कौन हैं? और आप की दुर्दशा का कारण क्या है? उन्होंने कहा ''हम दोनों तुम्हारे माता-पिता हैं। जब हम पृथ्वी पर जीवित थे, तब हमने कुछ दान नहीं दिया। तुमने हमारे निमित्त एक कौड़ी भी दान नहीं की और श्राद्ध-तर्पण आदि कुछ नहीं किया। इसी कारण से हमारी यह दुर्दशा है। मनुष्य पृथ्वी पर जो दान करता है, उसका सूक्ष्म अंश पितृलोक में पहुंच कर उसकी क्षुधा-तृषा निवारण करता है और अन्य दुःखों से रक्षा करता है। यहाँ हमें क्षुधा लगती है, परन्तु क्षुधा निवारण के लिये अन्न नहीं, प्यास है, परन्तु प्यास मिटाने के लिये हमें जल प्राप्त नहीं। सर्दी-गर्मी से अनेक प्रकार के कष्ट हो रहे हैं, परन्तु उनके निवारण के लिये कोई उपाय अथवा वस्तु हमारे पास नहीं। फलतः हम लोग यह दारुण दुर्दशा भोग रहे हैं।

बेटा ! तुम पृथ्वी पर जा रहे हो, हमारी यह दुर्दशा जिससे दूर हो, वैसा उपाय करना। नियमानुसार हमारे लिये श्राद्ध-तर्पण करना, हमारे निमित्त कुछ दान करना और गया में हमारा श्राद्ध करना। गया में विष्णुपद में पिण्ड देने से ही प्राणी की सद्गति होती है।''

तदन्तर वह महाशय अनेक वर्ष तक जीवित रहे। जितना समय जीवित रहे, मद्यपान और वेश्या संग को त्याग कर परम सदाचार के साथ उन्होंने अपना जीवन बिताया और अपनी आय का आधा भाग माता-पिता के उद्देश्य से व्यय करते रहे। यह घटना पूर्णतया सत्य है। उनसे ही सुनी गयी है। कुछ दिन हुए, उनकी मृत्यु हो गयी।

सूक्ष्म देह में भी आहार की आवश्यकता होती है। यह शास्त्रों के पढ़ने पर देवताओं के अमृतरसपान, सोमरसपान इत्यादि विवरणों से ज्ञात होता है। देवों के शरीर सूक्ष्म होते हैं। सूक्ष्म देह धारी देवगण भी खाते पीते हैं, उन्हें भी आहार और पान की आवश्यकता होती है।

श्राद्ध का और भी प्रयोजन है। पितृलोक में ब्राह्मणादि प्रत्येक जाति के लिये एक-एक पितृपुरूष हैं। वे सात हैं, यथा-अग्निष्वात्ता:, वर्हिषद:, सोमपा:, आज्यपा:, सुकालिन:, हविष्मन्त: और ऊष्मपा:। इसमें सोमपा: ब्राह्मणों के, हविष्मन्त: क्षत्रियों के; आज्यपा: वैश्यों के और सुकालिन: शूद्रों के पितृपुरुष हैं। अग्निष्वात्ता: देवताओं के, और वर्हिषद: दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, सुपर्ण, किन्नरादियों के पितृपुरुष हैं।

सोमपा: नाम विप्राणां क्षत्रियानां हविर्भुज:।
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्रानां तु सुकालिन:॥

मनुसंहिता 3।19

ये सब पितृपुरूष समाधि में स्थित होकर प्रत्येक वर्ण का मंगल विधान करते हैं। श्राद्धों में दिये गये जल और पिण्डादि से उनकी तृप्ति होने पर वे अपने वंशों को आशीर्वाद देते हैं। इससे एक संपूर्ण वंश का कल्याण होता है।

मुक्ति

शिष्य - मुक्ति किसे कहते हैं ?

गुरु - मुच् धातु से मुक्ति शब्द बना है। मुच् धातु का अर्थ है किसी का किसी से छुटकारा पाना। किसी प्रकार की उपाधि से, किसी प्रकार के बन्धन से, किसी की पकड़ से छूटने का नाम है-मुक्ति। सत्व, रज: तम: इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति की पकड़ में आकर अविद्या से उपाधियुक्त होकर, माया के बन्धन में बंध कर जीव कर्म के आधीन होता है। कर्म का आदि-अन्त नहीं; भगवान् का, काल का और जीव के कर्मचक्र का भी आदि और अन्त नहीं। जीव इस अनादि कर्मचक्र में पड़कर कुम्हार के चक्के की भांति स्वत: चलता रहता है। भले और बुरे कर्मों (पापों और पुण्यों) के फलस्वरूप सुख-दु:ख के वश में होकर जीव कभी नरक, कभी स्वर्ग भोगता है, और फिर अनेक योनियों में जन्म लेता है। इस प्रकार बार-बार जन्म-मरण के वश में रहता है। प्रकृति की इस पकड़ से, अविद्या की उपाधि से, माया के बन्धन से, सुख और दु:ख, पाप और पुण्यों के उत्पादक कर्मों के चक्र से बाहिर निकल आना, अपनी रक्षा कर लेना-इसी का नाम है मुक्ति। जीवात्मा स्वभाव से ही शुद्ध अर्थात् निर्लेप, बुद्ध अर्थात् ज्ञानस्वरूप और मुक्त अर्थात् सब प्रकार के बन्धनों से रहित है। सुख दु:ख, धर्माधर्म, पाप-पुण्य, संकल्प-विकल्प ये सब जो आत्मा में दिखाई देते है, ये जीवात्मा के स्वाभाविक गुण नहीं। जीवात्मा को प्रकृति की सन्निधि से, माया की सन्निधि से ये गुण प्राप्त हुए हैं।

प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणै:।
अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्माज्जलार्कवत् ॥
स एष एव यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिषज्जते ।
अहंक्रियाविमूढ़ात्मा कर्त्तास्मीत्यभिमन्यते ॥
तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्यनिर्वृत: ।
प्रासङ्गिकै: कर्मदोषै: सदसन्मिश्रयोनिषु ॥

श्रीमद् भागवत स्कन्ध 3 अध्याय 27 श्लोक1–3

प्रकृति में स्थित होकर भी पुरुष प्रकृति के गुणों से लिप्त नहीं होता क्योंकि पुरुष स्वभाव से विकार रहित है, अकर्त्ता है, गुणों से हीन है जैसे जल में पड़ा सूर्य का प्रतिबिम्ब अलिप्त रहता है। परन्तु जब प्रकृति के गुणों में आसक्त होता है, तब अहंकार से मोहित होकर 'मैं करता हूं' इस प्रकार के अभिमान से युक्त होता है। अतः इस अभिमान से ही उत्पन्न कर्मों के दोष से उत्तम और अधम योनियों में जन्म लेकर उसे संसार चक्र में आना पड़ता है।

ऊपर कहे गुण, जीवात्मा में संक्रान्त होकर, रेशम का कीड़ा जैसे अपने को कोकून में बन्द कर लेता है, वैसे ही जीवात्मा को यद्यपि त्रिगुण बांध लेते हैं, तो भी वे सब सदैव नहीं रहते। तत्त्व-ज्ञान का उदय होने पर, ब्रह्म-ज्ञान का उदय होने पर जीवात्मा की ये सब उपाधियाँ, ये सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं। पहिले सृष्टि प्रकरण में जो अहं तत्व की बात कही है, ब्रह्म की जीव शक्ति जब उस अहंकार के अधीन होकर उपाधि युक्त होती है, तब जीव 'मैं और मेरा' इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। जीव में 'मैं-मेरा' ऐसे ज्ञान का उदय होने पर, जीव-मैं धार्मिक हूं, मैं पापी हूं, मैं सुखी, मैं दुखी, मैं धनी, मैं दरिद्र, मैं स्थूल, मैं कृश, मैं स्वस्थ, मैं रोगी हूं, इस प्रकार के अभिमान के वश में हो जाता है। तब वह जीव ''मैं कर्त्ता हूँ'' इस कर्तृत्व की उपाधि से युक्त होकर, किये हुए कर्मो के अधीन होता है। तब अपने कृत कर्मों के संस्कारों के अधीन होकर अदृष्ट से बंध जाता है। जैसे राजा अपराधियों को उनके कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार के दण्ड देता है, वैसे ही अदृष्ट उसे नाना प्रकार के सुख-दुःख देता है। तब जीव प्रकृतिजन्य सुख-दुःख से कभी अपने को सुखी और कभी दुःखी मानता है।

प्रकृति की पकड़ में आ जाने पर ''मैं-मेरा' ऐसा अभिमान रूप अहंकार, संकल्परूप मन, निश्चयात्मिका बुद्धि, अनुसंधानात्मक चित्त, इस प्रकार के कारण देह अथवा आनन्दमय कोषों सत्रह अवयवों वाले सूक्ष्म देह, अथवा विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमय ये तीनों कोषों, और यह स्थूल देह अथवा अन्नमय कोष इन सब बंधन से जीव बंध जाता है। इन्हीं संस्कारों अथवा बन्धनों से मुक्त होने का नाम है-मुक्ति

''यौगिक क्रियाओं द्वारा जब अन्नमय कोष पर अधिकार पा लिया जाता है, तब इस पृथ्वी की वस्तुओं की ओर मन का आकर्षण नहीं रहता। प्राणमय कोष को वश में करने पर शरीर में काम, क्रोध आदि उत्तेजनायें नहीं रहती। मनोमय कोष पर अधिकार हो जाने पर संकल्प-विकल्प का एकदम विनाश हो जाता है। विज्ञानमय कोष पर अधिकार होने पर संशय नहीं होते। आनन्दमय कोष पर अधिकार होने से पृथ्वीलोक के सुख मन को मोहित नहीं कर पाते'' ये श्रीमान् विजयकृष्ण गोस्वामी महाराज के वचन हैं।

जीव जब मुक्त हो जाता है तब आत्मा का देह के साथ जो बंधन है, वह टूट जाता है। तब जीवात्मा यदि देह में रहे भी तौ शारीरिक सुख और दुःख उस पर प्रभाव नहीं डाल सकते। रोग से उत्पादित शारीरिक दुःख अथवा पीड़ायें उसके लिये बिल्कुल नहीं रहती। उसके मन, चित्त और अहंकार आदि अन्तःकरण की वृत्तियों के कार्य पूर्णरूप से नष्ट हो जाते हैं। तब उनमें धर्माधर्म, पाप-पुण्य, सुख-दुःख कुछ भी नहीं रहते। मैं इसका कर्त्ता हूं, मैं स्थूल हूं, मैं कृश हो रहा हूं, मैं रोगी हूं इस प्रकार के सब अभिमान पूर्णतया लुप्त हो जाते हैं। तब देह में रहता हुआ भी वह देह के धर्मो वा गुणों के अधीन नहीं रहता। किसी तरह से भी अन्तःकरण की वृत्तियों के अधीन वह नहीं रहता। काम-क्रोध आदि जो छःशत्रु हैं, वे स्वयं उसके आधीन हो जाते हैं, उसकी आज्ञाकारिता में रहते हैं। आत्मा की ऐसी मुक्त दशा को, उपाधिरहित अवस्था को ही मुक्ति कहते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में मुक्ति की विवेचना इस प्रकार की है–

अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरूपं संपद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते। छान्दोग्य उप0 । 8 ।3 ।4

यह जीवात्मा परम ज्योति ब्रह्म को प्राप्त हो कर अपने स्वरूप को पा लेता है।

भगवान वेदव्यास ने भी इसी वेदवचन के आधार पर सूत्र की रचना की है।

''संपद्याविर्भाव: **स्वेन शब्दात्।''** **ब्रह्मसूत्रं 4** ।4।1

ब्रह्म को प्राप्त **होकर जीव अपने स्वरूप को** पा लेता है।

अन्यान्य दर्शनों में भी मुक्ति की विवेचना की गयी है। न्याय और वैशेषिक दर्शनों के प्रणेता महर्षि गौतम तथा कणाद कहते हैं–

''दुःखात्यन्तनिवृत्तिर्मुक्तिः।''

दुःख की पूर्णरूप से निवृत्ति होना ही मुक्ति है। साँख्य दर्शनकार महर्षि कपिल कहते हैं–

''अथ त्रिविधिदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।''

तीनों प्रकार के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक दुःखो का पूर्णरूप से नष्ट होना ही अत्यन्त पुरुषार्थ अथवा मुक्ति कहलाती है। योगदर्शनकार महर्षि पातञ्जलि ने कहा है।

''लिङ्गशरीरापगमे सति परमात्मनि जीवात्मा मुक्तिः।'

लिङ्ग शरीर के नष्ट हो जाने पर परमात्मा और जीवात्मा का संयोग हो जाता है, इसे ही मुक्ति कहते हैं।

पूर्व मीमांसा के रचयिता महर्षि जैमिनि कहते हैं–

''नित्यसुखाभिव्यक्तिर्मुक्तिः।''

नित्य सुख की अभिव्यक्ति अर्थात् प्रकाश अथवा अनुभव को मुक्ति कहते हैं।

ब्रह्म के साथ संयोग के बिना नित्य सुख होता नहीं। जीवात्मा परमात्मा के साथ संयुक्त होने पर नित्य ब्रह्मानन्द का अनुभव कर के कृतार्थ होता है। अन्यान्य दर्शनकारों ने मुक्ति के जो लक्षण कहे हैं, उनकी अपेक्षा महर्षि वेदव्यास द्वारा कथित लक्षण सुन्दर और वेदानुकुल है। ब्रह्म के साथ साक्षात्कार बिना मुक्ति नहीं होती, वेद में यह स्पष्ट कहा है। ब्रह्म सूत्र में जो मुक्ति का लक्षण दिया है उसमें भी यही बात है। अन्य दर्शनों के प्रणेताओं ने यह बात नहीं कही। तो भी भगवान् पातञ्जलि ने उसका उल्लेख किया है। ब्रह्म के दर्शन बिना मुक्ति नहीं होती, उपनिषद् में यह स्पष्टरूप से कहा है–

भिद्यते हृदयग्रन्थि श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

मुण्डक उप0 2।2।8

उस परावर अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों के भी प्रभु ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने पर साधक की हृदय-ग्रन्थि टूट जाती है। उसके सब संशय कट जाते हैं और उसके सब कर्मों का क्षय हो जाता है— इसी अवस्था को ब्रह्म-ज्ञान कहते हैं।

शिष्य - मुक्ति के पश्चात् जीव की कैसी अवस्था होती है ?

गुरु - मुक्ति के पश्चात् जीव स्वाधीन हो जाता है। इस विषय में महर्षि वेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र में कहा है—

''अतएव चानन्याधिपतिः।'' 4।4।9

मुक्ति के अनन्तर जीव किसी की अधीनता में नहीं रहता, अर्थात् वह कर्मों के वश में, सुख-दुःख के वश में, पाप-पुण्य के वश में, तथा जन्म-मृत्यु के वश में नहीं रहता। माया के, अविद्या के बन्धनों से वह पूर्णरूपेण मुक्त हो जाता है। परन्तु उसे ब्रह्म की अधीनता में रहना होता है। वह सत्यसंकल्प हो जाता है, अर्थात् जो संकल्प करता है, वह सत्य होता है। उसकी कल्पना में लेश मात्र भी मिथ्यात्व नहीं रहता। इच्छा करते ही सब संकल्प सिद्ध हो जाते हैं। इस विषय में ब्रह्मसूत्र है— ''संकल्पादेव तच्छ्रुतेः।'' 4।4।8

इच्छामात्र से ही उसका संकल्प पूर्ण हो जाता है। इस विषय में वेद का प्रमाण है—

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ॥

मुण्डक उपनिषद् 3।1।10

मुक्तात्मा मन ही मन जिन जिन स्वर्गादिलोकों को पाने की इच्छा करता है, और जिन जिन भोगों की प्रार्थना करता है, वे सब उसे प्राप्त होते हैं। अतः जो अपने मंगल की कामना करता है वह आत्मज्ञ पुरुष की सेवा करे।

मुक्तात्मा जीव की ब्रह्म के साथ समता केवल भोग के विषय में होती है, अर्थात् मुक्तात्मा ब्रह्म के साथ सब प्रकार के भोगों को भोगता रहता है, परन्तु शक्ति के विषय में समता नहीं होती, अर्थात् वह ब्रह्म की नाईं सर्वशक्तिमत्ता प्राप्त नहीं करता।

इस सम्बन्ध में व्यासदेव ने ब्रह्मसूत्र में लिखा है—

''भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च।'' 4।4।21

केवल भोग के विषय में मुक्त जीव ब्रह्म के साथ समता पाता है।

इस विषय में श्रुति का प्रमाण है –

''सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।''

तैत्तरीय उप. ब्रह्मवल्ली अनु. 1

वह मुक्तात्मा सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्म के साथ सब प्रकार के भोगों को भोगता रहता है।

ब्रह्म की शक्ति के विषय में जीव की समता नहीं हो पाती इस सम्बन्ध में ब्रह्मसूत्र में लिखा है –

''जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च।'' 4।4।17

मुक्तात्मा को जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय करने की शक्ति नहीं होती। वह शक्ति केवल ब्रह्म की ही है। वह ब्रह्म की अपनी शक्ति है।

मुक्तात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता। इस विषय में ब्रह्म सूत्र है –

''अनावृत्तिः शब्दादनावृतिः शब्दात्।'' 4।4।22

श्रुति का वचन है –

''न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते।''
गीता में भी भगवान ने कहा है –
''आब्रह्मभुवनल्लोकाःपुननरावर्त्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

हे अर्जुन ! ब्रह्म लोक तक सब लोकों में निवास करने वाले जीवों का पुनर्जन्म होता है। परन्तु मुझको प्राप्त हो जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता।

मुक्त जीव सदा ब्रह्म के साथ संयुक्त होकर रहता है। तब वह अपने को ब्रह्म से अभिन्न देखता है। ब्रह्मसूत्र में कहा है –

''अविभागेन दृष्टत्वात्।'' 4।4।4

मुक्तात्मा पुरुष अपने को ब्रह्म से अभिन्न अनुभव करता है। आत्मा की इसी अवस्था को ब्रह्मज्ञान की अवस्था कहते हैं।

आत्मा

शिष्य - आत्मा किसे कहते हैं ?

गुरु - प्रत्येक प्राणी के अन्तर में जो एक चेतन पदार्थ है उसे आत्मा कहते हैं। इस आत्मारूप चेतन पदार्थ के शरीर के भीतर रहने से ही प्राणी जीता रहता है और वृद्धि को प्राप्त होता हैं। ज्योंही यह शरीर से बाहिर होता है, शरीर मृत हो जाता है। हर एक प्राणी के शरीर में स्थित इस आत्मा को ही जीवात्मा कहते हैं। ब्रह्म को भी आत्मा कहा जाता है। उपनिषद् आदि शास्त्रों में उसे परमात्मा नाम से कहा गया है। इस सम्बन्ध में वेद कहते हैं –

''ज्ञाऽज्ञौ द्वावजेशवीशानीशौ'' श्वेताश्वतर उप0 1।9

ज्ञ (सर्वज्ञ) अज्ञ (अज्ञानी) द्वौ (दोनों आत्मा और परमात्मा) अजौ (जन्म रहित हैं) ईश (ईश्वर अर्थात् सृष्टि स्थिति और प्रलय के कर्त्ता तथा) अनीश (न ईश अर्थात् पराधीन)। अर्थात् आत्मा दो हैं; उनमें एक सर्वज्ञ और ईश्वर हैं, दूसरा अज्ञानी और पराधीन है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन्श्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।

मुण्डक उप. 3।1।1

श्वेताश्तर उप. 4।6

सयुजा (सर्वदा संयुक्त) सखाया (समान स्वभाव वाले) द्वा (दो) सुपर्णा (पक्षी– जीवात्मा और परमात्मा) समानं (एक ही) वृक्षं (शरीर रूप पेड़ पर) परि[illegible]स्वजाते (एक साथ रहते हैं) तयो: (उन दोनों पक्षियों अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा में) अन्य: (एक जन) स्वादु (स्वादयुक्त) पिप्पलं (कर्मफलों को) अत्ति (भोग करता है) अन्य (दूसरा) अनश्नन् (कर्मफलों का भोग न करता हुआ) अभिचाकशीति (साक्षीरूप में देखता रहता है)।

सर्वदा एकत्र रहने वाले समान स्वभाव के जीवात्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी शरीर रूपी एक ही वृक्ष पर साथ-साथ रहते हैं। उनमें से एक जीवात्मा स्वादु. कर्मफलों को भोगता रहता है दूसरा

अर्थात् परमात्मा कर्मफलों को न भोगता हुआ केवल साक्षीरूप से देखता रहता है।

शिष्य - नये शरीर के साथ क्या नये जीवात्मा की सृष्टि होती है ?

गुरु - नहीं; जीवात्मा नया नहीं बनाया जाता। आत्मा अज अर्थात् जन्म रहित और नित्य है। उसका न जन्म होता है, न मृत्यु। श्वेताश्वतर उपनिषद् में तो दोनों आत्माओं को जन्म रहित कहा है। कठोपनिषत् में भगवान् यम ने नचिकेता को यही बात कही है –

न जायते म्रियते वा विपश्चिन् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

कठोप 0 2।18

विपश्चित् (अर्थात् सर्वज्ञ) अयं (यह आत्मा) न जायते (न उत्पन्न होता है) न म्रियते (न मरता है) कुतश्चित् (किसी भी कारण से) न बभूव (यह आत्मा उत्पन्न नहीं हुआ) कश्चित् (नाही कोई इस आत्मा से उत्पन्न हुआ) अज: (क्येंकि यह तो जन्म रहित है) शाश्वत: (सदा स्थिर रहने वाला) पुराण: (कभी न बदलने वाला) अयं (यह आत्मा) शरीरे हन्यमाने (देह के नष्ट होने पर भी) न हन्यते (मारा नहीं जाता)।

यह सर्वज्ञ आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है। यह किसी कारण रूप से कार्यरूप में उत्पन्न नहीं होता। इससे भी कोई उत्पन्न नहीं होता क्योंकि यह आत्मा अज, नित्य, शाश्वत और अपरिणामी है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में आत्मा के सम्बन्ध में यही बात कही है। कठोपनिषत् के इस मंत्र में कुछ परिवर्तन करके गीता में कहा है –

न जायते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय:।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

2 । 20

उन्होने आत्मा के जन्म रहित और नित्य स्थायी रहने के सम्बन्ध में और भी कहा है –

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसको अग्नि जला नहीं सकती, इसे जल गला नहीं सकता तथा वायु सुखा नहीं सकता।

शिष्य - जीवात्मा का स्वरूप क्या है?

जैसे ब्रह्म शुद्ध अर्थात् निर्लेप, बुद्ध अर्थात् ज्ञान मय और मुक्त अर्थात् प्रकृति अथवा माया के बन्धनों से रहित है, वैसा ही शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है - जीवात्मा। ब्रह्म के साथ जीवात्मा का स्वरूपगत कुछ भेद नहीं। तो भी ब्रह्म की मायाशक्ति से आबद्ध होकर जीवात्मा शरीर में बंध जाता है। रेशम का कीड़ा जैसे अपने को कोकून में स्वयं ही आबद्ध कर लेता है, मेघ जैसे सूर्य को आच्छन्न कर लेते हैं, वैसे ही माया भी जीव को घेर कर बांध लेती है।

इस आवरण के कट जाने पर जीवात्मा का अपना स्वरूप प्रकाश में आ जाता है। तब उसका शद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप प्रकट होता है।

शिष्य - आपने कहा है जीव का ब्रह्म रूप से स्वरूप में कोई भेद नहीं। ब्रह्म तो बहुत महान् है, सर्वव्यापी है। क्या जीवात्मा भी वैसा ही महान् और सर्वव्यापी है ?

गुरु - नहीं, जीवात्मा ब्रह्म के समान विशाल और सर्वव्यापी नहीं। वह तो छोटा से भी छोटा है।

''बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य यो भागों जीवः स विज्ञेयः।'' श्वेताश्तर 0 5। 9

एक टुकड़ा बाल के अग्र भाग को एक सौ टुकड़ों में काटने पर एक टुकड़ा जितना होगा, जीवात्मा को उसके समान जानो।

''एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः।''

मुण्डकउप. 3 । 1 । 9

इस अणु परिमाण के आत्मा को चित्त द्वारा विशुद्ध ज्ञान द्वारा ही जानना होता है।

मुण्डकोपनिषद् की इस श्रुति के आधार पर ही भगवान् वेदव्यास ने सूत्र की रचना की थी -

''स्वश्बदानुमानाभ्याञ्च'' 2।3।22

मुण्डक उपनिषद् के वचन में ''एषोऽणुरात्मा'' इस मंत्र में आत्मा को अणु परिमाण कहा है। अत: जीवात्मा का परिमाण अणु जैसा ही है।

शिष्य - कोई कोई जीवात्मा को ब्रह्म कहते हैं। जीवात्मा क्या सच ही ब्रह्म है ? क्या शास्त्र में यह बात है ?

गुरु - हां, शास्त्र में यह बात है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है –

''अयमात्मा ब्रह्म।'' 2।5।19

यह आत्मा ही ब्रह्म है।

अन्य शास्त्रों में भी इसके समान वचन हैं। शास्त्र में जो यह कहा है कि आत्मा ही ब्रह्म है इसका तात्पर्य यह है कि जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं अपरिणामी हैं; दोनों में स्वरूपगत भेद कुछ नहीं तो भी शक्ति और परिणाम में खूब भेद है। ब्रह्म अथवा परमात्मा विभू एवं सर्वव्यापक हैं, जीवात्मा क्षुद्र और अणु स्वभाव का है और ब्रह्म का अंश है। दहकती हुई अग्नि और उसकी एक चिनगारी दोनों ही अग्नि हैं। एक बड़ी, दूसरी छोटी, अग्नि दोनों ही है। चिनगारी को यदि अग्नि कहें तो क्या गलत होगा ? कभी नहीं। जैसे एक चिनगारी को अग्नि कहने में कोई दोष नहीं, वैसे ही जीवात्मा को ब्रह्म कहने में कोई दोष नहीं। उपनिषद् आदि शास्त्रों में इसी अभिप्राय से, इसी अर्थ में, जीव को ब्रह्म कहा है। तुम्हें पहिले बताया है कि ब्रह्म के साथ जीव का स्वरुपगत भेद नहीं होने पर भी शक्ति में बहुत भेद है। ब्रह्मसूत्र में भगवान् वेदव्यास ने यह बात स्पष्टतया कही है। ब्रह्मसूत्रों में उन्होने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, उन्हें सुनो –

''जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च।'

ब्रह्मसूत्र 4।4।17

मुक्त जीव में जगत् के व्यापार अर्थात् सृष्टि-स्थिति-संहार की शक्ति नहीं होती।

मुक्त जीव की ब्रह्म के साथ समानता केवल भोग के विषय में होती है। ''भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च।'' ब्रह्मसूत्र 4।4।21

भोग के विषय में ही मुक्त जीव की ब्रह्म के साथ समता है।

इस विषय में श्रुति का प्रमाण सुनो –

''सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता।''

तैत्तरीय उपनिषत् अनु. 1

सः (वह मुक्तात्मा) विपश्चिता (सर्वज्ञ) ब्रह्मणा सह (ब्रह्म के साथ) सर्वान् कामान् (सर्व प्रकार के काम्य भोगों को) अश्नुते (भोगता रहता है)

शिष्य - आप के कथन से यह ज्ञात होता है कि जीव ब्रह्म से अलग है और वह ब्रह्म का अंश भी है।

गुरु - तुम ठीक कहते हो। जीव ब्रह्म से पृथक और ब्रह्म का अंश ही है। शास्त्र में जीव को ब्रह्म का अंश कहकर ही उल्लेख किया गया है। और जीव जो ब्रह्म से पृथक् है यह बात भी शास्त्र में कही है। जीव जो ब्रह्म का अंश है इस विषय में ब्रह्मसूत्र में कहा है -

''अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दासकितवादित्वमधीयत एके।''

ब्रह्मसूत्र 2।3।43

जीवात्मा परमात्मा का अंश है इसी कारण से श्रुति में उसे अलग करके कहा है। और अवश्य ही वह भिन्न प्रकार का है क्योंकि ब्रह्मदास ब्रह्मत्व इस प्रकार का पाठ अथर्व शाखा वालों ने किया है।

''मंत्रवर्णाच्च'' ब्रह्मसूत्र 2।3।44

मंत्रवर्ण अर्थात् वेद के वचन से भी जीव ब्रह्म का अंश है यह निश्चय होता है। वेद का प्रमाण है - ''पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'' ''पुरुषसूक्त''

समस्त भूत अर्थात् सृष्टि उसके एक पाद में है और अन्य तीन स्वर्ग में हैं अर्थात् बैकुण्ठ आदि धाम उन तीनों पादों में हैं।

''अपि स्मर्यते।'' ब्रह्मसूत्र 2।3।45

स्मृति अर्थात् गीतादि शास्त्रों में भी जीव को ब्रह्म का अंश कहा गया है। गीता में -

''ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन: ।'' गीता 15।7

जीवलोक में मेरा ही अंश जीव है और वह अनादि है। इस स्थल में जीव को परमेश्वर का अंश कहा है। जीव जो ब्रह्म से अलग है, इस सम्बन्ध में सुनो -

जीव ब्रह्म से अलग है यह बात भगवान् वेदव्यास ने अपने ब्रह्मसूत्र में अनेक सूत्रों में सिद्ध की है। सब सूत्रों को कहने की आवश्यकता नहीं। केवल तीन सूत्र यहाँ कहता हूं। उससे समझ में आ जायेगा कि जीव ब्रह्म से पृथक् है, यही शास्त्र का सिद्धान्त है।

''अधिकन्तु भेदनिर्देशात्।''ब्रह्मसूत्र 2।1।22

जीव ब्रह्म से पृथक् है इसी कारण से उपनिषत् में कहा है - ''अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिश्चान्यो मायया सन्निरुद्ध:।

श्वेताश्तरोपनिषद् 4।9

मायी ब्रह्म इसी माया से इस जगत् की सृष्टि करता है। अन्य जो जीव है वह इस संसार में माया द्वारा ही बंधा रहता है। ''नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।''

श्वेताश्तरोपनिषत् 6।13

जो नित्यों में परम नित्य और चेतनों में परम चेतन है और एक होते हुए भी जो अनेकों जीवों के सब काम्य विषयों का विधान करता है।

पहिले जो ''ज्ञाज्ञौ'' और ''द्वा सुपर्णा'' ये वेद वचन उद्धंत किये हैं, वे भी जीव की ब्रह्म से पृथकता प्रतिपादित करते हैं।

''भेदव्यपदेशाच्च' ब्रह्मसूत्र 1। 3। 5

भेद व्यपदेशात् का अर्थ है कि वेद में जीव को ब्रह्म से पृथक् कर के कहा है। इसीलिये जीव ब्रह्म से पृथक् है।

''तस्मात् वा एतस्मात् विज्ञानमयात्।
अन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः।

तैत्तरीय उपनिषत् अनु. 5

इस विज्ञानमय जीवात्मा से वह आनन्दमय परमात्मा भिन्न है।

''शारीरश्चोभयेऽपिभेदेनैनमधीयते।'' ब्रह्मसूत्रं 1।2।20

काण्व और माध्यन्दिन दोनों शाखा वालों ने जीव और ब्रह्म पृथक् हैं इस प्रकार के पाठ पढ़ रक्खे हैं।

शुक्ल यजुर्वेद की काण्व और माध्यन्दिन नाम की दो शाखायें हैं। इन दोनों शाखाओं की दो अलग उपनिषदें हैं। उन दोनों उपनिषदों को वृहदारण्यक नाम से कहते हैं। उनमें जीव को ब्रह्म से अलग कहा है।

शतपथब्राह्मण में कहा है -

''य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरों यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतम्।''

जो आत्मा के अन्दर में रह कर अपने वश में रखता है, वही तुम्हारा अन्तर्यामी अमृत आत्मा है अर्थात् परमात्मा है। काण्व शाखा की उपनिषद् में है -

''यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानं शरीरं, यो विज्ञानमन्तरो यमत्येष त आत्मान्तर्यम्यमृतः ।''

वृहदाण्यक उपनि. 3। 7। 22

जो जीवात्मा के अन्दर में रह कर भी जीवात्मा से पृथक् है, जिसे जीवात्मा जानता नहीं और वही जिसका शरीर है, जो जीवात्मा के अन्दर में रह कर उसको अपने अधीन रखता है, वह ही तुम्हारा अन्तर्यामी अमृत आत्मा है अर्थात् परमात्मा है।

भगवान् वेदव्यास ने इन दोनों उपनिषदों के वचनों पर ही

''शारीरश्चोभयेऽपि भेदेनैनमधीयते।'' ब्रह्मसूत्र 1।2।20

यह सूत्र बनाकर जीव और ब्रह्म की पृथकता का प्रतिपादन किया है। माध्यन्दिन का आत्मा और काण्व शाखा का विज्ञान एक ही अर्थ में हैं। इसी से ज्ञात होता है शाखा कि ब्रह्म के साथ जीव का एकाद्वैत नहीं, बल्कि द्वैताऽद्वैत सम्बन्ध है जिसकी बुद्धि द्वारा अवधारणा करना असम्भव है। इसी कारण उसको अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्ध कहा जाता है। दक्षसंहिता में लिखा है-

''न द्वैतं नापिचाद्वैतमित्येत् परमर्थिकम्।''

द्वैत भी नहीं है और अद्वैत सम्बन्ध भी नहीं। द्वैताऽद्वैत सम्बन्ध ही परमार्थिक सत्य सम्बन्ध है।

महाप्रभु चैतन्यदेवजी ने भी द्वैताऽद्वैत मत को ही समीचीन कहा है। उन्होंने कहा कि ब्रह्म के साथ जीव का जो भेदाभेद अर्थात् जीव का ब्रह्म के साथ जो सम्बन्ध है वह बुद्धि के अगोचर है और भेद एवं अभेद इन दोनों प्रकार का है।

''जीबेर स्वरूप हय नित्य कृष्णदास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाऽभेद प्रकाश ॥

मध्यलीला 20 अध्याय 14

ब्रह्म के साथ जीव का सम्बन्ध द्वैताऽद्वैत न हो कर यदि पूर्ण अद्वैत होता अर्थात्, यदि जीव ब्रह्म ही होता, तो जीव को कर्मकृत बन्धन नहीं हो सकता था। उस स्थिति में माया जीव को वशीभूत नहीं कर पाती, क्योंकि ब्रह्म को अपने अधीन, अपने वश में करने की शक्ति माया में नहीं। ब्रह्म माया के अधीन नहीं, माया ही ब्रह्म के अधीन है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है -

''मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।''

गीता 9।10

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में, मेरी प्रेरणा से इस चराचर, विश्व को उत्पन्न करती है।

अब जरा सोच कर देखो कि ब्रह्म को स्वाधीन करने की शक्ति माया में है कि नहीं ? प्रकृति अथवा माया में वैसी शक्ति बिल्कुल ही

नहीं। भला कोई दासी कभी अपने प्रभु को वश में कर सकती है ? दूसरी बात यह है - ब्रह्म बहुत विशाल, सर्वव्यापक है। माया उसकी अपेक्षा अति क्षुद्र है, उसी की तो वह एक शक्ति है। माया उस ब्रह्म को अपने वश में कैसे कर सकती है ?

एक और बात है। जीव के ब्रह्म हो जाने पर ब्रह्म भी बन्धन में पड़ जायेगा। तब ब्रह्म ही माया के आधीन हो कर कर्मों के बन्धन में बंध जायेगा। उसे भी जन्म-मृत्यु, पाप-पुण्य, सुख-दुःख के अधीन होना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में ब्रह्म का ब्रह्मत्व ही लुप्त हो जायेगा। भगवान् वेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र में इस विषय की विवेचना भी की है -

''इतरव्यपदेशात् हिताऽकरणादिदोषप्रसक्तिः।'' - ब्रह्मसूत्र 2।1।21।

इतर व्यपदेशात् (जीव को ब्रह्म कहने पर) हिताऽकरणादि दोष प्रसक्तिः (अपने सुख के लिये उपयुक्त कार्य नहीं करने के दोष की सम्भावना होगी) अर्थात् स्वयं सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् होकर इस दुःखमय सृष्टि की रचना कर अपने को ही भला दुःख में क्यों डालेंगे? यदि ऐसा होता तो वह सुखमय सृष्टि की ही रचना करते।

अब तुम्हें प्रत्यक्षदर्शी महापुरूष का कथन सुनाता हूं।

''अद्वैतवाद मत नहीं। यह तो आत्मा की एक स्थिति है। जीवात्मा और परमात्मा का मिलन होने पर आत्मा अपने को भूल जाता है। जो कुछ देखता है, उसे ब्रह्म दीख पड़ता है। अनन्त सागर में जब एक बिन्दु जल गिर पड़ता है, तब अपने चारों ओर सागर की तरंगों को ही देख पाता है। वह कभी उसमें निमग्न हो जाता है, कभी तैरने लगता है। इसी प्रकार से आत्मा का अस्तित्व नष्ट नहीं होता। यदि ऐसा होता तो ऋषि-मुनि इतना परिश्रम कर के साधना क्यों करते? यही आत्मा का परम उत्कर्ष है, यह परम सिद्धि है।''

''योग कहने से मैं जीवात्मा और परमात्मा का मिलन होना समझता हूं। यह मिलन एक हो जाना नहीं। इससे मनुष्य का आत्मा ब्रह्म में विलीन होकर अपना अस्तित्व खो नहीं बैठता।'' अंग्रेजी में जो शब्द का भाव है अर्थात् लय हो जाना ऐसी स्थिति आत्मा की नहीं होती। आत्मा पूर्णरूप से एक दूसरी वस्तु बना रहता है।

(प्रभुपाद श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी द्वारा योगसाधन के सम्बन्ध में कुछ प्रश्नोत्तर)।

आशा है अब तुम समझ गये होगे कि द्वैताऽद्वैत ही शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है, केवलाऽद्वैत नहीं।

शिष्य- आजकल के अनेक विचारक कहते हैं कि जीवात्मा नूतन रचित वस्तु है। जब नया शरीर बनता है, तब उसके साथ आत्मा भी उत्पन्न हो जांता है। शरीर रचना के समय ईश्वर ने नये आत्मा की भी रचना करी है।

गुरु - आत्मा नूतन रचित पदार्थ नहीं; यह तुम्हें समझा दिया गया है। जो लोग आत्मा को ऐसा कहते हैं; वे उस के विषय में कुछ नहीं जानते । आत्मा यदि नूतन रचित पदार्थ होगा, तो वह अज, नित्य और शाश्वत लक्षणों वाला नहीं हो सकेगा। कारण, समस्त सृष्ट पदार्थ विनाशशील होते हैं। उत्पन्न पदार्थ का विनाश अवश्यंभावी है। परन्तु जीवात्मा का तो विनाश होता नहीं। वस्तुतः जीवात्मा न उत्पन्न होता है, न मृत होता है। जन्म और मृत्यु होती है - देह की।

''जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।''

गीता 2।27

उत्पन्न हुए व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है, मृत व्यक्ति का जन्म भी वैसा ही निश्चित है। इसीलिए आत्मा का जन्म और उसकी उत्पति शास्त्र सम्मत नहीं। वस्तुतः ईश्वर नूतन शरीर के साथ नूतन आत्मा की रचना नहीं करते।

शिष्य -आपने जीवात्मा के विषय में जो कुछ कहा है उससे यह निश्चित होता है कि आत्मा एक नहीं अनेक हैं।

गुरु –जीवात्मा अनेक ही हैं, जितने जीव उतने आत्मा।

ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी

शिष्य - ब्रह्म क्या सगुण भी है और निर्गुण भी ?

गुरु - ब्रह्म में दोनों भाव हैं, एक निर्गुण और निरविशेष भाव दूसरा सगुण सविशेष भाव। ये दोनों अवस्थायें ब्रह्म में होने के कारण ही, उसे निर्गुण और सगुण भी कहा जाता है। एक ओर तो वह अनन्त, असीम, अपार, अगम्य, मन, वाणी के अगोचर है, यह उसका निर्विशेष भाव है। दूसरी और वह सर्वशक्तिमान्, सब का ईश्वर, सृष्टि की रचना, पालन और संहार करनेवाला, भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला, पूर्ण ऐश्वर्य धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न लीलामय भगवंान् है, यह उनका सविशेष भाव है। गुण कहने पर हम लोग सत्व, रजः और तमः इन तीनों गुणों को समझते हैं परन्तु ये तीनों गुण भगवान मे नहीं हैं, इसी कारण उन्हें निर्गुण कहा जाता है। ये सत्वादि गुण भगवान् में न होने पर भी, अनेक कल्याणकारी गुण उनमें हैं। अतः वेदादि शास्त्रों में उन्हें सगुण कहा है। तत्त्वदर्शी ऋषिजन तथा अनेक महापुरुष उनके अनेक कल्याणकारी गुणों को अनुभव करके ही उनके सगुण भाव को स्वीकार कर गये हैं। उपनिषद् आदि शास्त्रों में कहा गया है कि ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दोनों भाव हैं। उपनिषदों ने उसे निर्गुण निर्विशेष तथा सगुण सविशेष दोनों प्रकार से कहा है। भगवान वेदव्यास ने ब्रह्म को उभयलिंग अर्थात् सगुण एवं निर्गुण कह कर उल्लेख किया है। ब्रह्मसूत्र में वेदव्यासजी का सूत्र है –

''न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि।''

ब्रह्मसूत्र 3।2।11

जाग्रत, सुषुप्ति आदि अवस्थाओं से संबंध होने पर भी ब्रह्म में कोई दोष नहीं होता, क्योंकि वह उभयलिंग अर्थात् सगुण तथा निर्गुण दोनो भावों वाला है।

इस सूत्र पर रामानुजभाष्य के कुछ अंश तुम्हें कहता हूं, सुनो -

'सर्वत्र श्रुतिस्मृतिषु परब्रह्म उभयलिंग उभयलक्षणं अभिधीयते निरस्तनिखिलदोषत्वकल्याणगुणाकरत्वलक्षणोपेतं इत्यर्थः।'

'श्रुति, स्मृति आदि सभी ग्रन्थों में परमब्रह्म उभयलिंग अर्थात् सगुण और निर्गुण करके कहा गया है। वह एक ओर तो सब दोषों से रहित है तथा दूसरी ओर सब कल्याणकारी गुणों का आधार है।

इस सम्बन्ध में विष्णु पुराण में कहा है–

''समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशाद् धृतभूतसर्गः।
तेजोबलैश्वर्यमहावबोधः सुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः॥
परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परावरेशे।

विष्णु पुराण 3।5।80।85

वे परमेश्वर समस्त कल्याणमय गुणों से परिपूर्ण हैं। वे अपनी शक्ति के लेश मात्र से समस्त सृष्टि को धारण कर रहे हैं। वे तेज, बल, ऐश्वर्य, विशुद्धज्ञान, उत्कृष्ट वीर्य और शक्ति आदि गुणों के एकमात्र आधार हैं। वे श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ हैं। उन सब के अधिपति को किसी प्रकार का दु:ख क्लेश नहीं होता।

भगवद्गीता के बारहवें अध्याय में भगवान् कृष्णचन्द्र ने ब्रह्म को उभयलिंग अर्थात् निर्गुण तथा सगुण कहा है। भागवत के दशम स्कन्ध में प्रजापति ब्रह्मा ने जो भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की है उसमें भी भगवान् को उभयलिंग कहा है।

ब्रह्म के सम्बन्ध में एक अन्य गुण का उल्लेख उपनिषदों में मिलता है। वहाँ एक ओर तो ब्रह्म को निष्क्रिय कहा है, दूसरी ओर उसे सक्रिय एवं सर्वशक्तिमान कह कर उल्लेख किया है। शंकराचार्य ने ब्रह्म की शक्तिमत्ता और सक्रियता को स्वीकार नहीं किया। उनका कथन है कि ब्रह्म निष्क्रिय है। वे ब्रह्म को सगुणात्मक भी नहीं मानते। श्रुति, स्मृति आदि समस्त शास्त्रों ने ब्रह्म की शक्तिमत्ता को स्वीकार किया है। सब शास्त्रों में उसे सर्वशक्तिमान् कहा है। भगवान् वेदव्यास ने भी ब्रह्मसूत्र में उसे समस्त शक्ति का आधार स्वीकार किया है। ब्रह्मसूत्र का सूत्र है-

''सर्वोपेता च तद्दर्शनात्'' 2।1।30

सर्वोपेता च (सर्वशक्तिमत्ता भी) तद्दर्शनात् (क्योंकि ब्रह्म शक्तिमान् ही देखा जाता है।)

इस सूत्र के समर्थन में भगवान् वेदव्यास ने जो वेद वचन उद्धृत किया है, उसे सुनो -

''परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।''

श्वेताश्वतर उप. 6।8

इस ब्रह्म की अनेक शक्तियों की बात सुनने में आती है। ज्ञान, बल एवं क्रिया की शक्तियाँ उसमें स्वभावसिद्ध हैं। विष्णुपुराण में भी है–

विष्णुशक्ति:परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरुच्यते॥

6।7।60

भगवान् विष्णु की तीन शक्तियाँ है एक तो पराशक्ति है। दूसरी क्षेत्रज्ञ (अर्थात् जीव) शक्ति और तीसरी शक्ति का नाम है अविद्या। इसी अविद्या शक्ति को ही कर्मशक्ति कहते हैं।

ह्लादिनी सन्धिनी संवित् त्वय्येका सर्वसंस्थिता।
ह्लादतापकारी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते॥

विष्णुपुराण 1।12।48

ध्रुवने भगवान् को कहा है, हे भगवान् ! आप अब गुणों के आधार हैं, आप में ह्लादिनी, सन्धिनी और संवित् ये तीन प्रधान शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। ह्लाद और ताप देने वाली मिली-जुली शक्ति आप में नहीं है क्योंकि आप गुणहीन हैं अर्थात् सत्वादि गुण आप में नहीं हैं।

मुक्ति प्राप्त करने के उपाय

शिष्य -किन उपायों से मुक्ति मिल सकती है?

गुरु - जीव कर्मों के वश में है, उन्हीं के संस्कारो से बने हुए अदृष्ट से प्रेरित होकर वह वृक्षलता, कीटपंतग, पशुपक्षी, मनुष्य आदि नाना योनियों में जन्म लेता है। जब तक जीव की वासनायें नष्ट नहीं होती तब तक वह बार-बार जन्म-मृत्यु पाकर अनेक प्रकार के दु:ख भोगता है। जीव चौरासी लाख बार जन्म लेता है। कई लाख बार उद्भिज, कीट, पंतग, पशु, पक्षी आदि योनियों में जन्म लेकर अन्त में मनुष्य होकर जन्म लेता है। मनुष्य का जन्म पाने का अधिकार पाकर जीव पहिले कोल, भील, सान्थाल आदि असभ्य जातियों में जन्म पाता है। बाद में नीच जातियों से उत्कृष्ट जाति में जन्मता है। उत्कृष्ट और निकृष्ट जाति किसे कहते हैं यह श्रीमद्भगवत में भगवान् कपिलदेव ने कहा है–

''जीवा: श्रेष्ठा ह्यजीवानां तत: प्राणभृत:शुभे।
तत: सचित्ता: प्रवरास्ततततश्चेन्द्रियवृत्तय:।।
तत्रापि स्पर्शवेदिभ्य: प्रवरा रसवेदिन:।
तेभ्यो गन्धविद: श्रेष्ठास्तत: शब्दविदोवरा:।।
रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदत:।
तेषां बहुपदा:श्रेष्ठाश्चतुष्पादास्ततो द्विपात्।।
ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषं ब्राह्मण उत्तम:।
ब्राह्मणादपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्तत:।।
अर्थज्ञात् संशयच्छेत्ता तत: श्रेयान् स्वकर्मकृत्।
मुक्तसंगस्ततो भूयान् दोग्धा धर्ममात्मान:।।
तस्मान्मय्यपर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तर:।
मय्यर्पितात्मन: पुँसो मयि सन्यस्तकर्मण:।।
न पश्यामि पर भूतमकर्तु: समदर्शनात्।।

श्रीद्भभागवत 3।29।28-33

अचेतन पदार्थ से सचेतन पदार्थ श्रेष्ठ होता है। सचेतन से प्राणयुक्त, प्राणयुक्त से चित्तयुक्त अथवा ज्ञानवान्, उससे भी इन्द्रियों की वृत्ति से सम्पन्न जीव, उससे गन्ध का अनुभव करने वाला, उससे रूप का ज्ञान करने वाला, उससे शब्द का अनुभव करने वाला, उससे दाँतों वाला प्राणी, उससे दो पैर वाला, उससे चार वर्णों वाला मनुष्य, उसमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। ब्राह्मणों में वेद को जानने वाला, उससे वेदों के अर्थ का ज्ञाता, उससे संशय को दूर करने वाला अर्थात् मीमांसा से तत्त्व को समझने वाला, उससे भी मुक्त संग मनुष्य श्रेष्ठ होता है। उससे भी जो मुक्तसंग अपने धर्म को निष्काम होकर करता है वह श्रेष्ठ है, उससे भी जिसने अपने समस्त कर्मों के फलों को, अपने मन तथा बुद्धि को मुझ में अर्पित किया है वह सर्वश्रेष्ठ है। जिसने अपना चित्त मेरे में लगाया है, समस्त कर्मों और उनके फलों को मुझे अर्पित किया है, जो कर्तृत्व के अभिमान से रहित है, एवं जो समदर्शी है, उससे बढ़कर उत्तम जीव मैंने देखा नहीं।

मनुष्य जन्म पाकर जब जीव उपासना की आवश्यकता को अनुभव करने लगता है, तब वह कितने ही जन्मों में तो पुत्रोत्पत्ति के लिये, ऐश्वर्यलाभ के निमित्त, शरीर की आरोग्यता के हेतु, अपने शत्रु के वध की इच्छा से भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षसों की उपासना करता है। डाकिनीसिद्धि, योगिनीसिद्धि, बैतालसिद्धि आदि सिद्धियाँ इस प्रकार की उपासनाओं में गिनी जाती हैं। उसके पश्चात् देवताओं की उपासना की ओर प्रवृत्ति होती है। अब जीव स्वर्गादि लोकों के सुख की अभिलाषा से, सकाम उपासना की पद्धति से इन्द्र, वरुण, कुबेर, सूर्य, गणेश, शिव आदि देवों की उपासना करता है। ''चन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन समस्त देवों की पूजा अर्चना जो करते हैं, वे सकाम उपासना करते हैं। वे लोग इन देवताओं से अधिक कुछ नहीं पाते।'' (प्रभुपाद गोस्वामी के वचन)

इस प्रकार की उपासनाओं के फलस्वरूप स्वर्ग के भोग प्राप्त होते हैं अथवा उपासक की कामनानुसार फल प्राप्त होता है। उपासक जिस कामना को लेकर जिस देवता की उपासना करता है, वह देवता उसकी उसी कामना के अनुरूप फल देते हैं। इस प्रकार की उपासना

से अच्छे भोगों की प्राप्ति, ऐहिक सम्पत्ति के लाभ के अतिरिक्त मोक्ष नहीं मिलता। मोक्ष लाभ के लिये ब्रह्म उपासना की आवश्यकता होती है। कारण, ब्रह्म के अतिरिक्त मोक्ष प्रदान की सामर्थ्य किसी देवता में नहीं। ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से मुक्ति नहीं होती। मनुष्य जब अनेक जन्मों में देवताओं की उपासना कर लेता है, तब उसे ब्रह्म की उपासना का अधिकार मिलता है। फिर वह गुरु से दीक्षा लेकर पहिले तीन जन्मों में सूर्य की, तत्पश्चात् तीन जन्मों में शिव की, अनन्तर तीन जन्मों में विष्णु की, तत्पश्चात् एक शत जन्मावधि शक्ति की उपासना करता है। पश्चात् उसे सद्‌गुरु के लाभ का अधिकार प्राप्त होता है। जब सद्‌गुरु मिल जाता है, तब उसका आश्रय पाकर तीन जन्मों में उसकी मुक्ति हो जाती है।

साधारण गुरु द्वारा दीक्षित उपासक जब ब्रह्म आदि देवों की उपासना करता है, तब उसकी कुण्डलिनीशक्ति जागृत नहीं होती, अथवा यों कहो ''मन्त्र चैतन्य'' नहीं होता। साधारण गुरु में कुडलिनीशक्ति को जागृत कराने की अथवा ''मंत्र चैतन्य'' करने की सामर्थ्य नहीं होती। केवल सद्‌गुरु ही शिष्य के अन्तर में शक्तिसंचार कर शिष्य की कुण्डलिनी को जगाने वा ''मंत्र चैतन्य'' करने में समर्थ होता है। ''मंत्र चैतन्य'' और कुण्डलिनी के जागृत न होने पर जीव की वासना का नाश नहीं होता, अदृष्ट का क्षय नहीं होता, अनादि कर्मचक्र की गति रुकती नहीं। मनुष्य सत्व, रजः, तमः आदि तीनों गुणों से छुटकारा नहीं पाता। सद्‌गुरु शिष्य के अन्दर अपनी शक्ति का संचार कर कुण्डलिनी को जागृत करा के चैतन्यमय मन्त्र देता है। इस प्रकार सद्‌गुरु द्वारा दिये हुए चैतन्यमय मंत्र को लेकर शिष्य गुरुनिर्दिष्ट रीति से साधना करने पर तीन जन्मों में मुक्ति प्राप्त कर लेता है। प्रथम जन्म में उसका तमोगुण, दूसरे में रजोगुण और तीसरे जन्म में सत्वगुण नष्ट हो जाता है। तब वह ज्योतिर्मय ब्रह्म का दर्शन पाकर माया से मुक्त होता है।

इस सम्बन्ध में वेद का वचन है -

''भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

मुण्डकोपनिषत् 2।2।8

परावरे (अर्थात् ब्रह्मादि निम्नकोटि के देवताओं से श्रेष्ठ ब्रह्म) के दर्शन कर लेने पर हृदय की सब गांठें खुल जाती हैं, सब प्रकार के संशय दूर हो जाते हैं व सबं कर्मों का क्षय हो जाता है।

भगवान वेदव्यास ने भी भागवत में यही बात कही है। भागवत प्रथम स्कन्ध के दूसरे अध्याय में इक्कीसवें श्लोक में यह बात कही है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥

देवता और ब्रह्म

शिष्य - ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, आदि को देवता कहते हैं, इसका मतलब? क्या ये सब ब्रह्म नहीं?.

गुरु - ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश आदि देवता भी हैं और ब्रह्म भी। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सृष्टि की रचना-पालन और प्रलय के कर्ता ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। वे सत्व, रजः और तमः इन तीनों गुणों के अधिष्ठाता देवता के रूप में इन्हीं गुणों के साथ मिलकर उनमें सन्निविष्ट हो कर-सृष्टि की रचना, पालन, प्रलय का कार्य निष्पन्न करते हैं। इस सृष्टि में अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। वैसे ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी अनन्त हैं। ये सब देवता माया से संसृष्ट हैं, माया-जड़ित हैं। इनके प्रत्येक के स्वतन्त्र धाम हैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव यथाक्रम ब्रह्मलोक, बैकुण्ठलोक और कैलास धाम में निवास करते हैं। जैसे ये देवता माया से जड़ित हैं वैसे ही इनके धाम भी मायामय हैं और माया के क्षेत्र में स्थित हैं। महाप्रलय के समय वे सब धाम विनष्ट हो जाते हैं। अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, शिव अनन्त ब्रह्मलोक, बैकुण्ठ और कैलासधामों में निवास करते हैं। इस सम्बन्ध में देवीभागवत में एक विवरण है, सुनो-

सृष्टि रचना के पहिले जब सर्वत्र जल ही जल था उस समय भगवान् विष्णु एकार्णव महासमुद्र में शेषनाग की शय्या पर सो रहे थे। उनकी नाभि-कमल से सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा ने उत्पन्न होकर देखा कि मधु और कैटभ नामक दो असुर उन्हीं को हनन करने के लिये तैयार हो रहे हैं। तब ब्रह्मा ने भयभीत होकर जिस कमल से उत्पन्न हुए थे, वह कहाँ से निकला है यह जानने के लिये उसका नाल पकड़ कर जल में गोता लगाया। जल में डूब कर उन्होंने देखा कि शंखचक्रगदापद्मधारी चतुर्भुज, श्यामवर्ण और पीतवसनधारी एक पुरुष शेषनाग की शय्या पर लेटे हुए निद्रामग्न हैं। तब ब्रह्मा जी ने योगनिद्रा देवी की स्तुति की। ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न होकर निद्रा देवी भगवान् विष्णु के शरीर से निकल कर आकाश में स्थित हो गयी। ज्यों ही निद्रा देवी विष्णु भगवान् के शरीर से अलग हुई, वे जाग उठे और

मधुकैटभ के साथ युद्ध कर उन्हें मार गिराया। असुरों के मारे जाने पर योगनिद्रा देवी ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को कहा कि असुरों का विनाश हो गया है, अब आप निश्चिंत होकर सृष्टि स्थिति और प्रलय के कार्यों को निष्पन्न करो। विष्णु और शिव वहां उपस्थित हो गये थे। देवी की बात सुनकर ब्रह्मा ने कहा- यहां तो जल ही जल है, सृष्टि कैसे हो सकेगी ? तब निद्रा देवी हंसने लगी, उसी समय आकाशमार्ग से एक दिव्य रथ वहाँ आ गया। ब्रह्मा आदि को साथ लेकर देवी रथ पर चढ़कर रथ चलाने लगी। रथ बहुत दूर निकल गया, अब वे एक दूसरे ब्रह्माण्ड में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने इन्द्र आदि दिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और उनके धाम, ब्रह्माणी, लक्ष्मी, पार्वती, इन्द्राणी, नन्दन वन, कल्पवृक्ष और उसकी छाया में बैठी सुरभि आदि का दर्शन किया। यह सब देख कर उन्हें बहुत विस्मय हुआ। इसके बाद रथ वहाँ से दूसरे ब्रह्माण्ड में पहुँचा। जहाँ भी पहिले जैसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि दिखाई दिये। इस प्रकार उन्होंने अनेक ब्रह्माण्ड और अनेक, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्रादि दिक्पालों के दर्शन किये। अन्त में उन देवताओं ने भुवनेश्वरी देवी के पास जाकर उनकी स्तुति कर उसे प्रसन्न किया। भुवनेश्वरी देवी ने उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर उनको सृष्टि स्थिति तथा प्रलय की शक्ति प्रदान की और अपनी देह से तीन नारियों को उत्पन्न कर उन देवों को दी। वे नारियाँ ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की पत्नी हुई। इस प्रकार सृष्टि की रचना पालन और प्रलय करने वाले ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव देवता हैं। इनकी सामर्थ्य सीमित है। इनमें मोक्ष देने की शक्ति नहीं। इसी प्रकार सूर्य और गणेश भी हैं, वे देवता ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य्य और गणेश आदि देवों की उपासना देवोपासना है। इनसे अतिरिक्त विरजा के दूसरे पार में, माया के क्षेत्र से बाहर दूसरे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश हैं। माया के क्षेत्र से परे उनके स्वतन्त्र धाम हैं। उन धामों में माया का कुछ भी अधिकार नहीं। वे नित्यधाम हैं, महाप्रलय में वे विनष्ट नहीं होते। विरजा के दूसरे पार में विद्यमान ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश परावरेश हैं। उनका माया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। वे ब्रह्म हैं। उनकी उपासना ब्रह्म की उपासना होती है। उनकी उपासना से मुक्ति होती है।

कुलगुरु और सद्‌गुरु

शिक्ष्य - कुलगुरु और सद्‌गुरु किसे कहते हैं?

गुरु - जिन्होंने साधन कर के अपनी कुंडलिनी को जागृत कर लिया है, जो शास्त्रीय पद्धति से तपस्या कर के अपनी कुंडलिनी शक्ति को चेतन करने में कृतकृत्य हो गये हैं, शास्त्र में उन्हें कुलगुरु कहा है परन्तु आजकल ऐसे कुलगुरु बहुत दुर्लभ हो गये हैं। अब तो कुलगुरु कहने पर वंश का क्रमागत गुरु समझा जाता है।

''कुलगुरु का अर्थ है जिसकी कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो गयी है, वही कुलगुरु है। कुलगुरु कहने पर पैतृक गुरु का मतलब नहीं होता। जिन्होंने तंत्रशास्त्र के अनुसार उपासना कर के कुण्डलिनी को जगा लिया है उन्हें ही कुलगुरु कहते हैं। ''(श्रीमद् प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के वाक्य)

सद्‌गुरु - जो शब्दब्रह्म और परब्रह्म के ज्ञाता हैं उन्हीं को सद्‌गुरु कहते हैं। शब्दब्रह्म अर्थात् वेद में जो सब मंत्र हैं, उन सब मंत्रों के भिन्न-भिन्न अधिष्ठात्री देवता हैं। जैसे गायत्री की अधिष्ठात्री देवता है सावित्री। वे सब अधिष्ठात्री देवता जिसके समक्ष प्रत्यक्ष हुए हैं उसी को शब्दब्रह्म का ज्ञाता कहते हैं। ॠग्, यजु, साम और अथर्व इन चारों वेदों के पाठों को कंठस्थ करके टीका वा कोष की सहायता से उनके अर्थों को जान लेने से कोई वेदवेत्ता वा शब्दब्रह्म का ज्ञाता नहीं हो जाता। महाभारत आदि ग्रंथों में उपमन्यु, आरूणि आदि के जो उपाख्यान हैं उनसे ज्ञात होता है कि उन्होंने दीर्घ समय तक गुरु की सेवा की। उनकी सेवा से संतुष्ट होकर गुरु ने वर दिया कि तुम्हारे अन्त:करण में सब वेद स्फुरित हों, स्वत: प्रकाशित हों। इस प्रकार उन लोगों के अन्तर में सब वेद स्वत: स्फुरित हुए थे। वेदों के अधिष्ठाता देवताओं ने उनके निकट प्रत्यक्ष होकर, वेद मंत्रों के यथार्थ मर्म वास्तविक तात्पर्य एवं अर्थ तथा निगूढ़ रहस्यों को भी उनके हृदय में प्रकाशित किया। तब वे लोग समस्त वेदों के मर्म को जानकर वेदवित् अथवा शब्दब्रह्म के वेत्ता बने थे। इस रीति से जिन्हें वेदों के अर्थ का ज्ञान हुआ है, वेदाधिष्ठात्री देवताओं के दर्शन कर उनकी कृपा

से वेदमंत्रों के समस्त रहस्य जिनको परिज्ञात हुए हैं, जो इस प्रकार वेदवेत्ता होकर, परब्रह्म के ज्ञाता हुए हैं - उन्हीं को सद्गुरु कहते हैं। ऐसा शक्ति सम्पन्न पुरुष ही सद्गुरु कहलाने योग्य होता है, वही सद्गुरु कहा जाता है। ऐसे ही सद्गुरु शिष्य की कुण्डलिनीशक्ति को जागृत कर, उसमें अपनी शक्ति संचार कर, मंत्रचैतन्य प्रदान कर सकते हैं। मंत्र के कुछ अक्षरों को ही मंत्र नहीं कहा जाता। मंत्र देने के समय गुरु जो शिष्य में शक्तिपात करता है, मन्त्र से संयुक्त कर जो शक्ति शिष्य को देता है, वास्तविक मन्त्र वही है। इस प्रकार चैतन्ययुक्त मन्त्र के प्रभाव से ही जीव की वासनायें विनष्ट होती हैं, कर्मों का क्षय होता है और अदृष्ट भी खण्डित होता है। जीव मुक्ति प्राप्त करता है।

इस विषय की एक सुन्दर कहानी है। एक समय एक ब्राह्मण ने भगवान वेदव्यासजी के पास जाकर प्रर्थना की, ''भगवन् ! आप मुझे ऐसी सामर्थ्य दीजिये जिसके द्वारा मैं समस्त लोकों में भ्रमण कर सकूँ।'' महर्षि ने ब्राह्मण की प्रार्थना को स्वीकार कर एक बिल्व पत्र पर रामनाम लिखकर ब्राह्मण को दे दिया और कहा ''इस बल्व पत्र को हाथ में लेकर तुम जहाँ भी जाना चाहोगे उसी समय वहाँ जा सकोगे।'' महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रदत्त उस बिल्व पत्र को हाथ में लेकर ब्राह्मण उसके प्रभाव से अपनी इच्छानुसार लोकलोकान्तरों में भ्रमण करने लगा। समय बीतने पर वह बिल्व-पत्र सूख कर टुकड़ा टुकड़ा हो गया। ब्राह्मण ने मन में सोचा ''यह बिल्व-पत्र सूख कर टूट गया है, इस पर जो लिखा है उसे दूसरे बेल के पत्र पर लिख लेता हूं। बिल्व-पत्र और उस लिखे हुए शब्द के रहने से काम चल जायेगा।'' यह विचार कर उसने एक नये बेल पर राम नाम लिख लिया। पुराने पत्र को फेंक दिया। परन्तु उस नये बिल्व पत्र को हाथ में लेकर अब वह कहीं भी नहीं जा सका। नवीन बिल्वपत्र और उस लिखे राम नाम में उसे कहीं भी ले जाने की शक्ति नहीं थी। तब ब्राह्मण ने दुःखित होकर व्यासजी के पास जाकर सब वृतान्त कहा। व्यासजी ने उत्तर दिया- ''बिल्व पत्र और उस पर लिखे शब्द में कोई शक्ति नहीं। मैंने बिल्वपत्र पर लिखे हुए शब्द में ऐसी शक्ति दी थी जिसके द्वारा तुम लोक-लोकान्तरों में गमन कर पाये थे। मैंने जो बिल्व पत्र दिया था

उसके साथ ही तुमने मेरी दी हुई शक्ति को फेंक दिया है। अत: अब तुम में लोक लोकान्तरों में जाने की सामर्थ्य कैसे हो? मैंने पत्र पर लिखे शब्द में अपनी तपस्या से प्राप्त शक्ति डाल दी थी। उसी के द्वारा तुमने सब स्थानों में घूमने की क्षमता पायी थी। नये पत्र में वह शक्ति नहीं है अत: तुम्हें कहीं भी ले जाने के लिये सामर्थ्य उसमें नहीं।''

कुलगुरु दुर्लभ नहीं। परन्तु प्रयत्न करने पर भी मनुष्य सद्गुरु को नहीं पाता। सद्गुरु तभी मिलता है जब भगवान् की कृपा होती है। श्रुति में कहा है -

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

कठोपनिषत् 1।2।23

इस परमात्मा को प्रवचनों से, बुद्धि से अथवा अनेक शास्त्रों के श्रवण से प्राप्त नहीं किया जा सकता। ये भगवान् ही जिस पर कृपा करते हैं उसके समक्ष अपने स्वरूप को प्रकट करते हैं।

भगवान् जिस पर कृपा करते हैं, वही उन्हें पाता है। उपनिषद् के इस वचन का तात्पर्य यह है कि परमेश्वर जिसको वरण करते हैं, वही सद्गुरु की कृपा लाभ करता है। गुरु की कृपा के बिना परमेश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता। पाँच वर्ष के बालक ध्रुव को भी सद्गुरु की आवश्यकता थी अन्यथा भगवान् उसे प्राप्त नहीं होते। सद्गुरु की जब कृपा होती है, तभी परमेश्वर मिलते हैं, तब वे अपने स्वरुप को, अपनी मूर्त्ति को उसके समक्ष प्रकट करते हैं। परमेश्वर द्वारा स्वयं मनोनीत व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई क्या उन्हें प्राप्त कर सकता है, उनके दर्शन कर सकता है ? और 'तनू स्वाम्' उन पदों से श्रुति यह भी दर्शाती है कि भगवान् के भी विग्रह, शरीर और मूर्त्ति हैं।

अन्य एक बात यह है कि सद्गुरु पृथ्वी पर सब समयों में अवतार नहीं लेते। एक समय में एक व्यक्ति से अधिक, दो अथवा उससे अधिक सद्गुरु पृथ्वी पर नहीं आते। जैसे भगवान् सदा अवतार नहीं लेते और एक काल में भगवान् के अनेक अवतार नहीं होते, उसी भांति सद्गुरु भी सदा पृथ्वी पर अवतीर्ण नहीं होते; एक व्यक्ति से

अधिक, दो अथवा अनेक सद्गुरु एक काल में इस लोक में नहीं आते। जैसे भगवान् स्वयं अवतार लेकर पृथ्वी पर आते हैं, मानव-लीला करते हैं, वैसे ही सद्गुरु स्वयं भगवान् का रूप होते हैं, वे भी लोगों के उद्धार के हेतु, मनुष्यों को मुक्ति दिलाने के लिये मानव देह धारण कर पृथ्वी पर आते हैं। भगवान् के देह और देही में जैसे कुछ भिन्नता नहीं, वैसे ही सद्गुरु के देह और देही में भिन्नता नहीं होती। जिस समय भगवान् सद्गुरु के रूप में आते हैं, उस काल में मुक्ति प्रदान की सामर्थ्य केवल उन सद्गुरु में ही होती है। उनके अतिरिक्त अन्य किसी को यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी मुक्ति देने का अधिकार नहीं रहता। सिद्ध पुरुष, साधु और महापुरुष जीव कोटि में भगवान् के आवेश मात्र होते हैं। सद्गुरु ब्रह्म कोटि के स्वयं भगवान् होते हैं।

शिष्य - गुरु के विषय में आपने जो कहा है उससे यह स्पष्ट है कि आजकल के वंश-गुरू सद्गुरु नहीं हैं। सद्गुरु वा कुलगुरु मिलने पर उनसे दीक्षा लेनी चाहिये, यही आपके कथन का तात्पर्य है। इससे वंश के गुरु को हम छोड़ सकते हैं। इसमें क्या कोई दोष होगा?

गुरु - नहीं, इसमें कुछ भी दोष नहीं होगा। नारदपंचरात्र में लिखा है–

''गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥
स गुरुः परमो वैरी यो ददाति ह्यसम्मतिम्।
तं नमस्कृत्य सच्छिष्यः प्रयाति ज्ञानदं गुरुम्॥

नारदपञ्चरात्र 1।10।20-21

जो गुरु अभिमानी हो, कार्याकार्य को नहीं जाने, कुमार्ग गामी हो उसका परित्याग उचित है। जो गुरु बुरी मति दे, वह शिष्य का बैरी है। उसे नमस्कार कर शिष्य ज्ञानदाता गुरु के पास चला जाये। तंत्रसार में भी लिखा है–

''मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं ब्रजेत्।

श्रानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं ब्रजेत्॥

अत एव महेशानी, लक्षमेकं गुरुं त्यजेत्।

अर्थात् मधु का लोभी भ्रमर जैसे एक पुष्प का मधु पीकर मधु समाप्त होने पर और मधु पीने की इच्छा से दूसरे पुष्प पर चला जाता है वैसे ही ज्ञान का लोभी शिष्य ज्ञान प्राप्ति के लिये अपने गुरु से सन्तुष्टि नहीं होने पर दूसरे की शरण में जा सकता है। हे महेश्वरी ! ऐसी स्थिति में तो एक लाख गुरु का भी परित्याग किया जां सकता है।

मोक्ष की इच्छा वाला शिष्य अपने कुल-क्रमागत गुरु के भीतर ज्ञान दाता गुरु को न पाकर अथवा उसमें से किसी में दीक्षा के लिये श्रद्धा न होने पर दूसरे गुरु की शरण ग्रहण कर सकता है, यह शास्त्र का मत है। कुलक्रमागत गुरु के द्वारा दीक्षा ग्रहण करने के लिये जिनमें श्रद्धा हो, वे लोग उनसे ही दीक्षा ग्रहण करें।

निष्काम कर्म

शिष्य - निष्काम कर्म किसे कहते हैं?

गुरु - फल लाभ की इच्छा से रहित कर्म को निष्काम कर्म कहते हैं। फल क्या होगा इसकी ओर दृष्टि न रख कर, उसकी इच्छा न करते हुए, कर्म करना ही चाहिये, ऐसी कर्तव्य भावना से जो कर्म किया जाता है, उसका नाम निष्काम कर्म है। कर्म के फल में आसक्ति रहित होकर कर्म करने से वह कर्म निष्काम कर्म हो जाता है। ऐसे निष्काम कर्म से मनुष्य के कर्मों के नये संस्कार नहीं होते, नया अदृष्ट नहीं बनता। निष्काम कर्म द्वारा मनुष्य इस संसार में कर्म के बन्धन से छूट जाता है।

सनिमित्तं च यत्कर्म बन्धने विद्धि यादव।
अनिमित्तं चं यत्कर्म मोक्षदं परम शुभम्॥''

गर्गसंहिता विज्ञान खण्ड 2।4

सकाम कर्म बन्धन का कारण होता है। निष्कामं कर्म परम शुभ मोक्ष देने वाला होता है।

धान के साथ तुष रहने पर उसमें अंकुर निकलता है, तुष न होने पर अंकुर भी उगता नहीं। कामना ही कर्म का तुष है। कामनारूपी तुषयुक्त कर्म से अंकुर उत्पन्न होता है। कामनारूप तुष रहित कर्म में अंकुर भी नहीं होता। गीता में उपदेश दिया है-

''तस्मासक्त: सततं कार्य कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरूष: ॥7॥ 11
योगस्थ: कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धयसिद्धयो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥2॥ 48
यत्करोषि यदश्नासि यच्जुहोषि ददाति यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥9।। 27

इसलिये आसक्ति रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म रहते रहो, अनासक्त होकर कर्म करने से मनुष्य परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है।

हे धनञ्जय योगस्थ होकर, आसक्ति छोड़ कर, सफलता और विफलता में समदृष्टि होकर कर्मों को करो। सफलता एवं विफलता में जो समभाव है उसी को योग कहते हैं।

जो भी तुम करते हो, खाना पीना, हवन-तपस्या, दानपुण्य सब मुझे अर्पण कर दो।

निष्काम कर्म के सम्बन्ध में भगवान् ने गीता में अनेक उपदेश दिये हैं। यहां तुम्हें थोड़ा सा ही कहा है, जरूरत हो तो गीता में पढ़ कर देख लो।

शक्तिसंचार

शिष्य - कुण्डलिनी को जागृत करना और शक्ति का संचार करना किसे कहते हैं ?

गुरु - प्रत्येक मनुष्य के भीतर अनेक प्रकार की शक्तियाँ हैं- विद्या सीखने की शक्ति, गायन की शक्ति, चित्र लेखन की शक्ति, इस प्रकार से अनेक शक्तियाँ मनुष्य के अन्दर निहित हैं। उपयुक्त शिक्षा से, उपयुक्त उपदेश से, उपयुक्त चर्चा से, उचित अभ्यास से वे शक्तियाँ विकसित होती हैं। उपयुक्त उपदेशक के बिना, उपयुक्त गुरु के बिना मनुष्य अपने यत्न से उन शक्तियों की उन्नति, उनका पूर्ण विकास नहीं कर सकता।

अन्यान्य शक्तियों की भाँति मनुष्य में धार्मिक उन्नति करने की शक्ति भी है। जिस शक्ति द्वारा मनुष्य धार्मिक जीवन बनाने में समर्थ होता है उस शक्ति को कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य में यह कुण्डलिनी शक्ति है, परन्तु सुप्त अवस्था में, अचेतन अवस्था में है। कुण्डलिनी के सुप्त रहने पर, अचेतन रहने पर मनुष्य धार्मिक उन्नति नहीं कर पाता। अत: धार्मिक उन्नति करनी हो तो कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करना, उसे चेतन करना आवश्यक है। सद्गुरु उसी कुण्डलिनी शक्ति को जगा देते हैं, सचेतन कर देते हैं। सद्गुरु में कुण्डलिनी को जगा देने की सामर्थ्य होती है।

अग्नि सभी पदार्थों में है। प्रत्येक वस्तु के भीतर अग्नि गुप्त रूप से विद्यमान है। परन्तु प्रकट नहीं होती, जागती नहीं। किसी तरीके से जला देने पर वह प्रकट होती है और हम उसका कार्य देख पाते हैं। प्रत्येक पदार्थ के अन्तर में स्थित अग्नि को प्रकट करने के लिये, उसे जला देने के लिये एक दूसरी जलती अग्नि की सहायता आवश्यक होती है। जलती हुई अग्नि से किसी भी वस्तु में अन्तर्निहित अग्नि को जैसे प्रज्वलित किया जा सकता है, वैसे ही गुरु अपनी शक्ति से शिष्य के अन्दर में सुप्त अचेतन शक्ति को जागृत एवं चेतन करने में समर्थ होता है। इस प्रकार से जागृत करने को, चैतन्य युक्त करने को शक्ति संचार अथवा ''मंत्र चैतन्य'' करना कहते हैं।

पाश्चात्य देश के ''मैस्मरिज्म'' की बात तो तुमने सुनी होगी। मैस्मरिज्म द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के अन्दर अपनी शक्ति को संक्रमित कर सकता है। यह भी एक तरह का शक्तिसंचार है। एक आदमी का लड़का मर जाता है, वह पुत्र के शोक से दुःखी होता है, रोता है, उसे रोते हुए देख कर उससे मिलने वालों के मन में भी शोक और दुःख का उदय होता है, उनकी आँखों में आंसू उमड़ आते हैं, वे भी रो पड़ते हैं। यह कैसे होता है ? पुत्र शोक से पीड़ित मनुष्य का शोक और दुःखी व्यक्ति का अन्तःस्थित शोक दुःख देखने वालों में भी संक्रमित होकर उन्हें भी कुछ-कुछ शोक पीड़ित व्यक्ति के समान अवस्था में कर देता है। पुत्र शोक से दुःखी व्यक्ति का अन्तःस्थित शोक और दुःख देखने वालों के हृदय में उदित होने से उसकी शोकानुभूति उनमें संचारित हो जाती है। इस प्रकार एक आदमी का सुखदुःख, पापपुण्य, भलाई बुराई निकट होने के कारण अथवा एकत्र निवास के कारण दूसरे मनुष्य में संचारित होते हैं और उसमें संक्रमित होकर कार्य करते हैं। यह भी एक प्रकार से शक्ति-संचार है। फिर भी इसका फल क्षणिक और अस्थायी है। शक्ति-संचार का कार्य इस प्रकार से स्वाभाविक नियमानुसार जगत् में चलता रहता है। अच्छी संगति से मनुष्य अच्छा बनता है और बुरी संगति से बुरा होता है- यह भी तो एक प्रकार से शक्ति-संचार का कार्य है। एक व्यक्ति के शोक और दुःख, सत्पुरुष के सद्गुण और दुश्चरित के दुर्गुण जिस प्रकार

दूसरे मनुष्य में प्रवेश करते हैं, वैसे ही सद्गुरु शिष्य के अन्दर अपनी शक्ति का प्रयोग कर के, उसमें संचारित कर के शिष्य की सुप्त अचेतन शक्ति को सदा के लिये जागृत और चैतन्ययुक्त कर देता है। संसार में साधारणतया जो शक्ति संचार के कार्य होते हैं उनके प्रभाव थोड़े समय के लिये होते हैं। परन्तु सद्गुरु जो अपनी शक्ति को शिष्य में संचारित कर शिष्य की शक्ति को जगा देता है, चेतन कर देता है, उसका वह कार्य सर्वदा के लिये स्थायी होता है। सद्गुरु जब शिष्य को मन्त्र देता है तब उस मन्त्र के साथ अपनी शक्ति को शिष्य के अन्तर में प्रयुक्त करता है, संचारित करता है, इसी कारण से सद्गुरु द्वारा दिया मंत्र शक्तियुक्त चैतन्ययुक्त होता है। यह शक्ति-संचार कैसा होता है, यह बात जब तक संचार का अनुभव न हो तब तक समझ में नहीं आ सकती। जैसे किसी मनुष्य के अन्दर विद्युत के संचार करने पर वह अपने शरीर के अन्दर विद्युत के संचार का अनुभव तो करता है, परन्तु दूसरे को उसे समझा नहीं पाता, वैसे ही जिसमें पहिले शक्तिसंचार नहीं हुआ ऐसे व्यक्ति को कोई भी कभी शक्ति संचार के कार्य को नहीं समझा पाता परन्तु जिसके भीतर शक्तिसंचार हो रहा है वह उसे पूर्णरूप से अनुभव कर पाता है। इस अनुभव के कार्य को कोई दूसरे को नहीं समझा सकता।

''धार्मिक जीवन की साधना के आरम्भ में ही साधक गुरु की कृपादृष्टि से, मोह की निद्रा से जाग्रत होकर अपने देह रूपी घर को शुद्ध करने के लिये गुरु द्वारा दी हुई शक्ति का शरीर में प्रयोग करता है। उसके शरीर में एक अद्भुत विद्युत शक्ति प्रवाहित होती है। उस शक्ति का मार्ग है मेरुदण्ड, मतिष्क उसका गम्य स्थान है, इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना ये तीनों नाड़ियाँ इस विद्युत शक्ति के प्रवाहित होने के लिये रज्जु हैं। यह विद्युत् जितना ही अधिक शरीर में प्रवाहित होती है उतना ही यह शरीर शुद्ध होता है।'' (श्री विजय कृष्ण गोस्वामीजी कृत आशावती के उपाख्यान से)

मूर्त्तिपूजा

शिष्य - मुर्तिपूजा से क्या मुक्ति नहीं होती ?

गुरु - नहीं। जब तक आत्मा का ज्ञान पाकर ब्रह्म की उपासना नहीं की जाती तब तक मोक्ष नहीं होता। उपासना दो प्रकार की है, परोक्ष और प्रत्यक्ष। परोक्ष उपासना को सावलम्ब और प्रत्यक्ष उपासना को निरावलम्ब उपासना कहते हैं। किसी स्थूल वा सूक्ष्म वस्तु का आश्रय लेकर जो ईश्वर वा ब्रह्म की उपासना की जाती है उसे सावलम्ब उपासना कहते हैं। वेदान्त में इसे प्रतीकोपासना कहते हैं।

''प्रतीकोपासनं हि नाम अब्रह्मणि ब्रह्मदृष्टयानुसंधानम्।''

रामानुजस्वामी

अब्रह्म अर्थात् जड़ वस्तु में ब्रह्मभाव का आरोप करके जो उपासना की जाती है उसे प्रतीक उपासना कहते हैं।

शालिग्राम शिला में विष्णु भगवान् का, शिवलिंग में शिवजी का, इसी प्रकार पत्थर, धातु, मिट्टी तथा काठ की बनी मूर्ति में भिन्न भिन्न देवताओं के आविर्भाव को मन में कल्पित करके जो उपासना की जाती है उसे प्रतीकोपासना कहा जाता है। उपनिषदों में अन्न, प्राण, मन, बुद्धि में भी ब्रह्म की भावना करके उपासना करने का उपदेश है। यह भी प्रतीकोपासना है। जिस वस्तु में देवता का आरोप किया जाता है, वह वस्तु उस देवता का प्रतीक होता है। इस प्रतीक उपासना से मुक्ति नहीं होती। निम्न श्रेणी के उपासकों के लिये इस प्रतीकोपासना वा सावलम्ब उपासना की व्यवस्था की गयी है। जिनका मन चंचल रहता है, जिनका चित्त शुद्ध नहीं है, वे लोग प्रत्यक्ष विधि से ब्रह्म की उपासना नहीं कर पाते। स्थिर भाव से आसन में बैठ कर गुरु द्वारा दिये हुए मन्त्र के जप तथा ध्यान धारणादि क्रिया करने की सामर्थ्य उनमें होती नहीं। अतः परम दयालु शास्त्रकारों ने मूर्ति में मन को स्थिर कर पुष्प चन्दन आदि बाह्य उपकरणों द्वारा पूजन करने की विधि दर्शायी है। इस प्रकार मूर्ति पूजा वा प्रतीकोपासना करते करते जब उपासकों का मन स्थिर हो जाता है, चित्त की शुद्धि हो जाती है, तब उनमें प्रत्यक्ष रीति से परमात्मा के ज्ञान के साथ ब्रह्म की उपासना

करने की सामर्थ्य उत्पन्न होती है। प्रत्यक्ष रीति से ब्रह्मोपासना करने में किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं होती। किसी जड़मूर्ति की जरूरत नहीं होती। केवल गुरु द्वारा दिये हुए मन्त्र के जप और ध्यान धारणा आदि क्रिया करने से वह उपासना की जाती है। सद्गुरु से जो मन्त्र पाया जाता है वही भगवान् का नाम होता है। उस के द्वारा ही नामी को पाया जाता है क्योंकि नाम और नामी एक ही हैं। जैसे छोटे से बीज के अन्दर एक बड़ा विशाल वृक्ष सूक्ष्मरूप से अन्तर्निहित रहता है, उसी प्रकार सद्गुरु द्वारा दिये मन्त्र वा नाम के अन्तर में भगवान् गुप्तरूप से निहित होते हैं। जैसे समय आने पर बीज के भीतर से वृक्ष प्रकट होता है, वैसे ही ठीक समय आने पर भगवान् नाम से प्रकट होकर उपासक को कृतार्थ करते हैं। इसीलिये कहा है कि मन्त्र भगवान् की मूर्त्ति है। गुरु प्रदत्त भगवान् के नाम द्वारा जो उपासना की जाती है वही प्रत्यक्ष ब्रह्म उपासना होती है। केवल उसी उपासना द्वारा मुक्ति होती है। यह उपासना निरावलम्ब उपासना है। सावलम्ब वा प्रतीकोपासना से मोक्ष नहीं मिलता यह उपनिषद् और वेदान्त दर्शन में कहा है–

''न प्रतीके नहि सः। ब्रह्मसूत्र'' 4।1।4

न (नहीं) प्रतीके (प्रतीकोपासना में) नहि (निश्चय ही नहीं) सः (वह परमात्मा) (प्राप्त किया जाता है) अथवा, न (ना) प्रतीकेन (प्रतीक द्वारा) हि (निश्चय से) सः (परमात्मा) (प्राप्त किया जाता है) मतलब यह है कि प्रतीकोपासना द्वारा परमात्मा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उस परमात्मा की निरावलम्ब उपासना करने पर ही उसे पाया जाता है। तैत्तरीय उपनिषद् की भृगुबल्ली में प्रतीक उपासना का विषय है। छान्दोग्य, बृहदारण्यक तथा अन्य उपनिषदों में भी प्रतीकोपासना की विधि कथित है।

विद्या और अविद्या

शिष्य - शास्त्र में अविद्या और विद्या शक्ति का उल्लेख है, वे शक्तियाँ क्या हैं ?

गुरु - अविद्या और विद्या शक्ति, जिनके नामान्तर हैं अज्ञान और ज्ञान शक्ति, अपरा और पराशक्ति माया और योगमाया ये दोनों ब्रह्म की ही शक्तियाँ हैं। एक ही भगवान् की शक्ति के विभिन्न कार्यों के कारण दो नाम हो गये हैं। जिस शक्ति के द्वारा मनुष्य परमेश्वर से विमुख होकर संसार में फंसता है, कर्मों से बंधता है, वासनाओं में जकड़ जाता है, उसे माया, अविद्या, अज्ञान अथवा अपराशक्ति कहते हैं और जिस शक्ति के द्वारा मनुष्य अन्तर्मुख होकर, भगवत् परायण होकर, धर्म की ओर, भगवान् की ओर चलता है, संसार से, वासनाओं से, कर्म बन्धनों से मुक्ति पाता है, उस शक्ति को विद्या, ज्ञान, परा, अथवा योगमाया शक्ति कहते हैं। शक्ति एक ही है उसके कार्य दो प्रकार के हैं। जो शक्ति जीव को संसार में बद्ध करती है, वासनाओं के वश में करती है, वही शक्ति वासनाओं से मुक्त भी करती है, संसार से उद्धार भी वही करती है। कार्य भेद से एक ही शक्ति के दो नाम हो गये हैं। जड़ जगत में भी केन्द्राभिमुखी और केन्द्रबहिर्मुखी ऐसी दो प्रकार की शक्तियाँ है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी ग्रह नक्षत्रादि जो सब आकाश मार्ग में नियमित रुप से श्रृंखलाबद्ध रीति से भ्रमण करते हैं ये अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी शक्तियाँ ही उस गति के हेतु हैं। सौरजगत् में जो गतियाँ हो रही हैं, वे इन्हीं अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी शक्तियों द्वारा सम्पन्न हो रही हैं। आधुनिक विज्ञान शास्त्र भी कहता है कि जगत् में शक्ति एक ही है, वही एक शक्ति विभिन्न स्थानों, विभिन्न अवस्थाओं में पृथक् पृथक् कार्य करती है।

भगवान् की मूर्त्ति

शिष्य - आपने कहा है कि भगवान् जिस पर प्रसन्न होते हैं उसके आगे वे अपने शरीर को, अपनी मूर्त्तिं को प्रकट करते हैं। भगवान् की मूर्त्तिं किस तरह की होती है यह बात मुझे अच्छी तरह समझा दीजिये।

गुरु - राम, काली, दुर्गा, शिव, गणेश, विष्णु आदि जो सब साकार देवताओं की पूजा हमारे देश में प्रचलित है और शास्त्र में जिनका वृत्तान्त कथित है, वे सब ही भगवान् के भिन्न भिन्न स्वरूप, भिन्न भिन्न मूर्त्तियाँ हैं। असंख्यरूप हैं भगवान के। असंख्य मूर्त्तियाँ में, असंख्य भावों में भगवान् लीला करते हैं, क्रीड़ा करते हैं। भगवान् नित्य पदार्थ हैं, अविनाशी वस्तु हैं। उनकी मूर्त्तिं, उनका विग्रह भी नित्य है। राम, काली, दुर्गा आदि उनके ही भिन्न-भिन्न स्वरूपों की मूर्त्तियाँ और विग्रह हैं, नित्य हैं, अविनाशी हैं। भगवान् का विग्रह सच्चिदानन्दमय है, उनकी मूर्त्तिं चिन्मय है। भगवान् का देह जड़ पदार्थों से बना हुआ नहीं, यह तुम्हें पहले ही कहा है, भगवान् के विग्रह में जड़ तो छू भी नहीं गये, इसी कारण से ऋषियों ने उन्हें निराकार कहा है। भगवान् और उनके सब स्वरूपों के विग्रह जैसे अविनाशी और नित्य हैं उनके गोलोक आदि धाम और परिकर भी उसी प्रकार से नित्य, अविनाशी चिन्मय और सच्चिन्दानन्दमय हैं। उन का किसी काल में भी विनाश वा ध्वंश नहीं होता। तो भी कोई कोई कहते हैं।

''चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिण:।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

रामतापनी उपनिषद् के इस श्लोक का उल्लेख करके कहते हैं कि शास्त्र में यह कहा है कि ब्रह्म के रूप काल्पनिक हैं। उपासकों की कार्य सिद्धि के हेतु ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी है। तभी तो देखा जाता है कि ब्रह्म का वास्तविक कोई रूप वा मूर्त्ति नहीं। साधक निराकार भाव को मन में नहीं लाने पाता, उसकी धारणा नहीं कर पाता, इसी कारण से ऋषियों ने अरूप और अमूर्त्ति ब्रह्म के रूपों और मूर्त्तियों की कल्पना की है। यह आपत्ति करने वाले जिस रीति से

श्लोक की व्याख्या करते हैं, वस्तुतः ऐसी व्याख्या ठीक नहीं। वे लोग ''ब्रह्मणः'' इस पद में सम्बन्धार्थ में षष्ठी का प्रयोग मानकर वैसी व्याख्या करते हैं। सम्बन्धार्थ में षष्ठी मानने से इस प्रकार का अर्थ निकलता है– यह सत्य है। परन्तु यहाँ सम्बन्ध के अर्थ मे षष्ठी प्रयोग नहीं; कर्त्ता के अर्थ में षष्ठी है।

''कर्तृकर्मणोः कृति (पाणिनि सूत्र) ''कृद्योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात्।''

कल्पना शब्द कृत् प्रत्यय से बना है। अतः उसके प्रयोग होने पर कर्त्ता के अर्थ में षष्ठी का प्रयोग है। इस स्थिति में यह अर्थ निकलता है कि सत्यसंकल्प भगवान् द्वारा स्वयं ही अपने रूप की रचना की जाती है।

''तदात्मानं स्वयमकुरुत'' श्रुतिः

भगवान् शिव ने तंत्रशास्त्र में यह बात स्पष्ट रूप से कही है-

''साधकानां हितार्थाय ब्रह्म स्त्रीपुंरूषं धत्ते।''

भगवान् ने स्वयं अपने रूप की कल्पना की है। राम, कृष्ण, काली, दुर्गा, शिव, विष्णु आदि अगणित मूर्त्तियों को धारण कर भगवान् इस अनन्त ब्रह्माण्ड में अनन्तरूपों में लीला कर रहे हैं। भगवान् के ये सभी रूप नित्य, शाश्वत, पूर्ण तथा चिन्मय हैं। किसी काल में भी उनका विनाश नहीं होता।

वराह पुराण में भगवान् वराह देव के वचन हैं-

''सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥
परमानन्दसंदोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः।
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः॥

उस भगवान् के समस्त देह नित्य एवं शाश्वत हैं; उनमें उपचय अपचय नहीं, वे परमानन्दमय, ज्ञानरूप, समस्त गुणों से परिपूर्ण समस्त दोषों से रहित हैं और प्रकृति से उत्पन्न नहीं।

नारदपंचरात्र में भी कहा है-

''कृष्णो नित्य: शरीरी च तस्य तेजो हि वर्त्तते।
तेजोऽभ्यन्तर एवात्र कृष्णमूर्त्ति: सनातन:॥
ध्यायन्ते योगिन: सर्वे तत्तेजो भक्तिपूर्वकम्।
सुपक्वभक्त्या कालेन योगी च वैष्णवो भवेत्।
तेजोऽभ्यन्तररूपं च ध्यायन्ते वैष्णवा: सदा।
दासानां च कुतो दास्यं विना देहेन नारद॥

नारदपंचरात्र 2।8 34-36

भगवान् कृष्ण नित्य हैं और देह युक्त हैं, क्योंकि उनका तेज दिखाई देता है। उस तेज: पुञ्ज के मध्य में ही भगवान् कृष्ण की सनातन मूर्त्ति है। योगीजन उसी तेज का भक्तिपूर्वक ध्यान करते हैं। भक्ति पूर्वक ध्यान करने वाला योगी दीर्घकाल में भक्ति का परिपाक होने पर वैष्णव बन जाता है। वैष्णव जन भी उसी प्रकार तेजोमण्डल के अन्तर में स्थित भगवान् के रूप का ध्यान करते हैं। हे नारद ! यदि भगवान् का देह न हो तो भगवान् के दासों की दासता भला कैसे हो सकती है ? भगवान् के सब धाम भी नित्य हैं-

''तद् विष्णो: परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय:।''

विद्वान अर्थात् ब्रह्म के ज्ञाता उस भगवान् विष्णु के पद अर्थात् धाम का सदा दर्शन करते हैं। पद का यहां अर्थ है धाम।

''न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावक:।
यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं हरे:॥
तद् विष्णों: परमं धाम शाश्वतं नित्यमच्युतम्।
न हि वर्णयितुं शक्यं कल्पकोटिशतैरपि ॥'' पद्मपुराण

भगवान् का परम धाम सूर्य, चन्द्र अथवा अग्नि से प्रकाशित नहीं होता। वहां पहुंच जाने पर वहां से लौटना नहीं होता। विष्णु भगवान् का वह परम धाम शाश्वत, नित्य और अविनाशी है। अरबों कल्पों के दीर्घ काल में भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

हमारे समस्त शास्त्रों ने भगवान् की मूर्त्ति, भगवान् के विग्रह को माना है। सच्चिदानन्द विग्रह भगवान् अपने वासस्थान में जिन्हे तद्धाम कहते हैं, उन्हीं गोलोकादिधामों में अपने परिकर जनों के साथ नित्य ही लीला करते हैं। केवल हमारे शास्त्रों में भगवान् को साकार माना गया है- ऐसी बात नहीं। अन्य देशों के शास्त्रों ने भी ईश्वर को साकार कहा है। कुरान और बाइबिल का ईश्वर भी साकार है। आदम के पास भगवान् का आना, स्वर्ग में भगवान् की सभा का वर्णन, भगवान् का सिंहासन पर विराजमान होना, भगवान् की सभा में देवदूतों की उपस्थिति, ऐसे वर्णनों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुरान और बाइबिल में कथित ईश्वर की मूर्त्ति है, विग्रह है, वे साकार हैं, अपने धाम में निवास करते हैं। उनके परिचारक भी हैं। इस विषय में हिन्दूशास्त्रों के साथ उन शास्त्रों की संगति पाई जाती है।

जिन्होंने विधिपूर्वक साधना करके भगवान् को प्राप्त किया है, उनका प्रत्यक्ष दर्शन किया है, उन्होंने उन्हें साकार, सच्चिदानन्द विग्रह वाले, चिन्मयमूर्ति वाले और पुरुष रूप में दर्शन किया है। इस विषय में श्रीमत् गोस्वामीजी महाराज ने लिखा है-

''ईश्वर का देह जड़ पदार्थों से निर्मित नहीं, इसीलिये उन्हें निराकार कहते हैं। परन्तु उनका निराकार सच्चिदानन्द रूप है, जिसका दर्शन ज्ञाननेत्र से किया जा सकता है। जैसे ज्ञाननेत्र हैं वैसे ही ज्ञानकर्ण, ज्ञाननासिका और ज्ञानरसना हैं उनसे सुनना, सूँघना और आस्वादन का अनुभव किया जाता है। ज्ञानचक्षुओं से इस लोक में और परलोकों में जो कुछ भी सत्य है वह प्रत्यक्ष किया जाता है। साधना द्वारा ज्ञानचक्षुओं का विकास किया जाता है।''

पञ्चम पुरुषार्थ

शिष्य - मुक्ति क्या अन्तिम अवस्था है? अथवा मुक्ति के अनन्तर भी कुछ प्राप्ति करने के लिये है?

गुरु - मुक्ति के प्रकरण में तुम्हे ब्रह्मज्ञान की बात कही है। साधक जब ज्योतिर्मय ब्रह्म का दर्शन कर लेता है, तब माया से मुक्त हो जाता है। यह दर्शन सृष्टि की परिधि में होता है। इस के आगे योग की अवस्था है- आत्मा के जरिये से परमात्मा के दर्शन, तदंतर भगवान् की लीला के दर्शन हाते हैं। लीला दर्शन को ही पञ्चमपुरुषार्थ प्राप्ति कहते हैं। विषय अति कठिन है, ध्यान से सुनो-

मनुष्य के धार्मिक जीवन की पांच अवस्थायें हैं; नीति, धर्म, ब्रह्मज्ञान, योग और लीला। इन पांचों अवस्थाओं में से मनुष्य को गुजरना होता है। नीति के अनुसार जीवन व्यतीत करते-करते मनुष्य की प्रवृत्ति धर्म की ओर होती है। तब उसके मन में पुण्योपार्जन करने के हेतु प्रबल इच्छा होती है। उस समय वह यज्ञ, अनुष्ठान देवपूजन आदि धर्मकार्यों को करता है। तदनन्तर उसके मन में मोक्ष पाने की चाह होती है। इस अवस्था में वह शास्त्रविधि अनुसार शास्त्रोक्त उपासना पद्धति को ग्रहण करता है और सद्गुरु द्वारा दीक्षा पाकर साधन भजन में लगता है। भजन करते-करते सब कुसंस्कार नष्ट होकर चित्त की शुद्धि होती है। तदनन्तर वह ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता है। इस अवस्था में साधक को समस्त भूतों में ब्रह्म के दर्शन होते हैं। ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह श्रुति वचन अब उसके समक्ष प्रत्यक्ष सत्यरूप में प्रकाशित होता है। तब वह ब्रह्मसत्तारूपी सागर में निमग्न हो - अनुपम ब्रह्मनन्द को अनुभव कर धन्य होता है। तदनन्तर आत्मा का परमात्मा से योग होता है; इस स्थिति में साधक अपने आत्मा के अभ्यन्तर परमात्मा के दर्शन करता है। अन्त में भगवान् की लीला का दर्शन होता है। इस स्थित में भगवान् भक्त को अपना रुप प्रकाशित कर उसके साथ अनन्त प्रकार से लीला करते हैं, क्रीड़ा करते हैं। साधक भक्त भगवान् के इस लीला समुद्र में निमग्न हो, विशुद्ध प्रेमानन्द अनुभव कर कृतकृत्य एवं पूर्ण काम हो जाता है। अब उसके लिये कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहता।

इस विषय म पूज्यपाद श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी ने स्वयं लिखा है-

''ऋषियों ने कहा है, प्रथम अवस्था में ब्रह्म का ज्ञान, अर्थात् समस्त भूतों में ब्रह्म का प्रत्यक्ष अनुभव करना। दूसरी अवस्था में योग – आत्मा में परमात्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति। तीसरी अवस्था में भगवान् के साथ साक्षात् सम्बन्ध-उनकी साक्षात् पूजा-अर्चना। इस स्थिति में भगवान् के रूप का दर्शन होता है। उनका वह रूप सत् चित् और आनन्दमय है। वह रूप पंचभूतों से गठित नहीं। रूप इस कारण से कहा है कि उसके लिये अन्य कोई शब्द नहीं।''

साधनावस्था में तीन भाव प्रकट होते हैं। पहिले ब्रह्मभाव। उस भाव में साधक देखता है कि समस्त ब्रह्माण्ड में एक अद्वितीय चैंतन्य व्याप रहा है। इसे ब्रह्मज्ञान कहा जाता है। दूसरी अवस्था है योग की। यह हठयोग नहीं; जीवात्मा और परमात्मा का वास्तविक संयोग होता है--इस अवस्था में। तब साधक को अनुभूति होती है कि उसके देह का एक-एक अवयव एक अनिर्वचनीय शक्ति के वश में है। वही शक्ति नीचे जाती है, वही कभी ऊपर उठती है। उसके स्पर्श और गन्ध का अनुभव भी होता है। परन्तु स्पर्श, गन्ध और स्वाद अव्यक्त होते हैं। घी-चीनी खाकर उसके स्वाद को कौन पूर्णतया व्यक्त कर सकता है ? गर्भवती स्त्री जैसे अपने गर्भगत शिशु का अनुभव मात्र करती है, वैसे ही। तीसरी अवस्था है भगद्भाव अर्थात् भगवान् की लीलाओं का दर्शन। तब साधक के समक्ष ब्रह्म अनन्तरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। काली, दुर्गा, राम, कृष्ण, ये सब रूप और इनके अतिरिक्त अन्य असंख्य रूप दृष्टिगोचर होते हैं। साधारण व्यक्ति इस जगत् में हो रही ब्रह्म की लीला को जैसे देखता है, वैसे ही अन्य जगतों में भी ब्रह्म जिस जिस भाव से जिस जिस रूप से लीला करते हैं, वह सब साधक के समक्ष प्रकट होता है। पूर्वकाल के ऋषिजन और कलियुग के भी भगवान् बुद्ध आदि महापुरुष जिन्होंने साधन किये थे, उन्होंने ब्रह्म के समस्त रूप प्रत्यक्ष किये थे। इस प्रकार साधक ब्रह्म, आत्मा और भगवान् ब्रह्म के इन तीनों भावों को प्रत्यक्ष कर, ब्रह्मरूपी अनन्तसागर में कूद पड़ता है। तब वह ''एकमेवाद्वितीयम्'–'यह सब कुछ एक ब्रह्म ही है, दूसरा कुछ

नहीं इस अनुभूति को ग्रहण कर सच्चिदानन्दसागर में अपनी सत्ता भुलाकर कभी उसमें तैरता है, कभी डुबकियाँ लगाता है। ''ब्रह्म के तीनों भावों का उल्लेख उपनिषद् में भी मिलता है। ब्रह्म सृष्टि में अन्तर्यामीरूप में, आत्मा में अन्तर्यामीरूप में और अपने रूप में रहता है। जो सृष्टि में अन्तर्यामीरूप में विद्यमान है, उसे विराट् ब्रह्म कहा जाता है। गीता में उसे विश्वरूप कहा है। भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को यही रूप दिखाया था। जो आत्मा में अन्तर्यामी रूप में है वही परमात्मा है और उपनिषद् ने जिसको स्वयंरुप कहा है उसे ही परब्रह्म कहते हैं।

''ब्रह्मवित् परमाप्नोति शोकं तरति चात्मवित्।
रसो ब्रह्म रसं लब्ध्वानन्दी भवति नान्यथा॥

ब्रह्म को जानने वाला परम पद प्राप्त करता है। आत्मा को जानने वाला शोक से मुक्त होता है। ब्रह्म रसस्वरूप है, उसके रस को पाकर मनुष्य आनन्दित होता है। किसी अन्य उपाय से सच्चा आनन्द नहीं मिलता।

इस श्रुति वचन में ब्रह्म का ज्ञान, योग और भगवत्तत्व ये तीन प्रकार के साधनों का वर्णन है। इन तीनों तत्वों का उल्लेख भगवान् वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत में इस प्रकार किया है–

वदन्ति तत् तत्वविदस्तत्त्वं यज् ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति कथ्यते॥

श्रीमद्भागवत 1।2।11

तत्त्व के ज्ञाता विद्वान उस अद्वय ज्ञानतत्त्व को ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् इन नामों से कहते हैं।

इष्ट देवता को भगवान् के रूप में पाकर उनकी लीला में प्रविष्ट होना, सम्मिलित होना - इसी को पञ्चमपुरुषार्थ कहते हैं। इसी पञ्चमपुरुषार्थ को प्राप्त करके जीव कृतकृत्य हो जाता है। फिर उसके लिये कुछ भी प्राप्त करना अवशिष्ट नहीं रहता। यही पराभक्ति की अवस्था है। इस सम्बन्ध में गीता में है-

ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

गीता 18।52

ब्रह्म को पाकर जिसका आत्मा एक बार प्रसन्न हो जाता है, वह सर्वप्रकार से दु:ख शोक से, आकांक्षाओं से मुक्त हो जाता है। जो सब जीवों को समदृष्टि से देखता है वही (भाग्यवान्) मेरी परम भक्ति को प्राप्त करता है।

यही उपनिषद् और भागवत का धर्म है। गोस्वामी श्रीमत् विजय कृष्ण महाराज ने इसी धर्म की शिक्षा अपने शिष्यों को दी है।

शिष्य - उपनिषद् में क्या पंचमपुरुषार्थ का उल्लेख नहीं।

गुरु - है क्यों नहीं। तैत्तरीय उपनिषद् में है–

''सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता। ''

तैत्तरीय उपनिषद् ब्रह्मवल्ली अनु.1

मुक्ति के अनन्तर मुक्तात्मा जीव सर्वत्र ब्रह्म के साथ काम्य विषयों को भोगता है।

यहां ब्रह्म शब्द परब्रह्म भगवान् का वाचक है। इसी श्रुति के आधार पर महर्षि वेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र की रचना की थी–

''भोगमात्रसाम्यलिंगाच'' **ब्रह्मसूत्र** 4।4।2।1

मुक्तात्मा की ब्रह्म के साथ केवल भोगमात्र में समता होती है, शक्ति के विषय में समता नहीं होती।

इसी तैत्तरीय श्रुति से ही आचार्य शंकर का एकान्त अद्वैतवाद एकदम से खण्डित हो जाता है। इस श्रुति का स्वाभाविक सरल अर्थ करने पर एकान्त अद्वैतवाद बिल्कुल ही सिद्ध नहीं होता; इसीलिये शंकराचार्य ने इसकी व्याख्या कुछ फेर के साथ की है उनकी व्याख्या सुनो– ब्रह्मभूतों विद्वान ब्रह्मरूपेणैव सर्वान् कामान् सह (युगपत्) अश्नुते''। -शंकर भाष्य

''ब्रह्मभूत विद्वान् ब्रह्मरूप से ही सब भोगों को एक समय में भोगता है।

गौड़ देश के गोस्वामी महात्माओं ने दो प्रकार की उपासना कही है, एक ऐश्वर्यभाव की उपासना व दूसरी मधुरभाव की उपासना। मधुरभाव की उपासना को उन्होंने पंचमपुरुषार्थ कहा है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में भगवान् वेदव्यास ने इसी मधुर भावोपासना की पूर्ण परिपाकावस्था का वर्णन किया है। ब्रजलीला ही मधुर भाव की पूर्ण परिणति है।

प्रभूपाद श्रीमद् विजयकृष्ण गोस्वामी ने इस विषय में लिखा है- ''ऐश्वर्यभाव के उपासक होते हैं– शैव, सौर, गाणपत्य और शाक्त। माधुर्यभाव उपासक होते हैं वैष्णव। रामसीता, लक्ष्मीनारायण, राधाकृष्ण के उपासक यदि ऐश्वर्यभाव के उपासक होते हैं तो उन्हें शाक्त, शैव, सौर, गाणपत्य कहना होगा। काली, दुर्गा, शिव, सूर्य, गणपति और नारायण के उपासक यदि माधुर्यभाव के उपासक हों तो उन्हें वास्तविक वैष्णव कहना होगा। ब्रह्मसंहिता में इसका प्रमाण विद्यमान है। शिव, पार्वती, रामसीता, लक्ष्मीनारायण, ये सब देवता यदि माधुर्यभाव लिये हों तो उनकी उपासना पराधर्म होगी और ऐश्वर्य भाव से उन्हीं की उपासना ईश्वर उपासना होगी। रामप्रसाद के समान वैष्णव कौन होगा'' ?

गोस्वामीजी ने जिसे पराधर्म कहा है वही पंचमपुरुषार्थ है। वैदिक वा ऋषियों के मार्ग बिना पंचमपुरुषार्थ प्राप्त नहीं हो सकता।

शिव, शक्ति, विष्णु आदि देवों की एकता

शिष्य - राम, कृष्ण, काली, शिव, विष्णु आदि सब भगवान् के ही रूप हैं यह बात कही है। इन स्वरूपों में कुछ तारतम्यता है क्या ?

गुरु -राम, कृष्ण, काली, दुर्गा, शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश आदि जो भगवान् के स्वरूप हैं, उनमें कोई भेदभाव वा तारतम्य नहीं। ये सभी ब्रह्म हैं। साधकों के भाव के अनुसार वे भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट हुए हैं। देखो, एक ही अग्नि नाना स्थानों में नाना रूपों में प्रकट होकर नाना प्रकार के कार्य करती है। किसी स्थान में एक ही अग्नि द्वारा होम कार्य होता है, किसी अन्य स्थान में रसोई का काम, किसी स्थान में यन्त्रों के चलाने का कार्य, किसी अन्य स्थान में उसी अग्नि से अन्य कार्य सम्पन्न किया जाता है। भिन्न भिन्न स्थानों की भिन्न भिन्न अग्नि एक ही अग्नि है। जो एक अद्वितीय अग्नि समष्टि रूप में सर्वत्र व्याप्त हो रही है, वही समष्टि अग्नि भिन्न भिन्न रूपों में प्रकाशित होकर अनेक कार्य करती है। वास्तव में समस्त अग्नि एक ही पदार्थ है। इसी तरह ब्रह्म नाना रूपों में नाना मूर्त्तियों में प्रकट होकर नाना प्रकार के कार्य करता है। उपासना भेद से भिन्न भिन्न रूपों में भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करता है। परन्तु सभी देव एक ब्रह्म के रूप हैं, एक ब्रह्मतत्व हैं।

राम, कृष्ण, काली, दुर्गा, शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश आदि सभी ब्रह्म हैं। एक ब्रह्म के ही भिन्न भिन्न रूप हैं। अत: भगवान् की इन सब मूर्त्तियों में वस्तुत: कुछ भी भिन्नता नहीं। ये सभी मूर्त्तियाँ नित्य हैं। विरजा के दूसरे पार में माया के अधिकार क्षेत्र से बाहर, गोलोक, महावैकुण्ठ, कैलाश, अयोध्या, सूर्यलोक, गणेशलोक, आदि नित्य धामों में अपने-अपने धाम में अपने अपने परिवार वर्ग के साथ नित्य ही लीला करते हैं।

''त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥''

श्रीमद्भागवत 4।7।54

जो मनुष्य एक तत्वमय तीनों देवताओं में जो सर्वभूतों के आत्मा रूप हैं, भेदभाव नहीं देख पाता **वही** शान्ति प्राप्त करता है।

''सौराश्च शैवगाणेशा वैष्णवा शक्तिपूजका:।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भ: सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा भिन्न: क्रीडार्थं भुवने किल।

पद्मपुराण

वर्षा का जल जैसे सब ओर से इकट्ठा होकर समुद्र में ही गिरता है, वैसे ही सौर, शैव, गाणपत्य, वैष्णव और शाक्त सभी मुझे प्राप्त होते हैं।

''यो ब्रह्मा स हरि: प्रोक्तो यो हरि: स महेश्वर:।
महेश्वर: स्मृत: सूर्य: सूर्य: पावक उच्चते॥
पावक: कार्त्तिकेयोऽसौ कार्त्तिकेयो विनायक:।
गौरी, लक्ष्मीश्च सावित्री, शक्तिभेदा: प्रकीर्तिता:।
देवं देवीं समुद्दिश्य न कुर्यादन्तरं क्वचित्।
तत्तद्भेदो न मन्तव्य: शिवशक्तिमयं जगत्॥

भविष्योत्तरपुराण

जो ब्रह्म हैं वे ही विष्णु हैं, जो विष्णु हैं वे ही शिव हैं, जो शिव हैं वे ही सूर्य हैं जो सूर्य हैं वे ही अग्नि हैं, वे ही कार्त्तिकेय हैं, जो कार्त्तिकेय हैं वे ही गणेश हैं। इसी प्रकार से गौरी, लक्ष्मी, सावित्री आदि एक ही शक्ति के भिन्न भिन्न नाम हैं। इन सब में भेद नहीं मानना चाहिये। समस्त जगत शिव और शक्तिमय है।

या काली सैव कृष्ण: स्यात् य: स एव कालिका।
कदाचित् पृथ्वीमध्ये, कदाचित् वर्हिमण्डले॥

जो काली है वही श्रीकृष्ण है, जो कृष्ण है वही काली है, कभी वह पृथ्वी पर और कभी अग्नि में विराजित होती है।

तब वक्षसि राधाऽहं रासे वृन्दावने वने।
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पादपद्मार्चने रता॥
श्वेतद्वीपे सिन्धुकन्या विष्णोरुरसि भूतले।
ब्रह्मलोके च ब्रह्माणी वेदमाता च भारती।।

नारदपंचरात्र प्रथम रात्र अध्याय 12

पार्वती द्वारा श्रीकृष्ण स्तुति–

पार्वती श्रीकृष्ण को कहती है, मैं वृन्दावन में राधा होकर रास में तुम्हारे वक्ष: स्थल पर क्रीड़ा करती हूं, महालक्ष्मी होकर महाविष्णु रूप में आपके चरणों की सेवा करती हूं। श्वेतद्वीप में और पृथ्वी पर मैं ही समुद्र की कन्या लक्ष्मी होकर विष्णु के हृदय में निवास करती हूं। मैं ही ब्रह्म लोक में ब्रह्माणी और वेदमाता भारती हूं।

महादेवोवाच–

श्रीकृष्णोरसि या राधा तद्वामांशेन संभवा।
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे सा च नारायणोरसि॥
सरस्वती सा च देवी विदुषां जननी परा।
क्षीरोदसिन्धुकन्या सा विष्णूरसि च मायया॥
सावित्री ब्रह्मणो लाके ब्रह्मवक्ष:स्थलस्थिता।
पुरा सुराणां तेज:सु साऽऽविर्भूता दया हरे:।
स्वयं मूर्त्तिमती भूत्वा जघान दैत्यसंघकान्॥
ददौ राज्यं महेन्द्राय कृत्वा निष्कंटकं पदम्।
कालेन सा भगवती विष्णुमाया सनातनी।
बभूव दक्षकन्या च परं कृष्णाज्ञया मुने॥
त्यक्त्वा देहं पितुर्यज्ञे ममैव निन्दया मुने।
पितृणाँ मानसि कन्या मेना कन्या बभूव सा।
आर्विभूता पर्वते सा तेनेयं पार्वती सती।
सर्वशक्तिस्वरूषा सा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥

नारदपंचरात्र द्वितीय रात्र षष्ठ अध्याय 14-20

महादेव ने कहा - श्रीकृष्ण के वाम भाग से उत्पन्न जो राधा उनके वक्ष स्थल पर निवास करती है, वही वैकुण्ठ में महालक्ष्मी होकर नारायण के वक्ष:स्थल पर वास कर रही है। वही पुन: विद्वज्जनों की माता सरस्वती है। वह माया द्वारा क्षीर समुद्र की कन्या होकर विष्णु

के वक्ष:स्थल पर वास करती है। वही सावित्री होकर ब्रह्मा के वक्ष:स्थल पर वास करती है। प्राचीन काल में उसी ने विष्णु भगवान् की मूर्त्तिमती दया के रूप में प्रकट होकर दैत्यों का संहार कर इन्द्र को निष्कन्टक राज्य और इन्द्रपद प्रदान किया था। बहुत समय बीतने पर उसी सनातनी भगवती विष्णुमाया ने श्रीकृष्ण के आदेश से दक्ष की कन्या के रूप में जन्म लिया। पीछे मेरी निन्दा सुनकर पिता के यज्ञ में शरीर छोड़कर उसने पितृगण की मानसी मेनका नाम की कन्या होकर जन्म लिया। पर्वत में प्रकट हुई थी। इसीलिये उसे पार्वती कहा जाता है। वही दुर्गति का विनाश करने वाली सर्वशक्तिस्वरूपा दुर्गा है।

''उभयो: प्रकृतिरस्त्वेका प्रत्ययभेदेन भिन्नवद् भाति
कल्पयति कश्चिन् मूढ़ो हरिहरभेदं विनाशार्थम् ॥''

(बिना शास्त्रं वा)

हृ धातु के साथ इन् प्रत्यय लगाने से हरि और हृ धातु के णक् प्रत्यय लगाने से हर शब्द सिद्ध होता है। इन दोनों शब्दों के प्रकृति अर्थात् धातु एक हैं। केवल प्रत्यय भिन्न लगते हैं। मूढ़ मनुष्य हरि और हर में भेद मानकर अपना विनाश करते हैं।

दूसरा अर्थ - हरि और हर दोनों की प्रकृति एक है अर्थात् दोनों की सामर्थ्य, भगवत्ता एक समान है। केवल प्रत्यय अर्थात् विश्वास के भेद से वे भिन्न से प्रतीत होते हैं। मूढ़ मनुष्य जो उन दोनों में भिन्नता की कल्पना करते हैं, वही कल्पना उनके विनाश का कारण होती है।

इन देवताओं के देह, धाम और परिकर सभी नित्य, सच्चिदानन्दमय और चिन्मय हैं। ये सभी मुक्ति को देने वाले हैं। भागवत में लिखा है कि भगवत्तत्व एक और अद्वितीय है। राम कृष्णादि भगवान् के स्वरूप भी अभिन्न और एक हैं। उपासना भेद के कारण साधक के समक्ष भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होकर ये सभी भिन्न-भिन्न फल देते हैं।

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्वं यज् ज्ञानमद्वयम्।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

श्रीमद्भागवत 1।2।11

तत्त्व के ज्ञाता जिस एकमात्र अद्वितीय ज्ञानतत्त्व को तत्त्व कहते हैं, वह अद्वय तत्त्व ही ब्रह्म परमात्मा और भगवान् इन नामों से कहा जाता है।

''मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युत:।

रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात् तथाच्युत:॥

नारदपंचरात्र

मणि जैसे स्थान भेद से नील, पीत आदि भिन्न वर्णो का हो जाता है वैसे ही साधक के ध्यान भेद से अच्युत भगवान भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं। योगिनीतंत्र में भगवान् शंकर ने कहा है-

''ये यथा मां प्रपद्यन्ते ते तथा फलभागिन:।''

और भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी वही बात कही है-

''ये यथा मां प्रपद्यते तांस्तथैव भजाम्यहम्।''

गीता 4।11

इन दोनों महावाक्यों का एक ही अर्थ है - जो व्यक्ति जिस भाव से भगवान् की उपासना करता है, भगवान् उसे उसकी उपासना के अनुरूप ही फल देते हैं।

इस सम्बन्ध में स्वर्गीय कृष्णानन्द स्वामी का एक सुन्दर गान है- ध्यान लगाकर सुनो-

मन करिस् ने गण्ड गोल।
एक बार मिटिये सन्द मनेर द्वन्द
आनन्दे बलो हरि बोल।
छेड़े खूँटि नाटि मयला माटि
मनटि खाँटि करे तोल

देख् पांच पथे एक रंगेर् मानुष
करेच्छे लीला केवल।।
औरे कालो धलो यतो बोलो
पुरुष मेये से-ई सकल
नाना बूलि बाजाय ढूलि
बाजे किन्तु एकई ढोल।।
ओरे पांच घाटे एक गंगा वटे
ठोरे ठोरे बोझो पागल
परिब्राजक बले, पांच रूपे एक
आलो करे रंग महेल।।

रे मन तु यह गड़बड़ मत कर ! संशयों और द्वन्द्वों को एकदम मिटाकर, आनन्द से बोल-हरिबोल ! ममता की -इस मैल-मिट्टी को दूर कर मन को निर्मल कर डाल। देख ! पांचो पथों में एक ही रंग के मानुष हैं जो अपनी अपनी लीलायें कर रहे हैं। वह काला है, वह गोरा है, जो भी कहो, है तो सभी नर और नारी। वह टोली अनेक स्वरों में गा रही है, परन्तु ढोल एक ही बज रहा है। अरे ! घाट पांच हैं, परन्तु एक ही गंगा सभी स्थानों में बहती है—यह समझ ले। अरे पगले ! परिब्राजक कहता है—पांचों वर्णों में एक ही आत्मा हृदय मन्दिरों को उज्ज्वल कर रहा है।

''गोलोक, वृन्दावन, कैलाश इन नित्यधामों में नित्य देवता विराजमान हैं। राधा-कृष्ण, रामसीता, हरगौरी ये सब एक ही देवता हैं। एक ही इनके विग्रह हैं। साधक की भावानानुसार भिन्न भिन्न रूपों में दर्शन देते हैं। जैसे किसी क्रिश्चियन भक्त ने कालीघाट की काली मूर्त्ति को और दक्षिणेश्वर की आनन्दमयी मूर्त्ति को देख कर ईसा के दर्शन प्राप्त किये थे।''

(प्रभुपाद गोस्वामी श्री श्री विजयकृष्णजी के वचन)

विरजा

शिष्य - आपने जो सब कहा है उसमें से कुछ विषय मैं समझ नहीं पाया।

गुरु - कौन कौन से विषय तुम नहीं समझ पाये हो ?

शिष्य - विरजा किसे कहते है ?

गुरु - शास्त्र में विरजा को नदी कहकर उल्लेख किया है। कौषीतिकी उपनिषद् में विरजा की कथा है। गर्गसंहिता, पद्मपुराण ब्रह्मवैवर्तपुराणादि में भी विरजा की कथा मिलती है। एक ओर मायामय ब्रह्माण्ड, दूसरी ओर प्रकृति के क्षेत्र से बाहिर चिन्मय गोलोक आदि धाम हैं, मध्य भाग में विरजा नाम की नदी है। पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि जो स्थूल जगत दृष्टिगोचर हो रहा है और इन्द्रलोक, बरुणलोक, अग्निलोक, पितृलोक, जनलोक, तयोलोक, सत्यलोक आदि जो सब सूक्ष्मलोक दृष्टि के गोचर में नहीं हैं, ये सभी मायामय सृष्टि की परिधि में हैं। महाप्रलय के समय ये सब लोक नष्ट हो जाते हैं। गोलोक आदि जो सब धाम चिन्मय हैं वे प्रकृति के क्षेत्र से बाहर और नित्य हैं। वहां पर माया का कोई अधिकार नहीं, वहां काल की प्रभुता नहीं। वे सब धाम चिन्मय और विभु हैं। भगवान् का विग्रह जिस प्रकार चिन्मय और विभु है, उनके वास स्थान गोलोकादि भी वैसे ही हैं। जैसे भगवान् इच्छा करने से ही अपने को अवतरित कर सकते हैं वैसे ही ये सब धाम भी अपने को अवतरित कर लेते हैं। प्रकृति के क्षेत्र में जब प्रलय होता है तब ये नष्ट नहीं होते। पृथ्वी में जो ब्रजमण्डल है वह अप्राकृत गोलोक धाम पृथ्वी में आ गया था। बाद में भगवान् ने अवतार लिया। शास्त्र में ब्रजभूमि को प्रकृति के क्षेत्र से बाह्य, चिन्मय और चिन्तामणि भूमि कहा है। वहां के वृक्षलता सब कल्पवृक्ष और कल्पलता हैं। जो भी जीव जन्तु हैं सभी अप्राकृत और चिन्मय हैं। साधारण दृष्टि से ब्रजभूमि प्रपंचमय, जड़मय और प्राकृतिक दिखाई देती है परन्तु ब्रजभूमि प्राकृतिक और प्रपंचमय नहीं है। दिव्य दृष्टियुक्त भगवद्भक्त ब्रजभूमि को अप्राकृतिक और चिन्मयरूप में देखते हैं। जैसे तलवार आदि शस्त्र खोल के भीतर में गुप्त रहते हैं, लोगों की दृष्टि में

नहीं आते, जब तक खोल को खोला नहीं जाता; आवरण को दूर नहीं किया जाता तब तक उस शस्त्र को देखा नहीं जा सकता। उसी प्रकार भगवान् ने भी अपने परमप्रिय गोलोकधाम को, चिन्मय वृन्दावन की भूमि को प्रपञ्च के परदे में छिपा कर प्रकृति के खोल में लुकाकर साधारण जन की दृष्टि से दूर कर रक्खा है। जो जन भगवान् के भक्त हैं, उनके प्रिय हैं, उनको खोल हटा कर अपने अप्राकृत धाम का दर्शन कराते हैं। तब भक्त देखते हैं कि अप्राकृतिक गोलोकधाम और पृथ्वी का ब्रजमण्डल एक ही है। यह वृन्दावन, यह यमुना नदी, यह गोवर्द्धन और गोलोक में स्थित वृन्दावन, यमुना गोवर्द्धन एक ही हैं। उस अप्राकृतिक गोलोकधाम और ब्रजमण्डल में कुछ भी भेद नहीं। भगवान् का परमश्रेष्ठ गोलोक धाम नित्य है। वहाँ महाप्रलय का अधिकार नहीं।

''जलप्लुतञ्च विश्वौघं लये प्राकृतिके ध्रुवम्।
आब्रह्मलोकपर्यन्तं परं कृष्णालयं बिना।''

नारदपंचरात्र 1।14।21

नित्यं मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा।
यमुनां गोपकन्याश्च तथा गोपालबालका:॥
ममावतारो नित्योऽयमत्र मा संशयं कृथा:॥

पद्मपुराण पातालखण्ड

जब प्राकृतिक प्रलय होता है तब श्रीकृष्ण के धाम गोलोक को छोड़ कर ब्रह्मलोक पर्यन्त यह समस्त ब्रह्माण्ड जल से प्लावित हो जाता है।

मेरी मथुरा, वृन्दावन, यमुना, गोपकन्या और गोप बालक तथा मेरा अवतार नित्य हैं। इस विषय में सन्देह मत करो।

अयोध्या, द्वारका आदि सब धाम भी वृन्दावन की भांति चिन्मय और नित्य हैं। इन सब चिन्मय धामों का विस्तृत विवरण पद्मपुराण के उत्तराखण्ड में तथा वराहपुराण आदि में है।

गर्गसंहिता में लिखा है कि भगवान् ने जब ब्रह्मा से कहा– 'भूभार दूर करने के लिये मैं पृथ्वी पर अवतार लूँगा।'' तब राधारानी ने भगवान् से कहा; - ''मै अकेली नहीं रह सकूँगी।'' राधारानी की बात सुनकर भगवान् बोले कि तुम्हें भी अवतार लेना होगा। तुम्हे छोड़ कर क्या मैं अकेला अवतार ले सकता हूं ? तब राधारानी ने कहा, ''जहां वृन्दावन, यमुना और गोवर्द्धन नहीं ऐसे स्थान में मैं नहीं जाऊँगी। वहाँ जाने से मुझे सुख नहीं मिलेगा।'' राधारानी की यह बात सुनकर भगवान् ने गोवर्द्धन पर्वत, यमुना नदी और वृन्दावन धाम को पृथ्वी पर भेज दिया।

''यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र न यमुना नदी।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम्॥
वेदनाग क्रोश भूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम्।
गोवर्द्धन श्च यमुनां प्रेषायामास भूपरि॥
गर्गसंहिता गोलोकखण्ड

जहाँ वृन्दावन, यमुना, और गोवर्द्धन नहीं ऐसे स्थान में मुझे सुख नहीं होगा। भगवान् ने चौरासी कोस ब्रजधाम, यमुना नदी और गोवर्द्धन पर्वत को अपने धाम से पृथ्वी पर भेज दिया।

विरजा नदी अन्तराल में स्थित होकर, मायामय ब्रह्माण्ड से माया के अधिकार क्षेत्र से गोलोक धाम की पृथक्ता बनाये रखती है। शास्त्र में विरजा को नदी नाम से उल्लिखित किया है अवश्य, परन्तु वह किस प्रकार की है यह देखे बिना अनुभव नहीं किया जा सकता। पृथ्वी की भांति वहाँ स्थूल पदार्थ तो है नहीं; अतः विरजा नदी होकर भी पृथ्वी की जड़ नदी की भाँति नहीं। विरजा का समस्त स्वरूप चिन्मय एवं अतिसूक्ष्म है।

ब्रह्मानन्द

शिष्य - ब्रह्म को पाकर साधक किस प्रकार का आनन्द अनुभव करता है ?

गुरु - साधक ब्रह्म को पाकर ब्रह्मानन्द अनुभव कर कृतार्थ हो जाता है।

शिष्य - ब्रह्मानन्द किस प्रकार का होता है ?

गुरु - ब्रह्मानन्द क्या है? यह किसी को समझाया नहीं जा सकता। जब तक स्वयं उस का अनुभव नहीं हो तब तक वह ज्ञान नहीं हो सकता। तौ भी मैं तुम्हे मोट तौर पर उसकी बात कहता हूं। जीव अपने आँख, कान, जिह्वा, हाथ, पैर आदि सब इन्द्रियों द्वारा जितने प्रकार के सुखों को भोगता है, ब्रह्मानन्द पाकर वह जीव उन सुखों का अनन्त गुणा भोगता है। अनन्त असीम ब्रह्मानन्द की तुलना में पार्थिव सुख बहुत ही क्षुद्र है। जैसे अपार समुद्र की तुलना में एक छोटा सा ओस का कण। और ब्रह्मानंद क्लेश शून्य है उस में दु:ख का लेश नहीं। पार्थिव आनन्द क्लेशयुक्त और दु:ख मिश्रित है।

बृहदारण्यक और तैत्तरीय उपनिषदों में ब्रह्मानन्द का वर्णन मिलता है। दोनों उपनिषदों का वर्णन एक ही प्रकार का है। अत: केवल वृहदारण्यक उपनिषद् का वर्णन तुम्हारे आगे कहता हूं।

''सलिल एको दृष्टाऽद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोक: सम्राडिति हैनमनुशशास याज्ञवल्क्य:। एषास्य परमा गतिरेषास्य परमा संपदेषोऽस्य परमो लोक एषोस्य परम आनन्द: एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।''

''स यो मनुष्यानां राद्ध: समृद्धो भवत्यन्येषामधिपति: सर्वै र्मानुष्यकैर्भोगै: सम्पन्नतम: स मनुष्यानां परम आनन्द:। अथ ये शतं मनुष्यानामानन्दा: स एक: पितृणां जितलोकानामानन्द:, अथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दा: स एक कर्मदेवानामानन्द:, ये कर्मणा देवत्वमभिसपद्यन्ते, अथ ये शतं कर्मदेवानामानन्दा: स एक आजानदेवानामानन्द:, यश्च क्षोत्रियोऽवृजनोऽकामहत:, अथ ये

शतमाजानदेवानामानन्दाः स एक प्रजापतिलोक आन्नदो यश्च श्रोत्रियोऽवृजनोऽकामहतः, अथ ये शतं प्रजापतिलोक आनन्दाः स एको ब्रह्मलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृतजनोऽकामहतः अथैषएव परम आनंन्दः, एष ब्रह्मलोकः सम्राडिति होबाच याज्ञवल्क्यः।''

बृहदारण्यक उपनिषद् 4।3।32-33

सम्प्रसाद के समय (अर्थात् ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होने पर) आत्मा जल की भांति निर्मल, एकदृष्टि और अद्वैत हो जाता है। जीव की यह अवस्था ही आत्मा का ब्रह्मलोक है। यही परम गति है, यही परमोच्च कोटि की सम्पत्ति है। यही आत्मा का परम आनन्द है। इस आनन्द की एक मात्रा को, एक बिन्दु को समस्त प्राणी भोगते हैं। राजर्षि जनक को महर्षि याज्ञवलक्य ने यह उपदेश दिया था।

सब मनुषयों में जो कोई सब की तुलना में समृद्धिशाली और अन्य सब की तुलना में अधिक भोगसम्पन्न होता है वह सबका अधिपति होता है, ऐसे मनुष्य के जो सब आनन्द होते हैं वही मनुष्य जाति का एक आनन्द हुआ। मानुषों के एक सौ आनन्द जितना पितरों का एक आनन्द होता है, पितरों के एक सौ आनन्द के बराबर गंधर्वलोक का एक आनन्द होता है। गंधर्वलोक के एक सौ आनन्द के बराबर कर्मदेवों (जिन्होने शुभ कर्मो से देवलोक पाया है) का एक आनन्द होता है। कर्म देवों के एक सौ आनन्द के बराबर प्रजापति का आनन्द होता है। प्रजापतिलोक के एक सौ आनन्द के बराबर ब्रह्मलोक का एक आनन्द होता है। ब्रह्मानन्द इससे ऊपर है। वह अपार है– सीमा रहित है। गणना द्वारा उसका निश्चय नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में भगवान् शंकराचार्य ने भाष्य में लिखा है-

अतः परं गणितनिवृतिः, एषः परम आनन्द इत्युक्तः, यस्य च परमापन्दस्य ब्रह्मलोकाद्यानन्दाः मात्रारुद्धेरिव विप्रुषःएवं शतगुणोत्तरात्तर वृध्द्युनुपेताः आनन्दाः यत्र एकतां यान्ति, यश्च श्रोत्रियप्रत्यक्षः अथ एष एव संप्रसादलक्षणः परम आनन्दः।

इससे आगे गणित की संख्या नहीं जाती। यही परम आनन्द है। यह जो परम आनन्द की बात कही है, ब्रह्मलोकादि लोकों के आनन्द उस परम आनन्द के कण मात्र हैं जैसे समुद्र की तुलना में एक बिन्दु।

इस प्रकार सौ सौ गुणा करके बढ़ायी हुई ये आनन्द राशियाँ जहां एक हो जाती हैं, जो ब्रह्म को जानने वालों के लिये प्रत्यक्ष सिद्ध होती हैं। वह संप्रसाद नाम का परम आनन्द है। वही ब्रह्मानन्द है।

अवतार तत्व

शिष्य - अवतार तत्व क्या है? भला भगवान् अवतार क्यों लेते हैं? अवतार के सम्बन्ध में जानने योग्य विषय मुझे समझा दीजिये।

गुरु- तुम्हें पहले कहा है कि भगवान् गोलोक आदि विभिन्न धामों में राम कृष्णादि विभिन्न विभिन्न स्वरूपों में स्थित होकर लीला करते हैं। भगवान् की ये सब लीलायें नित्य हैं। अनादि काल से लीलायें चल रही हैं और अनादि काल तक आगे भी चलती रहेंगी। इन सब लीलाओं में कभी विराम नहीं होता। भगवान् के राम, कृष्ण आदि रूप उनके गोलोक, वैकुण्ठ आदि धाम भी नित्य हैं-यह भी तुम्हें कहा है।

भगवान् गोलोकादि चिन्मय नित्यधामों में जो विभिन्न मूर्त्तियों में स्थित होकर नित्य लीला करते हैं, उन लीलाओं को अप्रकट लीला कहते हैं। अप्रकट का अर्थ है जो प्रत्यक्ष नहीं हो रही है। भगवान् की ये अप्रकट नित्य लीलायें जन साधारण के दृष्टिगोचर नहीं, अतएव इन्हें अप्रकट नित्य लीला कहते हैं। भगवान् जब पृथ्वी पर अवतार लेकर भूभार-हरण, धर्म-संस्थापन, भक्तवाञ्छापूरण इत्यादि मानवीय लीलायें करते हैं, तब उन्हें प्रकट अर्थात् व्यक्त लीला कहते हैं। ये सब लीलायें जनसाधारण के समक्ष होती हैं, अत: इन्हे प्रकट लीला कहा जाता है। भगवान् अपने अप्राकृत नित्य धामों में जो सब नित्य लीलायें करते हैं, समय समय पर आवश्यकतानुसार विभिन्न ब्रह्माण्डों में भी वैसी ही लीलायें सम्पन्न करते हैं। राम, नृसिंह, मत्स्य, कूर्म आदि विभिन्न मूत्तियों में भगवान् जो सब अव्यक्त लीलायें करते हैं, समय-समय पर राम, नृसिंह आदि की उन्हीं लीलाओं को पृथ्वी पर प्रकट करते हैं। वे कभी श्रीकृष्ण रूप में, कभी राम के रूप में कभी अन्य किसी मूर्ति में प्रकट होकर पृथ्वी पर लीला करते हैं। अत: भगवान् की लीलायें दो प्रकार की हैं- प्रकट और अप्रकट।

प्रकटाऽप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते।
सदानन्तैः प्रकाशैः स्वैर्लीलाभिश्च स दीव्यति॥
तत्रैकेन प्रकाशेन कदाचित् जगदन्तरे।
सहैव सपरिवारै र्जन्मादि कुरुते हरिः॥

लघुभागवतामृत

प्रकट ओर अप्रकट भेद से भगवान् की लीला दो प्रकार की है। श्रीकृष्ण सदा अनन्तप्रकाश लीला करते रहते हैं। कभी वे उसी अनन्तप्रकाश के मध्य में एक बार अपने परिकार वर्ग के साथ इस जगत में प्रकट होकर लीला करते हैं।

प्रपञ्चगोचरत्वेन सा लीला प्रकटा स्मृता।
अन्यास्त्वप्रकटा भान्ति ता अदृश्याश्चऽगोचराः॥

लघुभागवतामृत

प्रपञ्च के गोचर में होने पर उस लीला को प्रकट लीला कहते हैं। इसके अलावा और सब लीलायें अप्रकट लीला कहलाती है। अप्रकट लीला प्रपञ्च के गोचर नहीं होती।

जिस समय मनुष्य समाज में धर्म निर्बल-निस्तेज होता है, अधर्म प्रबल होता है, असुर और दस्यु जैसे नृपति पृथ्वी पर प्रकट होकर अनेक प्रकार से उपद्रव करने लगते हैं, उस समय धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश के लिये अथवा अन्य प्रयोजन सिद्ध करने के लिये भगवान् पशु, पक्षी अथवा मनुष्य देह धारण कर के अवतार लेते हैं।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभावाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

गीता 4 । 6-8

मैं अज, अव्ययात्मा और समस्त भूतों का ईश्वर होकर भी अपनी प्रकृति पर आरूढ़ होकर अपनी माया द्वारा जन्मग्रहण करता हूँ। जिस समय धर्म का ह्रास और अधर्म की वृद्धि होने लगती है उसी समय मैं अपने को सृजन कर लेता हूं। पुण्यात्माओं की रक्षा और पापियों के विनाश और धर्म को पुनः संस्थापित करने के हेतु मैं युग-युग में अवतार लेता हूं।

गोविप्रसुरसाधुनां छन्दसामपि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनुर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि॥

भागवत 8।24।5

यदा यदा हि धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः॥

वही 9।24।56

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषदेहमाश्रितः।
भजते तादृशीः क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

वही 10। 33 । 37

गौ, ब्रह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म तथा अर्थ की रक्षा करने के लिये भगवान् देह धारण करते हैं। जिस समय धर्म का क्षय और पाप की वृद्धि होती है, उसी समय भगवान् अपने को प्रकट करते हैं। भक्तों पर अनुग्रह करने के निमित्त भगवान् मनुष्य देह धारण कर लीलायें करते हैं जिन्हें श्रवणकर के भक्त उनमें अनुरक्त होता है।

उपासकानां कार्यार्थ श्रेयसे जगतामपि।
दानवानां विनाशाय धत्से नानाविधास्तनुः॥
साकाराऽपि निराकारा मायया बहुरूपिणी।

महानिर्वाणतंत्र 4। 16, 34

उपासकों की कार्य सिद्धि, जगत् के मंगल और दानवों के विनाश के लिये हे देवी ! आप नाना प्रकार की मूर्त्तियाँ धारण करती हैं। अपनी योगमाया के द्वारा आप साकार और निराकार रूप धारण करती हैं।

एक अखण्ड तेज पदार्थ वा अग्नि सब स्थानों में, समस्त पदार्थों के अन्तर में विद्यमान है। उस अग्नि को कोई देख नहीं पाता। वही अग्नि जब किसी स्थान में प्रकाशित होती है, प्रज्वलित होती है तब सब लोग देख पाते हैं। भगवान् के अवातार भी वैसे ही हैं। सर्वव्यापी भगवान् अवतार लेकर जनसाधारण की दृष्टि में प्रत्यक्ष होते हैं।

नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रुयतां मम॥
देवानां कार्यसिद्धियर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदालोके सा नित्याऽप्यभिधीयते॥

दुर्गासप्तशती 1। 64-65

वह जगत्स्वरूपा देवी नित्य है और समस्त चराचर विश्व में व्याप्त हो रही है। तथापि उसकी उत्पत्ति अनेक प्रकार से होती है वह मेरे से सुनो। देवों के कार्य साधने के लिये वह नित्य रहने वाली जब प्रकट होती है तब 'वह प्रकट हो गयी' ऐसा कहा जाता है।

शास्त्रों में कहा है भगवान् की लीलायें सदा चलती रहती हैं। तैलधारा की भांति अटूट प्रवाह से भगवान् की लीलायें नियत समय पर होती रहती हैं। अव्यक्त नित्य लीलाओं और अनन्त ब्रह्माण्डों में चल रही व्यक्त लीलाओं को लक्ष्य करके यह बात कही गयी है। ब्रह्माण्डों की अनन्त संख्या है। उन अनन्त ब्रह्माण्डों में से हजारों ब्रह्माण्डों में अनेक सत्य, द्वापर, त्रेता, कलि आदि युग प्रवर्तमान होते रहते हैं। मन्वन्तरों के विषय में भी वैसा ही है। पृथ्वी पर इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। हजारों ब्रह्माण्डों में इस समय भिन्न-भिन्न मन्वन्तर प्रवर्त्तमान हैं! इसलिये हजारों ब्रह्माण्डों में पृथक् पृथक् मन्वन्तरों के अवतार हो रहे हैं। ये सब प्रकट और अप्रकट लीलायें अबाध गति से चल रही हैं, इसी कारण ऋषिगण ने यह कहा है कि भगवान् की लीला नित्य और निरन्तर है।

गौड़ देश के गोस्वामी गुरुजनों ने अवतार तत्व की बहुत विचारणा की है। उनके कुछ विचार कहता हूं, सुनो।

लघुभागवतामृत ग्रन्थ में श्रीमद् सनातनगोस्वामी ने भगवान् के अवतार छः प्रकार के कहे हैं, पुरुषावतार, लीलावतार, गुणावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार और आवेशावतार।

प्रथम-पुरुषावतार तीन प्रकार के होते हैं, प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष और तृतीय पुरुष के अवतार।

प्रथम पुरुषावतार हैं संकर्षण, ये श्रीकृष्ण के अंश हैं। ये कारण समुद्र में शयन करते हैं, इनके नाभिपद्म से प्रजापति सृष्टि के कर्ता ब्रह्मा की उत्पति होती है। ये प्रकृति में अन्तर्यामी रूप में विद्यमान हैं। ये प्रकृति में अधिष्ठित होकर महतत्त्व का सृजन करते हैं। राम अवतार में ये लक्ष्मण होते हैं। द्वितीयपुरुषावतार है प्रद्युम्न। राम अवतार में ये ही शत्रुघ्न हैं। ये व्यष्टिब्रह्माण्ड के अन्तर्यामीरूप में वर्त्तमान हैं। तीसरे पुरुषावतार का नाम है अनिरुद्ध। ये भरत हैं। प्रत्येक जीव के हृदय में एक बालिश्त के परिमाण में पुरुष रूप से रहते हैं।

''विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः।
एकं तु महतः स्त्रष्टु द्वितीयं तत्त्वसंस्थितम्॥
तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते।

सात्त्वततंत्र (लघुभागवत)

विष्णु के तीन प्रकार के रूप शास्त्र में कहे हैं। उनमें जो प्रकृति के अन्तर में निविष्ट हैं, महत्तत्त्व के सृजन करने वाले हैं वे प्रथम पुरुष संकर्षण हैं। जो समष्टि ब्रह्माण्ड के अन्तर में वर्तमान हैं, वे दूसरे पुरुष प्रधुम्न है। जो सब भूतों के भीतर विद्यमान हैं अर्थात् व्यष्टि जीवों में निविष्ट हैं, वे हैं तीसरे पुरुष जिन्हें अनिरूद्ध कहा जाता है।

दूसरे हैं लीलावतार। भगवान् केवल लीला करने के लिये समय समय में मत्स्य, कूर्म, राम, नृसिंह आदि नाना प्रकार के देह धारण कर पृथ्वी पर अवतार लेकर अनेक प्रकार की लीलायें करते हैं।

जिस चेष्टा द्वारा क्रियमाण कार्य का आयास से कोई सम्बन्ध भी नहीं होता, जो चेष्टा सब प्रकार से अपनी इच्छा के अधीन होती है, जो विचित्रतायुक्त होती है, जो नित्य नयी-नयी उल्लास की तरंगों से

तरंगित होती है उस प्रकार की चेष्टा को कहते हैं-लीला। भगवान के जिन अवतारों में ऐसी चेष्टाओं वा कार्यों की प्रधानता वा अधिकता दीखती है उन्हें लीलावतार कहते हैं।

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम आदि लीलावतार हैं। तीसरे हैं गुणावतार। भगवान् सत्व, रज और तमः इन तीनों गुणों के अधिष्ठाता देवता होकर सृष्टि, पालन और प्रलय करते हैं। सत्व गुण के देवता हैं विष्णु, रजः के ब्रह्मा और तमोगुण के शिव। इस प्रकार विष्णु, ब्रह्मा और शिव गुणावतार हैं। चौथे हैं मन्वन्तरावतार। मनु चौदह हैं। इन चौदह मन्वन्तरों में भगवान् के चौदह अवतार होते हैं। इन्हें मन्वन्तरावतार कहते हैं। मन्वन्तरावतारों के नाम-स्वायंभुव मन्वन्तर में यज्ञ, स्वारोचिष में विभु, उत्तम में सत्यासन, तामस में हरि, रैवत में वैकुण्ठ, चाक्षुष में अजित, वैवस्वत में वामन, (वामन देव की गणना लीलावतारों में भी की जाती है) सवर्ण में सार्वभौम, दक्षसावर्ण में, ऋषभ, ब्रह्मसावर्ण में विष्वक्सेन, धर्मसावर्ण में धर्मसेतु, रुद्रसावर्ण में सुदामा, देवसावर्ण में योगेश्वर और इन्द्रसावर्ण में वृहद्भानु हैं।

पाँचवा युगावतार। युग चार हैं, भगवान् के अवतार भी चार हैं। छठा आवेश अवतार। भगवान् समय समय पर विशेष कार्य सम्पन्न करने के लिये किसी योग्य जीव में अपनी शक्ति को आविष्ट करके कार्य साधते हैं। कार्य समाप्त होने पर अपनी शक्ति को वापस ले लेते हैं। इस प्रकार के अवतार को आवेश अवतार कहा जाता है। परशुराम आदि आवेश अवतार हैं। लुटेरों जैसे क्षत्रियों का संहार करने के लिये भगवान् विष्णु ने परशुराम में अपनी शक्ति का आवेश किया था। जब वह कार्य समाप्त हो गया तब अपनी शक्ति को वापस ले लिया था।

'येषामन्तर्गतो विष्णुः कृत्वा विनिर्गतः।
नानावेशावतारांश्च विद्धि राजन् महामते॥

गर्गसंहिता गोलोक 2। 21

भगवान् जिनमें प्रवेश कर कार्य की समाप्ति पर पुनः बाहर आ जाते हैं उन अवतारों को आवेशावतार कहते है।

''ज्ञानशक्त्यादि कलया यत्राविष्टो जनार्दन:।
त आवेश निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमा:॥''

लघुभागवतामृत

ज्ञान शक्ति आदि अपनी कलाओं के द्वारा भगवान् जब उच्च कोटि के जीवों में आविष्ट होकर स्थित होते हैं तब उन्हें आवेश अवतार कहते हैं।

इन ऊपर कहे अवतारों के अलावा भगवान् के असंख्य अवतार हैं।

''अवतारा ह्यसंख्येया हरे: सत्वनिधेर्द्विजा:।
यथाऽविदासिन: कुल्या: सरस: स्यु: सहस्त्रश:॥

भागवत् 1। 3 । 26

अक्षय जलनिधि वाले जलाशय से जैसे सहस्त्र सहस्त्र जल प्रवाह निकलते रहते हैं वैसे ही सत्वनिधि भगवान् विष्णु के असंख्य अवतार हो सकते हैं।

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, राम, प्रभृति अवतारों की अपेक्षा श्रीकृष्ण अवतार को श्रेष्ठ कहा गया है। इस सम्बन्ध में भागवत् में कहा है-

''एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥''

श्रीमद्भागवत 1। 3 । 28

ये सब अवतार पुरुषोत्तम भगवान् के कलावतार हैं, श्रीकृष्णावतार में भगवान् स्वयं अवतीर्ण हुए हैं।

कृष्णस्तु भगवान् साक्षान्नारायण एप आविष्कृतसर्वशक्तिमत्वात्।

(श्रीधर स्वामी टीका)

श्रीकृष्ण भगवान् साक्षात् नारायण हैं कारण उनमें नारायण भगवान् की समस्तशक्ति प्रकट हुई है। सर्वोत्तम श्रीकृष्ण अवतार को भी गोस्वामी शास्त्र में तीन प्रकार का कहा है, पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतम।

''हरि: पूर्णतम: पूर्णतर: पूर्ण इति त्रिधा।
श्रेष्ठमध्यादिभि: शब्दै र्नाटये य: परिकीर्त्तित:॥

प्रकाशिताखिलगुण: स्मृत: पूर्णतमो बुधै:।
असर्वव्यञ्जक: पूर्णतर: पूर्णोऽल्पदर्शक:॥
कृष्णस्य पूर्णतमता व्यक्ताऽभूद् गोकुलान्तरे।
पूर्णता पूर्णतरता द्वारका मथुरादिषु॥

लघुभागवतामृत।

जिन्होंने ब्रजभूमि में गोप बालकों के साथ सख्यभाव से, नन्द यशोदा के साथ वात्सल्य भाव से और गोपिकाओं के साथ मधुर भाव से लीला की थी वे श्रीकृष्ण भगवान् पूर्णतम अवतार थे, जिन्होंने मथुरा में जाकर कंस आदि असुरों का वध किया था, कुब्जा और माली आदि अन्य भक्तों पर दया कर उनके मनोरथ पूर्ण किये थे वे पूर्णतर थे, जिन्होंने द्वारका में जाकर विविध प्रकार की लीलायें की थीं वे पूर्ण कहे जाते हैं। जिन्होंने वृन्दावन में लीला की थी वे नन्दसुत ब्रजेन्द्रनन्दन कहे जाते हैं। वे वृन्दावन को छोड़ कर कभी कहीं भी जाते नहीं। उन्होंने ही कहा है-

''वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छामि।''

वृन्दावन छोड़कर मैं एक कदम भी कहीं नहीं जाता। जिन्होंने द्वारका और मथुरा में लीला की है वे वसुदेव सुत वासुदेव हैं :

इन सब के स्वरूप भिन्न हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन दो भुजाओं वाले हैं; मथुरानाथ और द्वारकानाथ चतुर्भुज। पूर्णतम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने जब अवतार लिया था तब पूर्णतर, पूर्ण अंश कला आदि अवतार इन्हीं में प्रविष्ट होकर अवतीर्ण हुए थे। पूर्णतम नन्दसुत में वासुदेव आदि पूर्णतर, पूर्ण तथा अंश इत्यादि प्रविष्ट होकर अवतीर्ण हुए थे। पूर्णतम नन्दसुत ब्रजलीला को समाप्त कर अव्यक्तरूप से वृन्दावन में रह गये थे और उनमें स्थित पूर्णतर और पूर्ण अंश मथुरा और द्वारका लीला करने चले गये थे।

यशोदायां नन्दपत्न्यां मिथुनं समजायत।
गोविन्दाख्य: पुनाम् कन्या साम्बिका मथुरां गता॥

वसुदेवसुतः श्रीमान् वासुदेवोऽखिलात्मना।
लीनो नन्दसुते राजन् घने सौदामिनी यथा।
कृष्णोऽन्यो यदुसंभूतो यस्तु गोपेन्द्रनन्दनः।
वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति।।

यामल

नन्द की पत्नी यशोदा ने यमल संतान उत्पन्न की थी, गोविन्द नामक पुत्र और अम्बिका नाम की कन्या। योगमाया अम्बिका नाम की कन्या मथुरा ले जायी गयी थी। वसुदेव के पुत्र वासुदेव वृन्दावन में आकर यशोदा पुत्र गोविन्द में लीन हो गये थे जैसे विद्युत मेघों में लीन हो जाती है। जिस समय यशोदा ने यमल सन्तान प्रसव की थी उसी समय मथुरा में वासुदेव देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। पश्चात् यशोदासुत और देवकी सुत एक होकर वासुदेव नन्दनन्दन के मध्य में लीन हो गये थे। यदु से उत्पन्न कृष्ण एक हैं और नन्द के सुत कृष्ण दूसरे। वे वृन्दावन को त्याग कर कहीं भी जाते नहीं।'' यह विवरण गोस्वामी श्रीजीवके गोपालचम्पू नामक ग्रन्थ में विस्तार से दिया है।

ब्रजलीला समाप्त कर श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ जब मथुरा को चले, तब मार्ग में अक्रूर यमुना में स्नान के लिये गये थे। उसी समय यशोदा के पुत्र पूर्णतम श्रीकृष्ण यमुना के जल में तिरोहित होकर वृन्दावन में रह गये थे, उनकी देह से वासुदेव बाहर निकलकर मथुरा गये और फिर मथुरा की लीला पूर्ण करके पूर्णतर मथुरानाथ द्वारका जाते समय प्रवर्षण पर्वत पर चढ़कर वहां तिरोहित हो गये थे। पूर्ण द्वारकानाथ उनके शरीर से निकलकर द्वारका को गये।

गौड़ देश के गोस्वामी संप्रदाय ग्रंथों में श्रीकृष्णावतार की व्याख्या इस प्रकार से की हुई है। यह विवरण यामल नामक ग्रन्थ से लिया गया है। भागवत, विष्णुपुराण, हरिवंश आदि ग्रंथों में इस विषय का उल्लेख नहीं पाया जाता।

दुर्गासप्तशती के अन्तिम भाग में भगवती के अवतार लेने की कथा है वह भी तुम्हें सुनाता हूं। जब शुम्भ निशुम्भ दैत्य समस्त सेना तथा बांधवों सहित मारे गये थे तब देवताओं ने देवी की स्तुति की।

देवताओं के स्तवन से संतुष्ट होकर देवी ने भविष्यत् में अपने अवतारों का वृत्तान्त देवताओं के आगे कहा था-

''वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्तेऽष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथ्वीतले।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान्॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान् महासुरान्।
रक्तादन्ता भविष्यन्ति दडिमीकुसुमोपमा ॥
ततो मां देवता: स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवा:।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम्॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्टयामनम्भसि।
मुनिभि: संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा॥
तत: शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजा: शताक्षीमिति मां तत:॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवै:।
भरिष्यामी सुरा: शाकैरावृष्टि प्राणधारकै॥
शाकम्भरिति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।
तत्रैव च वधयिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्॥
दुर्गा देवीसि विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
पुनश्चाहं यदा भीम रूपं कृत्वा हिमाचले॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनय: सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तय:॥

भीमादेवीति विख्याते तन्मे नाम भविष्यति।
यदाऽरुणाख्य स्त्रैलोक्ये महाबाधां करष्यिति।।
तदाऽहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम्।
त्रैलोकस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम्।।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वत।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।।
तदा तदाऽवतीर्याहं करष्यिाम्यरिसंक्षयम्।

दुर्गासप्तशती 11।41।55

देवी ने कहा-

वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें युग में फिर शुम्भ निशुम्भ नामक अन्य दो असुर उत्पन्न होंगे। तब मैं नन्दगोप के घर में यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होकर विंध्यपर्वत पर निवास करके उनका वध करूंगी। दूसरी बार फिर मैं भयंकर रूप में अवतार लेकर वैप्रचित्त नामक असुरों का संहार करूंगी। उन सब असुरों के रक्तपीने के कारण मेरे सब दाँत अनार के फूल के समान लाल रंग के हो जायेंगे। इससे देवता और मनुष्य मुझे ''रक्तदन्तिका'' कह कर स्तुति करेंगे। फिर सौ वर्ष तक अनावृष्टि होने से जब पृथ्वी जलशून्य हो जायेगी तब मुनियों द्वारा मेरी स्तुति किये जाने पर मैं अयोनिजा होकर अवतार लूंगी और अपने एक सौ नेत्रों द्वारा मुनियों को प्रसाद पूर्वक देखूँगी। अत: मनुष्य मुझे ''शताक्षी'' कह कर मेरा स्तवन करेंगे। उस समय वृष्टि न होने तक मैं अपने देह से उत्पादित शाकादि से प्राणियों का भरण पोषण करूंगी। इसलिये मैं ''शाकंभरी'' इस नाम से प्रसिद्ध हो जाऊँगी। उसके बाद मैं दुर्ग नामक असुर का वध करूंगी। इस कारण मैं दुर्गादेवी कहलाऊँगी। अनन्तर मैं हिमालय में भयानक रूप धारण करूँगी, मुनियों की रक्षा के निमित्त राक्षसों का नाश करूँगी। इसलिये मुनिजन भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेंगे। तब मैं ''भीमादेवी'' इस नाम से विख्यात होऊँगी। इसके बाद अरूण नामक असुर जब त्रिलोकी के कार्य में बाधायें उत्पन्न करेगा तब मैं असंख्य भ्रमरों से परिवृत होकर भ्रामरीरूप

धारण कर उसका संहार करूंगी। तब समस्त लोक ''भ्रामरी'' कहकर मेरी स्तुति करेंगे। इस भांति जब जब असुरों द्वारा उत्पीड़न होंगे तब तब मैं आविर्भूत होकर शत्रुओं का संहार करूंगी।

गोपी यूथ

शिष्य - गोपीयूथ किसे कहते हैं ?

गुरु - भगवान् श्रीकृष्ण ने सौ गोपीयूथों के साथ रासलीला की थी। श्रीमद्भागवत में लिखा है-

''उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः।
मालां विभ्रद् वैजयन्तीं व्यचरन् मण्डयन् वनम्॥

भागवत् 10।29।44

एक सौ गोपीयूथों के अधिपति श्रीकृष्ण कण्ठ में वैजयन्ती माला धारण कर गोपियों के गान को सुनते सुनते स्वयं गान करते हुए वनभूमि को शोभायान करके विचरण करने लगे।

एक सौ कोटी गोपियों को लेकर एक गोपीयूथ होता है।

''अर्बुदं दश कोटीनां मुनिभिः कथितं विधे।
दशार्बुदं यत्र भवेत् सोऽपि यूथं प्रकथ्यते॥

गर्गसंहिता गोलोक खण्ड 4।10

भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को कहा, हे ब्रह्मन्! मुनियों ने कहा है दश कोटी से एक अर्बुद होता है, दश अर्बुद होने पर एक यूथ होता है।

इन सब असंख्य गोपीगणों में कितनी ही गोपियां भगवान् की परिजन हैं, जो भगवान् की नित्य लीलाओं की एक प्रकार से अंग हैं। जैसे भगवान् नित्य हैं वैसे वे भी नित्य हैं। ये नित्य देह में नित्य गोलोक धाम में भगवान् की अप्रकट नित्य लीलाओं में सहायक होकर भगवान् के साथ लीला रस का आस्वादन लाभ करती हैं। जब भगवान् मनुष्य शरीर धारण कर पृथ्वी पर अवतार लेते हैं, तब ये भी मानुष देह में पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर भगवान् के साथ लीला करती हैं। ये

गोपियाँ नित्य मुक्त स्वरूप हैं, भगवान् का ही अंश है। और कुछ गोपियाँ हैं जो साधारण जीव कोटि की हैं, परन्तु अपनी मधुर भाव की साधना के द्वारा भगवान् को कान्त रूप में प्राप्त कर गोपी देह में रास लीला के रस का आस्वादन कर पायी थीं। अन्य जो श्रुतिरूपा और यज्ञसीतारूपा गोपियाँ हैं वे देवता कोटि की हैं।

भगवान् के भक्त दो प्रकार के हैं पार्षदगण और साधकगण। पार्षदगण नित्य मुक्तस्वरूप वाले और भगवान् के अंश हैं। ये ब्रह्म कोटि के हैं। यह जो नित्य गोपियों की बात कही है, वे सब ब्रह्मकोटि की हैं। ब्रज के श्रीदाम, सुदामा, वसुदाम आदि गोपाल, नन्द, यशोदा, बृषभानु, उपनन्द आदि गोपगण ये भी ब्रह्मकोटि के हैं। और भी अनेक हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण के साथ अवतार लिया था, वे नित्य मुक्त भगवान् के नित्य पार्षद् और अंश रूप हैं। ये सब सर्वकाल में भगवान् के साथ वर्तमान रहते हैं। साधकजन माया से बंधे हुए जीव हैं। अपने साधन के द्वारा जिन साधकों ने गोपी देह पाकर प्रकट लीला में भगवान् के साथ लीला रस का संभोग किया था, वे सब साधक श्रेणी के भक्त थे।

यह जो गोपी यूथों की बात तुम्हें कही है, इनमें जो श्रुतिरूपा और यज्ञसीतारूप गोपियाँ हैं वे देवता कोटि की हैं। इनके अलावा अयोध्यावासिनी, कौशलदेसवासिनी, मिथिलावासिनी तथा पुलिन्द नारियाँ और ऋषिरूपा गोपियाँ जीव कोटि की हैं।

इन्हें छोड़कर अन्य सब गोपियाँ गोलोकवासिनी और भगवान् की नित्य साथ में रहने वाली परिकर कोटि में हैं।

भगवान् ने जब रामावतार लिया था, उस समय अयोध्या, कौशल और मिथिला में बसने वाली महिलाओं ने असभ्य, वनवासी पुलिन्दों क़ी स्त्रियों ने, दण्डकारण्य निवासी ऋषिगणों ने भगवान के सौन्दर्य से मुग्ध होकर श्रीरामचन्द्र को पतिरूप से पाने के लिये मन ही मन इच्छायें की थी। दूसरे, श्रीरामचन्द्र ने एक सहस्र अश्वमेघ यज्ञ किये थे। उन समस्त यज्ञों में, वे एक हजार सीताजी की मूर्त्तियाँ निर्माण कर उनके साथ यज्ञ में दीक्षित हुए थे। उन सहस्र सुवर्ण निर्मित सीता

प्रकृतियों की अधिष्ठात्री दवियों ने श्रीरामचन्द्र को पतिरूप में भजने की कामना की थी। किसी समय में श्वेतद्वीप के अधिपति हरि भगवान् के रूप माधुर्य को देख कर श्रुति की अधिष्ठात्री देवियों ने उन्हें कान्त भाव से प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की थी। उस समय उनमें से किसी की भी इच्छा पूर्ण नहीं हुई थी। कृष्ण अवतार में वे सभी गोपी देह धारण कर ब्रज में अवतीर्ण हुई और भगवान् के साथ रास लीला का रसास्वादन कर उन्होंने अपने मनोरथ पूर्ण किये। इस सम्बन्ध में शास्त्र में जो लिखा है उसे सुनो-

''गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यका:।

देवकन्याश्च राजेन्द्र ! न मानुष्या: कथंचन॥''

गोपियाँ चार प्रकार की हैं, श्रुतिचरी, ऋषिचरी, गोपकन्या और देवकन्या। इनमें कोई भी मनुष्य नहीं।

श्रुतिचरी गोपियों की कथा बृहद्वामनपुराण में इस प्रकार से है-

''कन्दर्पकोटीलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि न:।

कामिनीभावमासाद्य स्मन्क्षुब्धा न संशय:॥

यथा त्वल्लोकवासिन्य: काम्यत्वेन गोपिका:।

भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाऽजनि नस्तथा॥

श्रुति अधिष्ठात्री देवियों ने भगवान् को कहा- कोटि कामदेवों के लावण्यधारी आप को देखकर हमारा मन काम से क्षुब्ध हो उठा है। आपके लोक में निवास करती गोपीयां जैसे आपको पति मानकर कामभाव से भजती हैं, हमें भी वैसा ही करने की इच्छा हो रही है।

ऋषिचरी गोपियों की कथा पद्मपुराण में है-

''पुरा महर्षय सर्वे दण्डकारण्यवासिन:।

दृष्ट्वा रामं हरि तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्॥

ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्ना: समुद्भूताश्च गोकुले।

हरिं संप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्॥''

पूर्व काल में दण्डकारण्य में रहने वाले ऋषियों ने श्रीरामचन्द्र के दर्शन करके उनके साथ संभोग करने की इच्छा की थी। उन्होंने गोकुल में नारीरूप सें जन्मग्रहण किया था और कामभाव से हरि को पाकर संसार सागर से मुक्ति प्राप्त की थी।

स्वर्णसीता, मिथिलावासिनी, अयोध्यावासिनी और पुलिन्द स्त्रियों की कथायें गर्गसंहिता में हैं-

''श्रुतिरूपा ऋषिरूपा मैथिला: कौशलास्तथा।
अयोध्यापुरवासिन्य: यज्ञसीता: पुलिन्दका: ॥

श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, मिथिलावासिनी, अयोध्यावासिनी और पुलिन्द नारियां गोपीगण थीं।

इसके अलावा पाताल में बसने वाली नागकन्यायें भगवान् अनंतदेव के सौन्दर्य को देखकर नितान्त मोहित हो गयी थीं। भगवान् अनन्तदेव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये उन्हें तीव्र वासना हुई। उन्होंने भी ब्रज में गोपी होकर जन्म लिया और भगवान् बलदेव को पतिरूप में प्राप्त कर उनके साथ लीलारस संभोग कर वे कृतकृत्य हुई थीं।

मैंने तुम्हारे आगे भगवान् के अवतार के विषय में और विशेष कर श्रीकृष्ण अवतार के सम्बन्ध में जो कुछ भी ज्ञातव्य है वह सब वर्णन कर दिया है। अब इसके आगे तुम कुछ जानना चाहते हो ?

शिष्य - वेदों में अवतार का वर्णन है क्या?

गुरु - है। वेद कहते हैं।

''अजायमान: बहुधा विजायते।''

जन्म रहित। भगवान् भी अनेक रूपों में जन्मग्रहण किया करते हैं।

शिष्य - आपने अवतार के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह सब शास्त्रों की बातें कही हैं। क्या युक्ति और तर्क से अवतार तत्व नहीं जाना जा सकता।

गुरु - युक्ति वा तर्क की सहायता से निश्चित रूप से भगवतत्त्व और विशेषकर अवतारतत्त्व नहीं जाना जा सकता। युक्ति और तर्क की सहायता से जो भगवतत्त्व को अवधारण करने गये थे, उनमें से कोई

भी सफल मनोरथ नहीं हो पाये, कोई भी निश्चित सिद्धांत तक पहुँच नहीं पाये। युक्तियों से अथवा तर्क की सहायता से भगवत्तत्व नहीं जाना जा सकता। यह देखकर ऋषियों ने आप्तवाक्य की सहायता ली। सांख्य दर्शन के रचने वाले कपिल, योगदर्शनकार पातञ्जलि आदि दार्शनिक ऋषियों ने अपने दर्शन-शास्त्रों में प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों की अपेक्षा शब्द प्रमाण को श्रेष्ठ प्रमाण कहकर निर्णय किया है। भगवान् वेदव्यास ने अपने ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ में एक शब्द प्रमाण को ही स्वीकार किया है और अनुमान प्रमाणों द्वारा भगवत्तत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस की विवेचना ''शास्त्रयोनित्वात्'' इस सूत्र में की है :

परमेश्वर इन्द्रियों के गोचर में नहीं, वाणी और मन की भी वहां पहुंच नहीं, मनुष्य की युक्तियों और प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणों का प्रयोग भी उनके विषय में असम्भव है। मनुष्य की युक्तियां, मनुष्य के प्रमाण कुछ भी भगवान् के चरण पीठों के निकट भी पहुंच नहीं पाते। अत: शब्द प्रमाण में, आप्तवाक्य अथवा शास्त्र वचनों में विश्वास नहीं करने पर किसी तरह भी भगवत्तत्व का परिज्ञान असंभव है। पृथ्वी के समस्त धर्मों ने शब्द प्रमाण को प्रधानता दी है। यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, मुसलमान धर्म, हिन्दू धर्म, यहां तक कि तर्क प्रधान बौद्ध धर्म आदि सभी धर्म आप्त वाक्यों के आधार पर स्थित हैं। आप्त वाक्यों के अतिरिक्त अन्य किसी आधार पर धर्म स्थिर नहीं हो सकता। आज कल बहुत लोग कहते हैं कि धर्म का आधार मनुष्य की विवेक शक्ति और सहज ज्ञान है। मानव का विवेक और सहज ज्ञान धर्म का आधार हो नहीं सकता क्योंकि मानव की विवेक शक्ति और उसका सहज ज्ञान उसके अपने संस्कारों के आधार पर होता है। मनुष्य के संस्कार जिस प्रकार के होते हैं, उसका विवेक तथा सहज ज्ञान भी उसी प्रकार के होते हैं। एक वैष्णव के संस्कार जिस प्रकार के होते हैं, शाक्त के संस्कार उस से विपरीत होते हैं। शाक्त की धर्म साधना में मद्य, मांसादि पंचमकार प्रधान अंग हैं, परन्तु वैष्णव के लिये उनका स्पर्श भी महापाप है। यहूदी और मुसलमान गोहत्या को धर्म मानते हैं, परन्तु हिन्दुओं के लिये गोहत्या महापाप है। अब विचार कर देखो, शाक्त का विवेक और सहज ज्ञान वैष्णव के विवेक और ज्ञान से भिन्न

है कि नहीं ? यहूदी और मुसलमानों के विवेक और सहज ज्ञान हिन्दुओं के विवेक और सहज ज्ञान तुलना में विपरीत हैं कि नहीं ? हिन्दू विधवा दूसरा पति करने को महापाप मानती है, परन्तु हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य जातियों की स्त्रियाँ दूसरे पतिग्रहण को निन्दनीय नहीं मानतीं। हिन्दू रमणी का विवेक और सहज ज्ञान अहिन्दू नारियों के विवेक ज्ञान से पूर्णतया विपरीत होता है। इस से यह ज्ञात होता है कि मानवों के विवेक और सहज ज्ञान जो उनके संस्कारों के अधीन होते हैं, वे परिवर्तनशील हैं। अत: वे किसी प्रकार भी धर्म की आधारशिला नहीं हो सकते। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि धर्म आप्तवाक्यों पर प्रतिष्ठित हैं। विवेक अथवा स्वभाविक ज्ञान को किसी धर्म का आधार नहीं कहा जा सकता।

तुम्हें पहले कहा है कि ऋषियों के वचनों, भगवद् वाक्यों और सिद्ध महापुरुषों के वचनों में किसी प्रकार के भ्रम वा प्रमाद नहीं होते। उन लोगों के सभी कथन सत्य होते हैं। वे धर्म के समस्त तत्त्वों को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव कर शास्त्र में लिपिबद्ध कर गये हैं। उनके वे लेख ही धर्म की आधार भित्ति हैं। उन महानुभावों के उन भ्रम-प्रमाद रहित वाक्यों को ही आप्तवचन अथवा विश्वस्त वाक्य कहते हैं। शब्द प्रमाण जिसे पहले कहा है, ये आप्तवचन ही शब्द प्रमाण कहलाते हैं। ये आप्तवाक्य, विश्वस्त वाक्य ही धर्म की आधार शिला हैं। भगवतत्त्व को दर्शाने के लिये अन्य उत्तम उपाय नहीं। भगवान् जीव पर कृपा कर अपने तत्त्व को, उनको प्राप्त करने के उपायभूत साधन-तत्व और धर्म-तत्त्व को जो कुछ जीवों के आगे प्रकाश कर गये हैं, और ऋषिजन तथा सिद्ध महापुरूष साधना के बल से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके, उसी ज्ञान के द्वारा प्रत्यक्ष हुए तत्वों को जो शास्त्र में लिख कर रख गये हैं, उन सब का आश्रय लेकर चलने से मनुष्य निश्चय ही भगवत्तत्व को पाने का अधिकारी हो सकता है। भगवत्तत्व से अवगत होने के लिये, भगवान् को पाने के लिये इस उपाय को छोड़ दूसरा उपाय नहीं।

''य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारत:।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

गीता 16।23।

जो शास्त्रविधि को छोड़ कर स्वेच्छाचारी हो काम करता है वह सिद्धि नहीं पाता, सुख और परम गति को भी नहीं पाता।

भगवत्तत्त्व, अवतारतत्व, परलोकतत्व, आदि इन्द्रियों के ज्ञान से अतीत विषयों के निर्णय करने में शास्त्र ही हम लोगों का एक मात्र अवलम्बन है। इस विषय में और कुछ भी संदेह नहीं। भगवान् के अवतारत्तत्व का दार्शनिक रीति से निर्णय करना असम्भव है। अत: शास्त्र की सहायता बिना अवतारतत्त्व की विवेचना करने का कोई उपाय नहीं।

भक्ति

शिष्य - भक्ति किसे कहते हैं? भक्ति कितने प्रकार की होती है?

गुरु - भज् धातु से भक्ति शब्द बना है। 'भज् सेवायाम्'- भज् धातु का प्रयोग सेवा करने के अर्थ में किया जाता है, सो समस्त इन्द्रियों द्वारा भगवान् की सेवा करना ही भक्ति है।

''सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेन हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते॥''

सकल प्रकार से फल कामना से रहित होकर, निष्काम भाव से ज्ञान और कर्म की उपेक्षा करके सब इन्द्रियों से पूर्ण तत्परता के साथ भगवान् की सेवा करने का नाम भक्ति है।

भगवान् वेदव्यास ने भगवत् पूजा आदि में अनुराग को भक्ति कहा है।

''ईश्वरपूजादिष्वनुराग इति पाराशर्या:।''

नारदभक्ति सूत्र 16

भगवान् गर्ग ने भगवत्कथादि में अनुराग होने को भक्ति कहा है।

''ईश्वरकथादिष्विति गर्ग:।''

नारदभक्तिसूत्र 17

भगवान् शाण्डिल्य ने आत्मरति के अनुकूल विषयों से प्रीति को भक्ति कहा है। आत्मरति कहने से भगवान् के प्रति अनुराग समझा जाता है। भगवान् के प्रति प्रीति से जिन सब विषयों में विरोध नहीं, जो कार्य और अनुष्ठान भगवान् की भक्ति के अनुकूल हैं, जिन कर्मों से वा अनुष्ठान से भगवान् के प्रति अनुराग बढ़ता है, उन्हीं सब कर्मों और अनुष्ठानों के प्रति अनुराग को भक्ति कहते हैं।

''आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः।''

नारदभक्तिसूत्र 18

भगवान् को समस्त कर्मों को अर्पण करना और भगवान् की विस्मृति होने पर चित्त में जो व्याकुलता होती है उसी व्याकुलता को नारदजी ने भक्ति कहा है।

''नारदस्तु तदर्पिताखिलचारिता तद्विस्मरणं परमव्याकुलतेति।''

नारदभक्तिसूत्र 19

प्राचीन आचार्यों के जो सब भक्ति के लक्षण तुम्हें कहे हैं, उनका मोटा सारांश यही है कि निष्काम होकर प्रीतिपूर्वक भगवान् की सेवा करने का नाम ही भक्ति है। उस सेवा में किसी कर्म वा ज्ञान की जरूरत नहीं होती।

यह भक्ति तीन प्रकार की है-साधना भक्ति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति।

''सा भक्तिः साधनं भावः प्रेम चेति त्रिधोच्यते।''

भक्ति रसामृत सिन्धु

भगवान् के नाम और गुणानुवाद श्रवण कीर्तन आदि द्वारा जो भक्ति साधित की जाती है उसे साधनभक्ति कहते हैं। साधन भक्ति दो प्रकार की होती है, वैधी और रागानुगा। जिस स्थल में इष्ट देवता के प्रति वैसा प्रबल अनुराग नहीं होता, परन्तु गुरु के वाक्य में विश्वास करके या शास्त्र की आज्ञा के भय से भगवान् की भक्ति की जाती है, उसे वैधी भक्ति कहते हैं।

सुरर्षे ! विहिता शास्त्रे हरिमुद्दिश्य या क्रिया।
सैव भक्तिरिति प्रोक्ता तया भक्तिः परा भवेत्॥

नारदपंचरात्र

हे देवर्षि नारद ! शास्त्र में जो सब क्रियायें हरि के उद्देश्य से विधान की हुई हैं, उनके करने को वैधी भक्ति कहते हैं। इसी भक्ति का अनुष्ठान करते-करते पराभक्ति प्राप्त होती है।

गुरु के वचन में विश्वास कर शास्त्र की आज्ञा के अनुसार भगवान् के नामों का श्रवण, कीर्तन आदि साधन करते-करते भगवान् में प्रीति उत्पन्न होती है। भक्ति की इस अवस्था को रागानुगा भक्ति कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति ब्रजवासियों की जो भक्ति थी उसका नाम रागात्मिका भक्ति है। रागात्मिका भक्ति के अनुकूल और अनुरूप जो भक्ति साधक प्राप्त करता है उसका नाम है रागानुगा। जब साधक रागानुगा भक्ति पा लेता है तब इष्ट देवता के प्रति अतिप्रबल अनुराग उसके मन में उत्पन्न हो जाता है। रागानुगा भक्ति प्रबल होने पर उसे भावभक्ति कहते हैं। साधक जब भावभक्ति पाता है तब उसकी ऐसी अवस्था होती है।

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानिशून्यता।
आशावद्धसमुत्कण्टा नामगाने सदा रुचिः॥
असक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावङ्कुरे जने॥

भक्तिरसामृतसिन्धु

जिन साधकों में भावभक्ति के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं उनमें इस प्रकार के अनुभव होने लगते हैं यथा क्षान्ति, सर्वदा क्षमा में रुचि, अव्यर्थकालत्व, केवल भगवत्प्रसंग में ही समय बिताना, सभी विषयों में वैराग्य, मानहीनता, भगवान् के पाने के लिये प्रबल कामना, भगवान् के नाम गान में सर्वदा रुचि, भगवान् के गुणानुवाद में आसक्ति और भगवान के निवासस्थलों में प्रीति।

जब भावभक्ति में प्रगाढ़ता हो जाती है तब प्रेम उत्पन्न होता है।

सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।

भाव स एव सान्द्रत्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥

भक्तिरसामृतसिन्धु

जिसके द्वरा चित्त अतिशय निर्मल होता है, जो ममतायुक्त होता है, इस प्रकार का भाव जब प्रगाढ़ हो जाता है तब पण्डित लोग उसे प्रेम कहते हैं।

जैसा नारदपंचरात्र में कहा है:-

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसंगता।

भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रह्लादोद्वनारदैः॥

भक्तिःप्रमोच्यते भीष्ममुखै यंत्र तु संगता।

ममतान्यममत्वेन वर्ज्जितेत्यत्रयोजना॥

दूसरे के प्रति ममता को त्याग कर भगवान में जो ममता हो, उसका नाम प्रेम है। भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद आदि भक्तजनों ने इसे ही प्रेमभक्ति कहा है। अनन्य ममता को भीष्म आदि भागवत प्रेमभक्ति कहकर उल्लेख कर गये हैं।

''ॐ सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा'' नारदभक्ति सूत्र 2

''ॐ सा परानुरक्तिरीश्वरे'' शाण्डिल्य सूत्र 2

भगवान् नारद और शाण्डिल्य ने अपने भक्ति सूत्र ग्रन्थ में प्रेमभक्ति का वर्णन इस प्रकार से किया है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है-

''ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥''

जो ब्रह्म को पाकर प्रसन्न अन्तरात्मा हो जाता है वह किसी के लिये न शोक करता है न कुछ कामना करता है। समस्त जीवों में उसकी समदृष्टि हो जाती है, ऐसे ही साधक मेरी पराभक्ति को प्राप्त करते हैं।

प्रेमभक्ति जब प्रगाढ़ हो जाती है, तब प्रेम, स्नेह आदि नामों से पुकारी जाती है। भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि नामक श्रीमद् रूपगोस्वामीजी के दो ग्रन्थों में इसका वृतान्त विस्तार के साथ लिखा है। भक्ति लाभ की रीति भक्तिरसामृतसिन्धु में इस प्रकार से कही है-

''आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
आसक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाऽभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः॥

पहले श्रद्धा, श्रद्धा का अर्थ गुरु और शास्त्र वाक्यों में विश्वास। तदनन्तर साधुजनों की संगति, अनन्तर भजन, उससे अनर्थों की अर्थात् विघ्नों की निवृत्ति होती है। तत् पश्चात् निष्ठा और रूचि उत्पन्न होती है। उसके बाद में भगवान् में आसक्ति और तब प्रेमभाव का उदय होता है। साधकों को एक के बाद एक ये सब अवस्थायें प्राप्त होती हैं।

भगवान् की पराभक्ति पाकर साधक कृत कृत्य हो जाता है। देवर्षि नारद ने अपने भक्ति सूत्र में भक्ति की महिमा इस प्रकार वर्णन की है-

''यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति''

सूत्र 4

''यत्प्राप्य न किञ्चिद् वाच्छति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति। सूत्र 5

''यज् ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति।

सूत्र 6

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवता, सनाथा चयं भूर्भवति सूत्र 19

भक्ति लाभ करने पर साधक सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है। उसकी कोई कामना नहीं रहती। किसी विषय में उसको उत्साह अर्थात महत्वाकांक्षा नहीं रहती। वह मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है, आत्माराम हो जाता है। उसके पितर नितान्त आनन्द पाते हैं, देवता नृत्य करते हैं। पृथ्वी उसे पाकर धन्य हो जाती है।

सद्गुरु के पास दीक्षा ग्रहण कर उसके उपदेशानुसार साधना करने पर साधक पहिले माया से मुक्त होकर ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करता है। तत् पश्चात् उसको योग की अवस्था प्राप्त होती है। इस अवस्था में वह जीवात्मा में परमात्मा को देख पाता है। तदनन्तर भगवान् की पराभक्ति प्राप्त होने की अवस्था होती है। इस पराभक्ति को प्राप्त करने पर साधक के समक्ष भगवान् का लीलातत्व प्रकट होता है। तब साधक भगवान् की अनन्त लीलाओं का दर्शन कर पूर्णकाम हो जाता है। तब उसको प्राप्त करने के लिये कुछ शेष नहीं रहता। इस लीला-दर्शन की स्थिति को ही पञ्चम पुरुषार्थ कहते हैं। इस स्थिति को पाने के लिये सद्गुरु की कृपा अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं।

तांत्रिक साधना और पञ्च मकार

शिष्य-तंत्रों में पञ्च मकार की व्यवस्था क्यों की गयी है ?

गुरु- जो निवृत्तिपथ पर चलने में असमर्थ हैं, उन निम्न कोटि के अधिकारियों के हेतु ही तंत्र की रचना की गयी है। हमारे शास्त्रकारों ने धर्म की प्राप्ति के लिये दो प्रकार के मार्गों का निर्देश किया है-निवृत्ति मार्ग और तांत्रिक मार्ग। निवृति मार्ग को वैदिक मार्ग और प्रवृति मार्ग को तांत्रिक मार्ग कहते हैं। जो उच्च कोटि के अधिकारी होते हैं, शास्त्र के विधिनिषेधों को पालन कर आहार-विहार में सब प्रकार से संयमपूर्वक चलने में समर्थ होते हैं, वे निवृत्ति मार्ग के अधिकारी होते हैं। लेकिन पृथ्वी पर सभी लोग उच्च अधिकार लेकर जन्मे नहीं, खासकर आज के कलिकाल में। युग के माहात्म्य के कारण मनुष्य की शक्ति सभी विषयों में अति अल्प है। अत: मनुष्यों में अधिकांश ही शास्त्र विधि को पालन करने में, आहारादि सब विषयों में संयम कर निवृति मार्ग में चलने में असमर्थ हैं। जो निवृत्ति मार्ग में प्रगति करने में समर्थ नहीं हैं, उन निकृष्ट अधिकारियों के लिये परमदयालु जगद्गुरु भगवान महादेव ने तन्त्रों में पञ्चमकारों के उपयोग की व्यवस्था कर दी है। हंमारे प्राचीन स्मृतिकार भी मनुष्य प्रकृति के अनुसार भिन्न भिन्न धर्मों की व्यवस्था कर गये हैं। शास्त्र में वर्णधर्म, आश्रमधर्म, मोक्षधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, स्त्रीधर्म, आदि नाना प्रकार के धर्मों का वर्णन है।

अधिकार, प्रकृति और अवस्था के अनुसार उन सब धर्मों का विधान किया गया है।

हमारे देश में भगवती श्यामा की पूजा तथा अन्य पूजायें जो प्रचलित हैं, वे तीन प्रकार की हैं- तामसिक पूजा, राजसिक पूजा और सात्विक पूजा। तामसिक पूजा और राजसिक पूजा में पशुबलि आदि हिंसा कार्य किया जाता है और तामसिक पूजा में ही मद्य का व्यवहार भी किया जाता हैं परन्तु सात्विक पूजा में ऐसा कोई काम नहीं होता। पशुबलि और मद्य का व्यहार सात्विक पूजा में वर्जित है। राजसिक और तामसिक पूजा में देवी को मांस से भोग दिया जाता है। सात्विक पूजा में मांस का स्पर्श भी नहीं होता। यह तामसिक, राजसिक और सात्विक पूजायें भी अधिकारों की श्रेष्ठता और निकृष्टता के भेद से प्रचलित हैं।

पृथ्वी पर सब मनुष्यों की प्रकृति एक समान नहीं। इस प्रकार भिन्न प्रकृतियों को लेकर मनुष्य पृथ्वी पर जन्मते हैं। किसी की प्रकृति सत्व प्रधान, किसी की रजः प्रधान और किसी की तमः प्रधान होती है। मनुष्य की प्रकृतिगत सत्व, रजः तमः इन तीनों गुणों की कमी बेशी के कारण भिन्न-भिन्न धर्मों की व्यवस्था की गयी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों वर्ण भी गुणों के अनुसार सृष्ट हैं।

''चातुर्वण्य मया सृष्ट गुणकर्मविभागशः।'' गीता 4।14

सत्वगुण होने पर ब्राह्मण, रजोगुण होने पर क्षत्रिय, तमोगुण के साथ रजोगुण होने पर वैश्य और केवल तमोगुण होने पर शूद्र इस प्रकार जाति रचना की गयी है। इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चारों वर्णों की प्रकृति और अधिकार भिन्न भिन्न हैं। चारों वर्णों की प्रकृति और अधिकार भिन्न होने से उन लोगों के धर्म, आहार वृति आदि सभी भिन्न-भिन्न हो गये हैं। प्रकृति और अधिकार भेद से भिन्न-भिन्न जातियों के लिये शास्त्र में पृथक्-पृथक् धर्मों की जो व्यवस्थाये की गयी हैं, उन उन जातियों के उपयुक्त हैं। शूद्र जाति के लिये जिस धर्म का निर्देश किया गया है उन के लिये वही उचित है। अन्य वर्णों का धर्म उनके लिये परधर्म हो जाता है। इस प्रकार से शास्त्र में जिस

जाति के लिये जो धर्म कथित है वही धर्म उस जाति का स्वधर्म है और उससे भिन्न परधर्म। ब्राह्मण के लिये जो धर्म शास्त्र में निर्दिष्ट किया गया है वह ब्राह्मण का क्षत्रिय के लिये जो विहित है वह क्षत्रिय का और वैश्य के लिये जो कथित है वह वैश्य के लिये उपयोगी है। शास्त्र में शूद्र जाति के लिये जिस धर्म की व्यवस्था की गयी है, शूद्रजन उसका पालन सहज में कर पाते हैं। दूसरे वर्ण के धर्म का पालन उनके लिये कष्टकर होता है। केवल कष्टकर ही नहीं, एक प्रकार से असम्भव है। अत: शूद्रों के लिये स्वधर्म पालन करना ही स्वाभाविक और कल्याणकारी है। उस रीति से अपना धर्म पालन करने पर शुद्रों को वैश्य जाति के धर्म का अधिकार होगा, क्योंकि मनुष्य धीरे धीरे ही उच्चकाटि के धर्म का अधिकार पाता है। प्रथम तमोगुणाी धर्म को शास्त्र की व्यस्थानुसार निभाना होगा। तमोगुणी धर्म को नियमपूर्वक आचरण करने पर रजोगुणी धर्म के लिये अधिकार उत्पन्न होगा। उसके अनन्तर रजोगुणी धर्म का आचरण किये जाने पर सत्वगुणी धर्म के लिये अधिकार होगा। इस प्रकार शूद्र जाति को वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण जाति के धर्मो का अधिकार होता है।

एक के बाद दूसरा ग्रन्थ पढ़ने से जैसे विद्या प्राप्त करनी होती है उसी तरह से एक के बाद दूसरा उचक्रम का धर्म पालन करने से धर्माचरण का प्रकृत फल लाभ किया जा सकता है। विश्रृंखलता से और अनियम से धर्मानुष्ठान करने से फल की प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य अपना धर्म का आचरण नहीं करने पर अन्य सहस्त्र चेष्टाओं से भी मोक्ष की प्राप्ति में समर्थ नहीं होता। इसलिये भगवान् ने गीता में कहा है-

''स्वधर्मेनिधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।'' 3।35

स्वधर्म में अर्थात् जिस वर्ण के लिये जो धर्म शास्त्र में विहित है उस धर्म का आचरण करते हुए यदि किसी मनुष्य की मृत्यु भी हो जाये तो उसके लिये वह मङ्गलकारक है। परधर्म अर्थात् दूसरे वर्ण का धर्माचरण धर्म करने से मङ्गल तो क्या, अमङ्गल होगा।

तंत्रशास्त्र में धर्म के कार्यों में मद्य मांसादि के उपयोग की व्यवस्था जो महादेव ने की है, वह भी मनुष्यों के प्रकृति भेद के

कारण से है, उच्च नीच अधिकारों के कारण से है। जो श्रद्धालु मनुष्य निवृत्ति मार्ग में चलने में असमर्थ है, निवृत्ति मार्ग के शास्त्र विहित विधि- निषेधों को पालन करते हुए संयम पूर्वक धर्मानुष्ठान नहीं कर पाते, उन्हीं निम्न कोटि के अधिकारियों के लिये प्रवृत्तिमार्ग का उपदेश किया गया है। जिनकी जिह्वा संयम में नहीं रहती है, जो मद्य-मांस खाने की लालसा को रोक नहीं पाते, संयम पूर्वक स्त्री सहवास करने में जो असमर्थ हैं, उन्हीं सबके लिये भगवान् विरूपाक्ष ने तंत्रशास्त्र के कथित मद्य-माँसादि के व्यवहार की व्यवस्था की है। जिन लोगों को धार्मिक उन्नति करने के लिये सच्ची आकांक्षा है, वासना के जाल से, कर्मों के बन्धनों से मुक्ति पाने की इच्छा है, परन्तु काम, क्रोध लोभ आदि प्रवृत्तियों की प्रबलता के कारण निवृत्ति मार्ग के विधिनिषेधों को पालन करने में समर्थ नहीं, मद्य-मांस को और अवैध रीति से स्त्री संग को भी छोड़ नहीं सकते, वे लोग क्या धार्मिक उन्नति करेंगे ही नहीं ?

यदि संसार में ऐसे मनुष्यों के लिये इसी प्रकार की व्यवस्था (केवल निवृत्ति परक) होती तो यह बड़े अन्याय और अविवेक का कार्य होता। परन्तु ऐसी व्यवस्था नहीं है। भगवान् ने ऐसा प्रबन्ध किया है जिससे सब भाँति के मनुष्य धार्मिक उन्नति कर सकें। निम्न कोटि के अधिकारी मनुष्य अपनी लालसा के पदार्थों का उपभोग करें और साथ ही साथ धार्मिक उन्नति भी कर पायें इस हेतु से तंत्रशास्त्र का निर्माण हुआ है। विधिपूर्वक भोग के बिना भोगवासना की निवृत्ति होती ही नहीं। इसीलिये महादेव ने विधिपूर्वक मद्य-मांसादि का उपभोग करते हुए साथ-साथ धर्म साधन करने की व्यवस्था की है। जो लोग महादेव द्वारा प्रचारित तंत्रशास्त्र की विधि से मद्य-मांसादि का व्यवहार और नियम पूर्वक साधना करते हैं उनकी वासनायें नष्ट हो जाती हैं। वे लोग पूर्णरूप से धार्मिक उन्नति करने में सफल होते हैं। तंत्रशास्त्र की रीति से, साधना करके जब कोई साधक उच्च अवस्था में पहुँच जाता है, तब फिर उसे मद्य-मांसादि किसी पदार्थ के लिये तनिक भी लालसा नहीं रहती। तब वह मद्य-मांसादि सब तामसिक पदार्थों का परित्याग कर अत्यन्त शुद्धाचरणवाला हो जाता है। तब उसका आवरण वैष्णवों जैसा हो जाता है! तंत्रशास्त्री **इसी अवस्था** को दिव्यभाव कहते हैं।

अधिकार भेद से साधना की भिन्नता वेद में भी है। वेद के कर्मकाण्ड में जो यज्ञों में पशुवध, सोमरस पान आदि के विधान हैं, वे भी अधिकारों की उच्च-नीचता के कारण विहित हैं।

आजकल के शिक्षित व्यक्ति शास्त्र के इस अभिप्राय को न जान कर तांत्रिक साधना को बहुत ही निन्दनीय मानते हैं। वास्तव में यह नीच और निन्दनीय व्यापार नहीं। इसका अभिप्राय बहुत ऊँचा और महत्वपूर्ण है। दुरुपयोग तो सभी वस्तुओं का होता रहता है। इस कारण से तांत्रिक साधना पर दोष लगाना, अथवा उस मार्ग की निन्दा करना अत्यन्त अन्याय है। धन के द्वारा इस संसार में कौन सा बुरा काम नहीं किया जाता है ? ऐसा होते हुए भी क्या किसी ने धन का परित्याग किया है ? ऐसा करना उचित है क्या ? जिस धन के द्वारा अनेक दुष्कर्म साधित होते हैं, उसी के द्वारा संसार में अनेक प्रकार के पुण्य कार्यों को सम्पन्न कर ढेर के ढेर पुण्य भी इकट्ठे किये जाते हैं।

एक बात और है। आज कल के सुशिक्षित व्यक्ति अधिकार भेद की बात समझते नहीं, मानते नहीं। उनका विचार है कि भगवान् ने सब लोगों के लिये एक प्रकार के धर्म की व्यवस्था की है। परन्तु ये लोग यदि तनिक भी चित्त को स्थिर कर विचार कर के देखें तो उन्हें स्पष्ट दीखने लगेगा कि उनका यह मत बिल्कुल गलत है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के समान नहीं, दोनों के अनेक विषयों में बहुत भेद हैं। इस तरह से समस्त मनुष्य जातियों में घोर विषमताएँ पायी जाती हैं। अत: विषमताओं से भरे समस्त मनुष्य समाज के लिए एक धर्म तो किसी तरह भी नहीं हो सकता। सब रोगों के लिए क्या एक क्विनाईन की व्यवस्था की जा सकती है? केवल हिन्दू धर्म ने ही इस तत्व को समझा है। इसीलिये हिन्दुओं के शास्त्रों में अधिकार भेद से पृथक्-पृथक् धर्मों का उपदेश दिया गया है। अन्य धर्मों में अधिकार भेद की बात ही नहीं, अत: सभी के लिये एक प्रकार के उपदेश दिये गये हैं।

विधिपूर्वक किये गये भोगों द्वारा मनुष्य में भोग-वासनायें निवृत्त करके क्रम से उसे निवृत्ति मार्ग में लाना ही तांत्रिक साधना मार्ग का उद्देश्य है। विहित रीति से मद्य-मांसादि का उपयोग कर धीरे-धीरे उनसे निवृत्त करना ही महादेव का अभिप्राय है। यह सब तंत्रशास्त्र के

अध्ययन से स्पष्ट जाना जा सकता है। पहिले से ही एक भाव को मन में रख कर शास्त्र को पढ़ने से शास्त्र का असली मतलब समझा नहीं जाता। शास्त्र को समझने के लिये उसका शिष्य बनना होता है। पहिले ही एक प्रकार के संस्कार को लेकर समालोचक की भांति मस्तक को उन्नत कर शास्त्र को पढ़ने पर कोई भी शास्त्र को समझ नहीं पाता। शिष्य की भांति विनीत भाव से शास्त्र का अध्ययन करो, तब शास्त्र के यथार्थ तात्पर्य को समझ सकोगे। तब सब शास्त्रों के महत्व, उनके उच्च भाव और पवित्र अभिप्राय को देखकर मुग्ध हो जाओगे।

आहार के साथ धर्म सम्बन्ध

शिष्य - आहार के साथ धर्म का कोई सम्बन्ध है क्या ? दूसरे का जूठा खाने से धर्म की कुछ हानि होती है क्या?

गुरु - आहार के साथ धर्म का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। धर्म साधना के लिये शरीर प्रधान उपाय है। इसीलिये ऋषियों ने कहा है- ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्''-शरीर धर्म साधन के लिये पहिला उपाय है। शरीर स्वस्थ और निरोग हो तब धर्म की साधना होती है। शरीर अस्वस्थ वा रोगी हो जाने पर धर्म साधना में पूरा विघ्न आ पड़ता है। विद्याध्ययन, कृषि, वाणिज्य आदि जितने भी मेहनत के काम हैं, उनमें धर्म की साधना सबसे अधिक श्रमसाध्य है। कठोर परिश्रम के साथ साधना के बिना धार्मिक उन्नति नहीं की जा सकती। प्राचीन समय के विश्वामित्र, वाल्मीकी आदि ऋषियों और आजकल के बुद्ध आदि महापुरुषों के धार्मिक साधना के वृत्तान्तों को पढ़कर हैरान होना पड़ता है। शरीर स्वस्थ, निरोग एवं बलवान् नहीं होने पर मनुष्य कठिन परिश्रम नहीं कर पाता। अत: धर्म की साधना करने की इच्छा हो तो सब प्रकार के प्रयत्नों से शरीर को स्वस्थ रखना होगा। शरीर का स्वस्थ और निरोग होना पूर्णरूप से आहार पर निर्भर करता है। उपयोगी आहार के बिना धर्मसाधना होती नहीं। भगवान् ने गीता में कहा है-

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नत:।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा॥

अत्यधिक भोजन करने वाला अथवा निराहार रहने वाला, अधिक सोने वाला अथवा बिल्कुल जागरण करने वाला कोई भी योग नहीं कर पाता। जो व्यक्ति उपयुक्त आहार विहार करता है, नियमानुसार साधना करता है, उचित मात्रा में नींद लेता है और जागरण करता है उसी की योग साधना सफल होती है।

अनेक खाद्य पदार्थ ऐसे हैं, जो पुष्टि कारक, लघुपाक और उत्तेजन रहित भी हैं। इसी प्रकार के खाद्य पदार्थ धर्मसाधक के लिये उचित हैं। जो वस्तुएँ पुष्टिकारक, लघुपाक होकर उत्तेजक भी हों, वे साधक के लिये कभी भी ग्राह्य नहीं क्योंकि शरीर में उत्तेजना वर्तमान होने पर मन स्थिर नहीं होगा। मन के स्थिर न होने पर कुछ भी धार्मिक साधना सम्पन्न नहीं होती।

हमारे शरीर में सत्व, रज:, तम - ये तीन गुण हैं। शरीर में तम: और रजो: गुण की अधिकता होने पर धर्म की साधना में बड़ा विघ्न होता है। जब तक सत्वगुण की प्रबलता नहीं होती उद्वेग रहित होकर धर्म साधना नहीं की जा सकती। अत: साधक को जिस तरीके से सत्वगुण प्रबल हो, उस पर विशेष ध्यान रखना जरूरी है। ऐसे अनेक खाद्य हैं जिनके खाने पर तमोगुण बहुत प्रबल हो जाता है। शरीर में तमोगुण की अधिकता होने पर मन अत्यन्त चंचल और विक्षिप्त होता है। मन में भक्ति, श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा आदि पवित्र भाव म्लान हो जाते हैं। काम, क्रोध, आलस्य, निद्रा, सन्देह, अविश्वास आदि प्रबल हो जाते हैं। मन की ऐसी अवस्था में किसी तरह भी साधना नहीं की जा सकती। अत: तमोगुण जिससे प्रबल न हो सके, सब तरह से ऐसा यत्न करना चाहिए। अत: तमोगुण को दूर रखने के लिये तामसिक आहार का वर्जन करना जरूरी है। मद्य-मांस तमोगुणी आहार है। इनको खाने से तमोगुण खूब प्रबल हो जाता है। इसलिये मोक्ष की इच्छा रखने वालों को मद्य-मांस का सर्वथा त्याग करना होता है। शास्त्रकारों ने धर्म की साधना करने वालों के लिये मद्य-मांस का सेवन बिल्कुल निषिद्ध किया है और यह बात उन्होंने एक बार नहीं, बारम्बार

कही है। सिर्फ मद्य-मांस ही नहीं, प्याज, लहसुन, फूलगोभी, शलगम आदि विलायती साग सब्जी, मसूर की दाल का खाना भी उचित नहीं। ये सब पदार्थ उत्तेजक और तमोगुण की वृद्धि करने वाले हैं। इन पदार्थों को खाने से शरीर और मन उत्तेजित तथा तमोगुण बढ़ने से चंचल और विक्षिप्त होता है। इस से साधना में बहुत क्षति होती है। अत: साधक को तमोगुणी आहार का सब रीति से परित्याग करना चाहिए। जो लोग रीति अनुसार साधना करते हैं, वे अच्छी तरह समझते हैं कि आहार के साथ धर्म का कैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो शास्त्र विहित रीति के अनुसार नहीं चलते, शास्त्रों से बाहर अपनी कल्पना से बनाई प्रणाली वा पद्धति से चलते हैं वे लोग इसे समझ नहीं सकते क्योंकि उनकी अपने मन से बनाई प्रणाली उनके मन में किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं लाने पाती। शास्त्रोक्त प्रणाली को अनुसरण कर साधक जिस प्रकार की उच्च स्थिति को प्राप्त करते हैं, अपने मन की करने वाले वैसी स्थिति को किसी तरह भी नहीं पहुँचते। अत: आहार द्वारा साधना में जो अनेक क्षति होती है उसे वे लोग किञ्चित् भी समझ नहीं पाते।

दूसरे का उच्छिष्ट खाने से भी धर्मसाधना में सफलता नहीं मिलती। दूसरे की उच्छिष्ट खाने से उसके अन्तर के सभी भाव उच्छिष्ट खाने वाले में संक्रमित हो जाते हैं। इस प्रकार जूठे भोजन के साथ एक मनुष्य के काम, क्रोध, लोभ, अविश्वास, संशय आदि निकृष्ट भाव दूसरे मनुष्य के अन्तर में प्रविष्ट हो जाते हैं। इससे धर्म साधना में बहुत नुक्सान होता है। दूसरे का उच्छिष्ट खाने पर उसे यदि कोई रोग हो तो वह जूठा खाने वाले के शरीर में जाकर उसके शरीर को रोगी बना देता है। इससे भी साधना में विकट विघ्न होता है।

जो शिशु धात्रियों द्वारा लालित पालित होते हैं, उनके स्तन का दूध पीते हैं, उनके साथ खान-पान करते हैं, उन शिशुओं के स्वभाव नीच और घृणित हो जाते हैं। जो शिशु सदा नौकरों के पास रहते हैं, उन्हीं के साथ खाते-पीते हैं उन शिशुओं के स्वभाव माता-पिता के स्वभावों के समान न होकर उन नौकरों के तुल्य होते हैं। इससे उन

बालकों का बड़ा अनिष्ट होता है। बाघनी द्वारा पाले हुए मनुष्य के बच्चे का बाघ जैसा स्वभाव होने की कथायें पुस्तकों में पढ़ने में आती हैं। एक स्थान में रहने और स्तन पान की अपेक्षा भी उच्छिष्ट खाने से एक मनुष्य के विचार और रोग दूसरे मनुष्य में अधिकार परिमाण में प्रवेश करते हैं। अतः जिसे धर्म में उन्नति करनी हो, उसे तो दूसरों का उच्छिष्ट विष के समान समझकर कभी लेना नहीं चाहिये।

एक ओर जैसे दूसरे का उच्छिष्ट खाना वर्जनीय है; वैसे ही देवता, माता-पिता, साधु और भगवद्भक्तों के प्रसाद का ग्रहण करना उचित है। देवता आदि के प्रसाद ग्रहण करने से देवताओं का देवभाव, साधुजनों की साधुता और भगवद्भक्तों की भक्ति प्रसाद खाने वाले में संक्रमित होकर उसके देवभाव, साधुभाव और भक्ति को अधिक बढ़ाती है। इसीलिये शास्त्र में जूठे पदार्थ के खाने का निषेध और प्रसाद खाने की व्यवस्था की गयी है।

साधकों को धार्मिक उन्नति करने में जितने प्रकार के विघ्न हैं, उनमें मद्य-मांस और उच्छिष्ट भोजन मुख्य हैं। अतः साधक मद्य-मांस तथा उच्छिष्ट का कभी सेवन नहीं करे। वैसा करने पर वह किसी तरह भी धार्मिक उन्नति नहीं कर पायेगा।

''आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि।'' छान्दोग्य उपनिषद 7।26।2

आहार की शुद्धि होने पर चित्त की शुद्धि होती है। चित्त की शुद्धि नहीं होने से मुक्ति किसी प्रकार भी नहीं होगी।

श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी से सम्बन्धित हिन्दी ग्रन्थ एवं प्राप्ति स्थान

क्रं. सं. ग्रन्थ का नाम — लेखक

1. **श्री श्रीसद्गुरु संग** - लेखक कुलदानन्द ब्रह्मचारी

   प्राप्ति स्थान :- सेवायत, ठाकुरबाड़ी, पुरी

2. **अजपा साधन तत्व** - स्वामी असीमानन्द सरस्वती
3. **कुछेक दिनों के संस्मरण** - स्वामी असीमानन्द सरस्वती
4. **गुरु-शिष्य संवाद** - जगद्बंधु मैत्र

   प्राप्ति स्थान : श्री श्रीविजयकृष्ण आश्रम, रामचन्द्रपुर, जिला पुरुलिया पिन : 723144

5. **साधना पथ** - स्वामी अमलानन्द सरस्वती
6. **श्री श्रीविजयकृष्ण कथामृत** - स्वामी अमलानन्द सरस्वती
7. **सद्गुरु स्वामी असीमानन्द लीला प्रसंग** - स्वामी अमलानन्द सरस्वती
8. **श्री श्रीविजयकृष्ण परिजन**

   प्राप्ति स्थान :- श्री श्रीविजयकृष्ण भक्त संघ, स्टेशन रोड़, रघुनाथपुर, (पुरुलिया) - 723133, मो. : 09932607101, 09332409501

9. **श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी** - डॉ. रत्ना मुखोपाध्याय
   (संक्षिप्त जीवनी एवं उपदेश)
10. **श्री श्रीकिरणचन्द्र दरवेश जी** - डॉ. रत्ना मुखोपाध्याय
    (संक्षिप्त जीवनी एवं उपदेश)
11. **स्वामी श्रीअसीमानन्द सरस्वती** - डॉ. रत्ना मुखोपाध्याय
    (संक्षिप्त जीवनी एवं उपदेश)

    प्राप्ति स्थान :- श्री ए.के. मुखर्जी, 3/747, शान्ति नगर, रायपुर (छ.ग.) पिन : 492-001

12. **माँ-मणि** (जीवन दर्शन एवं दिव्य लीला-अनुभूतियाँ)
13. **महापातकी के जीवन में सद्गुरु लीला** (लेखक हरिदास बसु)

    प्राप्ति स्थान : श्री रामअवतार शर्मा, ए-22, भान नगर, क्वींस रोड़, जयपुर-302021 मोबाइल : 09314522108, 0141-2353971

13. **श्री श्रीअद्वैताचार्य प्रभु** - **श्री ब्रजेश्वरानंद**

    प्राप्ति स्थान : पार्थ पाठक 42, लेक ईस्ट 6 रोड़, कोलकाता - 700075

श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी (जटिया बाबा) समाधि–मन्दिर, पुरी

❖ भगवान के नाम से पातकी का उद्धार होता है। यह उसका वस्तुगुण है। द्रव्यगुण किसी बात की अपेक्षा नहीं करता, आग में हाथ डालोगे तो वह जलेगा ही।

❖ सभी के पैरों के नीचे होकर धर्म का मार्ग है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़ा, मकोड़ा, सब के पैरों के नीचे होकर धर्म की सीढी पर चढ़ना पड़ता है। ऊँचा सिर करने से कभी धर्म प्राप्त नहीं होता। अभिमान बड़ी बुरी चीज है। जटा, माला और तिलक आदि धर्म की वेषभूषा को धारण करने से यदि रत्ती भर भी प्रतिष्ठा का भाव मन में आ जाये तो उसी दम उसका त्याग कर देना चाहिए।

❖ धर्माभिमान बड़ा भयानक होता है। इतना अनिष्ट और किसी काम से नहीं होता जितना इससे होता है। अन्यान्य अपराधों का तो ओर–छोर है, किन्तु धर्माभिमान का बेड़ा सहज में पार नहीं लगता। जब तक अपने को छोटा न समझोगे, हजारों साधन, भजन और तपस्या से भी कुछ न होगा।

❖ भगवान की कृपा ही सार है और बाकी कुछ भी नहीं। साधन भजन जागरूक रहने के लिए है ताकि उनकी कृपा आये तो धारण कर सको। साधन भजन करके उन्हें पा सके, यह साध्य किसमें है?

– श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी